* ओ३म् *

# महर्षि दयानन्द सरस्वती के धर्मोपदेश

●

राजा जयकृष्णदास जी के निवेदन पर लिपिबद्ध
१२ जून १८७४ तक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा
भारत भ्रमण काल में दिये गये उपदेशों का संग्रह

●

**श्रीस्वामीदयानन्दरचित**

प्रकाशक



*प्रकाशक* :
*संस्करण* : प्रथम, ईस्वी सन् २०११
सृष्टिसंवत् १९६०८५३१११
दयानन्दजन्माब्द १८४
विक्रमसम्वत् २०६८
*मूल्य* : १०० रुपये
*शब्द संयोजक* : **भगवती लेज़र प्रिंट्स,** नई दिल्ली
*मुद्रक* :

ओ३म्
# सत्यार्थप्रकाश ( प्रथम संस्करण ) के विषय में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की सम्मति

''नया नौ दिन, पुराना सौ दिन'' यह बहुत पुरानी लोकोक्ति है। नये सत्यार्थप्रकाश [द्वितीय संस्करण] को अङ्गीकार करके पुराने को सर्वथा भुला देने में आर्यपुरुषों ने बहुत भूल की। लगभग ३१ वर्ष हुए, जब मैंने आदिम सत्यार्थप्रकाश पढ़ा था। उस समय मेरे हृदय पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था। उसके पश्चात् मैंने उसे सर्वथा भुला दिया था और यहाँ तक भुलाया था कि उसी आदिम गुरु से प्राप्त की हुई युक्तियों तथा प्रमाणों को भी अपने ही निर्मित और अपने ही ढूँढ़े हुए समझ बैठा था, परन्तु परोपकारिणी सभा में जब यह विषय पिछली दिवाली [सन् १९१७ ई०] के दिन पेश हुआ तो मेरा ध्यान इसकी ओर फिर खिंचा। प्रश्न यह था कि पण्डित कालूराम को इस ग्रन्थ के पुन: छापने से न्यायालय द्वारा बन्द कराया जावे। मेरी सम्मति इसके विरुद्ध थी। परन्तु उपस्थित सज्जनों ने यह विषय आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के सुपुर्द करना उचित समझा। उन्होंने क्या आन्दोलन किया और क्या सम्मति दी, इससे कुछ मतलब नहीं।

परन्तु कालूराम जी की किताब निकलते ही आर्यसामाजिक जगत् में घोर आन्दोलन शुरु हो गया और संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा के आर्गन ने बड़े जोश के लेख लिखे। तब मैंने 'आदिम सत्यार्थप्रकाश' पुस्तक गुरुकुल विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से मँगाया और पण्डित कालूराम की पुस्तक भी प्राप्त की। सारा ग्रन्थ पढ़ने पर मुझे आश्चर्य हुआ कि क्यों इतना शोर मचाया गया। क्यों न इस प्रकार के आक्षेपों का उत्तर देकर पहले से ही विरोधियों के मुँह बन्द कर दिये गये और क्यों निष्पक्षपात सर्वसाधारण को भ्रम में पड़ने दिया गया? इसका कारण



विशेषत: आर्य विद्वानों का आलस्य प्रतीत होता है। पहले सत्यार्थप्रकाश के विषय में अधिक भ्रम पण्डित भीमसेन (इटावा निवासी) ने फैलाया था।

..... इस प्रकार के भ्रममूलक लेखों ने आर्यपुरुषों के लिए पहले छपे सत्यार्थप्रकाश को त्याज्य बतलाकर उनको इससे इतना डराया कि अपने मूल सिद्धान्त पर ही कुल्हाड़ा चल रहा है। आर्यसमाज का मत वेद है। जब वेद विरुद्ध होने से उपनिषद् तक के लेख की हम उपेक्षा कर सकते हैं, तो फिर आदिम सत्यार्थप्रकाश के पुनरुदय से घबराने की कौन-सी बात है। परन्तु इस ग्रन्थ के पढ़ने से आर्यसमाजस्थ सभ्यों को विदित हो जाएगा कि आदिम सत्यार्थप्रकाश मनसूख शुदा कानून के तुल्य त्यागने योग्य नहीं, प्रत्युत जंग खाई हुई इस्पात की तलवार है, जिसको सान पर चढ़ाकर ऐसा चमकाया जा सकता है कि अविद्या की जञ्जीरों को काटने का फिर से वही अपूर्व काम कर सके, जो इसने बड़े अन्धकारावृत समय में किया था।......

......मेरी सम्मति तो यही है कि इस अपूर्व ग्रन्थ का पूर्णरूप से संशोधित संस्करण परोपकारिणी वा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से निकल जाए।

...... निस्सन्देह युग का आचार्य दयानन्द ही है। और इसलिये उसका प्रत्येक लेख और प्रत्येक आचरण एक विशेष गौरव रखता है। उसके किसी लेख और किसी भी व्यवहार को उपेक्षा की दृष्टि से देखा नहीं जा सकता।

......यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द का लिखवाया हुआ है, लिखा हुआ नहीं है और लिखवाया भी पुस्तक के क्रम से नहीं, प्रत्युत व्याख्यानों की रीति से है। हमारी तरह जिन सज्जनों ने आचार्य दयानन्द के धर्मोपदेश सुने हैं, वे साक्षी देंगे कि संशोधित दूसरा [संस्करण] सत्यार्थप्रकाश पढ़कर जहाँ उन्हें एक दार्शनिक आचार्य की रचना का भान होता है, वहाँ आदिम सत्यार्थप्रकाश को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे वर्तमान समय के सबसे बड़े मूर्तिभञ्जक का सिंहनाद स्पष्ट सुन रहे हैं।

वास्तव में यह ग्रन्थ व्याख्यानों का ज्यों का त्यों उल्लेख है जो ''**सत्यपूतां वदेद् वाचम्**'' की मनूक्ति के अनुसार अवधूत दयानन्द ने वज्र की न्याईं जनता के अन्दर फैंक दिये थे।

......ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में ही जो पचास के लगभग आर्यसमाज स्थापित हुए और जो सहस्रों व्यक्तियों ने सनातन वैदिक धर्म की शरण ली, वह इसी 'आदि ग्रन्थ' का चमत्कार था। फिर आश्चर्य होता है कि इसको आर्यपुरुषों ने उपेक्षा की दृष्टि से क्यों देखा। असल बात यह है कि जब पहले सत्यार्थप्रकाश की छपी हुई सब प्रतियाँ समाप्त हो गई और संशोधित सत्यार्थप्रकाश छपकर जनता के हाथों में चला गया तो फिर पुराने की ओर दृष्टि करना केवल उन पुरुषों का ही काम था जिनकी ऐतिहासिक अन्वेषण में कुछ रुचि हो। सो ऐसे पुरुष उस समय आर्यसमाज में थे नहीं।*

स्थान—गुरुकुल कुरुक्षेत्र **—श्रद्धानन्द संन्यासी**
१ भाद्रपद, सं० १९७४ वि०

* स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा रचित ''आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त'' नामक पुस्तक से उद्धृत।



## ओ३म्

**दयाया आनन्दो विलसति परस्स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यशरणा।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रि परमा,
सको दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः॥ १॥**

× × × ×

**सत्यार्थप्रकाशाय ग्रन्थस्तेनैव निर्मितः।
वेदादिसत्यशास्त्राणां प्रमाणैर्गुणसंयुतः॥ २॥**

× × × ×

**विशेषभागीह वृणोति यो हितं,
प्रियोऽत्र विद्यां सुकरोति तात्त्विकीम्।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया,
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः॥ ३॥**

× × × ×

**न ततः फलमस्ति हितं विदुषो,
ह्यधिकं परमं सुलभन्नु पदम्।
लभते सुयतो भवतीह सुखी,
कपटी सुसुखी भविता न सदा॥ ४॥**

× × × ×

**धर्मात्मा विजयी स शास्त्रशरणो विज्ञानविद्यावरोऽ-
धर्मेणैव हतो विकारसहितोऽधर्मस्सुदुःखप्रदः।
येनाऽसौ विधिवाक्यमानमननात् पाखण्डखण्डः कृत-
स्सत्यं यो विदधाति शास्त्रविहितन्धन्योऽस्तु तादृग्घि सः॥ ५॥**

# प्रथम उपदेश

## [ ईश्वर के नामों की व्याख्या ]

**ओ३म् शन्नो मित्रः शम्वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षम्ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षम्ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि सत्यम्वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारम्॥**

**ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥ १॥**

ओ३म्। यह जो ओंकार सो बहुत उत्तम परमेश्वर का नाम है, क्योंकि तीन जे अ उ और म् अक्षर इसमें हैं वे सब मिलके एक ओम् अक्षर हुआ है इस एक अक्षर से बहुत परमेश्वर के नाम आते हैं जैसे, अकार से विराट्, अग्नि और विश्व इत्यादिकों का ग्रहण किया है। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादिकों का ग्रहण किया है। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादिकों का वेदादिक शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है, ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं। जो कोई ऐसा कहे कि परमेश्वर से भिन्न अर्थों का ग्रहण क्यों नहीं होता है, उससे पूछना चाहिए कि विराट् और अग्नि इत्यादिक जितने नाम हैं वे सब मनुष्य, पृथिव्यादिक भूत, देवलोक में रहनेवाले जे देव और वैद्यकशास्त्र में शुंठ्यादिकों के भी लिखे हैं और वे परमेश्वर के भी नाम हैं। इन सभों में आप किनका ग्रहण करते हैं ?

जो आप कहें कि हम तो देवों का ग्रहण करते हैं।

अच्छा तो आपके ग्रहण करने में क्या प्रमाण है ?

देव सब प्रसिद्ध हैं और वे उत्तम भी हैं। इससे मैं उनका ग्रहण करता हूँ।

मैं आपसे पूछता हूँ कि परमेश्वर क्या अप्रसिद्ध है और परमेश्वर से कोई उत्तम भी है ? जो आप इस प्रमाण से उनका ग्रहण करते हैं। और परमेश्वर तो कभी अप्रसिद्ध नहीं होता है। उसके तुल्य कोई नहीं है तो



उत्तम कैसे कोई होगा। इससे यह आपका कहना मिथ्या ही है। आपके कहने में बहुत से दोष भी आवेंगे। जैसेकि भोजन के लिये भोजन करने का पदार्थ किसी ने किसी के पास प्रीति से रखके कहा कि आप भोजन करें। और वह उसको त्याग के अप्राप्त भोजन के लिए जहाँ-तहाँ भ्रमण करे उसको बुद्धिमान् न जानना चाहिए, क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप आया जो पदार्थ उसको छोड़ के अनुपस्थित नाम अप्राप्त जो पदार्थ उसकी प्राप्ति के लिए श्रम करता है इसी से वह पुरुष बुद्धिमान् नहीं है। किञ्च।

**उपस्थितं परित्यज्य, अनुपस्थितं याचते इति बाधितन्यायः।**

वैसा ही आपका कथन हुआ, क्योंकि उन नामों के जो उपस्थित अर्थ मनुष्य, शुंठ्यादिक औषधियों का परित्याग आप करते हैं और अनुपस्थित जे देव उनके ग्रहण में आप श्रम करते हैं इसमें कुछ भी प्रमाण वा युक्ति नहीं है। और जो आप ऐसा कहें कि जहाँ जिसका प्रकरण है वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है, जैसे किसी को कहा कि **सैन्धवमानय,** सैन्धव को तू ले आ, तब उसको समय का विचार करना अवश्य है, क्योंकि सैन्धव तो दो अर्थों का नाम है। घोड़े का और लवण का भी है। गमन समय में सैन्धव शब्द सुनके घोड़े को ले आवेगा और भोजन समय में लवण को ही ले आवेगा, तब तो ठीक ठीक होगा। और जो गमन समय में लवण को ले आवै और भोजन समय में घोड़े को ले आवै, तब उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होके कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है, क्योंकि गमन समय में लवण का क्या प्रयोजन है और भोजन समय में घोड़े का क्या प्रयोजन है ? जहाँ जिसको ले आना चाहिए वहाँ उसको क्यों तू नहीं ले आया। इससे तू मूर्ख है, मेरे पास से चला जा। इससे क्या आया कि जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित होय, वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है।

यह बात तो आपने अच्छी कही कि ऐसा ही जानना चाहिए और करना भी चाहिए। हमलोगों को जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित है वहाँ उसी का ग्रहण करना चाहिए कि—

**ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत॥**

यह छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है और–

**ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वन्तस्योपव्याख्यानम्॥**

यह माण्डूक्य उपनिषद् का वचन है।

**ओं खम्ब्रह्म॥** यह यजुर्वेद की संहिता का वचन है।

**ब्रवीम्योमेतत्॥** यह कठोपनिषद् का वचन है।

**प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।**
**रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषम्परम्॥**
**एतमग्निम्वदन्त्येके मनुमेके प्रजापतिम्।**
**इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥**

ये दोनों मनुस्मृति [१२.१२२-१२३] के श्लोक हैं।

**स ब्रह्मा स विष्णुस्स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः**
**स्वराट् स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः॥**

इत्यादिक कैवल्योपनिषद् के वचन हैं।

**अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥**

यह ऋग्वेद की संहिता का मन्त्र है।

**भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।**
**पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः पुरुषं जगत्॥**

यह यजुर्वेद की संहिता का मन्त्र है।

**अग्नऽआयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।**
**नि होता सत्सि बर्हिषि॥** यह सामवेद की संहिता का मन्त्र है।

**शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥**

यह अथर्ववेद की संहिता का मन्त्र है।

इत्यादिक प्रकरणों में इन वचनों से और इनके ठीक-ठीक अर्थों के जानने से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है, क्योंकि ओंकार और अग्न्यादिक नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है। निरुक्त व्याकरण और कल्पसूत्रादिक ऋषि-मुनियों के किये व्याख्यानों से, वैसे ही ब्रह्मादिकों के किये संहिताओं के शतपथादिक ब्राह्मण वेदों के व्याख्यान से भी और छः शास्त्रों में भी परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है। उन नामों के अर्थों



से और उसी तरह के विशेषणों से भी परमेश्वर का ग्रहण होता है और का नहीं होता। इससे क्या आया कि जहाँ जहाँ प्रार्थना, स्तुति, सर्वज्ञादि विशेषण और उपासना लिखी है वहाँ-वहाँ परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, यह सिद्ध हुआ। और जहाँ-जहाँ ऐसे प्रकरण हैं कि—

**ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः।**
**श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।**
**तस्माद्देवाऽअजायन्त पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥**

ये सब वचन यजुर्वेद की संहिता के हैं।

**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशस्संभूतः। आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्यो अन्नम्, अन्नात्पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।**

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है।

इत्यादिक प्रकरणों में विराट् इत्यादिक नामों से परमेश्वर का ग्रहण किसी प्रकार से भी नहीं होता, क्योंकि परमेश्वर का जन्म और मरण कभी नहीं होता है। इससे इसी प्रकार के प्रकरणों में विराट् इत्यादिक नामों से और जन्मादिक विशेषणों से भी परमेश्वर का ग्रहण शिष्टलोगों को कभी न करना चाहिए।

**विराट्** इत्यादिक नामों का अर्थ करता हूँ, जिससे इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण हो।

**राजृ दीप्तौ**—इस धातु से विराट् शब्द सिद्ध होता है। **विविधन्नाम चराचरञ्जगत् राजते नाम प्रकाशते स विराट्** विविध अर्थात् बहुत प्रकार के जगत् को जो प्रकाश करै उसका नाम **विराट्** है।

**अञ्चु गतिपूजनयोः**—इस धातु से अग्नि शब्द सिद्ध होता है।

**गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनम्प्राप्तिश्चेति। पूजनन्नाम सत्कारः। अञ्चति अच्यते वा सोऽयमग्निः।**

जो ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ जानने, प्राप्ति होने और पूजा के योग्य है उसका नाम **अग्नि** है।

**विश प्रवेशने**—इस धातु से विश्व शब्द सिद्ध होता है। **विशन्ति**

**सर्वाणि भूतानि आकाशादीनि यस्मिन् स विश्वः।** प्रवेश करते हैं सब आकाशादिक भूत जिसमें उसका नाम **विश्व** है इत्यादिक नाम **अकार** से लिये जाते हैं।

**हिरण्यन्तेजसो नाम, हिरण्यानि सूर्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भः।** अथवा **हिरण्यानां सूर्यादीनान्तेजसाङ्गर्भः हिरण्यगर्भः।** हिरण्यगर्भ शब्द का यह अर्थ है कि जिससे सूर्यादिक तेजवाले पदार्थ उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं उसका नाम **हिरण्यगर्भ** है। अथवा सूर्यादिक तेजों का जो गर्भ नाम निवास स्थान उसका नाम **हिरण्यगर्भ** है। इसमें यह यजुर्वेद का मन्त्र प्रमाण है।

**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**
**स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥**

इत्यादिक मन्त्रों से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है।

**वा गतिगन्धनयोः**—इस धातु से वायु शब्द सिद्ध होता है। **गन्धनं हिंसनम्। वाति सोऽयं वायुः। चराचरञ्जगद्धारयति वा स वायुः।** जो चराचर जगत् का प्रलय करै अथवा धारण करै और सब बलवानों से बलवान् हो उसी का नाम **वायु** है।

**तिज निशाने**—इस धातु से तैजस शब्द सिद्ध होता है। जो अपने से आप ही प्रकाशित होय और सूर्यादिक तेजों का प्रकाश करनेवाला हो उसका नाम **तैजस** है, इत्यादिक नामों का **उकार** से ग्रहण होता है।

**ईश ऐश्वर्ये**—इस धातु से ईश्वर शब्द सिद्ध होता है। **ईष्टे असौ ईश्वरः सर्वैश्वर्यवान् यो भवेत् स ईश्वरः।** जो सत्यविचारशील नाम सत्य जिसका ज्ञान है अनन्त जिसका ऐश्वर्य है, उसका नाम **ईश्वर** है।

**दोऽवखण्डने**—इस धातु से अदिति शब्द सिद्ध होता है। **अवखण्डनन्नाम विनाशः।** उससे क्तिन् प्रत्यय करने से दिति शब्द सिद्ध होता है। दिति किसका नाम है कि जिसका विनाश होता है उससे जब नञ् समास हुआ तब **अदिति** शब्द हुआ। अदिति नाम जिसका कभी नाश न होय। जो **अदिति** है वही **आदित्य** है।

**ज्ञा अवबोधने** धातु है उससे प्राज्ञ शब्द सिद्ध हुआ। **प्रकृष्टश्चासौ**



**ज्ञश्च प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः।** जो ज्ञानी और सब ज्ञानियों से उत्तम ज्ञानवान् है उसका नाम **प्राज्ञ** है। **प्रजानाति वा चराचरञ्जगत् स प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः।** सब पदार्थों को यथावत् जो जानता है उसका नाम **प्राज्ञ** है।

जैसाकि परमेश्वर का ओंकार उत्तम नाम है, वैसा कोई भी नहीं। इसका बहुत थोड़ा अर्थ किया गया है, क्योंकि ओंकार की व्याख्या से और बहुत से अर्थ लिये जाते हैं। यह ओंकार का नव नामों से अर्थ तो किया गया है, वे नव नाम परमेश्वर के ही हैं और इस मन्त्र में जितने मित्रादिक नाम हैं उनका अर्थ अब आगे किया जाता है।

जो प्रार्थना, स्तुति और उपासना होती है सो श्रेष्ठ ही की होती है। श्रेष्ठ जो अपने से गुणों में और सत्य-सत्य व्यवहारों में अधिक है सोई श्रेष्ठ होता है। उन सब श्रेष्ठों में भी परमेश्वर अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, क्योंकि परमेश्वर के तुल्य कोई भी न हुआ, न है और न होगा। जो तुल्य नहीं तो अधिक कैसे होगा, कभी न होगा। क्योंकि परमेश्वर के न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञान इत्यादिक अनन्त गुण हैं और वे सर्वदा सत्य ही हैं। इससे सब मनुष्य लोगों को प्रार्थना, स्तुति और उपासना परमेश्वर ही की करनी चाहिए, परमेश्वर से भिन्न किसी की कभी न करनी चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिक देव और दैत्य दानवादिक भी परमेश्वर ही में विश्वास करते हैं, उसी की प्रार्थना, स्तुति और उपासना करते हैं और किसी की भी नहीं करते हैं। इसका विचार अच्छी रीति से उपासना और मुक्ति के विषय में लिखा जाएगा।

**पूर्वपक्ष**—मित्रादिक नामों से सखा और इन्द्रादिक देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उनका ग्रहण करना चाहिए।

**उत्तरपक्ष**—उनका ग्रहण करना योग्य नहीं, क्योंकि जो किसी का मित्र है वही और का शत्रु भी है और कोई से उदासीन भी वह देखने में आता है। परमेश्वर तो सब जगत् का मित्र ही है और कोई से उदासीन भी नहीं। इससे जो व्यवहार में किसी का मित्र होने, किसी का शत्रु होने और किसी से उदासीन होने से उसका ग्रहण करना योग्य नहीं। इसमें

महाभाष्य के वचन का भी प्रमाण भी है।

**प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्ये सम्प्रत्ययः।**
**गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्ये सम्प्रत्ययः॥**

इसका अर्थ यह है कि प्रधान और अप्रधान, गौण और मुख्य के बीच में से प्रधान और मुख्य ही का ग्रहण होता है।

जैसे कि किसी से किसी ने पूछा कि यह कौन जाता है? उसने उससे कहा कि राजा जाता है। इसमें विचार करना चाहिए कि राजा के साथ बहुत से भृत्य, हाथी, घोड़े और रथ भी जाते थे, परन्तु राजा के सामने उनका ग्रहण नहीं भया, न होता है, न होगा, किन्तु राजा ही का हुआ, क्योंकि प्रधान और मुख्य के सामने अप्रधान और गौणों का ग्रहण नहीं होता है। वैसे ही जो परमेश्वर सभों में प्रधान और सभों में मुख्य ही है, मित्र, शत्रु और उदासीन किसी का भी नहीं। इसी से परमेश्वर ही का मित्रादिक शब्दों से ग्रहण करना उचित है।

**वृञ् वरणे वर ईप्सायाम्॥** इन दो धातुओं से वरुण शब्द सिद्ध होता है। **वृणोति सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून् मुक्तान्धर्मात्मनो यस्स वरुणः।** अथवा **व्रियते शिष्टैः मुमुक्षुभिः मुक्तैः धर्मात्मभिः यः स वरुणः परमेश्वरः** अथवा **वरयति शिष्टादीन् वर्यते वा शिष्टादिभिः स वरुणः परमेश्वरः।** जो **वृणोति** नाम स्वीकार करता है, शिष्ट, मुमुक्षु और धर्मात्माओं को उसका नाम **वरुण** है सो वरुण नाम परमेश्वर का है। **व्रियते** नाम शिष्टादिक स्वीकार करते हैं जिसका, उसका नाम **वरुण** है। अथवा **वरयति** नाम जो सबको प्राप्त हो रहा है उसका नाम **वरुण** है। **वर्यते** नाम और जो सब श्रेष्ठ लोगों को प्राप्त होने के योग्य होय, उसका नाम **वरुण** है। और यह भी अर्थ होता है कि **वरुणो नाम वरः, वरो नाम श्रेष्ठः** जो सभों में श्रेष्ठ होय उसका नाम **वरुण** है, वैसा परमेश्वर ही है और दूसरा कोई भी नहीं।

**ऋ गतिप्रापणयोः**—इस धातु से अर्यमा शब्द सिद्ध होता है जो सभों के कर्मों की यथावत् व्यवस्था को जाने और पाप-पुण्य करनेवालों को यथावत् पाप और पुण्यों की प्राप्ति का सत्य-सत्य नियम करै, उसी



का नाम **अर्यमा** है।

**इदि परमैश्वर्ये**—इस धातु से इन्द्र शब्द की सिद्धि होती है।

**इन्दति परमैश्वर्यवान् यो भवति स इन्द्रः**—जिसका परम ऐश्वर्य होय उससे अधिक किसी का भी ऐश्वर्य न होवै उसका नाम **इन्द्र** है।

**बृहत्** शब्द है इसके आगे पति शब्द का समास है। **बृहताम्महता-माकाशादीनां पतिः स बृहस्पतिः।** जो बड़ों से भी बड़ा और सब आकाशादिक और ब्रह्मादिकों का जो स्वामी है उसका नाम **बृहस्पति** है।

**विष्ऌ व्याप्तौ**—इस धातु से विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है। **वेवेष्टि नाम व्याप्नोति चराचरञ्जगत्स विष्णुः। उरु नाम महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः**—जो सब जगत् में व्यापक होय, उरुक्रम नाम अनन्त पराक्रम जिसका है, उसका नाम **उरुक्रम,** वही **विष्णु** है।

**बृह बृहि वृद्धौ।** इन धातुओं से ब्रह्म शब्द सिद्ध होता है जो सबके ऊपर विराजमान होय और सबसे बड़ा होय उसका नाम **ब्रह्म** है।

**वायु** का अर्थ जो ओंकार के अर्थ में किया है वही जान लेना चाहिए।

**शम्** नाम है सुख का और कल्याण का भी। **नः**—यह पद से हम सब लोगों का ग्रहण होता है।

हे परमेश्वर! ओंकारादिक जितने नाम हैं वे आपही के हैं। आप प्रत्यक्ष ही ब्रह्म हैं। **त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि॥** आपही को मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। प्रत्यक्ष नाम सब जगह में आप नित्य ही प्राप्त हो। **ऋतम्वदिष्यामि।** आप की जो यथार्थ आज्ञा है उसी को मैं कहूँगा और उसी को ही मैं करूँगा। **सत्यम्वदिष्यामि।** और सत्य ही कहूँगा और करूँगा भी। **तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु।** ऐसा जो मैं आपकी आज्ञा को कहनेवाला और करनेवाला मेरी आप रक्षा करैं और उस आज्ञा से मेरी बुद्धि विरुद्ध न होय। उसी आज्ञा को मैं जो कहनेवाला, उसी आज्ञा से मैं विरुद्ध कभी न कहूँ, क्योंकि जो आपकी आज्ञा है धर्मरूपी ही है जो उससे विरुद्ध सो अधर्म है। उसी आज्ञा को कहूँ और करूँ भी, वैसी आप कृपा करैं। जब मैं उस आज्ञा को यथावत् कहूँगा और करूँगा भी, तब

उसका मुख्य फल यही है कि आपकी प्राप्ति का होना। **अवतु मामवतु वक्तारम्।** यह फिर जो दूसरी वार पाठ है मन्त्र में, वह आदर के वास्ते है। जैसे कि किसी ने किसी से कहा **त्वं ग्रामं गच्छ गच्छ।** यह कहने से क्या जाना जाता है कि तू ग्राम को शीघ्र ही जा, वैसे ही दूसरी वार पाठ से आप मेरी अवश्य ही रक्षा करें। और **ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः,** यह जो तीन वार पाठ है उसका अभिप्राय यह है कि अध्यात्मताप जो शरीर में रोगादिकों से होता है। दूसरा शत्रु व्याघ्र और सर्पादिकों से जो होता है उसका नाम आधिभौतिक है। तीसरा ताप वह है कि वृष्टि का अत्यन्त होना और कुछ भी वृष्टि का न होना, अतिशीत वा उष्णता का होना, उसका नाम आधिदैविक ताप है। हम लोगों की यह प्रार्थना है कि जगत् के तीनों तापों की निवृत्ति आपकी कृपा से हो जाय। **भवान् शन्नो भवतु।** आप हम लोगों के अर्थात् सब संसार के कल्याण करनेवाले हो। आपसे भिन्न कोई भी कल्याणकारक अथवा कल्याणस्वरूप नहीं है। इससे आपसे ही प्रार्थना है कि सब जीवों के हृदय में आप ही आप प्रकाशित होवैं। इस मन्त्र का संक्षेप से अर्थ पूर्ण हो गया। और आगे अन्य नामों के भी अर्थ लिखे जाते हैं।

**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** यह वचन यजुर्वेद का है।

जगत् नाम प्राणियों का जो कि चलते फिरते हैं। तस्थुष अप्राणि नाम स्थावर जे कि पर्वत वृक्षादिक हैं उन सभों का जो आत्मा होय उसका नाम **सूर्य** है।

**अत सातत्यगमने** धातु है। इससे आत्म शब्द सिद्ध हुआ। **अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा।** जो सब जगत् में व्यापक होय उसका नाम आत्मा है और **परश्चासावात्मा च परमात्मा।** जो सब जीवात्माओं से श्रेष्ठ होय उसका नाम **परमात्मा** है।

**ईश्वर** नाम सामर्थ्यवाले का है जो सब ईश्वरों में परम श्रेष्ठ होय, उसका नाम **परमेश्वर** है। ब्रह्मादिक देवों में एक से एक ऐश्वर्यवाला है जैसाकि मनुष्यों में एक से एक ऐश्वर्यवाला है, वैसे ही ब्रह्मादिक देवों में जो सबसे श्रेष्ठ होय और चक्रवर्त्यादिक राजाओं से परम नाम श्रेष्ठ होय



उसका नाम **परमेश्वर** है। जो सब ईश्वरों का ईश्वर होय और जिसके तुल्य ऐश्वर्यवाला कोई भी न होय उसी का नाम **परमेश्वर** है।

**षुञ् अभिषवे षूङ् प्राणिगर्भविमोचने।** इन दो धातुओं से सविता शब्द सिद्ध होता है। **अभिषवः उत्पादनं प्राणिगर्भविमोचनञ्च। सुनोति सूते वा उत्पादयति चराचरञ्जगत्स सविता।** जो सब जगत् की उत्पत्ति करै उसका नाम **सविता** है।

**दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु।** इस धातु से देव शब्द की सिद्धि होती है। **दीव्यति स देवः। दीव्यति** नाम स्वयं जो प्रकाशस्वरूप होय और जो सब जगत् को प्रकाश करता है इससे परमेश्वर का नाम **देव** है। **क्रीडते स देवः—क्रीडते** नाम अपने आनन्द से अपने स्वरूप में आप ही जो क्रीडा को करे अथवा क्रीडा मात्र से अन्य की सहायता के विना जगत् को क्रीडा की नाईं जो रचै वा सब जगत् के क्रीडाओं का आधार जो होय, इससे परमेश्वर का नाम **देव** है। **विजिगीषते स देवः—विजिगीषते** नाम सबका जीतनेवाला और आप तो सदा अजेय है जिसको कोई भी न जीत सकै, इससे परमेश्वर का नाम **देव** है। **व्यवहारयति स देवः व्यवहारयति** नाम न्याय और अन्याय व्यवहारों का जो ज्ञापक नाम उपदेष्टा और सब व्यवहारों का जो आधार भी है इससे परमेश्वर का नाम **देव** है। **द्योतयति** नाम, सब प्रकाशों का आधार जो अधिकरण है इससे परमेश्वर का नाम **देव** है। **स्तूयते स देवः—स्तूयते** नाम सब लोगों को स्तुति करने के योग्य होय और निन्दा के योग्य कभी न होय इससे परमेश्वर का नाम **देव** है। **मोदयति स देवः—मोदयति** नाम आप तो आनन्दस्वरूप ही है औरों को भी आनन्द करावै जिसको दुःख का लेश कभी न होय, इससे भी परमेश्वर का नाम **देव** है। **माद्यति स देवः—माद्यति** नाम आप तो हर्ष स्वरूप होय, जिसको शोक का लेश कभी न होय औरों को भी हर्ष करावै, इससे भी परमेश्वर का नाम **देव** है। **स्वापयति स देवः—स्वापयति** नाम प्रलय में सभों को शयन अव्यक्त में जो करावै इससे परमेश्वर का नाम **देव** है। **कामयते काम्यते वा स देवः—कामयते**

**काम्यते** नाम जिसके सब काम सिद्ध होयँ और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट लोग करैं, इससे भी परमेश्वर का नाम **देव** है। **गच्छति गम्यते वा स देवः। गच्छति गम्यते** नाम जो सभों में गत नाम प्राप्त होय, जानने के योग्य होय उसको कहते हैं **देव।** देव नाम परमेश्वर का है। देव शब्द के एकादश अर्थ हैं।

**कुबि आच्छादने**—इस धातु से कुबेर शब्द सिद्ध होता है जो आकाशादिकों का आच्छादक है उसका नाम कुबेर है, इससे परमेश्वर का नाम **कुबेर** है।

**पृथु विस्तारे।** इस धातु से पृथिवी शब्द सिद्ध हुआ। जो सब आकाशादिकों से विस्तृत है उसका नाम पृथिवी है, इससे परमेश्वर का नाम **पृथिवी** है।

**जल प्रतिघाते।** इस धातु से जल शब्द सिद्ध होता है। **प्रतिहन्ति अव्यक्तपरमाण्वादीनि परस्परं तज्जलम्।** जो अव्यक्त से व्यक्त को और एक परमाणु से दूसरे परमाणु को अन्यान्य संयोग और वियोग के वास्ते जो हनन और प्रतिहनन करनेवाला होय, उसका नाम जल है, इससे परमेश्वर का नाम **जल** है। हनन नाम एक से एक को मिलाना, प्रतिहनन नाम दूसरे से तीसरे को मिलाना, तीसरे को चौथे से मिलाना, जगत् की उत्पत्ति समय में सभों का संयोग करनेवाला और प्रलय समय में वियोग का करनेवाला वैसा परमेश्वर ही है दूसरा कोई भी नहीं।

**जनी प्रादुर्भावे—ला आदाने** इन धातुओं से भी जल शब्द सिद्ध होता है। **जनयति नाम उत्पादयति सर्वञ्जगत् तज्जम् लाति गृह्णाति नाम आदत्ते चराचरञ्जगत्तल्लम् जञ्च तल्लञ्च तज्जलम्॥** ब्रह्म **ज** शब्द से सभों का जनक और **ल** शब्द से सभों का धारण करनेवाला, उसका नाम **जल। जल** नाम परमेश्वर का है।

**काशृ दीप्तौ।** इससे आकाश शब्द सिद्ध होता है। **आसमन्तात् सर्वतः सर्वञ्जगत्प्रकाशते स आकाशः।** जो परमेश्वर सब जगह से और सब प्रकार से सभों को प्रकाशता है, इससे परमेश्वर का नाम **आकाश** है।



**अद भक्षणे।** इससे अन्न शब्द सिद्ध होता है। **अत्ति भक्षयति चराचरञ्जगत्तदन्नम्।** जो चराचर जगत् का भक्षक है और काल को भी खाके पचा लेता है उसका नाम **अन्न** है। इसमें प्रमाण है—

**अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नन्तदुच्यते।**

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है।

**अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः।**

—यह भी उसी उपनिषद् में है।

**अन्नमत्तीत्यन्नादः।** अन्न शब्द से चराचर जगत् का जो ग्राहक उसका नाम **अन्नाद** है। यह वचन परमेश्वर ही का है, क्योंकि मैं अन्न हूँ, मैं ही अन्नाद हूँ। तीन वार इस श्रुति में पाठ आदर के वास्ते है। जैसे कि **त्वं ग्रामङ्गच्छ गच्छ गच्छ।** इससे क्या लिया जाता है कि शीघ्र ही तू ग्राम को जा और कहीं भी ठहरना नहीं। इस प्रकार के व्यवहारों में जो बहुत वार का कहना है, सो जैसे अनर्थक नहीं, वैसे इसमें भी अनर्थक नहीं है। इस विषय में व्यासजी का सूत्र भी प्रमाण है—

**अत्ता चराचरग्रहणात्।**

अत्ता नाम खानेवाले का है। उसी का नाम अन्नाद है। चराचर नाम जड़ और चेतन सब जगत् उसके ग्रहण करने से परमेश्वर का नाम **अत्ता** और **अन्नाद** है। जैसेकि गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके उसी में रहते हैं और उसी में नाश हो जाते हैं। इससे परमेश्वर का नाम **अत्ता, अन्न** और **अन्नाद** है।

'वस निवासे'—इस धातु से वसु शब्द सिद्ध होता है।

**वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन्स वसुः।** अथवा **सर्वेषु भूतेषु यो वसति स वसुः।** सब आकाशदिक भूत जिसमें रहते हैं उसका नाम वसु है अथवा सब भूतों में जो वास करता है उसका नाम वसु है। इससे **वसु** परमेश्वर का नाम है।

**रुदिर् अश्रुविमोचने। रुदेर्णिलोपश्च** इस धातु से और इस सूत्र से रुद्र शब्द सिद्ध होता है। **रोदयत्यन्यायकारिणो जनान्स रुद्रः।** रोवाता है दुष्ट कर्म करनेवाले जीवों को जो उसका नाम रुद्र है। इसमें यह श्रुति का

भी प्रमाण है।

**यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।**

—यह यजुर्वेद के ब्राह्मण की श्रुति है।

इसका यह अर्थ है कि जो जीव मन से विचारता है वही वचन से कहता है, उसी को करता है। और जिसको करता है उसी को ही प्राप्त होता है। ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है कि जो जैसा कर्म करै सो वैसा ही फल पावै। इस आज्ञा को कहनेवाला परमेश्वर है। उसकी आज्ञा सत्य ही है। इससे जो जैसा करता है सो वैसा ही प्राप्त होता है। इससे क्या आया कि दुष्ट कर्मकारी जितने पुरुष हैं वे सब दुष्टकर्मों के फल प्राप्त होके रोदन ही करते हैं। इस कारण से परमेश्वर का नाम **रुद्र** है।

नारायण भी नाम परमेश्वर का है।

**आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।**
**ता यदस्यायनं पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः॥**

यह श्लोक मनुस्मृति [१.१] का है।

आप नाम जल का है और नार संज्ञा भी जल की है और वे प्राण जलसंज्ञक हैं। वे सब प्राण जिसका अयन नाम निवास स्थान है इससे परमेश्वर का नाम **नारायण** है। **सूर्य** का अर्थ तो कर दिया है।

**चदि आह्लादे।** इस धातु से चन्द्र शब्द सिद्ध होता है। **चन्दति सोऽयञ्चन्द्रः।** जो आह्लाद नाम आनन्द स्वरूप होय और जो मुक्त पुरुष जिसको प्राप्त होके सदा आनन्द स्वरूप ही रहै, उसको दुःख का लेश कभी न होय। इससे परमेश्वर का नाम **चन्द्र** है।

**मगिधातुर्गत्यर्थः। मङ्गेरलच्** इससे मङ्गल शब्द सिद्ध हुआ। **मङ्गति सोऽयं मङ्गलः।** जो आप तो मङ्गलस्वरूप ही है और सब जीवों के मङ्गल का वही कारण है, इससे परमेश्वर का नाम **मङ्गल** है।

**बुध अवगमने।** इस धातु से बुध शब्द सिद्ध होता है। **बुध्यते सोऽयं बुधः।** जो आप तो बोध स्वरूप होय और सब जीवों के बोधों का कारण होय इससे परमेश्वर का नाम **बुध** है।



**बृहस्पति** का अर्थ प्रथम कर दिया है।

**ईशुचिर् पूतीभावे।** इस धातु से शुक्र शब्द सिद्ध होता है। **शुचिर्नाम** अत्यन्त पवित्र का, जो आप तो अत्यन्त पवित्र होय औरों के पवित्रता का कारण होय, इससे परमेश्वर का नाम **शुक्र** है।

**चर गतिभक्षणयोः।** इस धातु से शनैस् अव्यय पूर्वपद से शनैश्चर शब्द सिद्ध होता है, जो अत्यन्त धैर्यवान् होय, और सब संसार के धैर्य का कारण होय इससे परमेश्वर का नाम **शनैश्चर** है।

**रह त्यागे।** इस धातु से राहु शब्द सिद्ध होता है। जो सबसे एकान्त स्वरूप होय जिसमें कोई भी मिला न होय और सब त्यागियों के त्याग का हेतु होय, इससे परमेश्वर का नाम **राहु** है।

**कित निवासे रोगापनयने च।** इससे केतु शब्द सिद्ध होता है। जो सब जगत् का निवासस्थान होय और सब रोगों से रहित होय, मुमुक्षुओं के जन्म मरणादिक रोगों के नाश का हेतु होय, इससे परमेश्वर का नाम **केतु** है।

**यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु।** इस धातु से यज्ञ शब्द सिद्ध होता है। **इज्यते सर्वैर्ब्रह्मादिभिर्जनैस्स यज्ञः।** सब ब्रह्मादिक जिसकी पूजा करते हैं उसका नाम **यज्ञ** है। **यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः।** यज्ञ का नाम विष्णु है और विष्णु नाम है व्यापक का। इस श्रुति से भी परमेश्वर का नाम **यज्ञ** है।

**हु दानादनयोः।** इस धातु से होम शब्द सिद्ध होता है। **हूयते सोऽयं होमः।** जो दान नाम देने के योग्य है और आदान नाम ग्रहण करने के योग्य है उसका नाम **होम** है। सब दानों से परमेश्वर का जो दान नाम उपदेश का करना और सब ग्रहणों से जो परमेश्वर का ग्रहण नाम परमेश्वर में दृढ़ निश्चय का करना, इस दान से वा ग्रहण से कोई भी उत्तम दान वा ग्रहण नहीं है, इससे परमेश्वर का नाम **होम** है।

**बन्ध बन्धने।** इस धातु से बन्धु शब्द सिद्ध होता है। जिसने सब लोक-लोकान्तर अपने-अपने स्थान में प्रबन्ध करके यथावत् रक्खे हैं और अपने-अपने परिधि के ऊपर सब लोक भ्रमण करैं। इस प्रबन्ध के करने से किसी से किसी का मिलना न होय, जैसेकि बन्धु बन्धु का सहायकारी

होता है, वैसे ही सब पृथिव्यादिकों का धारण करना और सब पदार्थों का रचन करना, इससे परमेश्वर का नाम **बन्धु** है।

**पा पाने, पा रक्षणे।** इन दो धातुओं से पिता शब्द सिद्ध होता है। जैसे कि पिता अपनी प्रजा के ऊपर कृपा और प्रीति को करता ही है तैसे परमेश्वर भी सब जगत् के ऊपर कृपा और प्रीति करता है, इससे परमेश्वर का नाम सब जगत् का **पिता** है।

**पितॄणां पिता पितामहः।** जितने जगत् में पिता लोग हैं उन सभों के पिता होने से परमेश्वर का नाम **पितामह** है।

**पितामहानां पिता प्रपितामहः।** जगत् में जितने पिताओं के पिता हैं, उन सभों के पिता के होने से परमेश्वर का नाम **प्रपितामह** है।

**मा माने, माङ् माने शब्दे च।** इन दो धातुओं से माता शब्द सिद्ध होता है। जैसेकि माता अपनी प्रजा का मान करती है और लाडन करती है, तैसे ही सब जगत् का मान और लाडन अत्यन्त कृपा और प्रीति से करने से परमेश्वर का नाम **माता** है।

**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।**
**चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्याऽस्माल्लोकादमृता भवन्ति॥**

यह केनोपनिषद् का वचन है।

इसका यह अभिप्राय है कि जैसे श्रोत्रादिक अपने-अपने विषय को ग्रहण करते हैं, तथा सब श्रोत्रादिकों को और श्रोत्रादिक विषयों को, उनकी क्रिया को भी यथावत् जानता है, इससे परमेश्वर का नाम **श्रोत्र का श्रोत्र** है तथा **मन का मन, वाणी की वाणी, प्राण का प्राण** और **चक्षु का चक्षु।** इससे परमेश्वर के नाम **श्रोत्र, मन, वाणी, प्राण** और **चक्षु** ये सब हैं।

**बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयन् चित्तम्भवति** नाम सबको चेतानेवाले हैं। इससे परमेश्वर का नाम **बुद्धि** और **चित्त** है।

**अहङ्कुर्वन्नहङ्कारो भवति** नाम **अहङ्करोतीत्यहङ्कारः**—जो अव्याकृतादिक सब जगत् का मैं ही कर्त्ता हूँ, ऐसा जो ज्ञान का होना इससे परमेश्वर का नाम **अहङ्कार** है।



**जीव प्राणधारणे।** इस धातु से जीव शब्द सिद्ध होता है। **जीवयति सर्वान् प्राणिनः स जीवः।** जो सब जीव और प्राणों का जीवन धारण करनेवाला है, इससे परमेश्वर का नाम **जीव** है।

**आप्लृ व्याप्तौ।** इस धातु से अप् शब्द सिद्ध होता है। सब जगत् में व्यापक होने से परमेश्वर का नाम **आप** है।

**जनी प्रादुर्भावे**—इससे अज शब्द सिद्ध होता है। **न जायत इत्यजः।** जिसका जन्म कभी न हुआ, न है और न होगा, इससे परमेश्वर का नाम **अज** है।

**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।** यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है।

**अस्तीति सत् सते हितं सत्यम्।** जो सब दिन रहे, जिसका नाश कभी न होय, इससे परमेश्वर का नाम **सत्यस्वरूप** है और ज्ञान स्वरूप होने से परमेश्वर का नाम **ज्ञान** है, जिसका अन्त नाम सीमा कभी नहीं, अर्थात् देश काल और वस्तु का परिच्छेद नहीं, जैसेकि मध्यदेश में दक्षिण देश नहीं, दक्षिण देश में मध्यदेश नहीं। भूतकाल में भविष्यत्काल नहीं और दोनों में वर्तमान काल नहीं, तैसे ही पृथिवी आकाश नहीं और आकाश पृथिवी नहीं, ऐसा भेद परमेश्वर में नहीं है ऐसा ब्रह्म ही है, किन्तु सब देशों, सब कालों और सब वस्तुओं में अखण्ड एकरस के होने से और कोई भी जिसका अन्त न ले सके, इससे परमेश्वर का नाम **अनन्त** है।

**टुनदि समृद्धौ।** इससे आनन्द शब्द सिद्ध होता है। जो सबसमृद्धिमान् सदा आनन्दस्वरूप और मुमुक्षु मुक्तों को जिसकी प्राप्ति से सब समृद्धि और नित्यानन्द के होने से परमेश्वर का नाम **आनन्द** है। **सत्** शब्द का अर्थ **सत्य** शब्द से व्याख्यान में जान लेना और **ज्ञान** शब्द के व्याख्यान से **चित्** शब्द का अर्थ जान लेना, इससे परमेश्वर को **सच्चिदानन्दस्वरूप** कहते हैं।

**शुन्ध शुद्धौ।** इससे शुद्ध शब्द सिद्ध होता है। जो आप तो शुद्ध होय, जिसको कुछ मलीनता के संयोग का लेश कभी न होय और सब शुद्धियों के हेतु के होने से परमेश्वर का नाम **शुद्ध** है। **बुध अवगमने।** इस धातु

से बुद्ध शब्द सिद्ध होता है। जो सब बोधों का परमावधि नाम परम सीमा के होने से परमेश्वर का नाम **बुद्ध** है।

**मुच्लृ मोचने।** इस धातु से मुक्त शब्द सिद्ध होता है। जो आप तो सदा मुक्तस्वरूप होय और सब मुक्त होनेवालों के मुक्ति के साक्षात् हेतु होने से परमेश्वर का नाम **मुक्त** है।

**सदकारणवन्नित्यम्।** जो सत् स्वरूप होय और कारण जिसका कोई भी नहीं, इससे परमेश्वर का नाम **नित्य** है। ये सब मिलके ऐसा एक नाम हो जाएगा, **नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः।** जो स्वभाव ही से नित्य शुद्ध, बुद्ध और मुक्त के होने से परमेश्वर का नाम **नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाव** है।

**डुकृञ् करणे।** इस धातु से निराकार शब्द सिद्ध होता है। **निर्गतः आकारो यस्मात् स निराकारः।** जिसका आकार कोई भी नहीं, इससे परमेश्वर का नाम **निराकार** है।

**अञ्जनं मायाऽविद्ययोर्नाम निर्गतमञ्जनं यस्मात् स निरञ्जनः।** माया नाम छल और कपट का है, क्योंकि यह पुरुष मायावी है, इससे क्या जाना जाता है कि यह छली और कपटी है। अविद्या अज्ञान का नाम है जिसको माया और अविद्या का लेशमात्र सम्बन्ध कभी न हुआ, न है और न होगा, इससे परमेश्वर का नाम **निरञ्जन** है।

**गण संख्याने।** इस धातु से गण शब्द सिद्ध होता है। इसके आगे ईश शब्द रखने से गणेश शब्द सिद्ध होता है। **गणानां समूहानां जगतामीशस्स गणेशः।** जो सब गणों का नाम संघातों का अर्थात् सब जगतों का ईश नाम स्वामी होने से परमेश्वर का नाम **गणेश** है।

**विश्वस्य ईश्वरः विश्वेश्वरः।** विश्वनाम सब जगत् का ईश्वर होने से परमेश्वर का नाम **विश्वेश्वर** है।

**कूटे तिष्ठतीति कूटस्थः।** जिसमें सब व्यवहार होय, आप सब व्यवहारों में व्याप्त होय और सब व्यवहार का आधार भी होय, परन्तु जिसके स्वरूप में व्यवहार का लेशमात्र भी विकार न होने से परमेश्वर का नाम **कूटस्थ** है।



जितने **देव** शब्द के अर्थ लिखे हैं वे ही अर्थ **देवी** शब्द के जान लेना चाहिए।

**शक्लृ शक्तौ शक्नोति यया सा शक्तिः।** जो सब पदार्थों को रचने का सामर्थ्य जिसमें है, इससे परमेश्वर का नाम **शक्ति** है।

**लक्ष दर्शनाङ्कनयोः।** इससे लक्ष्मी शब्द सिद्ध होता है। **लक्षयति नाम दर्शयति चराचरञ्जगत् सा लक्ष्मीः**—जो सब जगत् को उत्पन्न करके देखावै, उसका नाम **लक्ष्मी** है। **अङ्कयति चिह्नयति वा चराचरञ्जगत्सा लक्ष्मीः।** जो सब जगत् के चिह्नों को अर्थात् नेत्र, नासिकादिक और पुष्प, पत्र, मूलादिक एक-से-एक विलक्षण जितने चिह्न हैं, उनके रचने और प्रकाशक के होने से परमेश्वर का नाम **लक्ष्मी** है। **लक्ष्यते वेदादिभिश्शास्त्रैर्ज्ञानिभिश्च साऽपि लक्ष्मीः।** वेदादिक शास्त्र और ज्ञानियों का लक्ष्य नाम दर्शन के योग्य होने से परमेश्वर का नाम **लक्ष्मी** है।

**सृ गतौ।** इससे सरस् शब्द से मतुप् और ङीप् प्रत्यय के करने से सरस्वती शब्द सिद्ध होता है। **सरो नाम विज्ञानम्। विज्ञानं नाम विविधं यत् ज्ञानं तद् विज्ञानम्।** सरस् शब्द विज्ञान का वाचक है। विविध नाम नाना प्रकार शब्द, शब्दों का प्रयोग और शब्दार्थ सम्बन्धों का यथावत् जो ज्ञान उसका नाम विज्ञान है। **सरो नाम विज्ञानं विद्यते यस्याः सा सरस्वती।** सर नाम विज्ञान सो अखण्डित विद्यमान है जिसको, उसका नाम सरस्वती है वैसा परमेश्वर ही है, इससे **सरस्वती** नाम परमेश्वर का है।

**सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्य स सर्वशक्तिमान्।** जिसको सब शक्ति नाम सब सामर्थ्य विद्यमान होय, उसका नाम सर्वशक्तिमान् है, अर्थात् जो किसी का लेशमात्र सामर्थ्य का आश्रय न लेवै और सब जगत् उसका आश्रयकर्त्ता है, इससे परमेश्वर का नाम **सर्वशक्तिमान्** है।

धर्म, न्याय और पक्षपात का त्याग, ये तीन नाम एक अर्थ के वाचक हैं।

**प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः।**

यह न्यायशास्त्र सूत्रों के ऊपर वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य का वचन है।

जो प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से सत्य-सत्य सिद्ध होय, उसका नाम न्याय है। **न्यायङ्कर्त्तुं शीलमस्य सोऽयं न्यायकारी।** जिसका न्याय करने ही का स्वभाव होय और अन्याय करने का लेश मात्र सम्बन्ध कभी न होय, ऐसा परमेश्वर ही है, इससे परमेश्वर का नाम **न्यायकारी** है।

**दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु।** इस धातु से दया शब्द सिद्ध होता है। **दय्यते या सा दया।** दान नाम अभय का देना, गतिर्नाम यथावत् गुण दोषों का विज्ञान रक्षण नाम है सब जगत् की रक्षा का करना, हिंसा नाम दुष्ट कर्मकारियों को दण्ड का होना, आदान नाम सब जगत् के ऊपर वात्सल्य से कृपा का करना, इसका नाम **दया** है। **दया विद्यते यस्य स दयालुः।** उस दया के नित्य विद्यमान होने से परमेश्वर का नाम **दयालु** है।

**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।**

यह छान्दोग्योपनिषद् का वचन है।

इसका अभिप्राय यह है कि हे सोम्य! हे श्वेतकेतो! श्वेतकेतु के जो पिता उद्दालक वे उससे कहते हैं—अग्रे नाम सृष्टि जब उत्पन्न नहीं भई थी, तब एक अद्वितीय ब्रह्म परमेश्वर ही था और कोई भी नहीं था। वैसा कोई परमेश्वर से भिन्न न हुआ, न है और न होगा। सदेव नाम जिसका नाश किसी काल में कभी न होय। इससे श्रुति में सदेव यह वचन का पाठ है। **एकम्, एव** और **अद्वितीयम्** ये तीनों शब्दों से यह अर्थ जाना जाता है कि **सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्मास्तीति। सजातीय भेद** यह है कि मनुष्य से भिन्न दूसरे मनुष्यों का होना। **विजातीय भेद** यह है कि मनुष्य से भिन्न विजातीय पाषाण, और **स्वगत भेद** यह है कि जैसे मनुष्य में नाक, कान, सिर, पाँव एक से एक भिन्न अवयव हैं, तैसे ही परमेश्वर में तीन प्रकार के भेद नहीं, जब सजातीय परमेश्वर से भिन्न कोई दूसरा वैसा ही परमेश्वर होय, तब तो सजातीय भेद होय। ऐसा दूसरा कोई परमेश्वर नहीं है, इससे परमेश्वर में सजातीय भेद नहीं है, जैसे



परमेश्वर का न्यायकारित्वादि गुण स्वाभाविक है, तैसा ही परमेश्वर से भिन्न अन्यायकारित्वादि विशिष्ट गुणवान् दूसरा विरुद्ध स्वभाव परमेश्वर होय तब तो परमेश्वर में विजातीय भेद आ सकै, जैसाकि खुदा के विरुद्ध शैतान, ऐसा कभी नहीं, इससे परमेश्वर में विजातीय परिच्छेद नहीं। परमेश्वर निराकार और निरवयव है, वैसे ही कोई प्रकार का भेद नहीं है, इससे परमेश्वर में स्वगत परिच्छेद नहीं, इससे परमेश्वर का नाम **अद्वितीय** है, यही **अद्वैत** शब्द का अर्थ है। **द्वयोर्भावो द्विता द्वितैव द्वैतम् न विद्यते द्वैतं यस्मिन्यस्य वा तदद्वैतम्।** दोनों विद्यमान ईश्वरों का जो होना, उसका नाम द्विता है, द्विता जिसको कहते हैं उसी का नाम द्वैत है। नहीं है विद्यमान द्वैत जिसमें, जिसको वा उसका नाम अद्वैत है। **अद्वितीय** और **अद्वैत** परमेश्वर ही का नाम है।

**निर्गता जन्मादयः, अविद्यादयः, सत्त्वादयो गुणा यस्मात्, स निर्गुणः परमेश्वरः।** जगत् के जन्मादिक, अविद्यादिक और सत्त्वादिक गुणों से भिन्न है, अर्थात् जगत् के जितने गुण हैं वे परमेश्वर में लेशमात्र सम्बन्ध से भी नहीं रहते, इससे परमेश्वर का नाम **निर्गुण** है।

**सच्चिदानन्दादिगुणैः सह वर्तमानत्वात्सगुणः।** अपने नित्य स्वाभाविक सच्चिदानन्दादिक गुणों से सदा सह वर्तमान होने से परमेश्वर का नाम **सगुण** है। कोई भी संसार में ऐसी वस्तु नहीं है, जो कि केवल निर्गुण अथवा सगुण होय। जैसेकि पृथिवी में गन्धादिक गुणों के योग होने से सगुण है और वही पृथिवी चेतन और आकाशादिकों के गुणों से रहित होने से निर्गुण भी है। वैसे ही अपने सर्वज्ञादिक गुणों से सदा सहित होने से परमेश्वर का नाम **सगुण** है और उत्पत्ति, स्थिति, नाश जड़त्वादिक जगत् के गुणों से रहित होने से परमेश्वर **निर्गुण** भी है। वैसे सब जगहों में विचार कर लेना।

**सर्वजगतोऽन्तर्यन्तुं शीलमस्य सोऽन्तर्यामी।** जो सब जगत् के भीतर, बाहर और मध्य में सर्वत्र व्याप्त होके सबको जानते हैं और सब जगत् को नियम में रखने से परमेश्वर का नाम **अन्तर्यामी** है।

न्यायकारी नाम के अर्थ में धर्म शब्द की व्याख्या कर दी है उससे

जान लेना। **धर्मेण राजते स धर्मराजः** अथवा **धर्मं राजयति प्रकाशयति स धर्मराजः।** धर्म न्याय का और न्याय पक्षपात के त्याग का नाम है। तिस धर्म से सदा प्रकाशमान होय अथवा सदा धर्म का प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम **धर्मराज** है।

**सर्वञ्जगत् करोतीति सर्वजगत्कर्त्ता।** सो सब जगत् का करनेवाला होने से परमेश्वर का नाम **सर्वजगत्कर्त्ता** है।

**निर्गतं भयं यस्मात्स निर्भयः।** जिसको किसी से किसी प्रकार का भय नहीं होता है, इससे परमेश्वर का नाम **निर्भय** है।

**न विद्यते आदिः कारणं यस्य सः अनादिः।** जिसका कारण कोई भी नहीं और अपने तो सब जगत् का आदिकारण है, इससे परमेश्वर का नाम **अनादि** है।

**अणोरणीयान्महतो महीयान्।** यह मुण्डकोपनिषद् का वचन है।

जो सब सूक्ष्म पदार्थों से अत्यन्त सूक्ष्म के होने से परमेश्वर का नाम **सूक्ष्म** है।

और जो सब बड़ों में अत्यन्त बड़ा है, इससे परमेश्वर का नाम **महान्** है।

सब कल्याण गुणों से सदा युक्त रहने से परमेश्वर का नाम **शिव** है।

**भगो विद्यते यस्य स भगवान्।** जो अनन्त ज्ञान, अनन्त वैराग्यादिक नित्यगुणों से युक्त होने से परमेश्वर का नाम **भगवान्** है।

**मानयति चराचरञ्जगत्।** अथवा **सर्वैर्वेदादिभिश्शास्त्रैः शिष्टैश्च मन्यते यः स मनुः।** जो सब जगत् का मान करै अथवा सब वेदादिक शास्त्र और शिष्टलोक जिसको अत्यन्त मानैं, इससे परमेश्वर का नाम **मनु** है।

**चिन्तितुं योग्यश्चिन्त्यः, न चिन्त्योऽचिन्त्यः।** जो विषयासक्त पुरुषों से चिन्तने में नाम सम्यक् जानने में नहीं आते, इससे परमेश्वर का नाम **अचिन्त्य** है। परन्तु ऐसा ज्ञान ज्ञानियों को होता है कि सर्वव्यापक जो परमेश्वर सो हृदय देश में भी है, उस हृदयस्थ व्यापक परमेश्वर को जानने से सब अनन्त जो परमेश्वर उसका ज्ञान निश्चित होता है, जैसा मेरे



हृदय में परमेश्वर है, वैसा ही सर्वत्र है, जैसे कि समुद्र के जल का एक विन्दु जीभ के ऊपर रखने से उसके स्वादादिक गुणों के जानने से सब समुद्र के जल का ज्ञान हो जाता है, वैसे ही परमेश्वर का दृढ़ ज्ञान ज्ञानियों को हो जाता है।

**प्रमातुं योग्यः प्रमेयः, न प्रमेयः अप्रमेयः।** जो परिमाणों से जिसका परिमाण तौलन नहीं होता, 'इतना ही परमेश्वर में सामर्थ्य है' ऐसा कोई भी नहीं कह सक्ता और न जान सक्ता है। इससे परमेश्वर का नाम **अप्रमेय** है।

**प्रमदितुं नाम उन्मदितुं शीलमस्य स प्रमादी, न प्रमादी अप्रमादी।** जिसका प्रमाद नाम उन्मत्तता के लेशमात्र का भी सम्बन्ध नहीं है, इससे परमेश्वर का नाम **अप्रमादी** है।

**विश्वं विभर्तीति विश्वम्भरः।** जो विश्व का धारण और पोषण का कारण होने से परमेश्वर का नाम **विश्वम्भर** है।

**कल संख्याने।** इस धातु से काल शब्द सिद्ध होता है। **कलयति सर्वञ्जगत् स कालः।** जो सब जगत् की संख्या और परिमाण को, आदि, अन्त, मध्य को यथावत् जानने से परमेश्वर का नाम **काल** है। उसका काल कोई भी नहीं है और वह काल का भी काल है।

**प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च।** इस धातु से प्रिय शब्द सिद्ध होता है। **प्रीणाति सर्वान्धर्मात्मनः।** अथवा **प्रीयते धर्मात्मभिः स प्रियः।** जो सब शिष्टों को और मुमुक्षुओं को अपने आनन्द से प्रसन्न कर दे अथवा जिसको प्राप्त होके सब जीव प्रसन्न हो जाएँ, इससे परमेश्वर का नाम **प्रिय** है।

शिव नाम कल्याण का है, जो आप तो कल्याणस्वरूप होय और जिसको प्राप्त होके जीव भी कल्याणस्वरूप होय, इससे परमेश्वर का नाम **शिवशंकर** है।

इतने सौ १०० नाम परमेश्वर के विषय में लिख दिये, परन्तु इनसे भिन्न भी बहुत अनन्त नाम हैं। उनका इसी प्रकार से सज्जन लोग विचार कर लेवैं। कुछ थोड़ा-सा परमेश्वर के विषय में मैंने लिखा है, किञ्च

वेदादिक शास्त्रों में परमेश्वर के विषय में जितना ज्ञान लिखा है, उसके आगे मेरा लिखना ऐसा है कि समुद्र के आगे एक बिन्दु भी नहीं। और जो यह लिखा है सो केवल उन वेदादिक शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति के लिए लिखा है। जब सब लोक उन शास्त्रों के पठन-पाठन में प्रवृत्त होंगे और जब उन शास्त्रों को ऋषि-मुनियों के व्याख्यान की रीति से पढ़के विचारेंगे, तब सब लोगों को परमेश्वर और अन्य पदार्थों का भी यथावत् ज्ञान होगा, अन्यथा नहीं।

इस प्रकरण का नाम मंगलाचरण है। ऐसा कोई कहे कि मंगलाचरण आदि, मध्य और अन्त में किया जाता है ऐसा आप भी करेंगे वा नहीं। ऐसा हमको करना योग्य नहीं, क्योंकि वह बात मिथ्या है। आदि, मध्य और अन्त में जो मंगल करेगा तो आदि और मध्य के बीच में, अन्त और मध्य के बीच में अमंगल ही को लिखेगा, इससे यह बात मिथ्या है। किन्तु शिष्टों को तो सदा मंगल ही का आचरण करना चाहिए और अमंगल का कभी नहीं। इसमें कपिल ऋषि का प्रमाण भी है—

**मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति।**

इस सूत्र का यह अभिप्राय है कि मंगल नाम सत्य-सत्य धर्म जो ईश्वर की आज्ञा, उसका यथावत् आचरण उसका नाम मंगलाचरण है। उस मंगलाचरण के करनेवाले उनका नाम शिष्ट है। उस शिष्टाचार के हेतु से मंगल ही का आचरण करना चाहिए और जो मंगल का आचरण करनेवाले हैं उनको मंगलरूप ही फल होता है, अमंगल कभी नहीं। और श्रुति से भी यही आता है कि मंगल ही का आचरण करना चाहिए।

**यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणीति।**

इसका यह अभिप्राय है कि अनवद्य नाम श्रेष्ठ ही का है। धर्मरूप ही मंगलकर्म करना चाहिए, अधर्मरूप अमंगल कर्म कभी न करना चाहिए। इससे क्या आया कि आदि, अन्त और मध्य ही में मंगलाचरण करना चाहिए, यह बात मिथ्या जानी गई। कि सदा मंगलाचरण ही करना चाहिए, अमंगल का कभी नहीं।

और आजकल के पण्डित लोक जो कि मिथ्या ग्रन्थ रचते हैं,



सत्यशास्त्रों के ऊपर मिथ्या टीका रचते हैं, उनके आदि में जो **श्रीगणेशाय नमः, शिवाय नमः, सीतारामाभ्यान्नमः, दुर्गायै नमः, राधाकृष्णाभ्यां नमः, बटुकाय नमः, श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यान्नमः, हनुमते नमः, भैरवाय नमः** इत्यादिक लेख देखने में आते हैं, इनको बुद्धिमान् मिथ्या ही जान लेवैं, क्योंकि वेदों में और ऋषि-मुनियों के किये ग्रन्थों में किसी स्थान में भी ऐसे लेख देखने में नहीं आते हैं। ऋषि लोक '**अथ**' शब्द का और '**ओंकार**' शब्द का पाठ आदि में करते हैं सो अधिकारार्थ। अधिकारार्थ नाम इतनी विद्या होने से इस शास्त्र पढ़ने का अधिकारी होता है। वा आनन्तर्यार्थ। आनन्तर्यार्थ नाम एक शास्त्र को करके उसके पीछे दूसरे का जो रचना अथवा एक कर्म करके दूसरे कर्म को करना, इस वास्ते **ओंकार** और **अथ** शब्द का पाठ ऋषि-मुनि लोग करते हैं।

**ओंकारं वेदेषु, अथकारं भाष्येषु।**

यह कात्यायन मुनिकृत प्रातिशाख्य का वचन है। वैसे ही मैं दिखाता हूँ—**अथ शब्दानुशासनम्, अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते।**

—यह व्याकरण महाभाष्य के प्रारम्भ का वचन है।

**अथातो धर्मजिज्ञासा।**

—यह भी मीमांसा शास्त्र के आरम्भ का वचन है।

**अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः।**

—यह वैशेषिक दर्शन शास्त्र का प्रथम सूत्र है।

**प्रमाणप्रमेयेत्यादि।**

—यह न्यायदर्शन शास्त्र के आरम्भ का वचन है।

**अथ योगानुशासनम्।**

—यह पातञ्जलदर्शन के प्रारम्भ का वचन है।

**अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।**

—यह सांख्यदर्शन शास्त्र के प्रारम्भ का वचन है।

**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।** —यह वेदान्तशास्त्र के प्रारम्भ का वचन है।

**ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।**

—यह छान्दोग्य उपनिषद् के प्रारम्भ का वचन है।

**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वन्तस्योपव्याख्यानम्।**

—यह माण्डूक्य उपनिषद का वचन है।

इत्यादिक और भी जान लेने।

देखना चाहिए कि ऋषि लोगों ने और वेदों में भी **अथ** और **ओंकार** अग्न्यादिक भी चारों वेदों के आरम्भ में **अग्नि** तथा **इट्** और **शम्** ये शब्द देखने में आते हैं, परन्तु **श्रीगणेशाय नमः** इत्यादिक वचन किसी वेद में और ऋषियों के ग्रन्थों में भी नहीं देखने में आते हैं। इससे क्या जाना जाता है कि वेदादिक शास्त्रों से और ऋषि-मुनियों के किये ग्रन्थों से भी 'यह नवीन लोगों का प्रमाद ही है', ऐसा ही शिष्ट लोगों को जानना चाहिए।

और वैदिक लोग **हरिःओम्** इस शब्द का पठन-पाठन के आरम्भ में उच्चारण करते हैं। यह सत्य है वा नहीं?

यह भी मिथ्या ही है, क्योंकि **ओंकार** का तो ऋषि ग्रन्थों के प्रारम्भ में पाठ देखने में आता है, परन्तु **हरिः** शब्द का पाठ कहीं देखने में नहीं आता है। इससे **हरिः** शब्द का पाठ तो मिथ्या ही है। पूर्वोक्त प्रातिशाख्य के प्रमाण से **ओंकार** तो उचित ही है।

यह प्रकरण तो पूर्ण हो गया। इससे आगे शिक्षा के विषय में लिखा



जाएगा।

# द्वितीय उपदेश

## [ शिक्षा विषय ]

**मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद इति श्रुतिः॥**

प्रथम तो सब जनों को माता से शिक्षा होनी उचित है। जन्म से लेके तीन वर्ष अथवा पाँच वर्ष पर्यन्त अपने सन्तानों को सुशिक्षा अवश्य करै। प्रथम तो सुश्रुत और चरक जो वैद्यक शास्त्र ग्रन्थ हैं, उनकी रीति से शरीर के स्वभाव के अनुकूल दुग्धादिकों में ओषधों को मिला के वा संस्कार करके पुत्रों को और कन्याओं को पिलावै। अथवा जो स्त्री उनको अपना दूध पिलावै सोई स्त्री उन श्रेष्ठ पदार्थों का भोजन करै, जिससे कि उसी के दूध में उनका अंश आ जायगा, जिससे बालकों के भी शरीर की पुष्टि, बल और बुद्धिवृद्धि होय और शुद्ध स्थान में उनको रखना चाहिये। शुद्ध सुगन्ध देश में बालकों को भ्रमण कराना चाहिये। जब उनका जन्म होय उसी दिन अथवा दूसरे तीसरे दिन धनाढ्य लोग और राजा लोग दासी वा अन्य स्त्री की परीक्षा करके कि उसके शरीर में रोग न होय और दूध में भी रोग न होय उसके पास बालक को रख देवैं और वही स्त्री उनका पालन करै। परन्तु माता उस स्त्री के और बालकों के भी शिक्षा के ऊपर दृष्टि रक्खै। और जो असमर्थ लोग हैं जिनको दासी वा अन्य स्त्री रखने का सामर्थ्य न होय तो छेरी अथवा गाय वा भैंसी के दूध से बालकों का पोषण करैं। जहाँ छेरी आदिकों का अभाव होय, वहाँ जैसा हो सके वैसा करैं। और अञ्जनादिकों से नेत्रादिकों को भी पुष्टि से रोग निवारणार्थ करैं। परन्तु बालकों की जो माता है सो उन्हों को दूध कभी न देवै, स्त्री के दूध देने से स्त्री का शरीर निर्बल और क्षीण हो जायगा। जो स्त्री प्रसूत हुई वह भी अपने शरीर की रक्षा के लिये श्रेष्ठ भोजनादिक करै जो कि औषधवत् होय, जिससे फिर भी युवावस्था की नाईं उसका शरीर हो जाय। और दूध

के रक्षा के वास्ते उक्त वैद्यकशास्त्र में जैसा वह औषध सो यथावत् संपादन करके स्तन के ऊपर लेपन करके उस मार्ग को रोक देवै, जिससे कि दूध न निकल जाय। इससे स्त्री का शरीर फिर भी पूर्ण बलवान् हो जाय। जैसे कि युवती का शरीर, उसके तुल्य उसका भी शरीर हो जायगा। इससे जो सन्तान होगा सो वैसा ही फिर बलवान् और नीरोग होगा। जो उक्त वैद्यकशास्त्र में जैसी कि रीति लिखी है, उसी प्रकार के लेपन से योनि का संकोच और योनि का शोधन भी स्त्री लोग करैं। इससे अपने पति का भी बल क्षीण न होगा। जब कुछ बालक लोग समर्थ होंय, तब उनको चलने बैठने मलमूत्र के त्याग और शौच नाम पवित्रता की शिक्षा करैं और हस्त, पाद, मुख, नेत्रादिकों की सुचेष्टा की शिक्षा करैं जिससे कि किसी अङ्ग से वे बालक लोग कुचेष्टा न करैं। और खाने पीने की भी यथावत् शिक्षा करैं। बालक की जिह्वा का शोधन करावैं क्योंकि कोमल जिह्वा के होने से अक्षरों का उच्चारण स्पष्ट होगा औषधों से और दन्तधावन से। फिर बालक को बोलने की शिक्षा करैं तब माता श्रेष्ठ वाणी से स्थान और प्रयत्न के साथ भाषण करैं। जैसे कि 'प' इसका ओष्ठ तो स्थान है और दोनों ओष्ठों का मिलाना सो स्पर्श प्रयत्न है। ओष्ठ स्थान के और स्पर्श प्रयत्न के विना पकार का शुद्ध उच्चारण कभी न होगा। ऐसे ही सब वर्णों का स्थान और प्रयत्न ह्रस्व और दीर्घ विचार के माता उच्चारण करै, वैसा ही बालकों को करावै जिससे कि वे बालक शुद्ध उच्चारण करैं। गमन, आसन, सोना, बैठना, इसकी भी शिक्षा माता करै जिससे कि सब कर्म युक्त-युक्त ही करैं। और यह भी उपदेश उनको माता करै कि माता-पिता तथा ज्येष्ठ बन्ध्वादिक मान्य लोगों को नमस्कार बालक लोग करैं। रोदन, हास्य और क्रीडासक्त भी वे न होवैं। बहुत हर्ष शोक भी न करैं। उपस्थ इन्द्रिय को हस्त से, नेत्र नासिकादिकों को विना प्रयोजन से मर्द्दन अथवा स्पर्श न करैं क्योंकि निमित्त से विना उपस्थेन्द्रिय का मर्द्दन और वारम्वार स्पर्श के करने से वीर्य की क्षीणता होगी और हस्त दुर्गन्ध युक्त भी होगा, इससे व्यर्थ कर्म करना न चाहिये। इतनी शिक्षा बालकों को पांच वर्ष तक करना चाहिये।



उसके पीछे माता और पिता अक्षर लिखने की और पढ़ने की शिक्षा करैं। देवनागरी के अक्षर और अन्यदेशों के भाषाक्षरों का लिखने पढ़ने का अभ्यास ठीक-ठीक करावैं। स्पष्ट लिखने पढ़ने का अभ्यास हो जाय इससे यह भी अवश्य शिक्षा करना चाहिये। और भूत प्रेतादिक हैं ऐसा विश्वास बालक लोग कभी न करैं क्योंकि यह बात मिथ्या ही है। जब भूत प्रेतादिकों की बात सुनके उनके हृदय में मिथ्या भय हो जाता है तब किसी समय में अन्धकार होने से शृगालादिक पशु, पक्षी और मूषक-मार्जारादिक अथवा चौर वा अपने शरीर की छाया देखने से शृगालादिकों के भागने का शब्द सुनके उसके हृदय में पूर्व सुनने के संस्कार के होने से अत्यन्त भूत प्रेतादिकों का विश्वास होने से भयभीत होके कम्प और ज्वारादिक होते हैं। इससे बहुत दुःख से पीड़ित होते हैं, इससे यह शङ्का का बहुत रीति से निवारण करना चाहिये जिससे कि उनको कभी भूत प्रेतादिकों के होने में निश्चय न होय।

वैद्यक शास्त्र में बहुत से मानस रोग लिखे हैं। वे जब होते हैं तब उन्मत्त होके अन्यथा चेष्टा मनुष्य करता है, तब निर्बुद्धि लोग जानते हैं और कहते हैं कि इसके शरीर में भूत वा प्रेत आ गया है, फिर वे मिल के बहुत से पाखण्ड करते हैं कि मैं मन्त्र से झाड़-झूड़ के पाँच रुपैया मुझको दे तो अभी निकाल देऊँ। फिर उनके सम्बन्धी लोग उन पाखण्डियों से कहते हैं कि हम पाँच रुपैया देंगे, परन्तु इसके भूत को जल्दी आप लोग निकाल देवैं। फिर वे मिल के मृदङ्ग झांझ इत्यादिकों को लेके उसके पास आके बजाते गाते हैं। फिर एक कोई पाखण्ड से उन्मत्त होके नाचता कूदता है कि इसके शरीर में बड़ा भूत प्रविष्ट हुआ है। वह भूत कहता है कि मैं न निकलूंगा इसका प्राण ले ही के निकलूंगा। वह नांचने कूदने वाला कहता है कि मैं देवी वा भैरव हूँ, मुझको एक बकरा और मिठाई, वस्त्र देओ तो मैं इस भूत को निकाल देऊं। तब उनके सम्बन्धी कहते हैं कि जो तुम चाहो सो ले लो, परन्तु इस भूत को आप निकाल देवैं। सब लोग उस उन्मत्त के गोड़ पैं गिर पड़ते हैं। तब तो उन्मत्त बहुत नांचता कूदता है। परन्तु कोई बुद्धिमान् उसको एक थपेड़ा वा एक जूता मार देवै

तब शीघ्र ही उसकी देवी वा भैरव भाग जाते हैं क्योंकि वह केवल धूर्त धनादिक हरण करने के लिये पाखण्ड करता है। जो नाममात्र तो पण्डित हैं, ज्योतिषशास्त्र का अभिमान करके कहते हैं कि सूर्यादि ग्रह क्रूर इनके ऊपर आये हैं इससे यह पुरुष पीड़ित है, परन्तु इसके ग्रहों की शान्ति के लिये दान, पाठ और पूजा जो करावै तो ग्रहों की शान्ति हो जाय, अन्यथा शान्ति न होगी उनको बहुत पीड़ा होगी और इनका मरण हो जाय तो आश्चर्य नहीं।

इनसे कोई पूंछे कि सूर्यादिक ग्रह सब आकाश में रहते हैं वे सब लोक हैं जैसा कि पृथिवी लोक है, कैसे वे पीड़ा कर सकते हैं? और जो तापादिक उनके तेज हैं, सबके ऊपर समान ही प्रकाश है कैसे एक के ऊपर क्रूर होके दुःख दे और दूसरे को शान्त होके सुख दे, यह बात कभी नहीं हो सक्ती है।

जितने धनाढ्य और राजा लोग हैं उनके ऊपर सब मिलके 'आपके ऊपर क्रूर ग्रह आये हैं' ऐसा कहते हैं क्योंकि दरिद्रों से तो इतना धन नहीं मिल सकता है। इससे उन धनाढ्यों के पास जाके वारम्वार ग्रहों की कथा से भय देखा के बहुत धन को हरण कर लेते हैं। जो कोई बुद्धिमान् उनसे ऐसा कहे कि आप पण्डित लोग अपने घर में ग्रहों की शान्ति के लिये पूजा-पाठ, दान वा पुण्य क्यों नहीं कराते हैं तब वे सब पुरोहित पण्डितादिक मिल के कहते हैं कि तू नास्तिक हो गया। इस रीति से भय देखा के उनको उपदेशादिक बहुत प्रकार कहके उसी मार्ग में ले आते हैं। परन्तु कोई बुद्धिमान् होता है सो उनके जाल में नहीं आता है। वैसे ही मुहूर्त विषय अथवा यात्रा में जाल रचते हैं धन लेने के लिये। तथा जन्मपत्र का जो रचन होता है सो भी मिथ्या है। वह जन्मपत्र नहीं है किन्तु शोकपत्र है ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि जन्मपत्र रच के पण्डित उसका फल उनके पास आके कहते हैं—इस बालक का १०वाँ वर्ष अथवा ३०वाँ वर्ष जब आवेगा तब इसके ऊपर बहुत से क्रूर ग्रह आवैंगे, यह बहुत-सी पीड़ा पावेगा, यह मर जावे तो भी आश्चर्य नहीं। इस बात को सुनके बालक के माता अथवा पितादिक शोकातुर हो जाते हैं। इससे इस पत्र का नाम



शोकपत्र ही रखना चाहिये, कभी इसके ऊपर विश्वास न करना चाहिए, इसको बुद्धिमान् मिथ्या ही जानैं। रोग निवृत्ति के लिए औषधादिक अवश्य करैं। इस रीति से बालकों को प्रथम ही माता वा पिता को शिक्षा का निश्चय करना वा कराना उचित है।

मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरणादिक विषय में सत्यत्व प्रतिपादन कहते हैं सो भी मिथ्या जानना चाहिये। और तांबे का सोना करता है, पारे की चांदी बनाता है यह भी बात मिथ्या जानना चाहिए।

फिर उन बालकों को हृदय में अच्छी रीति से यह बात निश्चय कराना चाहिये कि वीर्य की रक्षा करने में निश्चित बुद्धि होय। क्योंकि वीर्य की रक्षा से बुद्धि बल पराक्रम और धैर्यादिक गुण अत्यन्त बढ़ते हैं। इससे बालकों को बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसमें यह उपाय है कि विषयों की कथा और विषयी लोगों का सङ्ग, विषयों का ध्यान कभी न करैं। श्रेष्ठ लोगों का सङ्ग, विद्या का ध्यान और विद्या ग्रहण में प्रीति सदा होने से विषयादिकों में कभी प्रवृत्त न होंगे। जब तक ब्रह्मचर्य की पूर्ति और विवाह का समय न होय, तब उन बालकों की माता पितादिक सर्वथा रक्षा करैं। और ऐसा यत्न करैं कि जिसमें अपने बालक मूर्ख न रहैं, किसी प्रकार से भ्रष्ट भी न होंय। ऐसे ७ सात वर्ष वा ८ आठ वर्ष तक माता पिता यत्न करैं। प्रथम जो श्रुति लिखी थी कि **मातृमान् नाम मात्रा शिक्षितः** प्रथम माता से उक्त प्रकार से अवश्य शिक्षा होनी चाहिये। **पितृमान्** नाम पिता से भी शिक्षा होनी चाहिये। **आचार्यवान्** नाम पांच वर्ष के पीछे वा ८ आठ वर्ष के पीछे आचार्य की शिक्षा होनी चाहिये। जब तीनों से यथावत् शिक्षित पुत्र वा कन्या होंगे तब शिष्ट होंगे, अन्यथा पशुवत् होंगे। मनुष्य गुण जे हैं विद्यादिक, वे कभी न आवेंगे और विद्या रूप धन की सन्तान को प्राप्ति कराना, यही माता पिता और आचार्य का मुख्य फल है कि उनका लाड़न कभी न करना कराना चाहिये, क्योंकि लाड़न में बहुत से दोष हैं और ताड़न में बहुत से गुण हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्य की कारिका का प्रमाण है—

**सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।**

**लाडनाश्रयिणो दोषास्ताड़नाश्रयिणो गुणाः ॥**

इसका यह अर्थ है कि **सामृतैः** नाम अमृत के तुल्य ताडन है जैसा कि हाथ से किसी को कोई अमृत देवै वैसा ही बालकों का ताडन है क्योंकि जो वे ताड़न से श्रेष्ठ शिक्षा को और सद्विद्या को ग्रहण करेंगे तब उनको प्रतिष्ठा सुख और मान सर्वत्र प्राप्त होगा, उससे धन और आजीविका भी उनको सर्वत्र होगी, वे बहुत सुखी होंगे। **सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति** नाम सदा गुरु लोक ताडना करते हैं **न विषोक्षितैः** नाम विष से युक्त जो हाथ उससे जो स्पर्श वह दुःख ही का हेतु होता है वैसा अभिप्राय उनका नहीं है। किञ्च हृदय में तो कृपा परन्तु केवल गुण ग्रहण कराने के लिये माता पिता तथा गुर्वादिक ताड़न करते हैं क्योंकि **लाडनाश्रयिणो दोषाः** नाम जो अपने सन्तानों का लाडन करेंगे तो वे मूर्ख रह जायेंगे। पीछे जो कुछ उनके अधिकार में धन वा राज्य रहेगा उसका वे न पालन करेंगे, न अधिक वृद्धि होगी, उन पदार्थों का नाश ही कर देंगे। फिर वे अत्यन्त दुःखी हो जायेंगे और दूसरे के आधीन रहैंगे। यह दोष माता पिता तथा गुर्वादिकों का गिना जायगा। इससे क्या आया कि उनका लाडन क्या किया किन्तु उनको मार ही डाला। **ताडनाश्रयिणो गुणाः** नाम अवश्य सन्तानों को गुण ग्रहण कराने के लिए सदा ताडन ही कराना चाहिये, क्योंकि ताडन के विना वे श्रेष्ठ स्वभाव और श्रेष्ठ गुणों को कभी ग्रहण न करेंगे। इससे वैसा ही करना चाहिये जिससे अपने सन्तान उत्तम होंय।

उनको विद्या और श्रेष्ठ गुणों का ही आभूषण धारण कराना चाहिये और सुवर्णादिकों का कभी नहीं, क्योंकि विद्यादिक गुण का जो आभूषण धारना है सोई आभूषण उत्तम है और सुवर्णादिकों का आभूषण का जो धारण है उसमें गुण तो नहीं है, किञ्च दोष ही बहुत से हैं, क्योंकि चौरादिक भी उनको मार के आभूषणों को ले जाते हैं। और आभूषणों को धारण करने वाले को बहुत अभिमान रहता है। जो कोई उसके सामने विद्यावान् भी पुरुष होय तो भी वह तृण के बराबर उसकी गणना करेगा और अभिमान से गुण ग्रहण भी न करैगा। और जब वे सोते हैं तब चौर आके उनको मार डालते हैं अथवा अङ्ग-भङ्ग करके आभूषण ले जाते हैं।



इससे सुवर्णादिकों का आभूषण धारना उचित नहीं।

और कभी चोरी न करैं, किसी का पदार्थ उसकी आज्ञा के विना एक तृण वा पुष्प भी ग्रहण न करैं क्योंकि जो तृण की चोरी करेगा सो सब की चोरी करेगा, फिर उसको राजगृह में दण्ड होगा, अप्रतिष्ठा भी होगी और निन्दा होगी। उसका विश्वास कोई भी न करेगा, इससे मन से भी कभी चोरी करने की इच्छा न करनी चाहिये।

और मिथ्या भाषण भी करना न चाहिये क्योंकि मिथ्या भाषण जो करेगा सो सब पाप कर्मों को भी करेगा और उसका विश्वास कोई भी न करेगा।

प्रतिज्ञा भी मिथ्या न करनी चाहिये। प्रथम तो विचार करके प्रतिज्ञा करनी चाहिये। जब प्रतिज्ञा की तब उसका पालन यथावत् करना चाहिये। प्रतिज्ञा क्या होती है कि नियम से जो कहना—उस वक्त मैं आपके पास आऊंगा वा आप मेरे पास आवैं। इस पदार्थ को मैं देऊंगा वा लेऊंगा। सो जैसा कहै वैसा ही प्रतिज्ञा पालन करै अन्यथा कभी न करै। प्रतिज्ञा की जो हानि है सो मनुष्य का महादोष है, इससे प्रतिज्ञा की हानि कभी न करनी चाहिये। अभिमान कभी न करना चाहिये।

अभिमान नाम अहङ्कार का है मैं बड़ा हूँ मेरे सामने कोई कुछ भी नहीं। इससे क्या होगा कि कधी वह गुण ग्रहण तो न करेगा परन्तु मूर्ख ही रह जायगा।

छल, कपट वा कृतघ्नता कभी न करनी चाहिये क्योंकि कि छल, कपट और कृतघ्नता से, अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा और उसका उपकार कोई भी न करेगा। छल, कपट और कृतघ्न तो उसको कहते हैं कि हृदय में तो और बात, बाहर और बात। कृतघ्नता नाम कोई उपकार करै उस उपकार को न मानना सो **कृतघ्नता** कहाती है।

क्रोध भी कभी न करना, क्रोध से अपने अपनी ही हानि कर देवै और की भी हानि कर ले, इससे क्रोध भी न करना चाहिये।

किसी से कटुक वचन न कहै, किन्तु मधुर वचन ही सदा कहै। विना बोलाये किसी से बोले नहीं और बहुत बकवाद कभी न करै।

जितना कहना चाहिये इतना ही कहे। जिससे कहना वा सुनना सो नम्रता से ही करै, अभिमान से कभी नहीं। किसी से वाद-विवाद न करै। नेत्र नासिकादिकों से चपलता कभी न करै। जहाँ किसी के पास जाय, वहाँ उसको पहिले ही नमस्कार करै और नीच आसन में बैठे। न किसी की आड़ होय, न किसी को दु:ख होय, न कोई उसको उठावै। जिससे गुण ग्रहण करै, उसको पूर्व नमस्कार करै, उससे विरोध कभी न करै, उसको प्रसन्न करके जैसे गुण मिले वैसा ही करै। पीछे भी मरण तक उसके गुण को माने। जिस गुण को ग्रहण करै, उस गुण को आच्छादन कभी न करै, किन्तु उस गुण का प्रकाश ही करना उचित है।

किसी पाखण्डी का विश्वास कभी न करै। सदा सज्जनों का सङ्ग करै, दुष्टों का कभी नहीं। अपने माता और पिता वा आचार्य की आज्ञा पालन सदा करै, परन्तु जो आज्ञा सत्यधर्म सम्बन्धी होय तो करै और जो धर्म विरुद्ध आज्ञा होय तो कभी न करै, परन्तु सेवा के लिये जो माता-पिता और आचार्य आज्ञा देवैं, उसको अपने सामर्थ्य के योग्य जरूर करै।

और माता-पिता धर्म सम्बन्धी श्लोकों की अथवा निघण्टु वा अष्टाध्यायी को कण्ठस्थ करा देवैं, परन्तु सत्य-सत्य धर्म के विषय में और परमेश्वर के विषय में दृढ़ निश्चय करा देवैं जैसे कि पहिले प्रकरण में परमेश्वर के विषय में लिखा है वैसा उसी की उपासना में दृढ़ निश्चय करा देवैं। और वस्त्र धारने की यथावत् शिक्षा कर देवैं जैसा कि धारना चाहिये। भोजन की भी जितनी क्षुधा होय, इससे कुछ न्यून भोजन करैं जिससे कि उनके शरीर में रोग न होय। गहरे जल में कभी स्नान के लिये प्रवेश न करैं क्योंकि जो गम्भीर जल होगा और तरना न जानेगा तो डूब के मर जायगा अथवा जलजन्तु होगा तो खा लेगा वा काट लेगा। इससे दु:ख ही होगा सुख कभी न होगा। इसमें मनुस्मृति का प्रमाण भी है—

**नाविज्ञाते जलाशये।**

इसका यह अभिप्राय है कि जिस जल की परीक्षा यथावत् जो न जाने, सो स्नान के लिये उसमें प्रवेश कभी न करै। किन्तु जल के तट पै बैठ के स्नान करै।



और बहुत कूदना फांदना न करै जिससे कि हाथ पैर टूट जाय ऐसा न करै। और मार्ग में जब चले, तब नीचे दृष्टि करके चलैं क्योंकि कांटा और नीचा ऊंचा, जीव-जंतु देख के चलै। जल को छान के पिये और वचन को विचार के सत्य ही बोले। जो कुछ कर्म करै, उसको पहिले विचार ही के आरम्भ करै इससे क्या सुख वा दु:ख हानि वा लाभ होगा। किस रीति से इसको करना चाहिये कि जिस रीति से परिश्रम तो न्यून होय और उसकी सिद्धि अवश्य होय। इस रीति से विचार करके कर्म का आरम्भ करना चाहिये, इसमें मनुस्मृति [६.४६] के वचन का प्रमाण भी है—

**दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।**
**सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥**

**दृष्टिपूतं** नाम आँख से देख देख के आगे चले, **वस्त्रपूतं** नाम वस्त्र से छान के जल को पीवै क्योंकि जल में केश अथवा तृण वा जीव रहते हैं छानने से शुद्ध हो जाता है इससे जल छान ही के पीना चाहिये। **सत्यपूतां वदेद्वाचम्** नाम सत्य से दृढ़ निश्चय करके यही कहना सत्य है तब विचार करके मुख से निकालना चाहिये क्योंकि वचन निकाला जो गया सो जो मिथ्या हो जायगा। तब बुद्धिमान् लोग उसको जान लेंगे कि यह विचारशून्य पुरुष है इससे विचार करके सत्य ही कहना चाहिये। **मनःपूतं समाचरेत्** नाम मन से विचार करके कर्म का आरम्भ करना चाहिये कि भविष्यत्काल में इसका फल क्या होगा। ऐसा जो विचार करके कर्म न करेगा उसको पश्चात्ताप ही होगा। और सुख न होगा इससे जो कुछ करना चाहिये सो विचार के करना चाहिये।

इस रीति से आठ वर्ष तक बालकों को शिक्षा होनी चाहिये। जो कुछ और शिक्षा लिखी है सत्य भाषणादिक सो तो सब को करना उचित है। जिन के सन्तान सुशिक्षित होंगे वे ही सुख पावेंगे और जिन के सन्तान सुशिक्षित न होंगे, वे कभी सुख न पावैंगे।

यह बाल शिक्षा तो कुछ-कुछ शास्त्रों के आशयों से लिख दी, परन्तु सब शिक्षा का ज्ञान जब वेदादिक सत्य शास्त्रों को पढ़ेंगे और विचारेंगे तब होगा, इसके आगे ब्रह्मचर्याश्रम और गुरु शिष्य की शिक्षा लिखी

जायगी, उसी के भीतर पढ़ने-पढ़ाने की शिक्षा भी लिखी जायगी॥

# तृतीय उपदेश

## [ अध्ययन-अध्यापन विधि ]

आठ वर्ष का पुत्र और कन्या को पाठशाला में पढ़ने के लिये आचार्य के पास भेजे देवैं अथवा पांचवें वर्ष भेज देवैं घर में कभी न रक्खैं। परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनके बालकों का यज्ञोपवीत घर में होना चाहिये, पिता यथावत् यज्ञोपवीत करै। पिता ही उनको गायत्री मन्त्र का उपदेश करै, गायत्री मन्त्र का अर्थ भी यथावत् जना देवै। गायत्री मन्त्र में जो प्रथम ओंकार है, उसका अर्थ प्रथम समुल्लास में लिखा है वैसा ही जान लेना।

**भूरिति वै प्राणः भुवरित्यपानः स्वरिति व्यानः।**

—यह तैत्तिरीयोपनिषद का वचन है।

**प्राणयति चराचरञ्जगत्स प्राणः।**

जो सब जगत् के प्राणों का जीवन कराता है और प्राण से भी जो प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम **प्राण** है। सो **भूः** शब्द **प्राण** का वाचक है और **भुवः** शब्द से **अपान** अर्थ लिया जाता है।

**अपानयति सर्वं दुःखं सोऽपानः।**

जो मुमुक्षुओं को और मुक्तों को सब दुःख से छोड़ा के आनन्द स्वरूप रक्खै, इससे परमेश्वर का नाम **अपान** है, सो अपान **भुवः** शब्द का अर्थ है। **व्यानयति स व्यानः।** जो सब जगत् के विविध सुख का हेतु और विविध चेष्टा का भी आधार, इससे परमेश्वर का नाम **व्यान** है, सो व्यान अर्थ **स्वः** शब्द का जानना। **तत्** यह द्वितीया का एकवचन है। **सवितुः** षष्ठी का एकवचन है। **वरेण्यं** द्वितीया का एकवचन है। **भर्गः** द्वितीया का एकवचन है। **देवस्य** षष्ठी का एकवचन है। **धीमहि** क्रिया पद है। **धियः** द्वितीया का बहुवचन है। **यः** प्रथमा का एकवचन है। **नः** षष्ठी का बहुवचन है। **प्रचोदयात्** क्रिया पद है। **सविता** शब्द का और



**देव** शब्द का अर्थ प्रथम समुल्लास में कह दिया है वहीं देख लेना।

**वर्तुमर्हं वरेण्यं नाम अतिश्रेष्ठम्। भर्गो नाम तेजः, तेजो नाम प्रकाशः, प्रकाशो नाम विज्ञानम्।**

**वर्तुं** नाम स्वीकार करने को जो अत्यन्त योग्य उसका नाम **वरेण्य** है और अत्यन्त श्रेष्ठ भी वह है, **धी** नाम **बुद्धि** का है। **नः** नाम हमलोगों को **प्रचोदयात्** नाम **प्रेरयेत्।** हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दानन्त स्वरूप! हे नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे कृपानिधे! हे न्यायकारिन्! हे अज! हे निर्विकार! हे निरञ्जन! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार! हे सर्वजगत्पितः! हे सर्वजगदुत्पादक! हे अनादे! हे विश्वम्भर! **सवितुर्देवस्य तव यद्वरेण्यं भर्गः तद्वयं धीमहि तस्य धारणं वयं कुर्वीमहि! हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरः स भवान् अस्माकं धियः प्रचोदयादित्यन्वयः।** हे परमेश्वर! आप का जो शुद्ध स्वरूप ग्रहण करने के योग्य जो विज्ञान स्वरूप उसको हम लोग सब धारण करैं। उसका धारण, ज्ञान, उसके ऊपर विश्वास और दृढ़ निश्चय हमलोग करैं। ऐसी कृपा आप हम लोगों पर करैं जिससे कि आप के ध्यान में और आप की उपासना में हम लोग समर्थ होंय और अत्यन्त श्रद्धालु भी होंय। जो आप सविता और देवादिक अनेक नामों के वाच्य अर्थात् अनन्त नामों के अद्वितीय जो आप अर्थ हैं नाम सर्वशक्तिमान् सो आप हमलोगों की बुद्धियों को धर्म, विद्या, मुक्ति और आप की प्राप्ति में आप ही प्रेरणा करैं कि बुद्धि सहित हम लोग उसी उक्त अर्थ में तत्पर और अत्यन्त पुरुषार्थ करने वाले होंय। इस प्रकार की हम लोगों की प्रार्थना आप से है सो आप इस प्रार्थना को अङ्गीकार करैं।

यह संक्षेप से गायत्री मन्त्र का अर्थ लिख दिया, परन्तु उस गायत्री मन्त्र का वेद में इस प्रकार का पाठ है—

**ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥**

इस मन्त्र को पुत्रों को और कन्याओं को भी कण्ठस्थ करा देवैं और इसका अर्थ भी हृदयस्थ करा देवैं।

योगशास्त्र की रीति से प्राणों के और इन्द्रियों के जीतने के लिये

उपाय का उपदेश करैं सो यह योगशास्त्र का सूत्र है—

**प्रच्छर्द्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।**

इसका यह अर्थ है कि छर्द्दन नाम वमन का है जैसे कि मक्खी वा और कुछ पदार्थ खाने में उदर से मुख द्वारा अन्न बाहर निकल जाता है और **प्रकृष्टञ्च तच्छर्द्दनञ्च प्रच्छर्द्दनम्** अत्यन्त जो बल से वमन का होना उसका नाम **प्रच्छर्द्दन** है॥ **विधारणं** नाम **विरुद्धञ्च तद्धारणञ्च विधारणम्।** जैसे कि उस अन्न का धारण पृथिवी में होता है उसको देख के घृणा होती है तो ग्रहण की इच्छा कैसे होगी, कभी न होगी। यह दृष्टान्त हुआ। परन्तु दार्ष्टान्त इसका यह है कि नाभि के नीचे अर्थात् मूलेन्द्रिय से लेके धैर्य से अपानवायु को नाभि में ले आना, नाभि से अपान को और समान को हृदय में ले आना, हृदय में दोनों वे और तीसरा प्राण इन तीनों को बल से नासिका द्वार से बाहर आकाश में फेंक देना अर्थात् जो वायु कुछ नासिका से निकलता है और भीतर जाता है उन सबका नाम **प्राण** है। उसको मूलेन्द्रिय, नाभि और उदर को ऊपर उठाले तब तक वायु न निकले, पीछे हृदय में इकट्ठा करके जैसे कि वमन में अन्न बाहर फेंका जाता है, वैसे सब भीतर के वायु को बाहर फेंक दे। फिर उसको ग्रहण न करै, जितना सामर्थ्य होय, तब तक बाहर ही वायु को रोक रक्खै। जब चित्त में कुछ क्लेश होय, तब बाहर से वायु को धीरे-धीरे भीतर ले जाय, फिर उसको वैसा ही वारम्वार २० वार भी करेगा तो उसका प्राण वायु स्थिर हो जायगा और उसके साथ चित्त भी स्थिर होगा। बुद्धि और ज्ञान बढ़ेगा। बुद्धि इस प्रकार की तीव्र होगी कि बहुत कठिन विषय को भी शीघ्र जान लेगी। शरीर में भी बल पराक्रम होगा और वीर्य भी स्थिर होगा तथा जितेन्द्रियता होगी। सब शास्त्रों को बहुत थोड़े काल में पढ़ लेगा। इससे यह दोनों उपदेशों को यथावत् अपने सन्तानों को कर दे। फिर उसको आचमन का उपदेश करै। हाथ में जल लेके गायत्री मन्त्र मन से पढ़के तीन वार आचमन करै।

**अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मन्तीर्थं प्रचक्षते।**
**कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः॥**



[मनु० २.५९]

अंगुष्ठ मूल के नीचे तल नाम हथेली का जो मध्य है उसका नाम ब्राह्मतीर्थ है। कनिष्ठिका के मूल में जो रेखा है उसका नाम प्राजापत्य तीर्थ है। अंगुलियों का जो अग्रभाग है उसका नाम देव तीर्थ है। तर्जनी और अंगुष्ठ इन दोनों के मूल जो बीच है उसका नाम पितृतीर्थ है। आचमन समय में ब्राह्मतीर्थ से आचमन करै। इतने जल से आचमन करै कि हृदय के नीचे पर्यन्त वह जल जाय। उससे क्या होता है कि कण्ठ में कफ और पित्त कुछ शान्त होगा। फिर गायत्री मन्त्र को तो पढ़ता जाय और अंगुली से जल का छीटा शिर और नेत्रादिकों के ऊपर देवे। इससे क्या होगा कि निद्रा और आलस्य न आवेगा। जैसे कि कोई पुरुष को निद्रा और आलस्य आता होय तो जल के छीटा से निवृत्त हो जाता है, तैसे यहाँ भी होगा। पीछे गायत्री मन्त्र से उपस्थान करै। उपस्थान नाम परमेश्वर की प्रार्थना और अघमर्षण करै। अघमर्षण उसका नाम है कि पाप करने की इच्छा भी न करना चाहिये। संक्षेप से संध्योपासन कह दिया। परन्तु यह दोनों बात एकान्त में जाके करना चाहिये, क्योंकि एकान्त में चित्त को एकाग्रता होती है और परमेश्वर की उपासना भी यथावत् होती है। इसमें मनुस्मृति [२.१०४] का प्रमाण भी है—

**अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।**
**सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥**

इसका यह अभिप्राय है कि जल के समीप जाके और जितनी आचमन प्राणायामादिक क्रिया उनको करके वन के शून्य देश में बैठ के गायत्री को मन से यथावदुच्चारण करके एक-एक पद का अर्थ चिन्तन करके और प्राणायाम से प्राण, चित्त और इन्द्रियों की स्थिरता करके परमेश्वर की प्रार्थना और स्वरूप विचार से उक्त रीति से उसमें मग्न हो जाय नाम समाधिस्थ हो जाय। ऐसे ही नित्य दो वार द्विज लोक प्रात:काल और सायङ्काल करैं। एक घण्टा तक तो अवश्य ही करैं। इसमें बहुत सा सुख और लाभ भी होगा।

फिर वह पुत्रों को अग्निहोत्र का आचार सिखावै। एक चतुष्कोण

मिट्टी की वा तांबे की वेदि रच ले, ऊपर चौड़ी नीचे छोटी। ऊपर तो १२ अंगुल, नीचे चार ४ अंगुल रहै। ऐसी रच के चन्दन वा पलाश आम्रादिक श्रेष्ठ काष्ठों को लेके, उस वेदि के परिमाण से खण्ड-खण्ड कर लेवै। वेदी अच्छी शुद्ध करके उस वेदी में काष्ठों को यथावत् रक्खै। उसके बीच में अग्नि रख दे। उसके ऊपर फिर काष्ठ रख दे, रख कर अग्नि प्रदीप्त करै और एक चमसा रचले हाथ की कोणी से कनिष्ठिका के अग्रपर्यन्त परिमाण से। और इस प्रकार का प्रोक्षणीपात्र रचले। उससे डेढ़ा प्रणीता पात्र रचले—एक घृत पात्र रचले। प्रणीता में तो जल रक्खै। पीछे उसमें से जब जब कार्य होय, तब-तब प्रोक्षणी में प्रणीता से जल लेके चमसा को और घृत के पात्र को नित्य शुद्ध करै। और कुशा को भी रखले। जब-जब होम करने का समय आवे, तब सब पात्र को शुद्ध करके घृतपात्र में घृत को लेके अङ्गारों के ऊपर तपावै। फिर उतार के आँख से देख के उसमें कुछ केश वा और जीव पड़े होंय तो उनको कुशाग्र से निकाल देवै। पीछे अग्नि को प्रदीप्त करके चमसा में घृत को लेके—

**ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।** इस मन्त्र से जो काष्ठ अग्नि से प्रदीप्त होय, उसके बीच में एक आहुति देवै।

**ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम॥**

इससे दूसरी आहुति देवै।

**ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम॥**

इससे तीसरी आहुति देवै॥

**ओं भूर्भुवः स्वः अग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।**
**इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम॥** इससे चौथी आहुति देनी॥
**ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा॥** इससे पाँचवीं आहुति देवै॥

और जो अधिक होम करना होय तो गायत्री मन्त्र से कर दे। ऐसे ही संध्योपासन के पीछे नित्य दो वार अग्निहोत्र सब करैं। ओंकार भू आदिक और अग्न्यादिक जितने इन मन्त्रों में नाम हैं वे सब परमेश्वर ही



के हैं उनका अर्थ प्रथम प्रकरण में कह दिया है, वहाँ जान लेना चाहिये। और जो इसमें तीन वार पाठ है सो प्रथम जो **अग्नये स्वाहा** इसका यह अर्थ है कि जो कुछ करना सो परमेश्वर के उद्देश्य ही से करना। **इदमग्नये** दूसरा जो पाठ है, उसका यह अभिप्राय है कि सब जगत् परमेश्वर के जनाने के लिये है क्योंकि कार्य जो होता है सो कारण ही वाला होता है। **इदन्न मम** यह जो तीसरा पाठ है, सो इस अभिप्राय से है कि यह जो जगत् है सो मेरा नहीं है, किन्तु परमेश्वर ही का रचा है। किसलिये कि हम लोगों के सुख के लिये परमेश्वर ने कृपा करके सब पदार्थ बनाये हैं। हम लोग तो भृत्यवत् हैं। परमेश्वर ही इस जगत् का स्वामी है क्योंकि जो जिसका पदार्थ होता है उसका वही स्वामी होता है। और जो इन मन्त्रों में **स्वाहा** शब्द है, उसका यह अर्थ है **स्वम् आह सा स्वाहा** अथवा **स्वा नाम स्वकीया वाक् आह सा स्वाहा। स्वम्** नाम अपना जो हृदय सो सत्य ही है जैसा जो कर्त्ता है वैसा ही सो जानता है। **आह** नाम कहने का है जैसा कि हृदय में होय वैसा ही वाणी से कहै, ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है। संध्योपासन, अग्निहोत्र, तर्पण, बलिवैश्वदेव और अतिथि सेवा पंच महायज्ञों के प्रयोजन पीछे लिखेंगे। अग्निहोत्र के आगे तर्पण करैं॥

**नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्।**

यह मनुस्मृति [२.१७६] का वचन है॥

## अथ देवतर्पणम्

**ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् १। ओं ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम् १। ओं ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम् १। ओं ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम् १।**

इतिदेवतर्पणम्॥

## अथर्षितर्पणम्

**ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्२। ओं मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्२। ओं मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्२। ओं मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्२।**

इत्यृषितर्पणम्॥

## अथ पितृतर्पणम्

**ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् ३। ओं अग्निष्वात्ताः**

**पितरस्तृप्यन्ताम् ३। ओं बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् ३। ओं सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् ३। ओं हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम् ३। ओं आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। ओं सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्। ओं यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि ३। ओं पित्रे स्वधा नमः पितरन्तर्पयामि ३। ओं पितामहाय स्वधा नमः पितामहन्तर्पयामि ३। ओं प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहन्तर्पयामि ३। ओं मात्रे स्वधा नमः मातरं तर्पयामि ३। ओं पितामह्यै स्वधा नमः पितामहींस्तर्पयामि ३। ओं प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहींस्तर्पयामि ३। ओं अस्मत्पत्न्यै स्वधा नमः अस्मत्पत्नींस्तर्पयामि ३। ओं सम्बन्धिभ्योऽमृतेभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धीनमृतांस्तर्पयामि ३। ओं सगोत्रेभ्योऽमृतेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रानमृतांस्तर्पयामि ३। इति तर्पणविधिः।**

पित्रादिकों में जो कोई जीता होय उसका तर्पण अवश्य करै और जितने मर गये होंय उनका तर्पण कभी न करै।

**उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः।**
**सव्ये प्राचीन आवीतिर्निवीतिः कण्ठसज्जने॥**

यह मनुस्मृति [२.६३] का श्लोक है।

इसका यह अर्थ है कि जैसे वामस्कन्ध के ऊपर यज्ञोपवीत सदा रहता ही है परन्तु उस यज्ञोपवीत को दाहिने हाथ के अंगूठा में लगाले इस क्रिया के करने से द्विजों का नाम उपवीती होता है सो सब देव कर्मों को उपवीती होके करैं। पूर्वाभिमुख होके देवतर्पण करै। और देवतीर्थ से कण्ठ में जब यज्ञोपवीत रक्खै और दोनों हाथ के अंगुष्ठों में यज्ञोपवीत को लगाने से द्विजों की निवीति संज्ञा होती है। ब्राह्मतीर्थ से उत्तराभिमुख होके ऋषि तर्पण करना चाहिये। और दक्षिणस्कन्ध में यज्ञोपवीत रक्खै और वाम अंगुष्ठ में यज्ञोपवीत लगाने से द्विजों का नाम प्राचीनावीती होता है। दक्षिणाभिमुख प्राचीनावीति और पितृतीर्थ से पितृकर्म तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये। देवतर्पण में एक वार मन्त्र पढ़के एक अंजलि देवैं। ऋषि तर्पण में दो वार मन्त्र पढ़ के दो अंजलि देवैं। दूसरी वार मन्त्र पढ़के दूसरी अंजलि देवै और तीसरी वार मन्त्र पढ़के तीसरी अंजलि देवै॥



## अथ बलिवैश्वदेवम्

**वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।**
**आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥** [मनु० ३.८४]

**ओं अग्नये स्वाहा। ओं सोमाय स्वाहा। ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं धन्वन्तरये स्वाहा। ओं कुह्वै स्वाहा। ओं अनुमत्यै स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा। ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा॥**

मृत्तिका की चतुष्कोण वेदी वा तांबे की रच के लवणान्न को छोड़ के जो कि भोजन के लिये पदार्थ बना होय उससे उसमें दशाहुति देवैं। पीछे इस प्रकार की रेखाओं से कोष्ठ रच के यथा क्रम से उस-उस दिशाओं में भागों को रख दे, अपनी-अपनी जगह में।

**ओं सानुगायेन्द्राय नमः।** इससे पूर्वदिशा में भाग देना।

**ओं सानुगाय यमाय नमः।** दक्षिण दिशा में भाग रक्खै।

**ओं सानुगाय वरुणाय नमः।** इस मन्त्र से पश्चिम दिशा में भाग रक्खै।

**ओं सानुगाय सोमाय नमः।** इस मन्त्र से उत्तर दिशा में भाग रक्खै।

**ओं मरुद्भ्यो नमः।** इस मन्त्र से द्वार में भाग रक्खै।

**ओं अद्भ्यो नमः।** इस मन्त्र से वायव्यकोण में भाग रक्खै।

**ओं वनस्पतिभ्यो नमः।** इस मन्त्र से अग्निकोण में भाग रक्खै।

**ओं श्रियै नमः।** इस मन्त्र से ऐशान्य कोण में भाग रक्खै।

**ओं भद्रकाल्यै नमः।** इस मन्त्र से नैर्ऋत्यकोण में भाग रक्खै।

**ओं ब्रह्मपतये नमः। ओं वास्तुपतये नमः॥** इन दो मन्त्रों से कोठा के बीच में भाग रक्खै ऊपर हाथ करके—

**ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः।**
**ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।**

इन मन्त्रों से कोष्ठ के बीच में तीनों भाग रख देवै।

**ओं सर्वात्मभूतये नमः।** इस मन्त्र से कोष्ठ के पीछे भाग में रक्खै। अपसव्य करके—

**ओं पितृभ्यः स्वधा नमः।** इस मन्त्र से कोष्ठ के भीतर दक्षिण दिशा में भाग रक्खै।

इन सोलहों भागों को इकट्ठा करके अग्नि में रख दे।

**श्वभ्यो नमः। पतितेभ्यो नमः। श्वपग्भ्यो नमः। पाप रोगिभ्यो नमः। वायसेभ्यो नमः। कृमिभ्यो नमः॥**

इन छः मन्त्रों से शाक दाल इत्यादिक सब अन्न मिला के भूमि में छः भाग को रख के कुत्ता वा मनुष्यादिकों को देवै॥ —इति बलिवैश्वदेवम्।

इसके पीछे अतिथि की सेवा करनी चाहिये। अतिथि दो प्रकार के हैं एक तो विद्याभ्यास करने वाले, दूसरे पूर्ण विद्यावाले नाम त्यागी लोग। जो कि पूर्ण विद्यावाले पूर्ण वैराग्यवान् और पूर्णज्ञानी सत्यवादी जितेन्द्रिय भोजन के समय प्राप्त जो होंय, उनका सत्कार अन्न, जल और आसनादिकों से करै। पीछे गृहस्थ लोग भोजन करैं वा साथ में भोजन करावैं अथवा भोजन के पीछे भी आवै तो भी सत्कार करना चाहिये।

नित्य पंच महायज्ञ करना चाहिये। इनके करने में क्या प्रयोजन है? इसका यह उत्तर है कि जिससे इनको करना चाहिये प्रथम तो जिसका नाम संध्योपासन है सो ब्रह्मयज्ञ है, उसके दो भेद हैं पढ़ना, पढ़ाना, जप, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना यह सब मिलके **ब्रह्मयज्ञ** कहाता है। इसका फल तो बहुत लोग जानते हैं और कुछ लिख भी दिया है, अब लिखना आवश्यक नहीं।

इसके आगे दूसरा अग्निहोत्र है और अग्निहोत्र का करना अवश्य है। अग्निहोत्र से किस की पूजा होती है? **उत्तर**—परमेश्वर की पूजा होती है और संसार का उपकार होता है। अग्निहोत्र में जितने मन्त्र हैं वे तो परमेश्वर के स्वरूप स्तुति, प्रार्थना और उपासना के वाचक हैं। इससे परमेश्वर की उपासना आती है। और संसार का इससे क्या उपकार है कि वेद ब्राह्मण और सूत्र पुस्तकों में चार प्रकार के पदार्थ होम के लिखे हैं। एक तो जिसमें सुगन्ध गुण होय जैसे कि कस्तूरी, केशरादिक। और दूसरा जिसमें मिष्ट गुण होय, जैसे कि मिश्री शर्करादिक। और तीसरा जिसमें पुष्टिकारक गुण होय जैसा कि दूध, घी आदिक। और चौथा जिसमें रोग



निवृत्तिकारक गुण होय, जैसा कि वैद्यकशास्त्र की रीति से सोमलतादिक औषधियाँ लिखी हैं। उन चारों का यथावत् शोधन, उनका परस्पर संयोग और संस्कार करके होम करैं सायं और प्रातः। क्योंकि संध्याकाल और प्रातःकाल में मूलमूत्र त्याग सब लोग प्रायः करते हैं, उसका दुर्गन्ध आकाश और वायु में मिलके वायु को दुष्ट कर देता है। दुष्ट वायु के स्पर्श से अवश्य मनुष्यों को रोग होता है। जैसे कि जहाँ-जहाँ मेला होता है, जिस-जिस स्थान में दुर्गन्ध अधिक है, उस-उस स्थान में रोग अधिक देखने में आता है और दुर्गन्ध और दुष्ट वायु से जिसको रोग होता है, वही पुरुष उस स्थान को छोड़ के जहाँ सुगन्ध वायु होय उस स्थान में जाने से रोग की निवृत्ति देखने में आती है। इससे क्या निश्चित जाना जाता है कि दुर्गन्ध युक्त वायु से बहुत से रोग होते हैं। सब लोगों के मल से जितना दुर्गन्ध होगा, जब सब लोग उक्त सुगन्धादिक द्रव्यों का अग्नि में होम करैंगे, उस दुर्गन्ध को निवृत्त करके वायु को शुद्ध कर देगा। उससे मनुष्यों का बहुत उपकार होगा रोगों के न होने से। फिर वे सुगन्धादिकों के परमाणु मेघमण्डल और जल में जाके मिलेंगे। उनके मिलने से सबको शुद्ध कर देंगे जो कि सूर्य की उष्णता का सुगन्ध दुर्गन्ध जल तथा रस के संयोग होने से सब अवयवों को भिन्न-भिन्न कर देता है। जब अवयव भिन्न-भिन्न होते हैं तब लघु हो जाते हैं। लघु होने से वायु के साथ ऊपर चढ़ जाते हैं जहाँ पृथ्वी से ऊपर ५० क्रोश तक वायु अधिक है, इससे ऊपर वायु थोड़ा है। उन दोनों के सन्धि में वे सब परमाणु रहते हैं, उससे नीचे भी कुछ रहते हैं। जब कि सुगन्ध दुर्गन्ध जल को वा रस को हमलोग मिलाते हैं, तब वह पदार्थ मध्यस्थ होता है। वैसा ही वह जल मध्यस्थ होता है जब सुगन्धादिक गुण युक्त जो धूम है उसके परमाणु में अधिक तो जल है तथा अग्नि, कुछ पृथ्वी और वायु ये चार मिले हैं। परन्तु वे भी वैसे सुगन्धादिक गुण युक्त हैं। वे जब मध्यस्थ जल के परमाणु में जाके मिलते हैं तब उनको सुगन्धादिक गुणयुक्त कर देते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

और जो कोई इस विषय में ऐसी शंका करै कि वह जल तो बहुत

है। होम के परमाणु थोड़े हैं, कैसे उस सब जल को वे शुद्ध करेंगे? उसका यह उत्तर है कि जैसे बहुत से शाक में अथवा बहुत सी दाल में थोड़ी-सी सुगन्धित इलायची इत्यादिक और थोड़ा-सा घी करछुल में वा पात्र में रख के अग्नि में तपाने से जब वह जलता है तब धूम उठता है, फिर उसको दाल के पात्र में मिला के मुख बन्ध कर दे और छोंक दे। वह सब धूम जल होके सब अंशों में मिल जाता है, फिर वह सुगन्ध और स्वादयुक्त होता है। वैसे ही थोड़े भी होम के परमाणु सब मध्यस्थ जल के परमाणु को शुद्ध कर देंगे। फिर जब उसी जल की वृष्टि होगी और वही जल भूमि पर आवैगा। उस जल के पीने से वा स्नान करने से रोग की निवृत्ति हो जायगी और बुद्धि, बल, पराक्रम, नैरोग्य बढ़ेंगे। वैसे ही उसी जल से अन्न, घास, वृक्ष और फल, दूध, घी इत्यादिक जितने पदार्थ होंगे वे सब उत्तम ही होंगे। उनके सेवने से भी जितने जीव हैं वे सब अत्यन्त सुखी होंगे और जो होम करने वाले हैं वे भी अत्यन्त सुख पावेंगे, इस लोक में अथवा परलोक में। क्योंकि अग्नियुक्त सुगन्ध के परमाणु को नासिका द्वार से जब भीतर मनुष्य ग्रहण करता है, मल-मूत्र त्याग समय में दुर्गन्ध युक्त जितने परमाणु मस्तक में प्राप्त हुये थे उनको निकाल देंगे वा सुगन्धित कर देंगे। तब उस मनुष्य के शरीर में सर्दी और आलस्य न होंगे उससे फूर्त्ति और पुरुषार्थ बढ़ेंगे। पुष्प वा अतर के सुगन्ध से यह फल न होगा, क्योंकि इस सुगन्ध में अग्नि के परमाणु मिले नहीं। वे सब जगत् के उपकारक हैं, इससे उनको भी अवश्य सुख रूप उपकार होगा उस पुण्य से। और जब अश्वमेधादिक यज्ञ होय, तब तो असंख्य सब जीवों को सुख होय, इससे सब राजा, धनाढ्य और विद्वान् लोग इसका आचरण अवश्य करैं।

तर्पण और श्राद्ध में क्या फल होगा? इसका यह समाधान है कि **तृप प्रीणने प्रीणनं तृप्तिः।** तर्पण किसका नाम है कि तृप्ति का और श्राद्ध किसका नाम है जो श्रद्धा से किया जाता है। जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना, यह पुत्रादि का परम धर्म है और जो-जो मर गये हों, उनका नहीं करना। क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव



के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता है और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये हुये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है, अन्य का नहीं। उससे क्या आता है कि जीते भये को अन्न और जलादिकों से सेवा अवश्य करनी चाहिये, यह जाना गया।

दूसरा गुण जिनके ऊपर प्रीति है उनका नाम लेके तर्पण और श्राद्ध करेगा तब उसके चित्त में ज्ञान का संभव है कि जैसे वे मर गये वैसे मुझको भी मरना है। मरण के स्मरण से अधर्म करने में भय होगा, धर्म करने में प्रीति होगी।

तीसरा गुण यह है कि दायभाग बाटने में सन्देह न होगा क्योंकि इसका यह पिता है इसका यह पितामह है इसका यह प्रपितामह है। ऐसे ही छः पीढ़ी तक सभों का नाम कण्ठस्थ रहैगा। वैसे ही इसका यह पुत्र है इसका यह पौत्र है इसका यह प्रपौत्र है। इससे दायभाग में कभी भ्रम न होगा।

चौथा गुण यह है कि विद्वानों को श्रेष्ठ धर्मात्माओं ही को निमन्त्रण भोजन दान देना चााहिये, मूर्खों को कभी नहीं। इससे क्या आता है कि विद्वान् लोग आजीविका के विना कभी दुःखी न होंगे। निश्चिन्त होके सब शास्त्रों को पढ़ावैंगे और विचारेंगे, सत्य-सत्य उपदेश करेंगे। और मूर्खों का अपमान होने से मूर्खों को भी विद्या के पढ़ने में और गुण ग्रहण में प्रीति होगी।

पाँचवाँ गुण यह है कि देव ऋषि पितृ संज्ञा श्रेष्ठों की है। देव संज्ञा दिव्य कर्म करने वालों की है, पठन पाठन करने वालों की तो ऋषि संज्ञा है। और यथार्थ ज्ञानियों की पितृ संज्ञा है। उनको निमन्त्रण देगा तब उनसे बात भी सुनेगा। प्रश्न भी करेगा उससे उनको ज्ञान का लाभ होगा।

छठवाँ प्रयोजन यह है कि श्राद्ध तर्पण सब कर्मों में वेदों के मन्त्रों को कर्म करने के लिये कण्ठस्थ रक्खैंगे। इससे उस पुस्तक का नाश कभी न होगा। फिर कोई उस विद्या का विचार करेगा तब पदार्थ विद्या प्रगट होगी। उससे मनुष्यों को बहुत लाभ होगा।

सातवाँ प्रयोजन यह है कि—

**वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।**
**प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥**

—यह मनुस्मृति [३.२८४] का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि वसु जो है सोई **पिता** है, जो **रुद्र** है सोई **पितामह** है, जो **आदित्य** है सोई **प्रपितामह** है, **ये तीनों नाम परमेश्वर ही के हैं।** इससे परमेश्वर ही की उपासना तर्पण से और श्राद्ध से आई। पितृ कर्म में **स्वधा** जो शब्द है उसका यह अर्थ है कि **स्वन्दधातीति स्वधा** अपने जनों को ज्ञानादिकों से धारण करै अथवा पोषण करै, उसका नाम है **स्वधा। स्वधा नाम है परमेश्वर का।** किन्तु अपने ही पदार्थ को धारण करना चाहिये, औरों के पदार्थ का धारण न करना चाहिये, अन्याय से। अथवा अपने ही पदार्थ से प्रसन्नता करनी चाहिये, छल कपट वा परपदार्थ से पुष्टि की इच्छा न करनी चाहिये। इस प्रकार का **स्वाहा** और **स्वधा** का अर्थ शतपथ ब्राह्मण पुस्तक में लिखा है। इतने सात प्रयोजन तो कह दिये और भी बहुत से प्रयोजन हैं। बुद्धिमान् लोग विचार से जान लेवैं।

और बलिवैश्वदेव का प्रयोजन तो होम के नाईं जान लेना। फिर यह भी प्रयोजन है कि भोजन के समय बलिवैश्वदेव करैंगे, वे भी सुगन्ध से प्रसन्न हो जायेंगे। और वह स्थान सुगन्धयुक्त होने से मक्खी, मच्छरादिक जीव सब निकल जायेंगे। उससे मनुष्यों को बहुत सुख होगा। यह प्रयोजन अग्निहोत्रादिक होम का भी जान लेना।

और अतिथि सेवा से बहुत गुणों की प्राप्ति होगी इत्यादिक बहुत से प्रयोजन हैं।

इससे अपने पुत्रों को पिता सब उपदेश कर दे। उपदेश करके आचार्य के पास अपने सन्तानों को भेज दे। कन्याओं की पाठशाला में पढ़ाने वाली और नौकर चाकर सब स्त्री ही लोग रहैं। पांच वर्ष का बालक भी वहाँ न जाय। वैसे ही पुत्रों की पाठशाला में सब पुरुष ही रहैं। पुरुष की पाठशाला में पांच वर्ष की कन्या भी न जाय। वे कन्या और पुत्र



इनका परस्पर मेल भी न होय।

**ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनङ्कर्त्तुमर्हति।**
**राजन्यो द्वयस्य वैश्यो वैश्यस्यैवेति।**
**शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके॥**

—यह सुश्रुत के सूत्र स्थान के द्वितीयाध्याय का वचन है।

ब्राह्मण का अधिकार तीन वर्णों के बालकों को यज्ञोपवीत कराने का है। क्षत्रिय को क्षत्रिय और वैश्य इन दो वर्णों के बालकों को यज्ञोपवीत कराने का अधिकार है। और वैश्य को वैश्यवर्ण ही का यज्ञोपवीत कराने का अधिकार है। और शूद्र लोगों की कन्या भी कन्याओं की पाठशाला में पढ़ैं। शूद्रों के बालक यज्ञोपवीत के विना सब शास्त्रों को पढ़ैं परन्तु वेद को संहिता को छोड़ के ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। उनके जे आचार्य हैं वे प्रतिज्ञा पूर्वक नियम बांधें, प्रथम तो काल का नियम करैं—

**षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।**
**तदर्द्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥**

—यह मनुस्मृति [३.१] का श्लोक है।

ब्रह्मचर्याश्रम का नियम २५।३०।४०।४४।४८ वर्ष तक है अथवा उसका अर्द्ध १८ अथवा ९ नववर्ष अथवा जबतक पूर्ण विद्या न होय तब तक। पूर्वोक्त सुश्रुत में शरीर की अवस्था धातुओं के नियम से ४ प्रकार की लिखी है—

**वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति।**

षोडश वर्ष से २५ वर्ष तक धातुओं की वृद्धि होती है और २५ वर्ष से आगे युवाऽवस्था का प्रारम्भ होता है अर्थात् सब धातु क्रम से बल को ग्रहण करते हैं। उनके बल की अवधि ४० वें वर्ष सम्पूर्ण होती है। उत्तम पुरुष के ब्रह्मचर्य का नियम ४० वर्ष तक होता है और छान्दोग्य उपनिषद् में ४४ वा ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य जो करता है वह पुरुष विद्या पराक्रम और सब श्रेष्ठ गुणों में उत्तमों में भी उत्तम होगा। और ३० से ३६ वर्ष तक मध्यम ब्रह्मचर्य का नियम है। और २५ से ३० वर्ष तक न्यून से न्यून

ब्रह्मचर्य का नियम है। इससे न्यून ब्रह्मचर्य का नियम कभी न होना चाहिये। जो कोई इससे न्यून ब्रह्मचर्याश्रम करेगा अथवा कुछ भी न करेगा, उस को धैर्यादिक श्रेष्ठ गुण कभी न होंगे। सदा रोगी, भ्रष्टबुद्धि, विद्याहीन, कुत्सित कर्मकारी ही होगा। क्योंकि जिसके धातुओं की क्षीणता और विषमता शरीर में होगी, उस मनुष्य को किसी रीति से सुख न होगा। और कन्याओं का २० से २४ वर्ष तक उत्तम ब्रह्मचर्याश्रम है। १६ वर्ष से आगे २० वर्ष तक मध्यम ब्रह्मचर्याश्रम का काल है। १६ वें वर्ष से १७ वा १८ वर्ष तक अधम ब्रह्मचर्य का काल है। १६ वर्ष से न्यून कन्याओं का ब्रह्मचर्य कभी न होना चाहिये। जो कोई कन्या १६ वर्ष से न्यून ब्रह्मचर्याश्रम को करेगी वह विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम, धैर्यादिक गुणों से रहित और रोगादिक दोषों से युक्त होगी, सदा दुःखी ही रहेगी। इससे ब्रह्मचर्याश्रम पुरुषों को वा कन्याओं को न्यून कभी न करना चाहिये॥

**पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।**
**समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥**

—यह सुश्रुत का वचन है।

इसका यह अर्थ है कि १६ वर्ष से न्यून कन्या का विवाह कभी न करना चाहिये और २५ वर्ष से न्यून पुरुषों का भी न करना चाहिये और जो कोई इस बात का व्यक्तिक्रम करै कि १६ वर्ष से पहिले कन्याओं का विवाह करै और २५ वर्ष से पहिले पुत्रों का विवाह करै उसको राजा दंड दे, उनके माता-पिता को भी। और जो कोई अपने सन्तानों को पाठशाला में पढ़ने के लिये न भेजै, उसको राजा दण्ड देवै। क्योंकि सब लोगों की सत्य व्यवहार और धर्म व्यवहार की व्यवस्था राजा ही के अधीन है। जिस देश का जो राजा होय, उसी को इस व्यवस्था को प्रीति से पालन करना चाहिये। सो गुरु जो आचार्य यह प्रथम तो उक्त नियम को करावै आगे और नियमों को भी।

**ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च सत्यञ्च स्वाध्याय प्रवचने च तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च शमश्च**



**स्वाध्यायप्रवचने च अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचने च प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च॥** —यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है।

**ऋत** नाम है यथार्थ का नाम सत्य-सत्य ज्ञान का। ब्रह्मचारी लोग और अध्यापक लोग सत्य-सत्य बात की प्रतिज्ञा करैं कि सत्य-सत्य ही को मानैंगे, मिथ्या को कभी नहीं और कभी असत्य को न सुनेंगे न कहेंगे। **स्वाध्याय** नाम पढ़ना, **प्रवचन** नाम पढ़ाना, **सत्य-सत्य** पढ़ेंगे और सत्य-सत्य पढ़ावेंगे। सत्य ही कर्म करेंगे और करावेंगे। **तप** नाम धर्मानुष्ठान का है, सदा धर्म ही करेंगे और अधर्म कभी नहीं। हम लोग जितेन्द्रिय होंगे। किसी इन्द्रिय से कभी पर पदार्थ और पर-स्त्री ग्रहण न करेंगे, इसका नाम **दम** है। **शम** नाम अधर्म की मन से इच्छा भी न करनी। **अग्नयश्च** नाम अग्नि में जगत् के उपकार के लिये सदा हम लोग होम करेंगे। **अग्निहोत्रञ्च** नाम अग्निहोत्र का नियम सब दिन पालेंगे। **अतिथियों** की सेवा सब दिन करेंगे। **मानुषञ्च** नाम मनुष्यों में जैसा जिससे व्यवहार करना चाहिये वैसा ही करेंगे। बड़ा, छोटा और तुल्य इनको जैसा मानना चाहिये, वैसा उसको मानेंगे। और जिस रीति से **प्रजा** की उत्पत्ति करनी चाहिये। प्रजा का व्यवहार और पालन जैसा करना चाहिये, धर्म से वैसा ही करेंगे। **प्रजनश्च** नाम वीर्यप्रदान जो करेंगे सो धर्म ही से करैंगे। **प्रजातिश्च** नाम जैसा कि गर्भ का पालन करना चाहिये और जन्म के पीछे भी जैसा पालन करना चाहिये, वैसा ही पालन उसका करेंगे। परन्तु ऋतादि करेंगे, स्वाध्याय प्रवचन का त्याग कभी नहीं करेंगे। स्वाध्याय पढ़ना, प्रवचन नाम पढ़ाना ऋतादिकों का ग्रहणपूर्वक ही स्वाध्याय और प्रवचन को सदा करना चाहिये। इसका विचार सब दिन करेंगे, इसके छोड़ने से संसार की बहुत ही हानि हो जाती है। इस प्रकार से शिष्यों के प्रति पुरुष, कन्याओं को तो स्त्री और पुरुषों को पुरुष शिक्षा करैं।

**वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति सत्यम्वद धर्मं चर**

**स्वाध्यायन्मा प्रमदः आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुम्मा-व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् १॥ देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ३। ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनः युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्त्तेथाः। एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत्, एतदनुशासनम्, एवमुपासितव्यम्, एवमु चैतदुपास्यम् ११॥**

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है।

इसी प्रकार से गुरु लोग शिष्यों को उपदेश करैं। हे शिष्य तूं सब दिन **सत्य** ही बोल और **धर्म** ही को कर। **स्वाध्याय** नाम पढ़ने में जैसे तुमको विद्या आवै वैसे ही कर। जब तक विद्या तुमको पूर्ण न होय तब तक ब्रह्मचर्य का त्याग न करना। फिर जब विद्या और ब्रह्मचर्य भी पूर्ण हो जाय, तब जैसा तुम्हारा सामर्थ्य होय, वैसा **उत्तम पदार्थ आचार्य** को देके प्रसन्न करना चाहिये और आचार्य भी उनको शीघ्र विद्या होय वैसा ही करै। केवल अपनी सेवा के लिये सब दिन भ्रम में न रक्खैं, कृपा करके विद्या पढ़ावैं। छल कपट आचार्य लोग कभी न करैं क्योंकि सत्यगुणों का प्रकाश ही करना उचित है। सब शिष्ट लोगों को जब ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या भी हो जाय तब उनको विवाह करना उचित है। **प्रजा का छेदन** करना उचित नहीं और **सत्य** से प्रमाद न करना चाहिये अर्थात् सत्य को छोड़ के असत्य से कोई व्यवहार न करना चाहिये। **धर्म** ही से सब व्यवहारों को करना चाहिये। धर्म से विरुद्ध कोई कर्म न करना चाहिये। **कुशलता** को सब दिन ग्रहण करना चाहिये और दुराग्रह



अभिमान को कभी न करना चाहिये। नम्रता सरलता से सदा गुण ग्रहण करना चाहिये। **भूति** नाम सिद्धि इनकी प्राप्ति में पुरुषार्थ सदा करना चाहिये और पढ़ने-पढ़ाने से रहित कभी न होना चाहिये। सब दिन पढ़ने पढ़ाने का पुरुषार्थ ही करना चाहिये। **देवकार्य** नाम अग्निहोत्रादिक, **पितृकार्य** नाम श्राद्ध तर्पणादिक उसको कभी न छोड़ना चाहिये। **माता, पिता, अतिथि** और **आचार्य** इनकी सेवा कभी न छोड़नी चाहिये क्योंकि उन्होंने जो पालन किया है वा विद्या दी है अथवा सत्य जो उपदेश करते हैं, इस उपकार को कभी न भूलना चाहिये, इनको अवश्य मानना चाहिये। और जितने **धर्मयुक्त** कर्म हैं उनको करना चाहिये और पाप कर्मों को कभी न करना चाहिये। माता-पिता, आचार्य और अतिथि भी शास्त्र प्रमाण से धर्म विरुद्ध जो उपदेश करैं अथवा पाप कर्म करावैं, उनको कभी न करना चाहिये। और उनके जो **सुकर्म** हैं उनको तो अवश्य करना चाहिये, उनके जो दुष्टकर्म हैं उनको कभी न करना चाहिये। वैसे ही मातादिक उपदेश करैं कि हमलोग जो सुकर्म करैं, उनको तो तुम लोगों को अवश्य करना चाहिये, हमलोग जो दुष्टकर्म करैं उनको कभी न करना चाहिये। जो मनुष्य लोगों के बीच में **विद्या वाले धर्मात्मा** और **सत्यवादी** होंय, उनका सब दिन सङ्ग करना चाहिये, उनसे गुणग्रहण करना चाहिये, उनके वचन में और उनमें अत्यन्त श्रद्धा करनी चाहिये। शिष्य लोग जब सुपात्र और धर्मात्मा मिलें तब **श्रद्धा** से उनको जो प्रियपदार्थ हो उसको देवैं अथवा **अश्रद्धा** से भी देना चाहिये। **श्री** नाम लक्ष्मी से देवैं, दारिद्य होवै तो भी दान की इच्छा न छोड़नी चाहिये। **लज्जा** और **प्रतिज्ञा** से भी देना चाहिये अर्थात् किसी प्रकार से देना चाहिये। दान का बंध कभी न करना चाहिये, परन्तु श्रेष्ठ सुपात्रों को देना चाहिये, कुपात्रों को कभी नहीं। किसी को अन्याय से दुःख न देना चाहिये, सब लोगों को बन्धुवत् जानना चाहिये और सब लोगों से प्रीति करना चाहिये। किसी से विवाद न करना चाहिये, सत्य का खण्डन कभी न करना चाहिये। और जो तुमको किसी विषय वा किसी पदार्थ विद्या में सन्देह होय, तब तुम लोग ब्रह्मवित् पुरुषों के पास जाओ। वे कैसे होंय

कि सर्वशास्त्रवित् निर्वैर पक्षपात कभी न करैं। वे **युक्त** अर्थात् योगी अथवा तपस्वी होंय, रूक्ष नाम कठोर स्वभाव न होंय और धर्म काम में सम्पन्न होंय। उनसे पूछ के सन्देह निवृत्ति कर लेना। वे जिस प्रकार से धर्म में वर्तमान करैं, वैसा ही तुमको धर्म में वर्तमान होना चाहिये। यही आदेश है, आदेश नाम परमेश्वर की आज्ञा है। यही उपदेश है उपदेश नाम इसी का उपदेश कहना योग्य है। यही वेदोपनिषत् है नाम वेदों का सिद्धान्त है। और यही अनुशासन है, अनुशासन नाम सुनियम और शिष्टाचार है। ऐसे ही धर्म की उपासना करनी चाहिये, इसी प्रकार जानना भी चाहिये, इसी प्रकार कहना भी चाहिये। गुरु शिष्य को परस्पर ऐसा वर्त्तमान करना चाहिये।

**ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै तेजस्विना-वधीतमस्तु मा विद्विषावहै ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः।**

सह नाम परस्पर रक्षा करैं। गुरु तो शिष्यों की कुकर्मों से रक्षा करैं और शिष्य लोग गुरु की आज्ञा पालन और गुरु की सेवा से रक्षा करैं, सहैव परस्पर भोग करैं अर्थात् जो शिष्य लोग कोई उत्तम अन्न पान वस्त्रादिकों को प्राप्त होंय, सो पहिले गुरु को निवेदन करके शिष्य लोग भोजनादिक करैं। सह नाम परस्पर वीर्य को करैं, वीर्य नाम पराक्रम, [पराक्रम] नाम सत्य-सत्य जो विद्या उसको बढ़ावैं। जब गुरु यथावत् परिश्रम से विद्या दान करैंगे, तब उनकी भी विद्या तीव्र होगी। शिष्य लोग यथावत् परिश्रम से और सुविचार से विद्या ग्रहण करैंगे, तब उनकी भी सत्य-सत्य विद्या तीव्र होगी। ऐसे सब गुरु शिष्य विचार करैं कि हम लोगों का पढ़ना पढ़ाना तेजस्वी नाम प्रकाशित होय जिसका शिष्य विद्यावान् नहीं होता, उसका जो गुरु है उसी की निन्दा होती है। बहुत से एक गुरु के पास पढ़ते हैं उनमें से कितने तो विद्यावान् होते हैं और कितने नहीं। गुरु तो यथावत् पढ़ावेंगे और कोई शिष्य यथावत् विद्या को ग्रहण न करेगा तब तो उस शिष्य की निन्दा होगी। इससे इस प्रकार का पढ़ना-पढ़ाना करना चाहिये कि सत्य-सत्य विद्या का प्रकाश होय और अविद्या जो अन्धकार उसका नाश होय।



**कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।**
**काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥**

[मनु० २.२]

मनुष्यों को विषयों में जो कामात्मता नाम अत्यन्त कामना, सो श्रेष्ठ नहीं और अकामता नाम कोई पदार्थ की इच्छा भी न करनी, वह भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि विद्या का जो होना, सो इच्छा ही से है। धर्म, विद्या और परमेश्वर की उपासना की तो कामना अवश्य ही करना चाहिये, क्योंकि—

**काम्यो हि वेदाऽधिगमः।**

वेद विद्या की जो प्राप्ति है सो कामनाऽधीन ही है और वैदिक कर्म जितने हैं वे भी कामनाऽधीन ही हैं। इससे श्रेष्ठ पदार्थों की कामना सदा करनी चाहिए और अश्रेष्ठ पदार्थों की कामना कभी नहीं॥

**सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।**
**व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥**

[मनु० २.३]

काम का मूल सङ्कल्प है अर्थात् सङ्कल्प ही से काम की उत्पत्ति होती है। हृदय से बाह्य पदार्थ की प्राप्ति की सूक्ष्म जो इच्छा उसको सङ्कल्प कहते हैं। ब्रह्मचर्यादिक जितने व्रत हैं वे भी काम ही से सिद्ध होते हैं।

पाँच प्रकार के यम होते हैं—

**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।**

—यह योगशास्त्र का सूत्र है।

इसका यह अर्थ है कि **अहिंसा** नाम कोई से कभी वैर न करना, **सत्य** जैसा हृदय में है वैसा ही वचन कहना, **अस्तेय** नाम चोरी का त्याग, विना आज्ञा से किसी का पदार्थ न ग्रहण करना, **ब्रह्मचर्य** नाम विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम की यथावत् प्राप्ति करनी, **अपरिग्रह** नाम अभिमान कभी न करना, **धर्म** नाम न्याय का, **न्याय** नाम पक्षपात का त्याग करना, जैसे कि अपना प्रिय पुत्र भी दुष्ट कर्म के करने से मारा जाता होय तो भी मिथ्या भाषण न करै।

**अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।**

**यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥**

[मनु० २.४]

जिस पुरुष को कामना न होय तो उसको नेत्रादिकों की कुछ चेष्टा भी न होय। इससे जो-जो शरीर में कुछ भी चेष्टा होती है सो-सो काम ही से होती है, ऐसा ही निश्चय जानना। इससे क्या आया कि काम के विना कोई भी शरीर धारण नहीं कर सकता और खाना-पीना भी नहीं कर सकता। इसलिये श्रेष्ठ पदार्थों की कामना सब दिन करनी ही चाहिये, दुष्ट पदार्थों की कभी नहीं। और जो पुरुषार्थ को छोड़ेगा सो तो पाषाण और काष्ठ की नांई होगा, इससे आलस्य कभी न करना चाहिये और पुरुषार्थ को छोड़ना भी नहीं।

**आचारःपरमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।**
**तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः॥**

[मनु० २.१०८]

शास्त्र को पढ़के सत्य धर्मों का आचरण जो न करै उसका पढ़ना व्यर्थ ही है, [सत्याचरण करना] सोई परम धर्म है परन्तु वह आचार वेदादिक सत्य शास्त्रोक्त और मनुस्मृत्युक्त ही लेना, तिस हेतु से इस आचरण नाम धर्माचरण में द्विज लोग अर्थात् सब मनुष्य लोग युक्त होंय।

**आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।**
**आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग् भवेत्॥**

[मनु० २.१०९]

जो पुरुष वेदोक्त आचार को नहीं करता उसका जो विद्या का पढ़ना है उसका फल वह नहीं पाता और जो वेदादिकों को पढ़के यथोक्त आचार करता है उसको सम्पूर्ण सुख रूप फल होता है।

**योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।**
**स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥**

[मनु० २.११]

कुतर्क से जो कोई मनुष्य श्रुति नाम वेद, स्मृति नाम धर्मशास्त्र ये दोनों धर्म के प्रकाशक हैं और धर्म के मूल हैं इनको जो न मानै, उसको



सज्जन लोग सब अधिकारों से बाहर कर देवैं क्योंकि वह नास्तिक है। जो वेद नाम विद्या की निन्दा करता है सोई पुरुष नास्तिक होता है।

**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**
**एतच्चतुर्विधम्प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥**

[मनु० २.१२]

श्रुति, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने हृदय की प्रसन्नता। जितने पाप कर्म हैं उनकी इच्छा जब पुरुषों को होती है तब उसी समय भय, शङ्का और लज्जा से हृदय में अप्रसन्नता होती है और जितने पुण्य कर्म हैं उनमें नहीं होती। इससे जिस-जिस कर्म में हृदय का अन्तर्यामी प्रसन्न होय, वही धर्म है और जिसमें अप्रसन्न होय, वही अधर्म जानना। इसके उदाहरण चौरजारादिक हैं, इसको साक्षाद्धर्म का ४ प्रकार का लक्षण कहते हैं।

**अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।**
**धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणम्परमं श्रुतिः॥**

[मनु० २.१३]

जो मनुष्य अर्थों में नाम धनादिकों में आसक्त नाम लोभ नहीं करते हैं और काम नाम विषयासक्ति में जो आसक्त नहीं नाम फसे नहीं हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान होता है अन्य को कभी नहीं। परन्तु जिनको धर्म जानने की इच्छा होय, वे वेदादिक शास्त्र पढ़ैं और विचारैं उनको विना पढ़ने से धर्म का यथार्थ ज्ञान न होगा।

**वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।**
**न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिङ्गच्छन्ति कर्हिचित्॥**

[मनु० २.९७]

वेद-विद्या, त्याग, यज्ञ, नियम और तप इतने विप्र दुष्ट नाम अजितेन्द्रिय पुरुष को कभी सिद्ध नहीं होते। इससे जितेन्द्रिय का होना सब मनुष्यों को आवश्यक है। जितेन्द्रिय का लक्षण क्या है कि—

**श्रुत्वा स्पृट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।**
**न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥**

[मनु० २.९८]

जिस पुरुष को अपनी निंदा सुनके शोक न होय और अपनी स्तुति सुनके हर्ष न होय तथा दुष्टस्पर्श, दुष्टरूप, दुष्टरस और दुष्टगन्ध को पाके शोक न होय और श्रेष्ठस्पर्श, श्रेष्ठरूप, श्रेष्ठरस और श्रेष्ठगन्ध को प्राप्त होके जिसको हर्ष नहीं होता उसको जितेन्द्रिय कहते हैं। अर्थात् सब मनुष्यों को यही योग्य है कि न हर्ष करना चाहिये, न शोक, किन्तु न शोक में गिरै, न हर्ष के मध्य ही में सदा बुद्धि को रक्खै, यही सुख का स्थान है।

**ब्रह्माऽरम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा।**
**संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः॥**

[मनु० २.७१]

जब शिष्य गुरु के पास पढ़ने का नित्य आरम्भ करैं तब आदि और अन्त में गुरु को नमस्कार और पादस्पर्श करैं। जब तक पढ़ैं तथा गुरु के सन्मुख रहैं तब तक हाथ ही जोड़ के रहैं इसी का नाम ब्रह्माञ्जलि है। जब गुरु उठै, तब आप ही पहिले उठै, जो आप बैठा होय और गुरु आवैं तब अपने उठके सन्मुख जाके गुरु को शीघ्र ही नमस्कार करै और उत्तम आसन पर बैठावै, आप नीचे आसन पर बैठे और नम्र होके पूंछे अथवा सुनै।

**नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।**
**जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥**

[मनु० २.११०]

जब तक कोई न पूंछे तब तक कुछ न कहै और जो कोई हठ, छल और कपट से पूंछे उससे कभी न कहै। जाने तो भी मूर्खों के सामने मौन ही रहना ठीक है, क्योंकि शठ लोग कभी न मानेंगे, इससे उनसे कहना व्यर्थ ही है।

**अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति।**
**तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषम्वाधिगच्छति॥**

[मनु० २.१११]

जो कोई अधर्म से कहता और जो अधर्म से पूंछता है नाम छल, कपट, दोनों का विरोध होने से किसी का मरण हो जाय अथवा विद्वेष तो अवश्य होगा। इससे गुरु शिष्य अथवा कोई मनुष्य जो इस शिक्षा को मानेगा और यथावत् करेगा, उसको बड़ा सुख होगा।



**आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः।**
**आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः॥**

[मनु० २.१०९]

आचार्य का पुत्र, शुश्रूषु नाम सेवा का करने वाला तथा ज्ञान का देने वाला वा धार्मिक, शुचि नाम पवित्र, आप्त नाम पूर्ण काम और शक्त नाम समर्थ, अर्थद नाम अर्थ का देनेवाला, साधु नाम सत्य मार्ग में चलने वाला और सत्य का उपदेश करने वाला इन दश पुरुषों को विद्वान् धर्म और परिश्रम से पढ़ावै जिससे कि वे विद्यावान् होंय, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और उन सभों की स्त्री, वे सब जब तक विद्या वाले न होंगे, तब तक यथावत् बुद्धि, बल, पराक्रम, नैरोग्य और धर्म की उन्नति कभी न होगी।

आर्यावर्त्त देश की उन्नति तभी होगी जब विद्या का यथावत् प्रचार होगा। और जब तक उक्त आचार में प्रवृत्त न होंगे, तब तक सुख के दिन कभी न आवैंगे, क्योंकि ब्राह्मण और सम्प्रदायिक लोग पढ़के यथावत् धर्म में निश्चित तो नहीं होते, किन्तु अपनी-अपनी आजीविका और अपना-अपना सम्प्रदाय जो वेद-विरुद्ध-पाखण्ड, उन्हीं को बढ़ावेंगे और जीविका के लोभ से सब दिन छल कपट ही में रहेंगे कभी धर्म में चित्त न देंगे, न धर्म को जानेंगे, क्योंकि उनको पाखण्ड ही से सुख मिलता है। इससे पाखण्ड ही को बढ़ावैंगे, धर्म को कभी नहीं। जब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पढ़ेंगे, उनको आजीविका नाश का भय तो नहीं है, इससे कभी छल कपट से असत्य न कहेंगे। इससे सत्य-सत्य ही प्रवृत्ति होगी। और वे क्षत्रियादिक जब तक न पढ़ैंगे, तब तक आर्यावर्त्त देशवासियों के मिथ्याचार और पाखण्डों का नाश कभी न होगा।

जो राजा और जितने धनाढ्य लोग हैं, उनको तो अवश्य सब शास्त्रों को पढ़ना चाहिये क्योंकि उनके पढ़े विना कोई प्रकार से भी विद्या का

प्रचार, धर्म की व्यवस्था और आर्यावर्त्त देश की उन्नति कभी न होगी, उनकी बहुत-सी हानि भी होगी, क्योंकि उनके अधिकार में राज्य, धन और बहुत से पुरुष रहते हैं। जब वे विद्यावान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय और धर्मात्मा होंगे, तब उनके राज्य में धर्म और विद्या का प्रचार होगा, उनका धन अनर्थ में कभी न जायगा और उनके सङ्गी सब श्रेष्ठ धर्मात्मा होंगे। इससे सब देशस्थों का उपकार होगा। केवल आर्यावर्त्तवासियों का नहीं, किन्तु सब देशस्थ मनुष्यों को ऐसा ही करना उचित है कि पक्षपात का छोड़ना, सत्य का ग्रहण करना। और जितने मत हैं वे सब मूर्खों ही के कल्पित हैं और बुद्धिमानों का एक ही मत अर्थात् सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना है। इससे क्या आया कि जो लाभ विद्या के प्रचार से होता है ऐसा लाभ कोई अन्य प्रकार से नहीं होता।

ये सब श्लोक मनुस्मृति के हैं।

जो पढ़ना अथवा पढ़ाना सो शास्त्रोक्त प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से सत्य-सत्य परीक्षित करके ही पढ़ना और पढ़ाना भी।

**इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि**
**व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥** यह गोतम मुनि का सूत्र है।

सो प्रत्यक्ष सब को अवश्य मानना चाहिये॥

**अक्षस्य-अक्षस्य प्रतिविषयं वृत्तिः प्रत्यक्षम्।**

**अक्ष** नाम इन्द्रिय का है। इन्द्रिय-इन्द्रिय के प्रति विषय ग्रहण करने वाली जो वृत्ति तज्जन्य जो ज्ञान उसको **प्रत्यक्ष** कहते हैं। सो जब किसी बाह्य व्यवहार की जीव की इच्छा होती है तब मन से संयुक्त होके जीव प्रेरणा करता है, तब मन इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों के प्रति प्रेरता है। तब इन्द्रियों का और विषयों का सन्निकर्ष होता है अर्थात् सम्बन्ध होता है। सम्बन्ध किसका नाम है कि उन-उन इन्द्रिय और विषयों का जो यथावत् वृत्ति नाम वर्तमान का होना अथवा ज्ञान का होना उसका नाम है सन्निकर्ष।

**सन्निकर्षो वृत्तिर्ज्ञानं वा।** —यह वात्स्यायन भाष्य का वचन है।

इस पुस्तक में वारम्वार न लिखा जायगा, परंतु ऐसा जानना कि जो



कुछ लिखा जायगा सो गौतम सूत्रादि के अनुसार ही से और वात्स्यायनादिक मुनि के भाष्यों के अभिप्राय से लिखा जायगा। इसमें जिसको शङ्का अथवा अधिक जानना चाहे सो उन ग्रन्थों में देख ले।

वैसा प्रत्यक्षज्ञान ठीक-ठीक यथावत् तत्त्वस्वरूप जानना उसके भिन्न जो होगा उसको भ्रम नाम अज्ञान कहा जायगा। जैसे कि—

**व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः, अप्सु रसः, रूपन्तेजसि, वायौ स्पर्शः।**

ये सूत्र और अभिप्राय वैशेषिक सूत्रकार मुनि के हैं। इन्द्रियों से गुण ही का ग्रहण होता है द्रव्य का कभी नहीं। क्योंकि—

**श्रोत्रग्रहणो योऽर्थः स शब्दः।** —यह वैशेषिक का सूत्र है।

ऐसे सब सूत्र हैं।

हम लोग श्रोत्र नाम कर्णेन्द्रिय से शब्द ही का ग्रहण करते हैं और स्पर्शादिकों का नहीं। ऐसे ही स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श ही का ग्रहण करते हैं तथा नेत्र से रूप का, जीभ से रस का और नासिका से गन्ध का। ये शब्दादिक आकाशादिकों के गुण हैं। गुणों ही को इन्द्रियों से ग्रहण करते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनका ग्रहण इन्द्रियों से कभी नहीं होता। मन से तो जीव आकाशादिकों का प्रत्यक्ष ग्रहण करता है, क्योंकि जो जिसका स्वाभाविक गुण है वह उससे भिन्न कभी नहीं होता। जैसे कि पृथ्वी का स्वाभाविक गुण गन्ध है सो पृथ्वी से भिन्न कभी नहीं रहता और गन्ध से पृथ्वी भी भिन्न नहीं रहती, इन दोनों के सम्बन्ध से जीव को गन्ध के ज्ञान होने से पृथ्वी का भी प्रत्यक्ष होता है। वैसे ही रस, रूप, स्पर्श और शब्दों का जीभ, नेत्र, त्वक् और श्रोत्र से ग्रहण होने से जल, अग्नि, वायु और आकाश का भी मन से जीव को प्रत्यक्ष होता है। सो प्रत्यक्ष किस प्रकार का लेना कि पृथ्वी में जल, अग्नि और वायु के सम्बन्ध होने से रस, रूप और स्पर्श भी ये तीनों गुण देख पड़ते हैं परन्तु तीन गुण स्पर्शादिक वायु आदिकों के संयोग निमित्त ही से हैं। वैसे ही जल में रूप और स्पर्श मिले हैं तथा अग्नि में स्पर्श, और वायु में शब्द, आकाश में कोई नहीं, एक शब्द ही अपना स्वाभाविक गुण है। वायु में

जो शब्द है सो आकाश के संयोग निमित्त से और जल में जो गन्ध है सो पृथ्वी के संयोग से है ऐसे ही अन्यत्र जान लेना। सो प्रत्यक्ष ज्ञान ऐसा लेना कि **अव्यपदेश्य** नाम संज्ञा से जो होता है जैसा कि घट एक पदार्थ की संज्ञा है, इस संज्ञा से जिसका नाम कि घट है, वह घट शब्द के उच्चारण से कि तूं घड़े को ला, जब वह घड़ा लेने को चला, जिस वक्त उसने घड़े को देखा, उस वक्त जो घट संज्ञा, सो उस को न देख पड़ी, किन्तु जैसी घट की आकृति और रूप वही तो देख पड़ा और घट शब्द नहीं, फिर वह घड़े को लेके, जिसने आज्ञा दी थी उसके पास घड़े को रखके बोला कि यह घड़ा है। उसने घड़े को प्रत्यक्ष देखा, परन्तु उसमें घड़ा ऐसा जो नाम उसको उसने भी न देखा के जो संज्ञा विना पदार्थ मात्र का ज्ञान होना, उसको अव्यपदेश्य कहते हैं। और जो व्यपदेश्य ज्ञान है सो तो शब्द प्रमाण में है, प्रत्यक्ष में नहीं।

और दूसरा प्रत्यक्ष ज्ञान का **अव्यभिचारि** यह विशेषण है सो जानना चाहिये। व्यभिचारिज्ञान इस प्रकार का होता है कि अन्य पदार्थ में भ्रम से अन्य पदार्थ का ज्ञान होना। जैसे कि लकड़ी के स्तम्भ में पुरुष का ज्ञान, रज्जु में सर्प का, सीप में चांदी और पाषाणादि मूर्त्ति में देव का ज्ञान इत्यादिक ज्ञान सब व्यभिचारी हैं। उस समय में तो यथार्थ भ्रम से देखने में आते हैं, परन्तु उत्तरकाल में स्तम्भादिकों का साक्षात् प्रत्यक्ष निर्भ्रम तत्त्वज्ञान के होने से पुरुषादिकों का जो भ्रम से ज्ञान हुआ था, सो नष्ट हो जाता है। इससे क्या आया कि जिस ज्ञान का कभी व्यभिचारि नाम नाश न होय उसको कहते हैं अव्यभिचारी ज्ञान। सो प्रत्यक्ष अव्यभिचारि ही लेना अन्य नहीं।

और इस प्रत्यक्ष का तीसरा विशेषण **व्यवसायात्मक** है। व्यवसाय नाम है निश्चय का और जो जिसका तत्त्व स्वरूप है उसका नाम है आत्मा। जब तक उस पदार्थ का तत्त्व नाम स्वरूप निश्चय न होय तब तक व्यवसायात्मक ज्ञान नहीं होता और जब उसके स्वरूप का यथावत् ज्ञान का निश्चय होता है उसको व्यवसायात्मक कहते हैं। जैसे कि दूर से श्वेत बालुका देखी अथवा घोड़ा देखा, उसके नेत्र से सम्बन्ध भी भया,



परन्तु उसके हृदय में निश्चय न हुआ कि यह वस्त्र अथवा बालू अथवा और कुछ है यह घोड़ा अथवा गैया अथवा और कुछ है। जब तक यथावत् वह निकट से न देखेगा तब तक सन्देह की निवृत्ति न होगी, और जब तक सन्देह की निवृत्ति न होगी तब तक सन्देहात्मक नाम भ्रमात्मक ज्ञान रहेगा, उसको प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं जानना। और जो सत्य-सत्य दृढ़ निश्चित तत्त्वज्ञान है उसको उक्त प्रकार से प्रत्यक्ष ज्ञान जानना। इस प्रकार से थोड़ा-सा प्रत्यक्ष के विषय में लिखा। परन्तु जिसको अधिक जानने की इच्छा होय सो षड्दर्शनों में देख लेवै।

इससे आगे **दूसरा अनुमान** प्रमाण है—

**अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टञ्च।**

—यह गौतममुनि का सूत्र है।

**अथ** नाम प्रत्यक्ष लक्षण लिखने के अनन्तर अनुमान लक्षण का प्रकाश करते हैं। **तत्पूर्वक** नाम प्रत्यक्ष पूर्वक जिसमें पहिले प्रत्यक्ष का होना आवश्यक होय और अनुमान पीछे मान नाम ज्ञान होना उसका नाम **अनुमान** है सो अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक ही होता है अन्यथा नहीं।

यह अनुमान तीन प्रकार का होता है। एक तो पूर्ववत्, दूसरा शेषवत्, तीसरा सामान्यतोदृष्ट। **पूर्ववत्** इसका नाम है कि जहाँ कारण से कार्य का ज्ञान होना, जैसे बादल के विना वृष्टि कभी नहीं होती, सो बादलों की उन्नति, गर्जना और विद्युत् इनको देखके अवश्य वृष्टि होगी, ऐसा ज्ञान होता है। तथा परमेश्वर के विना सृष्टि कभी नहीं होती क्योंकि रचना करने वाले के विना रचना कभी नहीं होती। और बादल जो है सो वृष्टि का कारण है, परमेश्वर जो है सो जगत् का कारण है, यह पूर्ववत् अनुमान है।

और **शेषवत्** यह है कि जहाँ कार्य से कारण का ज्ञान होना। जैसेकि पहिले नदी में थोड़ा प्रवाह, वेग भी न्यून अथवा सूखी देखते थे। फिर जब वह पूर्ण हुई देखके, उसके प्रवाह का शीघ्र चलना, वृक्ष काष्ठ घासादिक बहे जाते देख के अवश्य ज्ञान होता है कि वृष्टि ऊपर कहीं भई ही है। इस संसार की रचना देख के अवश्य रचना करने वाला परमेश्वर ही है, इसका

नाम शेषवत् अनुमान है।

तीसरा **सामान्यतोदृष्ट** अनुमान है जैसेकि चल के ही स्थान से स्थानान्तर में जाता है। किसी पुरुष को अन्य स्थान में कहीं बैठा देखा, फिर दूसरे काल में अन्य स्थान में उसी पुरुष को बैठा देखा। इससे देखने वाले ने क्या जाना कि यह पुरुष इस स्थान से चल के ही आया है, क्योंकि विना गमन स्थान से स्थानान्तर में कोई भी नहीं जा सकता, ऐसा सामान्य से नियम है। इस प्रकार का सामान्य से दृष्ट अनुमान है उसका गमन तो उसने देखा नहीं परन्तु उसको गमन का ज्ञान हो गया।

अथवा **पूर्ववत्** नाम किसी स्थान में अग्नि नाम अङ्गारे को काष्ठादिकों में मिला हुआ और उसमें धूम भी निकलता हुआ देखा था। उसने जान लिया कि अग्नि और काष्ठादिकों का संयोग जब होता है, तब धूम अवश्य निकलता है। फिर किसी समय उसने दूर स्थान में धूम को देखा, देखने से उसको ज्ञान भया कि वहाँ अग्नि अवश्य है। इस प्रकार का अनेकविधि **पूर्ववत्** अनुमान होता है सो जान लेना।

**शेषवत्** नाम किसी ने बुद्धि से विचार करके कहा कि यह पुरुष उत्तम पण्डित है। इससे क्या आया कि अन्य ऐसा कोई पण्डित नहीं और मूर्ख भी बहुत से हैं। इस स्थान में विना कहने से ऐसा जाना गया। ऐसे अन्य भी बहुत प्रकार का **शेषवत्** अनुमान जान लेना। **सामान्यदृष्ट** नाम जैसे कि मनुष्य के शिर में प्रत्यक्ष शृङ्ग के नहीं देखने से अदृष्ट मनुष्यों के शिर में भी शृङ्ग का नहीं होना, ऐसा निश्चित जाना जाता है, इसका नाम **सामान्य से दृष्ट** अनुमान है।

इससे आगे **तीसरा उपमान** प्रमाण है—

**प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्।**

—यह गौतम मुनि का सूत्र है।

प्रसिद्ध नाम प्रगट, साधर्म्य नाम तुल्यधर्मता एक का दूसरे से होना, साध्य नाम जिसको जनावै, साधन नाम जिससे जनावै, जिसकी उपमा जिससे की जाय, उसका नाम **उपमान** प्रमाण है। किसी ने किसी से पूछा कि गवय नाम नीलगाय किस प्रकार की होती है? उसने उसे उत्तर दिया



है जैसी यह गाय होती है, वैसा ही गवय होता है। उसने उसके उपदेश को हृदय में रख लिया। फिर उसने कभी कालान्तर में किसी स्थान में वन में वा अन्यत्र उस पशु को देख के जान लिया कि यही नीलगाय है, क्योंकि गाय के तुल्य होने से ज्ञान का निश्चय हो गया। अथवा किसी ने किसी से कहा कि तूं देवदत्त नाम[क] मनुष्य के पास जा। तब उसने उससे पूछा कि देवदत्त कैसा है? उसने उससे कहा कि जैसा यह यज्ञदत्त है वैसा ही देवदत्त है। फिर वह वहाँ गया, उसने यज्ञदत्त के तुल्य देवदत्त को देखके निश्चय जान लिया कि यही देवदत्त है। तब देवदत्त ने कहा कि आपने मुझको कैसे जाना। उसने कहा मुझसे किसी ने कहा था कि यज्ञदत्त ही के समान देवदत्त है। उस यज्ञदत्त के समान होने से आपको मैंने जान लिया। इसका नाम **उपमान** प्रमाण है।

**चौथा शब्द प्रमाण है—**

**आप्तोपदेशः शब्दः।** यह गौतममुनि का सूत्र है।

**आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा यथादृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्तत इत्याप्तः। ऋष्यार्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम्॥**

—यह वात्स्यायन मुनि का भाष्य है।

**आप्त** किसको कहते हैं कि साक्षात् कृतधर्मा जिसने निश्चय करके धर्म ही किया था, करता होय और करै, अधर्म कभी नहीं। और जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादिक दोषों का लेश कभी न होय, विद्यादिकगुण सब जिसमें होंय, वैर किसी से न होय, पक्षपात कभी न करै और सब जीवों के ऊपर कृपा करै। अपने हृदय में सत्य-सत्य जानने से जैसा सुख भया, वैसा ही सब जीवों को सत्य-सत्य उपदेश जनाने से सुख प्राप्त कराने की इच्छा से जो प्रेरित होके उपदेश करै। और **आप्ति** उसका नाम है कि जो जैसा पदार्थ है उसका वैसा ही ज्ञान का होना, उस आप्ति से युक्त होय नाम सब काम जिसके पूर्ण होंय छल, कपट और लोभ से जो कभी प्रवृत्त न होय, किन्तु एक परमेश्वर की आज्ञा जो धर्म और सब जीवों के कल्याण के उपदेश की इच्छा जिसको होय, उसको

**आप्त** कहते हैं। सब आप्तों में भी आप्त परमेश्वर है। उस आप्त परमेश्वर का और उस प्रकार के उक्त आप्त मनुष्यों का जो उपदेश है, **शब्द प्रमाण** उसको कहते हैं। उसका प्रमाण करना चाहिये, इनसे विपरीत मनुष्यों के उपदेश का कभी प्रमाण न करना चाहिये।

आप्त कोई देश विशेष में होता है अथवा सब देशों में होता है?

इसका यह उत्तर है कि **ऋष्यार्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम्।**

**ऋषि** नाम यथार्थ मंत्रद्रष्टा यथार्थ पदार्थों के विचार के जानने वाले। उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व में समुद्र और पश्चिम में समुद्र इन चारों के अवधि पर्यन्त देश में रहने वाले मनुष्यों का नाम **आर्य्य** है। इस देश से भिन्न देशों में रहनेवाले मनुष्यों का नाम **म्लेच्छ** है। म्लेच्छ नाम निन्दित नहीं है किन्तु **म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे।** इस धातु से म्लेच्छ शब्द सिद्ध होता है। उसका अर्थ यह है कि जिन पुरुषों के उच्चारण में वर्णों का स्पष्ट उच्चारण नहीं होता, उनका नाम **म्लेच्छ** है। सब देशों में और सब मनुष्यों में आप्त होने का सम्भव है, असम्भव कभी नहीं। अर्थात् ऋषि, आर्य्य और म्लेच्छ इनमें आप्त अवश्य होते हैं। क्योंकि जो किसी मनुष्यों में उक्त प्रकार का लक्षण वाला मनुष्य होगा, उसी का नाम **आप्त** होगा। यह नियम नहीं है कि इस देश में होय और अन्य देश में न होय। **आर्य्य** नाम है श्रेष्ठ का। और जो **हिन्दू** नाम इनका रक्खा है सो मुसलमानों ने ईर्ष्या से रक्खा है। उसका अर्थ है दुष्ट, नीच, कपटी, छली और गुलाम। इससे यह नाम भ्रष्ट है किन्तु **आर्य्यों का नाम हिन्दु कभी न रखना चाहिये।**

**आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।**
**तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तंविदुर्बुधाः॥**

[मनु० २.२२]

**आर्य्यैरावर्त्तः स आर्य्यावर्त्तः॥**

जो देश आर्य्यों से नाम श्रेष्ठों से आवर्त्त नाम युक्त होय उसका नाम **आर्य्यावर्त्त** देश है। सो देश हिमालयादिक अवधि से कह दिया सो जान लेना।



वह शब्द प्रमाण दो प्रकार का होता है।

सूत्र—**स द्विधो दृष्टाऽदृष्टार्थत्त्वात्।**

जिस शब्द का अर्थ प्रत्यक्ष देख पड़ता है सो तो **दृष्टार्थ** शब्द है। और जिस शब्द का श्रवण तो प्रत्यक्ष होता है और उसका अर्थ प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता, उसका नाम **अदृष्टार्थ** शब्द है। जैसे कि स्वर्गादिक शब्दों का अर्थ देखने में नहीं आता, इस प्रकार के शब्द का नाम अदृष्टार्थ शब्द है। दृष्टार्थ शब्द यह है कि जैसा पृथिव्यादिक।

इतने प्रत्यक्षादि के ४ प्रकार के भेद हैं। एक तो **प्रमाता** होता है कि जो पदार्थ को प्रमाणों से जान लेता है जिसका नाम जीव है प्रमाणों का करने वाला।

**प्रमिणोति स प्रमाता। येनार्थं प्रमिणोति तत्प्रमाणम्।**

जिससे अर्थ को यथावत् जानै उसका नाम **प्रमाण** है। प्रत्यक्षादिक तो कह दिये जैसे कि नेत्र से जीव जो है सो रूप को जान लेता है।

**योऽर्थः प्रतीयते तत्प्रमेयम्।**

जिसकी प्रतीति होती है उसका नाम **प्रमेय** है जैसा कि रूप नेत्र से देखा गया।

**यदर्थविज्ञानं सा प्रमितिः।**

जो अर्थ का यथावत् तत्त्व विज्ञान होना उसका नाम **प्रमिति** है। प्रमाता प्रमाण, प्रमेय और प्रमिति इन चार प्रकार की विद्या को भी यथावत् जान लेना चाहिये।

और भी ४ प्रकार की जो विद्या है, उसको जानना चाहिये। **हेयम्** नाम त्याग करने के जो योग्य होय, जैसे कि **अधर्म।** और **ग्राह्य** नाम ग्रहण करने के योग्य जैसा कि **धर्म।** दूसरा **तस्य निवर्तकम्** नाम हेय जो अधर्म उसकी निवृत्ति का जो करना ज्ञान से और पुरुषार्थ से **तस्य प्रवर्तकं ग्राह्यम्,** जो धर्म उसकी जो प्रवृत्ति हृदय में विचार से और पुरुषार्थ से होनी। तीसरा **हानमात्यन्तिकम्** जो हेय अधर्म का अत्यन्त त्याग कर देना पुरुषार्थ से और विचार से। **स्थानमानमात्यन्तिकम्** नाम ग्राह्य जो धर्म उसकी दृढ़स्थिति हृदय में हो जानी कि हृदय और आचरण से धर्म

का नाश कभी न होय। चौथा **तस्योपायोऽधिगन्तव्यः।** हेय जो अधर्म उसके त्याग के उपाय को प्राप्त होना और धर्म के ग्रहण के उपाय को प्राप्त होना। वह उपाय सत्पुरुषों का सङ्ग, श्रेष्ठबुद्धि और सद्विद्या के होने से प्राप्त होता है।

इतने ४ अर्थ पद होते हैं। इनको सम्यक् जानने से निःश्रेयस जो मोक्ष नाम नित्यानन्द परमेश्वर की प्राप्ति और जन्म मरणादिक दुखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है। इससे इस ४ प्रकार की विद्या को भी सज्जनों को अवश्य जानना चाहिये।

४ प्रकार के जो प्रमाण हैं उनका विषय लिखा गया और इनकी परीक्षा भी संक्षेप से इससे आगे लिखी जाती है सो जान लेना—

**प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः।**

इत्यादिक परीक्षा में गोतममुनि प्रणीत सूत्रों ही को लिखेंगे, सो आप लोग जान लेवैं।

प्रत्यक्षादिकों का प्रमाण नहीं है क्योंकि तीन कालों की असिद्धि के होने से पूर्वापर सहभाव नियम के भङ्ग होने से कि पहिले प्रमाण होता है वा प्रमेय। देखना चाहिये कि पहिले जो प्रमाण सिद्ध होय और पीछे प्रमेय तो विना प्रमेय के प्रमाण किसका होगा वा पहिले प्रमेय होय, प्रमाण पीछे होय तो विना प्रमाण के प्रमेय कैसे जाना जायगा और जो सङ्ग में दोनों का ज्ञान होय तो विना प्रमेय से प्रमाण की उत्पत्ति ही नहीं, इससे किसी प्रकार से भी प्रत्यक्षादिकों का प्रमाण नहीं हो सकता।

**तथाहि पूर्वं हि प्रमाणसिद्धौ नेन्द्रियार्थसन्निकर्षात्प्रत्यक्षोत्पत्तिः।**

—यह गोतममुनि का सूत्र है।

जैसे कि गन्धादि विषय का जो प्रत्यक्ष ज्ञान सो गन्धादिकों का और नासिकादिक इन्द्रियों का सम्बन्ध होने से प्रत्यक्ष की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं। और जो कोई कहै कि पहिले प्रमाण की उत्पत्ति होती है पीछे प्रमेय की। अच्छा, तो गन्धादिकों का तो सम्बन्ध भी उत्पन्न नहीं भया, उनके सम्बन्ध के विना प्रत्यक्ष की उत्पत्ति ही नहीं होती, फिर **इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानम्** इत्यादि प्रत्यक्ष का जो लक्षण किया है,



सो व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि आप ने प्रमाण की उत्पत्ति प्रमेय के सम्बन्ध से पूर्व ही मानी है। इससे आपके मत में यह दोष आवेगा। अच्छा, तो मैं प्रमेयों के सम्बन्ध के पीछे प्रमाणों की उत्पत्ति मानता हूँ फिर क्या दोष आवेगा? अच्छा, सुनो सूत्र—

**पश्चात्सिद्धौ न प्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः।**

पहिले प्रमेय की सिद्धि मानेंगे तो 'प्रमाणों ही से प्रमेय की सिद्धि होती है' यह जो आप का कहना, सो मिथ्या हो जायगा। जो आप एक सङ्ग प्रमाण और प्रमेय मानेंगे तो भी यह दोष आवेगा। सूत्र—

**युगपत्सिद्धौ प्रत्यर्थनियतत्त्वात् क्रमवृत्तित्त्वाभावो बुद्धीनाम्।**

यह जो बुद्धि है सो एक विषय को जानकर दूसरे विषय को जान सकती है, दोनों को एक समय में नहीं जान सकती। जैसे कि एक वस्त्र को देखा, देख के जब रूप की बुद्धि होती है, तब इतना यह भारी है, उसको न जानैगी। और जब भार का मन विचार करता है, तब रूप का नहीं कर सकता। जब रूप का, तब भार का नहीं। सूत्र—

**यूगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।**

एक काल में दोनों ज्ञान को न ग्रहण करै, किन्तु एक को ग्रहण करके, फिर दूसरे को ग्रहण करै, उसी का नाम **मन** है। वैसे ही प्रमाण और प्रमेय एककाल में दोनों का ज्ञान कभी नहीं होता। जिस समय प्रमाण का ज्ञान होता है, उस समय प्रमेय का नहीं। जिस समय प्रमेय का ज्ञान होता है उस समय प्रमाण का नहीं। यह सब जीवों की अनुभव सिद्ध बात है।

इस बात में आप के कहने से दोष आवेगा, ऐसा भी कहना आप को उचित नहीं। इस पूर्वपक्ष का यह समाधान है कि—

**उपलब्धिहेतोरुपलब्धिविषयस्य चार्थस्य**
**पूर्वापरसहभावानियमाद्यथार्थदर्शनम्विभागवचनम्॥**

**भाष्य**—उपलब्धि का हेतु नाम प्रकाशक जिससे कि ज्ञान होता है और उपलब्धि का विषय जिसका ज्ञान होता है जैसा कि घटादिक इनका पूर्वापर सहभाव नाम यह इससे पूर्व वा यह पर, ऐसा नियम नहीं सर्वत्र

देखने में आता। इससे जैसा जहाँ योग्य होय वैसा वहाँ लेना चाहिये। देखना चाहिये कि सूर्य का दर्शन तो पीछे होता है और दो घड़ी रात्रि में पहिले ही प्रकाश हो जाता है। उससे वस्त्रादिक पदार्थों का पहिले ही दर्शन हो जाता है। जब दीप को जलाते हैं तब दीप का दर्शन तो पहिले होता है फिर दीप के प्रकाश से अन्य सब पदार्थों का दर्शन पीछे होता है। सूर्य और दीप अपना प्रकाश आप ही करते हैं और अन्य पदार्थों का भी एक काल में प्रकाश करते हैं यह तो दृष्टान्त हुआ। वैसा ही प्रमाणों के दृष्टान्त में जानना चाहिये। कहीं तो पहिले प्रमाण होता है कहीं प्रमेय। अन्य समय में दोनों एक ही सङ्ग में होते हैं जैसे कि—

**त्रैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधाऽनुपपत्तिः।**

आपने प्रत्यक्षादिक प्रमाणों का जो निषेध किया सो तीनों कालों को मान के किया अथवा नहीं? जो आप भूतकाल नाम बीते भये काल में प्रमाणों की सिद्धि न मानेंगे तो आपने निषेध किसका किया और जो भविष्यत्काल में होने वाले प्रमाणों का आपने निषेध किया तो प्रमाण उत्पन्न भी नहीं भये पहिले निषेध कैसे होगा और जो वर्तमान काल में प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध हैं तो सिद्धों का निषेध कोई कैसे करेगा।

**सर्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधानुपपत्तिः।**

किसी प्रमाण को आप न मानेंगे तो आपके प्रतिषेध की प्रमाण से सिद्धि कैसे होगी? जब प्रतिषेध में कोई प्रमाण नहीं है, तब प्रतिषेध अप्रमाण होगा। तब कोई शिष्ट इस प्रमाण के निषेध को न मानेगा। वह आप का निषेध ही व्यर्थ हो गया। इससे आप को भी प्रमाणों को अवश्य मानना चाहिये॥

**त्रैकाल्याप्रतिषेधश्च शब्दादातोद्यसिद्धिवत्तत्सिद्धेः।**

तीन कालों का निषेध नहीं हो सकता जैसे कि वीण अथवा वांसुलि वा कोई वादित्र कोई दूर बजाता होय, उनका शब्द दूर से सुनके पूर्व सिद्ध वादित्र को जान लिया जाता है कि यह वीण का शब्द है। और जब वीणा देखी तब भविष्यत्काल में जो होने वाला शब्द उसको जान लिया कि वीण से, आगे बजाने से शब्द होगा। और जब सन्मुख बीण को और



उसके शब्द को भी एक काल में देखता और सुनता है, तब वीण और वीण के शब्द को भी जान लेता है, वैसी ही व्यवस्था प्रमाणों की जान लेना॥

**प्रमेयता च तुलाप्रामाण्यवत्।**

जैसे कि तुला पदार्थों के तौलने के लिये प्रमाण की नाईं है। तुला से ही घृतादिक द्रव्यों को तौल के प्रमाण कर लेते हैं। इसमें तुला तो प्रमाण स्थानी है और घृतादिक प्रमेय स्थानी हैं। परन्तु वही तुला दूसरी तुला से तौली जाय, तब प्रमेय संज्ञा भी उसकी होती है। वैसे ही जब प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से रूपादिक विषयों को चक्षुरादिकों से हम लोग देखते हैं, तब तो प्रत्यक्षादिक और चक्षुरादिक प्रमाण हैं, रूपादिक विषय प्रमेय हैं, और जब प्रत्यक्षादिक क्या होते हैं ऐसी आकांक्षा होगी, तब वे ही प्रमेय हो जायेंगे, क्योंकि ऐसे लक्षण वाले को प्रत्यक्ष प्रमाण कहना और ऐसा लक्षण जिसका होय वह अनुमान होता है, इत्यादिक सब जान लेना।

तीन प्रकार से शास्त्र की प्रवृत्ति होती है १ एक उद्देश्य, २ दूसरा लक्षण, और ३ तीसरी परीक्षा। उद्देश्य इसका नाम है कि नाम मात्र से पदार्थ की गणना करनी, जैसा कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय लक्षण इसका नाम है कि निश्चित जो जिसका धर्म है, उससे पृथक् कभी न होय। जैसा कि पृथिवी में गन्ध, जल में रस इत्यादिक। गन्ध ही पृथिवी को जनाता है और गन्ध ही से पृथिवी जानी जाती है। गन्ध रसादिकों से विशेष है और गन्ध से रसादिक विशेष हैं, परस्पर ये गन्धादि के निवर्तक और ज्ञापक हो जाते हैं, इससे गन्ध पृथ्वी का लक्षण है और रसादिक जलादिकों के लक्षण हैं। गन्ध का लक्षण नासिका, नासिका का लक्षण मन, मन का लक्षण आत्मा, आत्मा का लक्षण भी आत्मा ही है और कोई नहीं।

लक्षण का भी लक्षण होता है वा नहीं?

लक्षण का लक्षण कभी नहीं होता? जो कोई लक्षण का लक्षण कहता है सो मूर्ख पुरुष है, वा जिसने ग्रन्थ में लिखा है, वह भी मूर्ख पुरुष है। क्योंकि पृथ्वी का लक्षण गन्ध है, गन्ध का लक्षण नासिका, सो

नासिका के प्रति गन्ध लक्ष्य है। क्योंकि नासिका ही से गन्ध जाना जाता है और नासिका मन से जानी जाती है। इससे नासिका का लक्षण मन है, नासिका मन का लक्ष्य है, मन का लक्षण आत्मा है क्योंकि आत्मा ही से मन जाना जाता है। आत्मा के प्रति मन लक्ष्य है, क्योंकि मेरा मन सुखी वा दु:खी है, सो आत्मा मन को ही जान के कहता है। इससे मन आत्मा का लक्ष्य है। आत्मा और परमात्मा परस्पर लक्ष्य और लक्षण हैं, क्योंकि आत्मा परमात्मा को जान सकता है और अपने को आप भी जान लेता है। तथा परमात्मा सब काल में आत्माओं को जानता है और आप को भी आप सदा जानता है। वे अपने आपही के लक्ष्य और लक्षण भी हैं इससे आगे जो तर्क करना है सो मूढ़ ही का धर्म है, क्योंकि इसके आगे जो तर्क कुतर्क करता है, उसका ज्ञान और बुद्धि नष्ट हो जाती है। इससे सज्जनों को और बुद्धिमानों को अवश्य जानना चाहिये कि यही ज्ञान की परम सीमा है और यही परम पुरुषार्थ है। जो कोई लक्षण का लक्षण कहता है उसके मत में अनवस्था दोष प्रसङ्ग आवेगा, कहीं भी अवस्था न होगी क्योंकि लक्षण का लक्षण, उसका लक्षण-लक्षण ऐसा वाद करता-करता मर जायगा, कुछ हाथ नहीं आवेगा। और जैसा कि लक्षण का लक्षण करता है वैसा लक्ष्य का लक्ष्य, उसका लक्ष्य-लक्ष्य यह भी अनवस्था दूसरी उसके मत में आवेगी। इससे बुद्धिमानों को ऐसी बात न कहनी चाहिये और न सुननी चाहिये। कुछ थोड़ी-सी प्रमाणों के विषय में परीक्षा लिख दी है और अधिक जानने की जिसको इच्छा होय, वह गोतम सूत्र के २ अध्याय से लेके ५ पंचमाध्याय की पूर्त्ति पर्य्यन्त देख लेवै। इतने ४ प्रमाण हैं, परन्तु ४ चारों में और ४ चार प्रमाण मानना चाहिये—

**न चतुष्ट्वमैतिह्यर्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्।**

—यह गोतममुनि का पूर्वपक्ष का सूत्र है।

४ चार ही प्रमाण नहीं, किन्तु ८ आठ प्रमाण हैं। **ऐतिह्य** नाम जो बहुत काल से सुनते-सुनाते चले आये उसका नाम **ऐतिह्य** है। **अर्थापत्ति**—किसी ने किसी से कहा कि बादल के होने ही से वृष्टि होती है, इससे क्या आया कि विना बादल से वृष्टि नहीं होती, इसका नाम **अर्थापत्ति** है।



**सम्भव** नाम मण के जानने से आधा मण, पसेरी, सेर और छटांक को जो विचार से ज्ञान हो जाय उसका नाम **सम्भव** है क्योंकि मण ४० सेर का होता है, उसका आधा २० सेर होगा, २० सेर के चतुर्थांश की पसेरी होगी, उसका ५ पांचवां अंश सेर होगा, सेर का १६ सोलहवां अंश छटांक होगा। ऐसा विचार करने से जो ज्ञात होता है उसका नाम **सम्भव** है, यह सप्तम प्रमाण है। आठवां **अभाव**—किसी ने किसी से कहा कि तूं अलक्षित नाम अदृष्ट मनुष्य को ला, जो कि तूने नहीं देखा है। वह जाके जिसको उसने कभी न देखा था, उसी को ले आवेगा। देखने के अभाव से उसको ज्ञान हो गया, इससे **अभाव** भी आठवां प्रमाण मानना चाहिये।

इसका समाधान यह है कि—

**शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्ति-**
**सम्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः।**

चार ही प्रमाण मानना चाहिये। उसका जो आप ने निषेध किया सो अयुक्त है, क्योंकि आप्तों का उपदेश जो है सो **शब्द** है, उसी में **ऐतिह्य** भी आ गया। क्योंकि देव श्रेष्ठ होते हैं और असुर अश्रेष्ठ होते हैं, यह भी तो आप्तों ही के उपदेश से सत्य-सत्य जाना जाता है, मूर्खों के उपदेश से कभी नहीं। वैसे ही **प्रत्यक्ष** से **अप्रत्यक्ष** को जानना उसका नाम **अनुमान** है। इस **अनुमान** में **अर्थापत्ति, सम्भव** और **अभाव** ये तीनों गणना कर लीजिये। इससे चार ही प्रमाण का मानना ठीक है, यह गोतममुनि का अभिप्राय है।

पूर्व मीमांसादर्शन और वैशेषिकदर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने हैं तथा योगशास्त्र और सांख्यशास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द तीन प्रमाण माने हैं। वेदान्त शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ये छ: प्रमाण माने हैं। और जो कोई आठ प्रमाण मानैं तो भी कुछ दोष नहीं।

इन उक्त प्रमाणों से ठीक-ठीक परीक्षा करके शास्त्र को पढ़ै वा पढ़ावै। और जो पुस्तक इन प्रमाणों से विरुद्ध होय उनको न पढ़ै और न पढ़ावै। इनसे विरुद्ध व्यवहार अथवा परमार्थ कभी न करना और मानना

भी न चाहिये।

## अथ पठनपाठनविधिं वक्ष्यामः।

प्रथम तो **अष्टाध्यायी** को पढ़ै और पढ़ावै। सो इस क्रम से—**वृद्धिरादैच्** यह तो पाठ भया, **वृद्धिः आत् ऐच्** यह पदच्छेद भया। **आदैचां वृद्धिसंज्ञा स्यात्** यह सूत्र का अर्थ है कि आ, ऐ, और औ, इन तीन अक्षरों की **वृद्धि** संज्ञा कि वृद्धि नाम है। इस प्रकार से पाणिनि मुनिजी की किई अष्टाध्यायी के आठों अध्यायों को पढ़ै। सो बुद्धिमान् छः महीने में अथवा आठ महीने में पढ़ लेगा। इसके पीछे **धातुपाठ** को पढ़ै। उसमें **भवति भवतः भवन्ति** इत्यादिक तिङन्त रूपों को और **भावः भावौ भावाः** इत्यादिक सुबन्त रूपों को उन्हीं सूत्रों से साध-साध के पढ़ले। तीन मास में दशगण, दशलकार और बुभूषति इत्यादिक प्रक्रिया के रूपों को भी पढ़ लेगा। वेही सब अष्टाध्यायी के सूत्रों के उदाहरण और प्रत्युदाहरण होवेंगे। इसके पीछे **उणादि** और **गणपाठ** को पढ़ै। उसमें **वायुः वायू वायवः** इत्यादिक रूप और बहुत से शब्दों का ज्ञान होगा। एक मास में उसको पढ़ लेगा। उसके पीछे सर्व, विश्व, उभ, उभय इत्यादिक गणपाठ के साथ अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति नाम दूसरी वार पढ़ै। उसके सूत्रों में जितने शब्द हैं और जितने पद हैं, उनको सूत्रों से सिद्ध कर लेवेगा और सर्वादि गणों के **सर्वः सर्वौ सर्वे** ऐसे पुल्लिङ्ग में रूप होते हैं। **सर्वा सर्वे सर्वाः** इत्यादिक स्त्रीलिङ्ग में रूप होते हैं और **सर्वं सर्वे सर्वाणि** इत्यादिक नपुंसक में रूप होते हैं इनको भी पढ़ लेवै। सूत्रों से साध के ऐसे दूसरी वार अष्टाध्यायी को ४ वा ६ छः मास में पढ़ लेगा। इस प्रकार से १६ वा १८ अठारह मास में पाणिनि मुनि के किये ४ चार ग्रन्थों को पढ़ लेगा। फिर इसके पीछे पतञ्जलि मुनि का किया **महाभाष्य** जिसमें अष्टाध्याय्यादिक चार ग्रन्थों की यथावत् व्याख्या है। बहुत से **वार्त्तिक** सूत्र हैं सूत्रों के ऊपर और अनेक **परिभाषा** हैं। अनेक प्रकार के शास्त्रार्थ, शङ्का और समाधान हैं उनको यथावत् पढ़ले। जब उसको पढ़लेगा, तब सब व्याकरण शास्त्र उसका पूर्ण हो जायगा, वह महा वैय्याकरण कहावेगा, फिर विद्वान् संज्ञा भी उसकी हो जायगी। सो



अठारह १८ महीने में सब महाभाष्य का पढ़ना सम्पूर्ण हो जायगा। ऐसे मिलके ३ वर्ष तक व्याकरण शास्त्र संपूर्ण होगा। उसके सम्पूर्ण पठन होने से अन्य सब शास्त्रों का पढ़ना सुगम हो जायगा। इसमें कोई सज्जन को शङ्का मत हो कि यह बात सत्य नहीं है, किन्तु इस प्रकार से पढ़ना और पढ़ाना होय, तीन-तीन वर्ष में सम्पूर्ण व्याकरण को पढ़ै और पूर्त्ति न होय, तब शङ्का करनी चाहिये। पहिले जो शङ्का करनी सो व्यर्थ ही है। इससे जिन पुरुषों का बड़ा भाग्य होगा वे ही इस रीति में प्रवृत्त होंगे और उनकी शीघ्र विद्या भी हो जायगी, वे बहुत सुख पावेंगे। और जो भाग्यहीन हैं वे तो सुख की रीति को कभी न मानेंगे। व्याकरण के नाम से जो जाल रूप कौमुद्यादिक ग्रन्थ, चन्द्रिका, सारस्वतादिक और मुग्ध बोधादिकों के ५० वर्ष तक पढ़ने से भी जैसा बोध नहीं होता है, उससे हजार गुणा अष्टाध्याय्यादिक सत्य ग्रन्थों के पढ़ने से तीन वर्ष में ही बोध हो जाता है।

इसमें विचार करना चाहिये कि सत्य ग्रन्थों के पढ़ने में बड़ा लाभ होता है वा मिथ्या जालरूप ग्रन्थों के पढ़ने में?

जालरूप ग्रन्थों के पढ़ने से कुछ भी लाभ नहीं होगा, क्योंकि जालरूप ग्रन्थों में इस प्रकार का व्यर्थ विवाद लिखा है उसको पढ़ाने और पढ़ने वाले भी वैसे ही हठी, दुराग्रही और विरुद्ध वादी होंगे। ऐसे ही देख भी पड़ते हैं। क्योंकि जैसा ग्रन्थ पढ़ेगा, वैसी ही बुद्धि उसकी होगी। इस प्रकार का बड़ा एक जाल बनाया है कि मरण तक एक शास्त्र भी पूर्ण नहीं होता। उसको अन्य शास्त्र पढ़ने का अवकाश कैसे होगा, कभी न होगा। एक शास्त्र के पढ़ने से मनुष्य की बुद्धि संकुचित ही रहती है। विस्तृत कभी नहीं होती। सब दिन उसको शङ्का ही बनी रहती है। सब पदार्थों का निश्चय कभी नहीं होता और जो व्याकरण का पढ़ना है सो तो वेदादिक अन्यशास्त्रों के पढ़ने के ही लिये है। जब वह एक व्याकरण ही में वाद-विवाद करता-करता मर जायगा, तब हाथ में उसके कुछ भी न आवेगा। इससे सब सज्जन लोगों को ऋषि मुनियों की पठन-पाठन की जो रीति है उसी में चलना चाहिये, जाली लोगों की रीति में कभी नहीं।

क्योंकि आर्य्यावर्त्त-मनुष्यों के बीच में कपिलादिक ऋषि मुनि जितने भये हैं वे बड़े विद्वान् और बड़े धर्मात्मा पुरुष भये हैं। उनके सहस्रांश में भी इस समय जो आर्य्यावर्त्त में मनुष्य हैं वे बुद्धि, विद्या और धर्माचरण में नहीं देख पड़ते। इसलिये उनका आचरण हम लोगों को करना उचित है कि उसी से आर्य्यावर्त्त के लोगों की उन्नति होगी अन्यथा कभी नहीं।

व्याकरण को तीन वर्ष तक सम्पूर्ण पढ़के कात्यायनादि मुनि कृत जो **कोश,** यास्क मुनिकृत जो **निघण्टु** और यास्क मुनिकृत **निरुक्त** को पढ़े और पढ़ावै। उसमें अव्ययार्थ, एकार्थ कोश और अनेकार्थ कोश, नाम और नामियों का आप्तों के किये संकेत से जो सम्बन्ध हैं, डेढ़ वर्ष के बीच में उसका ज्ञान हो जायगा। उसके पीछे पिङ्गल मुनि के किये जो **छन्दों के सूत्र** भाष्य सहित को पढ़े।

पीछे यास्कमुनि के किये **काव्यालङ्कार सूत्र** और उसके ऊपर वात्स्यायन मुनि के भाष्य को पढ़े। उससे गायत्र्यादिक छन्दों का, काव्य अलङ्कार और श्लोक रचने का भी यथावत् ज्ञान छः मास में होवेगा। और अमर कोशादिक जो कोश ग्रन्थ और श्रुतबोधादिक जो छन्दो ग्रन्थ, वे सब जाल ग्रन्थ ही हैं। इनके दश वर्ष में पढ़ने से जो बोध नहीं होता, सो उक्त निघंट्वादिक सत्यशास्त्रों के पढ़ने से दो वर्ष में होगा। इससे इनका ही पढ़ना और पढ़ाना उचित है।

इसके पीछे पूर्व **मीमांसाशास्त्र** को पढ़े जो कि जैमिनि मुनि के किये सूत्र हैं। उनके ऊपर व्यासमुनि जी की अधिकरणमाला व्याख्या के सहित पढ़े। चार मास के बीच में पढ़ लेगा और इसी शास्त्र के साथ **मनुस्मृति** को पढ़ै, सो एक मास में मनुस्मृति को पढ़ लेगा। उसके पीछे **वैशेषिकदर्शन** जो कि कणादमुनि के किये सूत्र हैं, उसके ऊपर गोतममुनि जी का किया जो प्रशस्तपादभाष्य और भरद्वाज मुनि की किई सूत्रों की वृत्ति से सहित को पढ़े। उसके पढ़ने में दो मास जायेंगे। उसके पीछे **न्यायदर्शन** जो कि गोतममुनि के किये सूत्र, उनके ऊपर वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य उसको पढ़े। इसके पढ़ने में चार मास जायेंगे। इसके पीछे पातञ्जल दर्शन नाम **योगशास्त्र** जो कि पतञ्जलि मुनि के किये सूत्र, उसके



ऊपर व्यासमुनि जी का किया भाष्य इसको एक मास में पढ़ लेगा। उसके पीछे **सांख्यदर्शन** जो कि कपिलमुनि के किये सूत्र, उनके ऊपर भागुरि मुनि का किया भाष्य उसको भी एक मास में पढ़ लेगा।

इसके पीछे ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, मांडूक्य, [ऐतरेय], तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन **दश उपनिषदों** को पांच महीने के बीच में पढ़ लेगा। और इसके पीछे **वेदान्तदर्शन** को पढ़े जो कि व्यास मुनि के किये सूत्र, उनके ऊपर वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य अथवा बौधायन मुनि का किया भाष्य वा शङ्कराचार्य जी का किया भाष्य पढै। जब तक बौधायन और वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य मिले तब तक अन्य भाष्य को न पढ़े। इसको छः मास में पढ़ लेगा। इनको छः शास्त्र कहते हैं। इनके पढ़ने में दो वर्ष काल जायगा। दो वर्ष के बीच में सब पदार्थ विद्या पुरुष को यथावत् आवैगी।

और इनके विषय में बहुत से जालग्रन्थ लोगों ने रचे हैं जैसे कि पाराशर स्मृत्यादिक १७ सतरह पूर्व मीमांसाशास्त्र के विषय में जालग्रन्थ लोगों ने रचे हैं तथा वैशेषिकदर्शन और न्यायदर्शन के विषय में तर्कसंग्रह, न्यायमुक्तावली, जागदीशी, गदाधरी, और मथुरानाथी इत्यादिक जाल ग्रन्थ लोगों ने रचे हैं। ऐसे ही योगशास्त्र के विषय में हठ प्रदीपिकादिक मिथ्या ग्रन्थ लोगों ने रचे हैं तथा सांख्यशास्त्र के विषय में सांख्यतत्त्व-कौमुद्यादिक जाल ग्रन्थ लोगों ने रचे हैं और वेदान्तशास्त्र के विषय में पञ्चदशी, वेदान्तसंज्ञा, वेदान्तमुक्तावली, आत्मपुराण, योगवाशिष्ठ और पूर्वोक्त दश उपनिषदों को छोड़ के गोपालतापिनी, नृसिंहतापिनी, रामतापिनी और अल्लोपनिषत् इत्यादिक बहुत उपनिषद् जाल रूप लोगों ने रची हैं। वे सब सज्जनों को त्याग करने के योग्य हैं।

इन जाल ग्रन्थों में जो कुछ सत्य है सो सत्य शास्त्रों ही का विषय है। उसका लिखना ग्रन्थान्तर में अयुक्त है क्योंकि जो बात सत्य शास्त्रों में लिखी ही है उसका फिर लिखना व्यर्थ है। जैसे कि पीसे भये पिसान को फिर पीसना, वैसा ही वह है। किन्तु पिसान भी उड़ जायगा तथा सत्यशास्त्र की बात भी उनके हाथ से उड़ जायगी। और जो सत्यशास्त्रों

से विरुद्ध बात है सो तो कपोल कल्पित मिथ्या ही है। इससे इनका पढ़ना और पढ़ाना मिथ्या ही जानना चाहिये। इससे कुछ फल न होगा। और जो कोई पढ़ता है वा पढ़ेगा, एक शास्त्र की मरण तक भी पूर्त्ति न होगी और कुछ बोध भी उसको न होगा। इससे सज्जन लोगों को सत्यशास्त्रों ही का पढ़ना और पढ़ाना उचित है, जाल ग्रन्थों का कभी नहीं।

**पूर्वपक्ष**—छ: शास्त्रों में भी अन्योन्यविरोध और परस्पर खण्डन देख पड़ता है एक का दूसरे से, दूसरे का तीसरे से ऐसा ही सर्वत्र है। जैसाकि जाल ग्रन्थों में एक शास्त्र के विषय में बहुत सी परस्पर विरुद्ध टीका और मूल ग्रन्थ हैं, वैसा ही विरोध सत्यशास्त्रों में भी देख पड़ता है। जो दोष आप ने जाल ग्रन्थों में दिया वही दोष सत्यशास्त्रों में भी आया फिर सत्यशास्त्रों का पढ़ना और जालग्रन्थों का न पढ़ना आप कहते हैं, इसमें क्या प्रमाण है?

**उत्तर**—कि यह आप लोगों को जालग्रन्थों के पढ़ने और सुनने से भ्रान्ति हो गई है कि सत्यशास्त्रों में भी विरोध और परस्पर खण्डन है। यह बात आप लोगों की मिथ्या ही है। देखना चाहिये कि आजकाल के लोग टीका वा ग्रन्थ रचते हैं सो द्वेष बुद्धि ही से रचते हैं कि अपनी बात मिथ्या भी होय तो भी सत्य कर देते हैं। तब सब लोग उसको कहते हैं कि वह बड़ा पण्डित है। इस प्रकार के जो धूर्त्त मनुष्य हैं वे ही टीका वा ग्रन्थ रचते हैं। उनमें इसी प्रकार की मिथ्या धूर्त्तता रखते हैं उनको जो पढ़ता है वा पढ़ाता है उसकी भी बुद्धि वैसी ही भ्रष्ट हो जाती है सो मिथ्यावाद में ही प्रवृत्त होता है और सत्य वा असत्य का विचार कभी नहीं करता। उसको तो यही प्रयोजन रहता है कि दूसरे की सत्य बात को भी खण्डन करके, अपनी मिथ्या बात को मण्डन करके, जिस किस प्रकार से दूसरे का पराजय करना, अपना विजय कर लेना, उससे प्रतिष्ठा करना और धन लेना, पीछे विषय भोग करना, यही आजकल के पण्डितों की क्षुद्रबुद्धि और सिद्धान्त हो गया है।

इस प्रकार के कितने मौलवी और पादरी लोग भी देखने में आते हैं। पण्डितादिकों में कोई जो सत्य कथन करै, तब वे सब धूर्त्त लोग उससे



विरोध करते हैं। उसका नाम नास्तिक रखते हैं और उससे सब दिन विरोध ही रखते हैं क्योंकि उनकी बुद्धि वैसी ही है। इस दोष के होने से सत्य शास्त्रों का जो यथावत् अभिप्राय है, उसको जानते भी नहीं। इससे वे कहते हैं कि सत्यशास्त्रों में भी परस्पर विरोध है। परन्तु मैं आप लोगों से कहता हूँ कि छ: शास्त्रों में लेशमात्र भी परस्पर विरोध नहीं है, क्योंकि इनका विषय भिन्न-भिन्न है। और जो विरोध होता है सो एक विषय में परस्पर विरुद्ध कथन के होने से होता है। जैसे कि एक ने कहा गन्धवाली जो होती है सो पृथ्वी कहाती है, इसी विषय में दूसरे ने कहा कि नहीं जो रस वाली होती है सोई पृथ्वी होती है। क्योंकि पृथ्वी में क्षार मिष्टादिकरस प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, इस प्रकार के विषय को विरोध जानना चाहिये। और जो ऐसा कहै कि गन्धवाली जो पृथ्वी होती है और रस वाला जल होता है सो एक तो पृथ्वी के विषय में व्याख्या करता है और दूसरा जल के विषय में। दोनों का विषय भिन्न होने से व्याख्या भी भिन्न होगी। परन्तु उसका नाम विरोध नहीं जैसे कि किसी ने ज्वर के विषय में चिकित्सा, निदान, औषध और पथ्य को लिखा और दूसरे ने कफ के विषय में चिकित्सादिक लिखे, उसको विरोध नहीं कहना चाहिये। वैसा ही षट् शास्त्रों के विषय में और भी सब वेदादिक शास्त्रों के विषय में जानना चाहिये। जैसे कि धर्मशास्त्र नाम पूर्वमीमांसा में धर्म और धर्मी दो पदार्थों को मानते हैं और कर्मकाण्ड जो कि वेदोक्त है, संध्योपासन से लेके अश्वमेध पर्यन्त कर्मकाण्ड कहा है। अब इसमें आशङ्का होती है कि धर्म और धर्मी किसको कहते हैं। तब इसी की वैशेषिक दर्शन में स्पष्ट व्याख्या की है कि जो द्रव्य है सो तो धर्मी है और गुणादिक सब धर्म हैं। फिर भी आशङ्का होती है कि गुण को क्यों नहीं द्रव्य और द्रव्य को क्यों नहीं गुण कहते? उसका विचार न्यायदर्शन में किया है कि जिन प्रमाणों से द्रव्य गुणादिक सिद्ध होते हैं, उसको द्रव्य और उन्हीं को गुण मानना चाहिये। सो तीनों शास्त्रों से श्रवण नाम सुनना और मनन नाम उसी का विचार करना इस बात तक लिखा। उससे आगे जितने पदार्थ अनुमान से सिद्ध होते हैं उतने प्रत्यक्ष से जैसा तीन शास्त्रों में कहा है वैसा ही है अथवा

नहीं, उसको विशेष विचार से और योगाभ्यास से उपासना काण्ड जो कि चित्तवृत्ति के निरोध से लेके कैवल्य पर्यन्त उपासना काण्ड कहाता है उसकी रीति योगशास्त्र में लिखी है जो देखना चाहे सो उसमें देख लेवै, सब के तत्त्व को यथावत् जानना चाहिये। इसलिये योगशास्त्र है।

फिर कितने भूत और तत्त्व हैं, उसकी भिन्न-भिन्न गणना और वैसा ही निश्चय का होना उसलिये सांख्य शास्त्र का आवश्यक रचन हुआ। इन पांच शास्त्रों का महाप्रलय तक व्याख्यान है जिसमें कि स्थूल भूतों का नाश होता है और सूक्ष्मों का नहीं। फिर उसी सूक्ष्म भूतों से जैसी उत्पत्ति स्थूल की होती है और जिस प्रकार से प्रलय होता है वह बात सब लिखी है। महाप्रलय तक परमाणु और प्रकृत्यादिक सूक्ष्म भूत बने रहते हैं, उनका लय नहीं होता। फिर कार्य और परम कारण का विचार वेदान्त शास्त्र में किया कि सब प्रकृत्यादिक भूतों का एक अद्वितीय अनादि परमेश्वर ही कारण है और परमेश्वर से भिन्न सब कार्य हैं क्योंकि परमेश्वर ही ने सब प्रकृत्यादिक सूक्ष्म भूत रचे हैं सो परमेश्वर के सामने तो संसार सब आदि है और अन्य जीवों के सामने अनादि। परमाणु प्रकृत्यादिक भूत भी अनित्य हैं क्योंकि परमाणु और प्रकृति इनका ज्ञान अनुमान से होता है वैसा नाश भी अनुमान से हम लोग जान सकते हैं। परमेश्वर तो सब जगत् का रचने वाला है। अन्य ब्रह्मादिक देव और सब मनुष्य शिल्पी हैं, क्योंकि नवीन पदार्थ रचने का किसी का सामर्थ्य नहीं है। विना परमेश्वर के जगत् का रचने वाला कोई नहीं है सो वेदान्त शास्त्र में ज्ञान काण्ड का निश्चय किया है जो कि निष्काम कर्म से लेके परमेश्वर की प्राप्ति पर्यन्त ज्ञानकाण्ड है। **निष्काम कर्म** यह है कि परमेश्वर की प्राप्ति जो मोक्ष उसके विना भिन्न फल कर्मों से नहीं चाहना, सो **निष्काम कर्म** कहाता है। इससे विचारना चाहिये कि षट्शास्त्रों में कुछ भी विरोध नहीं है। किञ्च परस्पर सहायकारी शास्त्र हैं सब शास्त्र मिलके सब पदार्थविद्या छः शास्त्रों में प्रकाश कर दी है।

और उक्त जो जाल पुस्तक हैं उनमें केवल विरोध ही है। उनका पढ़ना और पढ़ाना व्यर्थ ही है किञ्च सत्य शास्त्रों के पठन न होने से और



जाल ग्रन्थों के पढ़ने से आर्य्यावर्त्त देश के लोगों की बड़ी हानि हो गई है। इससे सज्जन लोगों को ऐसा करना उचित है कि आज तक जो कुछ भ्रष्टाचार भया सो भया, इससे आगे हमलोगों के ऋषि मुनि और श्रेष्ठ राजा लोग जो कि पहिले भये थे, उनकी जो मर्यादा और वेदादिक सत्यशास्त्रोक्त जो मर्यादा उसी पर चलने से और सब पाखण्डों को छोड़ने ही से आर्य्यावर्त्त देश की बड़ी उन्नति होगी, अन्य प्रकार से कभी न होगी।

इन सब शास्त्रों को पढ़के **ऋग्वेद** को पढ़ै। उसका **आश्वलायनकृत** जो **श्रौत सूत्र, बह्वृच** जो ऋग्वेद का ब्राह्मण और **कल्पसूत्र** इनके साथ-साथ मन्त्रों का अर्थ पढ़ै और स्वर को भी पढ़ै। सो दो वर्ष के भीतर सब ऋग्वेद को पढ़ लेगा। तथा **यजुर्वेद** की संहिता उसके साथ-साथ **कात्यायन, श्रौतसूत्र** तथा **गृह्यसूत्र** तथा **शतपथ ब्राह्मण** स्वर अर्थ और हस्तक्रिया के सहित यथावत् पढ़ैं। डेढ़ वर्ष तक यजुर्वेद को पढ़ लेगा। इसके पीछे **सामवेद** को पढ़ै। **गोभिल श्रौतसूत्र** तथा **राणायनश्रौतसूत्र** और **कल्पसूत्र साम ब्राह्मण** तथा **गोभिल राणायन गृह्यसूत्र** के साथ-साथ पढ़ै। दो वर्ष में सब सामवेद को पढ़ लेगा। इसके पीछे **अथर्ववेद** को पढ़ै। **शौनकश्रौतसूत्र, शौनकगृह्यसूत्र, अथर्वब्राह्मण** और **कल्पसूत्र** के साथ-साथ सो एक वर्ष में पढ़ लेगा। ऐसे साढ़े छः वा सात वर्ष में चारों वेदों को पढ़ लेगा। चारों वेदों की जो संहिता है उन्हीं का नाम वेद है। फिर उन्हीं वेदों की जितनी अन्य-अन्य शाखा हैं वे सब वेदों के व्याख्यान हैं। विना पढ़े ही सब विचार मात्र से आ जायेंगी तथा **आरण्यक बृहदारण्यकादिक** व्याख्यान हैं, उनको भी विचार करने से जान लेगा।

चारों वेदों को पढ़ के **आयुर्वेद** को पढ़ै जो कि ऋग्वेद का उपवेद है। उसमें **धन्वन्तरिकृत निघण्टु, चरक** और सुश्रुत इन तीनों ग्रन्थों को शस्त्रक्रिया, हस्तक्रिया और निदानादिक विषयों को यथावत् पढ़ै सो तीन वर्ष में पढ़ लेगा। और वैद्यकशास्त्र के विषय में शार्ङ्गधरादिक जाल ग्रन्थों को पढ़ना और पढ़ाना व्यर्थ ही जानना। इसके पीछे यजुर्वेद का जो **धनुर्वेद** उसको पढ़ै। उसमें शस्त्र विद्या जो कि शस्त्रों का रचना और शस्त्रों का चलाना और अस्त्र विद्या जो कि आग्नेयास्त्रादिक पदार्थ गुणों

से होते हैं, उनको यथावत् रच लेना। अग्न्यादिक अस्त्रों के विषयों का विस्तार राजधर्म में लिखेंगे। और युद्ध समय में व्यूह की रचना यथावत् जान लेवै। जैसे कि सूची व्यूह सूई का अग्र भाग तो बहुत सूक्ष्म होता है और उस अग्र भाग से पहिले-पहिले स्थूल होता है। उससे सूत स्थूल होता है इसी प्रकार से सेना को रच के शत्रु की सेना वा दुर्ग वा नगर में प्रवेश करैं। तब उसके विजय का सम्भव होता है ऐसे ही शकटव्यूह, मकरव्यूह और गरुड़व्यूहादिकों को जान लेवे। उसको दो वा तीन वर्ष में पढ़ लेगा। उसके आगे सामवेद का जो उपवेद **गान्धर्व वेद** उसको पढ़ै। उसमें वादित्र, राग, रागिणी, काल, ताल स्वरपूर्वक गान विद्या का अभ्यास करै। दो वर्ष में उसको पढ़ लेगा। इसके आगे अथर्ववेद का जो उपवेद **अर्थवेद** नाम **शिल्पशास्त्र** उसमें नाना प्रकार कला यन्त्र और नाना प्रकार के द्रव्यों को मिलाने से नाना प्रकार व्यवहारों के यानों को और दूरवीक्षण, नाम दूरस्थित पदार्थों को निकट देखे और अण्वीक्षण नाम सूक्ष्म पदार्थ भी स्थूल देख पड़ें इत्यादिक पदार्थों को रचले। जैसे कि अग्नि का ऊद्‌र्ध्वगमन स्वभाव है और जल का नीचे जाने का स्वभाव है, सो किसी पात्र में जल को करके चूल्हे के ऊपर रख दे और उसके नीचे अग्नि करै फिर उतने ही भार वाले पात्र से उस पात्र का मुख बन्ध करै। जब अग्नि से जल ऊपर उड़ेगा तब इतना बल हो जायगा कि ऊपर का पात्र नाचने लगेगा वा गिर पड़ेगा। इसी प्रकार से पदार्थों के अनुकूल गुणों को और विरुद्ध गुणों को जानने से पृथ्वीयान, जलयान और आकाश यानादिक पदार्थों को रच लेगा। जैसे कि महाभारत में उपरिचरवसु राजा, इन्द्रादिक देव तथा राम लङ्का से अयोध्या को आकाश मार्ग से आया। उपरिचरादिक राजा लोग और इन्द्रादिक देव वे भी आकाश मार्ग से जाते और आते थे, तथा जैसे कि आज कल अङ्गरेज लोगों ने रेल तारादिक बहुत से पदार्थ रचे हैं। वे सब शिल्पशास्त्र के विषय हैं और उनसे बहुत से उपकार हैं, उसको भी तीनवर्ष में पढ़ लेगा। पढ़ के पीछे अपनी बुद्धि से बहुत सी शिल्प विद्या की उन्नति कर लेगा। पीछे ज्योतिषशास्त्र को पढ़ै, उसमें गणित विद्या यथावत् जानै। उससे बहुत सा उपकार होता है। दो वा तीन



वर्ष में उसको पढ़ लेगा। और ज्योतिषशास्त्र में जो फल विद्या है सो व्यर्थ ही है। भृग्वादिक मुनियों के किये सूत्र और भाष्यों को पढ़ै। मुहूर्त्त चिन्तामण्यादिक जालग्रन्थों को कभी न पढ़ै।

इस प्रकार से साढ़े [सत्ताईस] २७॥ वा २८ वर्ष तक पढ़ लेगा। सम्पूर्ण विद्या उसको आ जायगी। फिर उसको पढ़ने की आवश्यकता कुछ न रहेगी। सब विद्याओं से वह पूर्ण होके पुरुषों में पुरुषोत्तम हो जायगा और उस शरीर से संसार में बड़ा उपकार होगा क्योंकि जैसे अपने विद्या को पढ़ा है वैसे ही पढ़ावेगा। इससे जैसा मनुष्यों का उपकार होता है वैसा किसी प्रकार से नहीं होता। ऐसे ३६ वर्ष की जब आयु होगी तब तक पुरुषों की विद्या भी पूर्ण हो जायगी। और जो पुरुष ४०, ४४ और ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रक्खेगा, उस पुरुष के भाग्य और सुख को हम लोग नहीं कह सकते कि कितना होगा। जिस देश में राज्याभिषेक जिसका होना होय, वह तो सब विद्या से युक्त होवै और ३६, ४०, ४४ वा ४८ वर्ष तक अवश्य ब्रह्मचर्याश्रम करै। उसी को राजा होना उचित है क्योंकि जितने उत्तम व्यवहार हैं वे सब राजा ही के आधीन हैं और सब दुष्ट व्यवहारों का बंध करना सो भी राजा ही के अधीन है। इससे राजा और धनाढ्य लोगों को तो अवश्य सब विद्या पढ़नी चाहिये क्योंकि जो वे सब विद्याओं को न पढ़ेंगे तो अपने शरीर की भी रक्षा न कर सकेंगे, फिर धर्म, राज्य और धन की रक्षा तो कैसे करेंगे।

और जितनी कन्या लोग हैं वे भी पूर्वोक्त व्याकरण, धर्मशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, गानविद्या और शिल्पशास्त्र इन पाँच शास्त्रों को तो अवश्य पढैं और जो अधिक पढ़ैं तो उनका सौभाग्य बड़ा होगा। १६ वर्ष से न्यून ब्रह्मचर्य कन्या लोग कभी न करैं और जो १८, २०, वा २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्याश्रम करेंगी तो उनको अधिक-अधिक सौभाग्य और सुख होगा। जब तक स्त्री और पुरुष लोग उक्त रीति पर ब्रह्मचर्य्य से विद्या प्राप्त न करेंगे तो उनका अभाग्य और दुःख ही जानना, परस्पर स्त्री और पुरुषों का विरोध और भ्रान्ति होगी। जिन व्यवहारों से सुख वृद्धि होती है उनको भी न जानेंगे, सर्वदा दीन रहैंगे और प्रमाद से धनादिकों का नाश करेंगे।

कहीं प्रतिष्ठा और आजीविका भी उनकी न होगी, परस्पर व्यभिचारी होंगे। उससे वीर्य्य का नाश होगा, फिर बहुत से शरीर में रोग होंगे। रोगों से सदा पीड़ित रहैंगे। वे मूर्ख होंगे इससे कभी सुख न पावेंगे। इससे सब स्त्री और पुरुष लोग सब पुरुषार्थ से अवश्य विद्या ही को पढ़ें। इससे मनुष्यों को अधिक लाभ कोई नहीं है क्योंकि आप ही अपना उपदेष्टा, रक्षक, धर्मग्राहक और अधर्म त्याग करनेवाला होता है। इससे बड़ा कोई लाभ नहीं है।

विद्या के पढ़ने और पढ़ाने में जितने विघ्न रूप व्यवहार हैं उनको जब तक मनुष्य नहीं छोड़ता, तब तक उसको विद्या कभी नहीं होती। **प्रथम विघ्न** बाल्यावस्था में जो विवाह का करना सोई बड़ा विघ्न है क्योंकि शीघ्र विवाह करने से विषयी होगा और विषय ही की चिन्ता करेगा, शरीर में धातु पुष्ट तो होंगे नहीं और सब धातुओं का सार जो कि सब धातुओं का राजा घर में जैसा कि दीपक प्रकाशक होता है, जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाशक है वैसा ही शरीर में वीर्य है। इस अपरिपक्व वीर्य और अत्यन्त वीर्य के नाश से बुद्धि, बल, पराक्रम, तेज और धैर्य का नाश हो जाता है। आलस्य, रोग, क्रोध और दुर्बुद्धि इत्यादि ये सब दोष उसमें हो जायेंगे। फिर कैसे उसको विद्या हो सकती है ? कभी न होगी, क्योंकि जितेन्द्रिय, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, शीलवान्, विचारवान् जो पुरुष होता है, उसी को विद्या होती है अन्य को नहीं। इससे ब्रह्मचर्य का अवश्य करना उचित है।

**दूसरा विद्या का नाशक विघ्न** पाषाणादिक मूर्त्तिपूजन, ऊद्र्ध्वपुंड्र, त्रिपुंड्रादिक तिलक, एकादशी, त्रयोदश्यादिकव्रत, काश्यादिक तीर्थों में विश्वास, राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती और गणेशादिक नामों से पाप नाश होने का विश्वास, यह भी विद्या धर्म और परमेश्वर की उपासना का बड़ा भारी विघ्न है। क्योंकि **विद्या का फल** यही है कि परमेश्वर को यथावत् जानना, मुक्ति का होना, यथावत् व्यवहार और परमार्थ का धर्म में अनुष्ठान करना यही **विद्या होने का फल** है। सोई फल मिथ्या बुद्धि से पाषाणादिक मूर्त्ति में और तिलकादिकों ही में मान लेते



हैं। और सम्प्रदायी लोग मिथ्या उपदेश करके धूर्तता और अधर्म का निश्चय करा देते हैं। पीछे वे सम्प्रदायी लोग ऐसे कहते हैं और उनके चेले सुनते हैं कि मूर्त्ति पूजादिक प्रकार ही से आप लोगों की मुक्ति होगी, यही परम धर्म है। ऐसा सुनके उन विद्याहीन मनुष्यों को निश्चय हो जाता है कि यही बात सत्य है। सब कहने और सुनने वाले वैसे हैं जैसे कि पशु हैं। वे ऐसा भी कहते हैं कि सम्प्रदायी और नाममात्र से जो पण्डित लोग आजीविका के लोभ से यही बात वेद में लिखी है। ऐसी बात कहने वाले और सुनने वाले ने वेद का दर्शन भी कभी नहीं किया। वेद में इन बातों का सम्बन्ध लेशमात्र भी नहीं है, परन्तु अन्ध परम्परा की नाई कहते और सुनते चले जाते हैं। उनको सुख वा सत्य फल कुछ भी नहीं होता क्योंकि बाल्यावस्था से लेके यही मिथ्याचार करते रहते हैं कि इसका दर्शन अवश्य करैं और तिलक माला धारण करैं। काश्यादिक तीर्थों में जाके वास करैं और नाम स्मरण करैं एकादश्यादिक व्रत करैं। और पुष्प ले आवैं, चन्दन घसैं, धूप दीप करैं, नैवेद्य धरैं, परिक्रमा करैं। पाषाणादिक मूर्त्ति का प्रक्षालन करके जल ग्रहण करैं और कूदैं, नांचैं और बाजे बजावैं, रथ यात्रादिकों का मेला करैं और परस्पर व्यभिचार करैं। मेले में उन्मत्तवत् होके घूमते घुमाते इत्यादिक मिथ्या व्यवहारों ही में फसे रहते हैं। फिर उनको विद्या लेशमात्र भी न आवैगी, क्योंकि मरण तक उनको अवकाश ही न मिलेगा फिर कैसे वे पढ़ें और पढ़ावेंगे, यह विद्या का नाशक दूसरा विघ्न है।

**तीसरा विघ्न** यह है कि माता, पिता और आचार्य्यादिक पुत्र और कन्याओं को लाड़न में ही रखते हैं, कुछ शिक्षा वा ताड़न नहीं करते। इससे भी विद्या का नाश ही होता है।

**चौथा विघ्न** यह है कि गुरु, पण्डित और पुरोहित ये तीनों विद्या तो पढ़ते नहीं, फिर वे हृदय से यही चाहते हैं कि मेरे चेले और मेरे यजमान मूर्ख ही बने रहैं, क्योंकि वे जो पण्डित हो जायेंगे तो हम लोगों का पाखण्ड उनके सामने न चलेगा। इससे हम लोगों की आजीविका नष्ट हो जायगी। इसलिये वे सदा पढ़ने पढ़ाने में विघ्न ही करते हैं। धनाढ्य और

राजा लोगों के ऊपर अत्यन्त विघ्न करते हैं कि ये लोग विद्याहीन बने रहैं, इनसे हम लोगों की आजीविका बड़ी है। धनाढ्य और राजा लोग भी आलस्य और विषय सेवा में फंस जाते हैं, इससे वे भी पढ़ना नहीं चाहते। धनाढ्य वा राजपुत्र पढ़ना भी चाहैं तो वैरागी आदि सम्प्रदायी और पण्डित लोग छल और कपट रखते हैं, यथावत् पढ़ाते भी नहीं। यहाँ तक वे छल और विघ्न करते हैं कि चेला और पुत्र वा बन्धुपुत्र भी विद्यावान् न हो जाय, क्योंकि उनकी प्रतिष्ठा होने से मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी। इससे जो कुछ गुण जानते भी हैं, उस को छिपा रखते हैं। इसलिये विद्यालोप आर्य्यावर्त्त देश में हो गया है। सब लोगों को विद्या का प्रकाश करना उचित है। किसी को भी विद्या गुप्त रखना योग्य नहीं।

और **पांचवां विघ्न** यह है कि भाङ्गपान, अफीम और मद्यपान करने से बहुत-सा प्रमाद होता है और बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। उससे भी विद्या का नाश होता है।

**छठवां विघ्न** यह है कि राजा और धनाढ्य लोगों का घाट, मन्दिर, क्षेत्रों में सदावर्त, विवाह, त्रयोदशाऽह, व्यर्थस्थान और बागों के रचने में बहुत धन नष्ट हो जाता है, किन्तु गृहस्थ लोगों को जितना आवश्यक हो, उतना ही स्थान रचैं निर्वाह मात्र। विद्या प्रचार में किसी का धन नहीं जाता। और विचार के न होने से गुणवान् पुरुषों की प्रतिष्ठा भी नहीं होती किन्तु पाखण्डों ही की होती है। इससे मनुष्यों का उत्साह भङ्ग हो जाता है।

**सप्तम विघ्न** यह है कि पांचवें वर्ष पुत्रों वा कन्याओं को पाठशाला में पढ़ने के लिये नहीं भेजते। उनके ऊपर राजा का दण्ड न होने से भी विद्या का नाश होता है।

और विषय सेवा में अत्यन्त फस जाते हैं, इससे भी विद्या नहीं होती, यह **आठवां विघ्न** विद्या का नाशक है। इत्यादिक और भी विद्या नाश करने के विघ्न बहुत हैं उनको सज्जन लोग विचार कर लेवैं।

जब सोलह वर्ष का पुरुष होय तब से लेके जब तक वृद्धावस्था न आवै, तब तक व्यायाम करै। बहुत न करै, किन्तु ४० बैठक करै और ३० और ४० दण्ड करै, कुछ भीत, खम्भे वा पुरुष से बल करै, फिर लोट करै। उस को भोजन से एक घण्टा पहिले करै। सब अभ्यास जब कर चुकै, उससे एक घण्टा पीछे भोजन करै, परंतु दूध जो पीना होय तो अभ्यास के पीछे शीघ्र ही पीवै। उससे शरीर में रोग न होगा, जो कुछ खाया वा पीया, सो सब परिपक्व हो जायगा। सब धातुओं की वृद्धि होती है तथा वीर्य्य की भी अत्यन्त वृद्धि होती है, शरीर दृढ़ हो जाता है और हड्डियां बड़ी पुष्ट हो जाती हैं। जठराग्नि शुद्ध प्रदीप्त रहता है, और सन्धि से सन्धि हाड़ों की मिली रहती है, अर्थात् सब अङ्ग सुन्दर रहते हैं, परन्तु अधिक न करना अधिक के करने से उतने गुण न होंगे। क्योंकि सब धातु शुष्क और रूक्ष हो जाते हैं, उससे बुद्धि भी वैसी रूक्ष हो जाती है और क्रोधादिक भी बढ़ते हैं इससे अधिक न करना चाहिये। यह बात सुश्रुत में लिखी है जो देखना चाहै सो देख लेवै।

उन बालकों के हृदय में वीर्य के रक्षण से जितने गुण लिखे हैं, इस पुस्तक में, और [वीर्यनाश से] जितने दोष लिखे हैं, वे सब माता-पिता और आचार्य्यादिक निश्चय दृटान्त दे दे के करा देवैं। जैसे कि वीर्य की रक्षा में सुख लाभ होता है, उसका हजारवां अंश भी विषय भोग में वीर्य के नाश करने से नहीं होता। परन्तु जैसा नियम सत्यशास्त्रों में कहा है, उसका कुछ अंश इसमें भी लिखा है। उस प्रकार से जो वीर्य की रक्षा करेगा उसको बहुत-सा सुख होगा। जो प्रमाद और भांग आदिक नशा करेगा, वह पागल भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं। इससे युक्ति पूर्वक विद्या और बल से ही वीर्य की रक्षा करनी चाहिये, अन्यथा वीर्य की रक्षा कभी न होगी। जब वीर्य की रक्षा न होगी तब विद्या भी न होगी। जब विद्या न होगी, तब कुछ भी सुख न होगा। उसका मनुष्य शरीर धारण करना ही पशुवत् हो जायगा।

**सैषानन्दस्य मीमांसा भवति। युवास्यात्साधुयुवाध्यापकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं**

**मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः, स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः, स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः, स एकः आजानजानान्देवाना-मानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमाजानजानान्देवाना-मानन्दाः, स एकः कर्मदेवानामानन्दः, ये कर्मणादेवानपियन्ति श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः, स एको देवानामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः, स एक इन्द्रस्यानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमिन्द्र-स्यानन्दाः, स एको बृहस्पतेरानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः, स एकः प्रजापतेरानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः, स एको ब्रह्मण आनन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। स यश्चायं पुरुषे, यश्चासावादित्ये स एकः॥**

यह तैत्तिरीयोपनिषद् की श्रुति है। सो देखना चाहिये कि जैसा विद्या से आनन्द होता है वैसा कोई प्रकार से आनन्द नहीं होता। इसमें इस श्रुति का प्रमाण है। युवावस्था हो साधु युवा नाम उसमें कोई दुष्ट व्यसन न हो, अध्यापक नाम सब शास्त्रों को पढ़के पढ़ाने का सामर्थ्य जिसको हो अर्थात् सब विद्याओं में पूर्ण होय। आशिष्ठ नाम सत्य जिसकी इच्छा पूर्ण हो। द्रढ़िष्ठ अतिशय नाम अत्यन्त जो शरीर और बुद्धि से दृढ़ हो अर्थात् कोई प्रकार का रोग जिसके शरीर में न होय। बलिष्ठ नाम अत्यन्त बलवान् होवै और जिसकी वित्त नाम धन से सब पृथ्वी पूर्ण होय अर्थात् सार्वभौम चक्रवर्ती होवै। इसको मनुष्य लोग के आनन्द की सीमा कहते हैं और जो कोई केवल विद्यावान् ही है और किसी प्रकार की कामना जिसको नहीं है अर्थात् विद्या, धर्म और परमेश्वर की प्राप्ति के विना किसी पदार्थ के ऊपर जिसकी प्रीति न होवै ऐसा जो श्रोत्रिय।

**श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते।** —यह अष्टाध्यायी का सूत्र है।

व्याकरण पठन से लेके वेद पठन तक जिसका पूर्ण पठन हो गया है उसको **श्रोत्रिय** कहते हैं। उस श्रोत्रिय नाम विद्यावान् को वैसा ही



आनन्द होता है, जैसा कि पूर्वोक्त चक्रवर्ती को। उससे भी अधिक होने का सम्भव है, क्योंकि चक्रवर्ती राजा को तो राज्य के अनेक कार्य रहते हैं, इससे चित्त की एकाग्रता नहीं होती। और जो वह पूर्ण विद्वान् है सो तो सदा परमेश्वर के आनन्द में मग्न रहता है, लेशमात्र भी दु:ख का उसको सम्भव नहीं है। उस चक्रवर्ती के मनुष्यानन्द से शतगुण आनन्द मनुष्य गन्धर्वों को है। मनुष्य गन्धर्वों के आनन्द से शतगुण अधिक आनन्द देवगन्धर्वों को है। देवगन्धर्वों से पितृलोकवासियों को शतगुण आनन्द है। और पितृलोगों से अधिक शतगुण आनन्द आजान नामक देवों को है। आजानदेवों से शतगुण आनन्द कर्मदेवों को है जो कि कर्मों से देव होते हैं। उनसे शतगुण आनन्द देवलोक वासी नाम देवों को है। उन देवों से शतगुण आनन्द इन्द्र को है। इन्द्र से शतगुण आनन्द बृहस्पति को है। और बृहस्पति से प्रजापति को अधिक शतगुण आनन्द है। और प्रजापति से ब्रह्मा को अधिक शतगुण आनन्द है। जो-जो आनन्द चक्रवर्ती और मनुष्य गन्धर्वों से शतगुण अधिक-अधिक गणाते आये सो सब आनन्द विद्या वाले पुरुष को होता है क्योंकि जो आनन्द मनुष्य में है सोई सूर्य लोक में आनन्द है। किञ्च एक ही अद्वितीय परमेश्वर आनन्द स्वरूप सर्वत्र पूर्ण है। उस परमेश्वर को विद्यावान् यथावत् जानता है। उस परमेश्वर के जानने और उनका यथावत् योग होने से उस विद्वान् को पूर्ण अखण्ड आनन्द होता है। उस आनन्द के लेशमात्र आनन्द में ब्रह्मादिक आनन्दित हो रहे हैं। और उस आनन्द को जिस ने पाया है, उस सुख की कोई गणना अथवा तौलना कभी नहीं कर सकता। यह आनन्द विद्या के विना किसी को कभी नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को विद्या ग्रहण करने में अत्यन्त यत्न करना योग्य है।

यह ब्रह्मचर्य्याश्रम की शिक्षा तो संक्षेप से लिखी गई। इससे आगे

चौथे प्रकरण में विवाह और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जायगी।

# चतुर्थ उपदेश

## [ विवाहगृहाश्रमविधि ]

पुरुषों का और कन्याओं का ब्रह्मचर्य्याश्रम और विद्या जब पूर्ण हो जाय, तब जो देश का राजा होय और अन्य जितने विद्वान् लोग, वे सब उनकी परीक्षा यथावत् करैं। जिस पुरुष वा कन्या में श्रेष्ठ गुण, जितेन्द्रियता, सत्यवचन, निरभिमान, उत्तमबुद्धि, पूर्णविद्या, मधुरवाणी, कृतज्ञता, विद्या और गुण के प्रकाश में अत्यन्त प्रीति, जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, कृतघ्नता, छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेषादिक दोष न होवैं, पूर्ण कृपा से सब लोगों का कल्याण चाहैं, उसको ब्राह्मण का अधिकार देवैं। और यथोक्त पूर्वोक्त गुण जिसमें होंय परन्तु विद्या कुछ न्यून होय शूरवीरता, बल और पराक्रम ये तीन गुण वाला जो ब्राह्मण भया उससे अधिक हो, उसको क्षत्रिय करैं। और जिसको थोड़ी सी विद्या होवै परन्तु व्यापारादिक व्यवहारों में नाना प्रकारों के शिल्पों में देश देशान्तर से पदार्थों का ले आने और ले जाने में चतुर होवै और पूर्वोक्त जितेन्द्रियादिक गुण भी होवै, परन्तु अत्यन्त भीरु होवै, उसको वैश्य करना चाहिये। और जो पढ़ने लगा जिसको शिक्षा भी भई, परन्तु कुछ भी विद्या नहीं आई, उसको शूद्र बनाना चाहिये। इसी प्रकार से कन्याओं की भी व्यवस्था करनी चाहिये। इसमें यह प्रमाण है—

**शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।**
**क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥**

—यह मनुस्मृति का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि विद्यादिक पूर्वोक्त गुणों से जो शूद्र युक्त होवै, सो ब्राह्मण हो जाय। और पूर्वोक्त विद्यादिक गुणों से जो ब्राह्मण रहित हो जाय अर्थात् मूर्ख होय, सो शूद्र हो जाय। और जिसमें क्षत्रिय का



गुण होवै, वह क्षत्रिय हो जाय। जिसमें वैश्य का गुण होय वह वैश्य हो जाय। अर्थात् जो शूद्र के कुल में उत्पन्न भया, सो मूर्ख होय, तब तो वह शूद्र ही बना रहै। और वैश्य के जैसे गुण हैं, वैसे गुण उसमें होने से, वह शूद्र वैश्य हो जाय। क्षत्रिय के गुण होने से वह क्षत्रिय हो जाय और ब्राह्मण के गुण होने से वह शूद्र ब्राह्मण हो जाय। तथा वैश्य कुल में उत्पन्न भया उसको वैश्य के गुण होने से वह वैश्य ही बना रहै और मूर्ख होने से शूद्र हो जाय। तथा क्षत्रिय और ब्राह्मण के गुण होने से वह क्षत्रिय और ब्राह्मण भी हो जाय। वैसे ही क्षत्रिय कुल में जो उत्पन्न भया, उसको क्षत्रियवर्ण के गुण होने से वह क्षत्रिय ही बना रहै। ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के गुण होने से ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र भी हो जाय। तथा ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न भया ब्राह्मण के गुण होने से वह ब्राह्मण ही रहै। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुण होने से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी वह ब्राह्मण हो जाय। ऐसा ही मनुष्य जाति के बीच में सर्वत्र जान लेना। तैसे चारों वर्णों की कन्याओं में भी उन-उन उक्त गुणों के होने से ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा हो जाय। उनको वर्ण क्रम से अधिकार भी दिये जायें।

**अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।**
**दानम्प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥**

अध्यापन नाम विद्याओं का प्रकाश करना नाम पढ़ाना, अध्ययन नाम पढ़ना, यजन नाम अपने घर में यज्ञों का करना, याजन नाम यजमानों के घर में यज्ञों का कराना, दान नाम सुपात्रों को दान का देना, प्रतिग्रह नाम धर्मात्माओं से दान का लेना, इन षट्कर्मों को करने और कराने में ब्राह्मणों को अधिकार देना उचित है।

**प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।**
**विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥**

प्रजा की यथावत् रक्षा करना अर्थात् श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का ताडन करना, पक्षपात को छोड़ के सुपात्रों को दान देना, अपने घर में यज्ञों का करना और अध्ययन नाम सब सत्यशास्त्रों का पढ़ना, **विषयेषु अप्रसक्ति** नाम विषयों में फस न जाना, यह संक्षेप से क्षत्रियों का

अधिकार कहा। पूर्वोक्त क्षत्रियों को इस अधिकार को देवैं।

**पशूनां पालनं दानमिज्याध्ययनमेव च।**
**वणिक्पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेव च॥**

गाय आदिक पशुओं की रक्षा करना, सुपात्रों को दान देना, अपने घर में यज्ञों का करना, सत्यशास्त्रों का पढ़ना, धर्म से व्यापार का करना, धर्म से सूद नाम ब्याज का लेना और कृषि नाम खेती का करना इन सात कर्मों का अधिकार वैश्यों को देना।

**एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।**
**एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥**

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की निन्दा को छोड़ के सेवा करना इस एक कर्म का शूद्रों को अधिकार देना कि तीनों वर्णों की यथावत् सेवा करै। ये चार श्लोक मनुस्मृति के हैं।

**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।**
**ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांꣳ शूद्रोऽअजायत॥**

—यह यजुर्वेद की संहिता का मन्त्र है।

**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात्।**

—यह भी उसी अध्याय का वचन है।

पुरुष नाम है पूर्ण का। पूर्ण नाम परमेश्वर का। परमेश्वर के विना पूर्ण कोई नहीं हो सकता। क्योंकि सावयव और मूर्त्तिमान् जो होता है सो एक ही देश में रहता है, सर्व देश में व्यापक नहीं हो सकता। उस अध्याय में परमेश्वर ही का ग्रहण होता है क्योंकि पुरुष से सब जगत् की उत्पत्ति लिखी है सो परमेश्वर ही से सब जगत् की उत्पत्ति होती है, अन्य से नहीं। उस परमेश्वर को अवयव का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं। मुख, बाहु, ऊरू और पाद स्थूल-स्थूल इतने अवयवों की तो कभी संगति नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म भी अवयव का भेद परमेश्वर में नहीं हो सकता। फिर स्थूल अवयव का भेद परमेश्वर में कैसे होगा, कभी न होगा। और इस मन्त्र में तो मुखादिक शब्दों का ग्रहण किया है सो इस अभिप्राय से किया है कि शरीर में मुख सब अङ्गों से उत्तम अङ्ग है। वैसे उत्तम से भी उत्तम गुण जिस



मनुष्य में होय, वह ब्राह्मण होवै। मुख के समीप अङ्ग जैसा कि बाहु, वैसा ही ब्राह्मण के समीप क्षत्रिय है। और हाथ के बल आदिक गुण हैं, जिससे कि दुष्टों का दमन होता है और श्रेष्ठों का पालन। अपने शरीर का भी रक्षण शत्रुओं से और शस्त्रों के बल हाथ से हो सकता है, वैसा ही प्रजा का पालन होगा। और हाथ के विना कभी रक्षण जगत् का वा अपना युद्ध में वा दुष्टों से नहीं हो सकता, सो बलादिक गुण जिस मनुष्य में होंय, वह क्षत्रिय होवै। तथा ऊरु नाम जङ्घा में जब बल होता है तब जहाँ-तहाँ देशान्तरों में पदार्थों को उठा के ले जाना और देशान्तरों से ले आना, हानि और लाभ में स्थिर बुद्धि होना, जैसे कि जङ्घा के ऊपर स्थिर होके बैठना होता है, इस प्रकार के वेगादिक गुण जिस मनुष्य में होवैं, वह वैश्य होय। तथा पाद जैसे कि सब अङ्गों से नीचे का अङ्ग है, जब मनुष्य चलता है तब कङ्कड़, पाषाण, कीच और कांटों पर पैर पड़ते हैं, सब शरीर ऊपर रहता है, पैर ही विष्ठादिकों में पड़ते हैं। वैसे मूर्खत्वादिक नीच गुण जिस मनुष्य में होवैं, सो मनुष्य शूद्र होय।

इस मन्त्र से ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है सो सज्जनों को मानना और करना भी चाहिये। सो इस प्रकार से परीक्षा करके वर्ण व्यवस्था अवश्य करना चाहिये। वर्ण व्यवस्था [के] विना जन्म मात्र ही से वर्णों के होने में बहुत दोष होते हैं। इससे गुणों ही से वर्णों का होना उचित है। और जो वर्णों को न मानैं, तो विद्यादिक गुण ग्रहण में मनुष्य का उत्साह भङ्ग हो जायगा क्योंकि उत्तम गुण वाले को उत्तम अधिकार की प्राप्ति न होगी और गुणहीन को नीच अधिकार की प्राप्ति न होगी, तो कैसे मनुष्यों को उत्साह गुण ग्रहण में होगा अर्थात् कभी न होगा। इससे वर्ण व्यवस्था का मानना उचित है।

और जो गुणों के विना वर्णों को जन्ममात्र ही से मानैं, तो सब वर्ण और सब गुण नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि जन्म मात्र ही से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होंगे, तो कोई भी गुण ग्रहण की इच्छा न करेगा। इससे सब विद्यादिक गुण नष्ट हो जायेंगे। जैसे कि ब्राह्मण कुल सब कुलों से उत्तम है। उस कुल में उत्तम पुरुषों ही का निवास होना उचित है क्योंकि वे उत्तम

कर्म ही करैंगे, नीच कर्म कभी न करेंगे। इससे उत्तम कुल की उत्तमता नष्ट कभी न होगी। और जो ब्राह्मण कुल में मूर्ख और नीच पुरुषों के निवास होने से उत्तम कुल की जो उत्तमता सो नष्ट हो जायगी, क्योंकि वे अभिमान तो ब्राह्मण ही का करेंगे और ब्राह्मण के गुणों को ग्रहण कभी न करेंगे, सदा नीच ही कर्म करेंगे, इससे ब्राह्मण कुल की बड़ी निन्दा, उस निन्दा से अप्रतिष्ठा होगी, उससे ब्राह्मण कुल दूषित हो जायगा, इससे उत्तम गुण वाले को उत्तम ही कुल में रखना उचित है। तथा भीरु नाम भयादिक गुण वाले पुरुष को क्षत्रिय कुल में कभी न रखना चाहिये, क्योंकि जिसको भय होगा सो दुष्टों को कैसे दण्ड और प्रजा का पालन कैसे करेगा। युद्ध भूमि से सदा वह भाग जायगा। उसका राज्य शत्रु लोग ले लेंगे। चौर और डांकू लोग सदा उस राजा और प्रजा को पीड़ा देंगे। इससे उस राजा का राज्य और ऐश्वर्य नष्ट हो जायगा। इससे विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम और पूर्वोक्त निर्भयादिक गुण युक्त ही को क्षत्रिय कुल में रखना चाहिये, अन्य को नहीं। तथा व्यापारादिक पशुपालनादिक में जो चतुर और पूर्वोक्त विद्यादिक गुण से युक्त होवै उसी को वैश्य होना उचित है। जो मूर्खत्वादि गुण युक्त है उसी को शूद्र रखना चाहिये। ऐसी जब व्यवस्था होगी तब ब्राह्मणादिक वर्णों में ब्राह्मणादिकों को भय होगा कि हम लोग उत्तम गुण ग्रहण न करेंगे और उत्तम कर्म न करेंगे तो नीच अधिकार नाम शूद्रत्व को प्राप्त हो जायेंगे, अर्थात् शूद्र हो जायेंगे। और शूद्रादिकों को विद्यादिक गुण ग्रहण में उत्साह होगा, क्योंकि हम लोग जो उत्तम गुण वाले होंगे तो उत्तम अधिकार को प्राप्त होंगे, अर्थात् द्विज हो जायेंगे। इससे उत्तमों को तो भय होगा और नीचों को उत्साह ही होगा। इससे ऐसी ही व्यवस्था सज्जनों को करना उचित है।

वर्ण शब्द के अर्थ से भी ऐसी व्यवस्था आती है। **व्रियन्ते ये ते वर्णाः।** कि वर्ण नाम गुणों से जिसका स्वीकार किया जाय, उसका नाम वर्ण है। ऐसा दृष्टान्त भी सुनने में आता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण भया। वत्स क्षत्रिय से ब्राह्मण भया। और श्रवण, श्रवण का पिता, श्रवण की माता, वैश्य और शूद्र वर्ण से महर्षि भये। मातङ्ग ऋषि का चांडाल



कुल में जन्म था, फिर ब्राह्मण हो गया। यह महाभारत में लिखा है। और जाबाल वेश्या के पुत्र से ब्राह्मण हो गया, यह छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है। इत्यादिक और भी जान लेना चाहिये।

जैसी वर्णों की व्यवस्था गुणों से है, वैसी विवाह में व्यवस्था करनी चाहिये। ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा से विवाह होना चाहिये, क्योंकि विद्यादिक उत्तम गुणवाले पुरुष से विद्यादिक उत्तम गुणवाली स्त्री का विवाह होने से परस्पर दोनों को अत्यन्त सुख होगा। और जो उत्तम पुरुष से मूर्ख स्त्री वा पण्डित स्त्री का मूर्ख पुरुष से विवाह होगा तो अत्यन्त क्लेश होगा, कभी सुख न होगा। तथा क्षत्रियों के गुणवाले से क्षत्रिय गुणवाली स्त्री का, वैश्य गुणवाले पुरुष से वैश्य गुणवाली स्त्री का विवाह होना चाहिये। और जो मूर्ख पुरुष सोई शूद्र है उससे मूर्ख स्त्री का विवाह होना उचित है, क्योंकि तुल्य स्वभाव के होने से सुख होता है अन्यथा दु:ख ही होता है।

रूप की भी परीक्षा होनी चाहिये। परस्पर दोनों की अर्थात् वर और कन्या की प्रसन्नता से विवाह का होना उचित है। कन्या वर की परीक्षा करै और वर कन्या की। दोनों की परस्पर प्रसन्नता जब होय, फिर माता, पिता वा बन्धु विवाह कर देवैं। अथवा आप ही दोनों परस्पर विवाह कर लेवैं। पशुवत् विवाह का व्यवहार करना उचित नहीं, जैसे कि गाय वा छेरी को पकड़ के दूसरे के हाथ में दे देते हैं, वे लेके चले जाते हैं, जैसी इच्छा होय वैसा करते हैं। इस प्रकार का व्यवहार मनुष्यों को कभी न करना चाहिये। पूर्वोक्त काल के नियम ही से विवाह करना चाहिए, बाल्यावस्था में नहीं।

**गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।**
**उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥**

—यह मनु का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम से पूर्ण विद्या पढ़के, गुरु की आज्ञा लेके, जैसी विधि वेद में लिखी है वैसे सुगन्ध्यादिक द्रव्य से मन्त्र पूर्वक स्नान करके शुभ श्रेष्ठ लक्षण युक्त अपने वर्ण की कन्या को

वह द्विज ग्रहण करै।

**महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।**
**स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥**

बड़े भी कुल होंय, गाय, छेरी, अवि नाम भेंड़, धन और धान्य से सम्पन्न होवैं, तो भी दश कुलों की कन्याओं को न ग्रहण करै। वे कौन से दश कुल हैं?

**हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।**
**क्षय्यामयाव्यपस्मारि श्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥**

ये दश कुल हैं—हीनक्रिय नाम जिस कुल में यज्ञादिक क्रिया नहीं हैं और आलस्य भी बहुत-सा जिस कुल में होय १, निष्पुरुष नाम जिस कुल में पुरुष न होवैं स्त्री-स्त्री होवैं २। निश्छन्द नाम जिस कुल में वेदादिक विद्या न होय ३। रोम नाम जिस कुल में भालू की नांई देह के ऊपर लोम होवैं ४। आर्शस नाम जिस कुल में बवासीर रोग होय ५। क्षयि नाम जिस कुल में धातु क्षीणता दमा रोग होय ६। आमयावि नाम जिस कुल में आंव का विकार होय ७। अपस्पारि नाम जिस कुल में मिर्गी रोग होय ८। श्वित्रि नाम जिस कुल में श्वेत कुष्ठ होय ९। और कुष्ठि नाम जिस कुल में गलित कुष्ठ होय १०। इन दश कुलों की कन्याओं को विवाह के लिये ग्रहण न करैं क्योंकि जो रोग पिता माता के शरीर में होता है सोई संतानों में भी कुछ-कुछ रोग आवैगा। इससे उनका ग्रहण करना उचित नहीं।

**नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीन्न रोगिणीम्।**
**नालोमिकान्नातिलोमान्न वाचाटान्न पिङ्गलाम्॥**
**नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीन्नान्त्यपर्वतनामिकाम्।**
**न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीन्न च भीषणनामिकाम्॥**

**कपिला** नाम बिलाई की नांई जिस कन्या के नेत्र होवैं उसके साथ विवाह न करै क्योंकि सन्तानों के भी वैसे नेत्र होवैं। **नाधिकाङ्गी** नाम जिस कन्या के अङ्ग वर से अधिक होवैं अर्थात् कन्या का शरीर लम्बा चौड़ा वर का शरीर छोटा और दुबला होय, उनका परस्पर विवाह न होना



चाहिये, अर्थात् दोनों के शरीर स्थूल अथवा दोनों के शरीर कृशित होवैं, तब विवाह होना चाहिये। परन्तु स्त्री के शरीर से पुरुष का शरीर लम्बा होना चाहिये, हाथ के कन्धे तक स्त्री का सिर आवै, उससे अधिक स्त्री का शरीर न होना चाहिये, न्यून होय तो होय, अन्यथा गर्भ स्थिर न होगा और वंशच्छेद भी हो जाय तो आश्चर्य्य नहीं, इससे स्त्री का शरीर पुरुष के शरीर से छोटा ही होना चाहिये। **रोगिणी** नाम स्त्री के शरीर में कोई रोग न होना चाहिये और स्त्री भी पुरुष की परीक्षा करै कि उसके शरीर में स्थिर रोग कोई न होवै, कोई महारोग न होय। इस प्रकार की कन्या से विवाह न करै कि जिसके शरीर में सूक्ष्म भी लोभ न होंय और जिसके शरीर के ऊपर बड़े-बड़े लोम होवैं, उससे भी विवाह न करै। **वाचाटां** नाम बहुत बोलने वाली जो स्त्री है, उसके साथ विवाह न करै, अर्थात् परिमित भाषण करै अधिक बकवाद न करै। जिसका पीतवर्ण हर्दी की नांई होय, उस स्त्री के साथ विवाह न करै। और जिसका नक्षत्र के ऊपर नाम होय जैसा कि अश्विनी, भरणी इत्यादिक तथा वृक्ष के ऊपर जैसा कि आम्रा, अश्वत्था इत्यादिक और नदी के ऊपर जैसी नर्मदा, गङ्गा, इत्यादिक, अन्त्य नाम चांडाली, चर्मकारिणी इत्यादिक पर्वत के ऊपर जिसका नाम होवै जैसे कि हिमालया, विन्ध्याचला इत्यादिक, जिसका पक्षी के ऊपर होय जैसा कि हंसी, काकी इत्यादिक। जिसका सर्प के ऊपर होय जैसे कि सर्पिणी इत्यादिक। जिसका दासी इत्यादिक नाम होय। जिसका भयङ्करी, चण्डी और भैरवी, काली, इत्यादिक नाम होवै। इस प्रकार के नाम वाली स्त्री से विवाह न करना चाहिये। नक्षत्रादिक जितने नाम हैं वे सब अयुक्त हैं, मनुष्यों के न रखना चाहिये।

कैसी स्त्री का विवाह होना चाहिये कि—

**अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।**
**तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम्॥**

**अव्यङ्गाङ्गी** नाम जिसके टेढ़े अङ्ग न होवैं अर्थात् सब अङ्ग सूधे होवैं, **सौम्य** जिसका नाम सुन्दर होवै जैसा कि यशोदा, कामदा, धर्मदा, कलावती, सुखवती, सौभाग्यवती इत्यादिक **हंसवारणगामिनीम्** जैसे

कि हंस और हाथी चलता है वैसी चाल जिसकी होवै, ऐसी चलने वाली स्त्री न होय कि ऊंट और काक की नांई चलै। **तनु** नाम सूक्ष्म लोम केश और सूक्ष्म दांतवाली होय, जिसके अङ्ग कोमल होवैं, ऐसी स्त्री के साथ पुरुष विवाह करै।

ब्राह्मादिक ८ आठ विवाह मनुस्मृति में लिखे हैं, वे कौन हैं कि—

**ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।**
**गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥**

—ये सब श्लोक मनुस्मृति [३.२१] के हैं।

**ब्राह्मविवाह** उसको कहते हैं कि कन्या और वर का सत्कार करना यथावत् होमादि करके और विद्या शीलादिकों की परीक्षा करके कन्यादान देना, उसका नाम **ब्राह्म विवाह** है। मास वा दो मास पर्यन्त होम होता रहै और जामाता ही ऋत्विक् होवै, यज्ञ के अन्त दक्षिणा स्थान में कन्या देना उसका नाम **दैव विवाह** है। एक गाय और एक बैल वा दो गाय और दो बैल वर से लेके, कन्या [वर] को देना उसका नाम **आर्ष विवाह** है। **प्राजापत्य** नाम वर और कन्या से प्रतिज्ञा का होना अर्थात् कन्या वर से प्रतिज्ञा करै कि मैं आप से व्यभिचार, अधर्म और अप्रियाचरण कभी न करूंगी तथा वर कन्या से प्रतिज्ञा करै कि मैं तुमसे व्यभिचार, अधर्म और अप्रियाचरण कभी न करूंगा, पीछे विधि पूर्वक विवाह होना उसका नाम **प्राजापत्य विवाह** है। **आसुर** नाम अपने कुटुंबियों को थोड़ा सा धन देना और वर के कुटुंबियों को भी थोड़ा-सा धन देना, सत्कार के लिये कन्या और वर को भी थोड़ा-थोड़ा धन देना, होमादिक विधि से विवाह करना, उसका नाम **आसुर विवाह** अर्थात् दैत्यों का विवाह है। कन्या और वर के परस्पर प्रसन्न होने से विवाह का होना उसको **गन्धर्व विवाह** कहते हैं, इसमें माता, पिता और बन्ध्वादिकों का कुछ प्रयोजन नहीं, कन्या और वर ये दोनों आप ही से स्वतन्त्र होके सब विधि कर लेवैं, इसी का नाम **गन्धर्व विवाह** है। कोई कन्या अत्यन्त रूपवती और सब गुणों से जिसकी प्रशंसा अर्थात् हजारहों कन्याओं के बीच में श्रेष्ठ होवै और कहने-सुनने से उसका पिता न देता होय, कन्या को भी बन्ध करके रक्खै,



तब वहाँ जाके बल से कन्या का ले लेना है, उसको **राक्षस विवाह** कहते हैं, फिर होमादिक विधि करके विवाह कर लेवैं, अर्थात् जैसे कि राक्षस लोग बल से परपदार्थों को छीन लेते हैं, वैसा यह विवाह है। **अष्टम विवाह** यह है कि कहीं एकान्त में कन्या सूती अथवा मत्त अथवा भांग वा मद्यादिक पीके प्रमत्त हो अथवा कोई रोग से पागल भई होय, उससे समागम करै, विवाह के पहिले ही समागम का होना है, वह **पैशाच विवाह** कहाता है, वह सब विवाहों से नीच विवाह है। इन आठ विवाहों में **ब्राह्म, दैव** और **प्राजापत्य** ये तीन विवाह सर्वोत्तम हैं। इन तीनों में भी ब्राह्म अति उत्तम है और [आर्ष] और **गान्धर्व** भी श्रेष्ठ हैं। उससे नीच **आसुर,** उससे नीच **राक्षस,** और सब से नीच **पैशाच** विवाह है उसको कभी न करना चाहिये।

**अनिन्दितैःस्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।**
**निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥**

मनुष्यों को निन्दित विवाह को कभी न करना चाहिये। जैसी परीक्षा और जो काल लिखा है उससे विरुद्ध विवाहों का करना वे निन्दित नाम भ्रष्ट विवाह हैं और भ्रष्ट विवाहों के करने से उनके सन्तान भी भ्रष्ट होते हैं जैसे कि बाल्यावस्था में विवाह का करना। उससे जो सन्तान होता है वह सन्तान रोगादिक पूर्वोक्त दोषवाला ही होगा, श्रेष्ठ न होगा। जो परीक्षा के विना विवाह का करना, उससे बहुत क्लेश होंगे और सन्तान भी बहुत क्लेशित हो जायेंगे। उनके धनादिकों का नाश भी हो जायेगा। इससे निन्दित विवाह मनुष्यों को कभी न करना चाहिये। और जो ब्राह्मादिक उत्तम विवाह हैं उनका काल तथा परीक्षा लिखी है, उस रीति से जो विवाह होते हैं वे अनिन्दित अर्थात् श्रेष्ठ विवाह हैं। उन विवाहों के करने से स्त्री-पुरुष और कुटुंबियों को सदा सुख ही होगा और उनकी प्रजा भी अनिन्दित अर्थात् श्रेष्ठ ही होगी। सदा माता, पिता और कुटुंबियों को वे पुत्रादिक सन्तान सुख ही देवेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

महाभारत में जितने विवाह लिखे हैं वे युवावस्था ही में लिखे हैं। परस्पर परीक्षा और परस्पर प्रसन्नता ही से विवाह होते थे जैसे कि द्रौपदी,

कुन्ती, गान्धारी, दमयन्ती, लोपामुद्रा, अरुन्धती, मैत्रेयी, कात्यायनी और शकुन्तलादिकों के विवाह इसी प्रकार से हुये थे। तथा मनुस्मृति में भी लिखा है—

**बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।**
**पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत् स्त्रीस्वतन्त्रताम्॥**

बाल्यावस्था न्यून से न्यून षोडश वर्ष पर्यन्त होती है तब तक पिता के वश में कन्या रहै और षोडश वर्ष से लेके २४ वर्ष पर्यन्त जिस वर्ष में विवाह होय तब अपने पति के वश में रहै, जब पति न रहै, तब पुत्रों के वश में स्त्री रहै। स्त्री स्वतन्त्र न होवै क्योंकि स्त्री का स्वभाव चञ्चल होता है, इससे आप कुमार्ग में चलेगी और धनादिकों का नाश भी करेगी। इससे स्त्री को स्वतन्त्र न रखना चाहिये।

और जो लोग यह बात कहते हैं कि पिता के घर में कन्या रजस्वला जो होय तो पितादिकों का धर्म नष्ट हो जायगा और पितादिक सब नरक में जायेंगे, यह बात सत्य है वा नहीं?

यह बात मिथ्या ही है, क्योंकि कन्या के रजस्वला होने से पितादिक अधर्मी हो जायेंगे और नरक में जावेंगे, यह बड़ा आश्चर्य है। पितादिकों का क्या अपराध है। रजस्वला का होना तो स्त्री लोगों का स्वाभाविक है तो सदा ही होगा। इसमें पितादिकों का क्या सामर्थ्य है कि बन्द कर देवैं। सो यह बात प्रमाण शून्य है। बुद्धिमान् इस बात को कभी न मानैं। इसमें मनु भगवान् का प्रमाण भी है—

**त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।**
**ऊर्द्ध्वन्तुकालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥**

पिता के घर में कन्या जब रजस्वला होय तब से लेके तीन वर्ष तक विवाह करने के लिये पति की परीक्षा करै। तीन वर्ष के पीछे, जैसी वह कन्या है वैसे ही अपने तुल्य सवर्ण पति को ग्रहण करै। कन्या के शरीर में धातु क्षीणादिक रोग न होवैं तो सोलहवें वर्ष रजस्वला होगी। इससे पहिले नहीं। और जो उक्त रोग होगा तो १५ पन्दरहवें वा १४ चौदहवें अथवा १३ तेरहवें वर्ष कोई कन्या रोगी रजस्वला हो जाय, तो भी तीन वर्ष पीछे विवाह करेंगे, तो १६ सोलहवें १७ सतरहवें वा १८ अठारवें वर्ष विवाह करना उचित है। और जब सोलहवें वर्ष रजस्वला होय तो १९ वा २० बीसवें वर्ष विवाह होना चाहिये, क्योंकि शरीर से जो रज निकलता है सो स्त्री के शरीर की शुद्धि होती है, इस कारण रजस्वला स्त्री के साथ ४ दिन तक सङ्ग करने का निषेध है कि स्त्री के शरीर से एक प्रकार की उष्णता निकलती है उसके निकलने से नाड़ी और उसका शरीर शुद्ध हो जाता है। इससे रजस्वला होने के पीछे ही विवाह का करना उचित है।



जो जन्मपत्र देख के विवाह करते हैं सो बात सत्य है वा मिथ्या?

यह बात मिथ्या ही है, क्योंकि जन्मपत्र को तो मिलाते हैं परन्तु उनके स्वभाव, गुण, आयु और बल को न मिलाने से सदा क्लेश ही होता है, इसलिये वह बात मिथ्या ही है। जन्मपत्र मिलाने को बुद्धिमान् लोग सत्य कभी न जानैं। इसमें प्रमाण भी है—

**उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।**
**अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यान्दद्याद्यथाविधि॥**

—यह मनुस्मृति का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि उत्कृष्ट नाम उत्तम विद्यादिक गुणवान् अभिरूप अर्थात् जैसी कन्या रूपवती होय, वैसा वर भी होवै। और श्रेष्ठ स्वभाव दोनों का तुल्य होय। अप्राप्त नाम निकट सम्बन्ध में भी होय तो भी उसी को कन्या देवै अर्थात् दोनों तुल्य गुण और रूपवाले होंय, तब विवाह का करना उचित है, अन्यथा नहीं। इसमें यह मनुस्मृति का प्रमाण है—

**काममामरणात्तिष्ठेद् गेहे कन्यर्त्तुमत्यपि।**
**न चैवैनाम्प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥**

इसका यह अभिप्राय है कि ऋतुमती कन्या अपने पिता के घर में मरण तक भी बैठी रहै, यह बात तो श्रेष्ठ है, परन्तु गुणहीन अर्थात् विद्याहीन पुरुष को कन्या कभी न देवै अथवा कन्या आप भी दुष्ट पुरुष से विवाह न करै तथा पुरुष भी मूर्ख वा दुष्ट कन्या से विवाह न करै। यही गृहस्थों को यथोक्त प्रकार से जैसा कि कहा वैसा विवाह करना, सब

सुखों का मूल है अन्यथा दुःख ही है, कभी सुख न होगा।

जो शीघ्रबोध में ये दो श्लोक लिखे हैं कि—

**अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।**
**दश वर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्द्ध्वं रजस्वला॥ १॥**
**माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च।**
**त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ २॥**

ये दोनों श्लोक मिथ्या ही हैं क्योंकि आठवें वर्ष विवाह करने से जो कृष्णवर्ण वाली स्त्री गौरवर्ण वाली कैसे होगी। वा महादेव की स्त्री उसका गौरी नाम है, उससे विवाह कैसे हो सकेगा। वैसे रोहिणी नक्षत्र लोक है, सो आकाश में रहती है, वह जड़ पदार्थ है उससे विवाह कैसे होगा कभी नहीं हो सकता। जो रोहिणी बलदेव की स्त्री थी, वह तो मर गई, मरी हुई का विवाह कभी नहीं हो सकता। और दशवर्ष में कन्या होती है, यह भी मिथ्या ही है क्योंकि जब तक विवाह नहीं होता, तब तक कन्या ही कहाती है और पिता के सामने तो सदा कन्या ही और बन्धु के सामने भगिनी रहती है। फिर उसका जो नियम है कि दश वर्ष में कन्या होती है, सो बात काशिनाथ की मिथ्या ही है। जो कहता है कि दशवर्ष के आगे रजस्वला होती है यह भी मिथ्या ही है। सुश्रुत में १६ वर्ष के आगे धातुओं की वृद्धि लिखी है, सो ठीक है। उस समय में सोलह वर्ष से लेके आगे ही रजस्वला होने का संभव है, सो सज्जनों को यही बात मानना चाहिये। और काशिनाथ की बात कभी न मानना चाहिये जो उसने यह बात लिखी है कि कन्या रजस्वला होने से पितादिक नरक में जायेंगे सो मनुस्मृति वा वेदादिक सत्यशास्त्रों और प्रमाणों से विरुद्ध है। इस बात में तो उसकी बड़ी भारी मूर्खता है क्योंकि माता पितादिकों का क्या दोष है। कन्या रजस्वला होने से वे नरक में जांय, यह कहना उसका बड़ा पामरपन है।

**पूर्वपक्ष**—पिता ने काल में विवाह न किया, इससे उनको दोष होता होगा और दश वर्ष के आगे उसको विवाह का फल न होता होगा, इससे उस काशिनाथ ने लिखा होगा।



**उत्तर**—यह बात भी उसकी मिथ्या है क्योंकि सोलह वर्ष के पहिले कन्या और २५ वर्ष के पहिले पुरुष का विवाह करने से अवश्य पितादिकों को पाप का संभव होता है। अथवा उन स्त्री पुरुषों को तो पाप होने का सम्भव होता है किन्तु पाप का फल दुःख है सो बाल्यावस्था में विवाह करने से वीर्य्यादिक धातुओं के नाश और विद्यादिक गुण न होने से अवश्य वे दुःखी होते हैं और होंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इससे इस काशिनाथ का नाम काशिनाश रखना चाहिये, क्योंकि काशि नाम प्रकाश का है इसने विद्यादिक गुणों का नाश कर दिया। इससे इसका नाम काशिनाश ही ठीक है। जो इसने ग्रन्थ का नाम शीघ्रबोध रक्खा है, उसका नाम शीघ्रनाश रखना चाहिये क्योंकि बाल्यावस्था में विवाह करने से शीघ्र ही रोग होंगे और बहुत रोग होने से शीघ्र ही मर जायेंगे। इससे इसका नाम शीघ्रनाश ही ठीक है। इस प्रकार से श्लोक हम लोग भी रच ले सकते हैं—

**ब्रह्मोवाच**

**एकयामा भवेद् गौरी द्वियामा चैव रोहिणी।**
**त्रियामा तु भवेत्कन्या तत ऊर्द्ध्वं रजस्वला॥ १॥**
**माता तस्याः पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथानुजः।**
**एते वै नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ २॥**

**पूर्वपक्ष**—ये दो श्लोक कौन शास्त्र के हैं?

तो मैं पूछता हूँ कि काशिनाथ के श्लोक कौन शास्त्र के हैं?

वे काशिनाथ के ग्रन्थ के हैं।

अच्छा! तो ये श्लोक मेरे ग्रन्थ के हैं।

आपके ग्रन्थ का क्या प्रमाण है?

अच्छा, तो काशिनाथ के ग्रन्थ का क्या प्रमाण है?

काशिनाथ के ग्रन्थ को तो बहुत लोग मानते हैं।

अच्छा, जिसको बहुत मनुष्य मानैं, वही श्रेष्ठ होय, तो जैन, यसूमसी और मुहम्मद के मत को मानने वाले बहुत हैं, उनी को मानना चाहिये।

वे हम लोगों के मत से विरुद्ध हैं, इससे हम लोग नहीं मानते।

अच्छा, तो आपलोगों का कौन मत है? जो वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त है।

सोई हम लोगों का मत है। अच्छा तो आप लोगों के मत से काशिनाथ का मत विरुद्ध हुआ, क्योंकि आप लोगों का मत वेद और मनुस्मृत्युक्त ही हुआ। उस धर्मशास्त्र में मनुस्मृति भी है, इससे विरुद्ध होने से आप लोगों को काशिनाथ का मत मानना उचित नहीं।

और आप ने जो श्लोक बनाये, उसके आगे ब्रह्मोवाच क्यों लिखा?

यह दृष्टान्त के लिये लिखा, इससे क्या दृष्टान्त हुआ कि इसी प्रकार से ब्रह्मोवाच, विष्णुरुवाच, नारद उवाच, नारायण उवाच, पाराशर उवाच, वसिष्ठ उवाच, याज्ञवल्क्य उवाच, अत्रिरुवाच, अङ्गिरा उवाच, युधिष्ठिर उवाच, व्यास उवाच, शुक उवाच, परीक्षित उवाच, कृष्ण उवाच, अर्जुन उवाच इत्यादिक नाम लिखके अष्टादश पुराण, अष्टादश उपपुराण, १७ सतरह पाराशरादिक स्मृतियां, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, नारदपंचरात्र, काशिखण्ड, काशिरहस्य, और सत्यनारायणकथा इत्यादिक ग्रन्थ सम्प्रदायी लोग और पण्डित लोगों ने रच लिये हैं। तथा महादेव उवाच, पार्वत्युवाच, भैरव उवाच, भैरव्युवाच, दत्तात्रेय उवाच इत्यादिक लिख के बहुत तन्त्रग्रन्थ लोगों ने रच लिये हैं।

यह तो दार्ष्टान्त भया, जैसे कि मैंने अपने श्लोकों के पहिले अपनी इच्छा से ब्रह्मोवाच लिखा, वैसे ही इनों ने ब्रह्मोवाच इत्यादिक रख के ग्रन्थ रच लिये हैं। इसलिये कि श्रेष्ठों के नाम लिखने से ग्रन्थों का प्रमाण हो जाय। प्रमाण के होने से सम्प्रदायों और आजीविका की वृद्धि होवै। उससे विना परिश्रम से धन आवै और बहुत सुख होवैं, इसलिये धूर्त्तता रची है। जैसा कि ब्रह्मोवाच मेरा लिखना वृथा है वैसा उनका भी ब्रह्मोवाच इत्यादिक लिखना वृथा ही है। और जैसे मेरे श्लोक दोनों मिथ्या हैं, वैसे उनके पुराणादिक ग्रन्थ और काशिनाथ का ग्रन्थ आर्य्यावर्त्त देशवासी लोगों के सत्यानाश करने वाले हैं, इनको सज्जन लोग मिथ्या ही जानैं। इससे क्या आया कि मरण तक भी कन्या विवाह के विना घर में बैठी रहै तो भी पितादिकों को कुछ दोष नहीं होता। परन्तु दुष्ट पुरुष के साथ श्रेष्ठ



कन्या अथवा दुष्ट कन्या के साथ श्रेष्ठ पुरुष का विवाह कभी न करना चाहिये, किन्तु तुल्य श्रेष्ठ गुण वालों का परस्पर विवाह होना चाहिये। जो दुष्ट पुरुष के साथ श्रेष्ठ कन्या का, श्रेष्ठ के साथ दुष्ट कन्या का विवाह होगा, तो परस्पर दोनों को दुःख ही होगा। इससे दोनों परस्पर विचार करके वर और कन्या विवाह करैं, क्योंकि श्रेष्ठ विवाह से उन्हीं को सुख और दुष्ट विवाह से उन्हीं को दुःख होगा। इसमें माता पितादिकों का कुछ भी अधिकार नहीं, उन दोनों के विचार और प्रसन्नता ही से विवाह होना चाहिये। विवाह में बहुत धन का नाश करना अनुचित ही है, क्योंकि वह धन व्यर्थ ही जाता है। इससे बहुत राज्य नष्ट हो गये और वैश्य लोगों का भी विवाह में धन के व्यय से दिवाला निकल जाता है। सब लोगों को धन का मिथ्या व्यय करना अनुचित है। इससे धन का नाश विवाह में कभी न करना चाहिये।

एक ही स्त्री से विवाह करना उचित है, बहुत स्त्री के साथ विवाह करना पुरुषों को उचित नहीं, स्त्री को भी बहुत विवाह उचित नहीं क्योंकि विवाह सन्तान के लिये है सो एक स्त्री एक पुरुष को बहुत है। देखना चाहिये कि एक व्यभिचारिणी स्त्री अथवा वेश्या, वे बहुत पुरुषों को वीर्य्य के नाश से निर्बल कर देती हैं। इससे एक पुरुष के लिये एक स्त्री क्या थोड़ी है, अर्थात् बहुत है। एक स्त्री के साथ भी सर्वथा वीर्य्य का नाश करना उचित नहीं, क्योंकि वीर्य के नाश से पूर्वोक्त सब दोष हो जायेंगे। इससे विवाहिता जो एक स्त्री उसके साथ भी वीर्य का नाश बहुत न करना चाहिये। केवल सन्तान के लिये वीर्य्य का दान करना चाहिये अन्यथा नहीं। और स्त्री भी केवल सन्तान ही की इच्छा करै, अधिक नहीं। दोनों परस्पर सदा प्रसन्न रहैं। पुरुष स्त्री को सदा प्रसन्न रक्खै और स्त्री पुरुष को सदा प्रसन्न रक्खै, विरोध वा क्लेश परस्पर कभी न करैं।

**सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।**
**यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥**

—यह मनुस्मृति का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि स्त्री प्रियाचरण से पुरुष को सदा प्रसन्न

रक्खै और पुरुष भी स्त्री को प्रियाचरण से सदा प्रसन्न रक्खै। जिस कुल में इस प्रकार की व्यवस्था है, उस कुल में दुःख कभी नहीं होता, किन्तु सदा सुख ही रहता है। और जो परस्पर अप्रसन्न रहेंगे, तो यह दोष आवेगा—

**यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।**
**अप्रमोदात्पुनःपुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते॥ १॥**
**स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वन्तद्रोचते कुलम्।**
**तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ २॥**

—ये दोनों मनुस्मृति के श्लोक हैं।

इनका यह अभिप्राय है कि जो स्त्री प्रीति और सेवा से पुरुष को प्रसन्न न करेगी तो पुरुष को अप्रसन्नता से हर्ष न होगा। जब हर्ष न होगा, तब प्रजनं नाम वीर्य की अत्यन्त उत्पत्ति न होगी और गर्भस्थिति भी न होगी, तो स्त्री को पुरुष के अप्रीति से कुछ भी सुख न होगा। और जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न न रक्खेगा तो उस पुरुष को कुछ भी गृहाश्रम करने का सुख न होगा। स्त्री को जो प्रसन्न रक्खेगा उसको सब आनन्द होगा। तथाच—

**पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।**
**पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥ १॥**
**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।**
**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ २॥**
**शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।**
**न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥ ३॥**
**जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।**
**तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥ ४॥**
**तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।**
**भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥ ५॥**

—ये सब मनुस्मृति के श्लोक हैं।

इनका यह अभिप्राय है कि पिता, भ्राता, पति और देवर ये सब लोग



स्त्रियों की पूजा करैं। देखना चाहिये कि पूजा का अर्थ घण्टा, झांझ, झाल्लरी, मृदङ्ग, धूप, दीप और नैवेद्यादिक षोडशोपचारों को पूजा शब्द से जो लेते हैं सो मिथ्या ही लेते हैं क्योंकि स्त्रियों की ऐसी पूजा करनी उचित नहीं और न कोई ऐसी पूजा करता है। इससे पूजा शब्द का अर्थ सत्कार ही है। सत्कार जो होता है सो चेतन ही का होता है, जो सत्कार को जानै। इससे स्त्री लोगों का सदा सत्कार करना चाहिये, जिससे कि वे सदा प्रसन्न रहैं, और उनको यथाशक्ति आभूषणों से प्रसन्न रक्खैं। जिन गृहस्थों का बड़ा भाग्य होता है और बहुत कल्याण की जिनको इच्छा होवै वे इस प्रकार से स्त्रियों को प्रसन्न ही रक्खैं॥ १॥

जिस कुल में नारी लोग रमण नाम आनन्द से क्रीड़ा करती और प्रसन्न रहती हैं, तिस कुल में देवता नाम विद्यादिक गुण जिनों से कि वह कुल प्रकाशित हो जाता है, वे गुण सदा उस कुल में बढ़ते रहते हैं। जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार और उनकी प्रसन्नता नहीं होती, उस गृहस्थ की सब क्रिया निष्फल होती हैं, और दुर्दशा भी होती है, इससे स्त्रियों को प्रसन्न ही रखना चाहिये॥ २॥

और जिस कुल में जामय नाम स्त्री लोग शोक से दुःखित रहती हैं, उस कुल का नाश शीघ्र ही हो जाता है। जिस कुल में स्त्री लोग शोक नहीं करतीं, अर्थात् प्रसन्न रहती हैं उस कुल की वृद्धि और आनन्द सदा होता है। और आजकाल आर्य्यावर्त्त में कोई एक राजा वा धनाढ्य विवाहिता स्त्री को तो कैद की नांई बन्द करके रखते हैं और आप वेश्या और पर-स्त्री के पास गमन करते हैं। उसमें अपने धन और शरीर का नाश करते हैं और उनकी विवाहित स्त्रियां रोती और बड़ी दुखित रहती हैं। परन्तु उन मूर्ख पुरुषों को कुछ भी लज्जा नहीं आती कि यह स्त्री तो मेरे साथ विवाहित है, इसको छोड़ के मैं अन्य-स्त्री-गमन करता हूँ, यह मैं न करूँ, ऐसा विचार उन पुरुषों के मन में कभी नहीं आता। अन्य स्त्री और वेश्या-गमन जो करते हैं सो तो बुरा ही काम करते हैं, परन्तु बालकों से भी बुरा काम करते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है कि स्त्री का काम पुरुषों से करते हैं, इनकी तो अत्यन्त भ्रष्ट बुद्धि सज्जनों को जाननी चाहिये॥ ३॥

जिन पुरुषों को स्त्री दु:खित होके श्राप देती हैं उन कुलों का नाश ही हो जाता है, जैसे कि कोई विषदान करके कुल का नाश कर देवै, वैसे ही उन कुलों का नाश हो जाता है। इससे सज्जनों को स्त्रियों का सत्कार सदा करना चाहिये, जिससे कि स्त्री लोग प्रसन्न होके गृह का कार्य, धर्माचरण और मङ्गलाचरण सदा करैं॥ ४॥

तिससे स्त्रियों का सत्कार सदा करना चाहिये। आभूषण, वस्त्र, भोजन और मधुर वाणी से स्त्रियों को प्रसन्न रक्खैं। जिनको कि ऐश्वर्य की इच्छा होय, वे यज्ञादिक उत्सवों में स्त्रियों का बहुत सत्कार करैं अर्थात् स्त्रियों को प्रसन्न ही रक्खैं तथा स्त्री लोग भी सब प्रकार से पुरुषों को प्रसन्न रक्खैं॥ ५॥

**पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवो वा मृतस्य वा।**
**पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम्॥ १॥**

जिसके साथ विवाह होय उसको स्त्री सदा प्रसन्न रक्खै, जिससे वह अप्रसन्न होय, ऐसी बात कभी न करै, सोई स्त्री श्रेष्ठ कहाती है। यहाँ तक की पति मर भी गया होय तो भी अप्रियाचरण न करै, उस स्त्री को सदा श्रेष्ठ पति इस जन्म वा जन्मान्तर में भी प्राप्त होता है॥ १॥

**अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः।**
**सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः॥ २॥**

वेद मन्त्रों से जिस पुरुष से विवाह का संस्कार भया, वही ऋतुकाल वा अऋतुकाल और इस लोक वा परलोक में नित्य सुख देनेवाला है और कोई नहीं। इससे विवाहित पुरुष की स्त्री सदा सेवा करै। जिससे कि वह प्रसन्न रहै और घर का जितना कार्य है वह स्त्री के अधिकार में रहै।

**सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।**
**सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥ ३॥**

सदा स्त्री प्रसन्न होके गृह कार्य चतुरता से करै, पाक को अच्छी प्रकार से संस्कार करै। जिससे कि औषधवत् अन्न होय और गृह में जो पात्र, लवणादिक पदार्थ और अन्न सदा शुद्ध रक्खै। जितने घर हैं उनको सब दिन शुद्ध रक्खै। जाला, धूली वा मलिनता घर में कुछ भी न रहै। घर



में लेपन, प्रक्षालन और मार्जन करै, जिससे कि घर सब दिन शुद्ध बना रहै और घर के दास, दासी, नोकर इत्यादिकों पर सब दिन शिक्षा की दृष्टि रक्खै। जो पाक करने वाला पुरुष वा स्त्री होवै, उसके पास पाक करने समय बैठ कै शिक्षा करै। जैसी पाक की रीति वैद्यकशास्त्र में लिखी है, उस रीति से पाक करै और करावै। शिल्पशास्त्र की रीति से अर्थात् जितना घर का जो कार्य है सो स्त्री ही के आधीन रहै। उस में जो नित्य-नित्य वा मास-मास में खर्च होय, वह पति को समझा देवै। और जितना बाहर का कार्य होय, सो सब पुरुष के अधीन रहै। परस्पर सदा प्रसन्न[ता] से घर के कार्यों को करैं। घर इस प्रकार का बनावै कि जिसमें सब ऋतु में सुख होय और जिस स्थान में वायु शुद्ध होय, चारों ओर पुष्पों की सुगन्ध वाटिका लगावै जिससे कि सदा चित्त प्रसन्न रहै और व्यर्थ धन का नाश कभी न करैं। धर्म ही से धन का संग्रह करैं, अधर्म से कभी नहीं। अच्छे से अच्छा भोजन करैं। जो विद्या पढ़ी होवै, उसको सदा पढ़ावैं और विचारते रहैं।

आजकाल के लोग कहते हैं कि स्त्री लोगों को पढ़ना न चाहिये, ऐसा विद्याहीन पुरुष कहते हैं। वे पाखण्डी और धूर्त्त हैं क्योंकि स्त्री लोग जो पढ़ेंगी तो उनके सामने हमारी धूर्त्तता न चलेगी, फिर उनसे धन भी न मिलेगा। और वे जब विद्या से धर्मात्मा होंगी, तब हम लोगों से व्यभिचार भी न करेंगी। विना व्यभिचार से वे स्त्री धन भी न देंगी। फिर हम लोगों का व्यवहार न चलेगा। ऐसे आर्य्यावर्त्त देश में गोकुलस्थ गुसांई आदिक सम्प्रदाय हैं कि जिन की व्यभिचार और स्त्री लोगों से ही बढ़ती होती है। वे इस प्रकार का उपदेश करते हैं कि स्त्री लोगों को कभी न पढ़ना चाहिये। परन्तु देखना चाहिये कि मनु भगवान् ने यथावत् आज्ञा दी है—

**वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकस्मृतः।**
**पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥ ४॥**

विवाह का जितना विधि है सो वेदोक्त ही है। स्त्रियों का विवाह वेद की रीति से होना चाहिये और पति की सेवा अत्यन्त करनी चाहिये। यही

स्त्री का मुख्य कर्म है। और विवाह के पहिले **गुरौ वास** नाम स्त्री लोग पढ़ने के लिये ब्रह्मचर्य्याश्रम करैं और गृह कार्य जानने के लिये अवश्य विद्या पढ़ैं। **अग्निपरिक्रिया** नाम अग्निहोत्रादिक यज्ञ करने के लिये अवश्य वेदों को पढ़ैं अन्यथा कुछ भी न जानेंगी। नित्य स्त्री और पुरुष मिल के अग्निहोत्र प्रातः और सायंकाल करैं। अन्य यज्ञों को भी सामर्थ्य के अनुकूल करैं। और जो विद्या न पढ़ी वा आप न जानती होगी तो अग्निहोत्रादिक यज्ञ और घर के सब कार्य को कैसे करेगी। विद्या अन्य के पास होय तो उस विद्या को जिस प्रकार से मिलै, उस प्रकार से लेवै क्योंकि मरण तक भी गुण ग्रहण करने की इच्छा मनुष्यों को करनी चाहिये, उसी से मनुष्यों को सुख होता है॥ ४॥

**स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्।**
**विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥ ५॥**

—ये पांच मनुस्मृति के श्लोक हैं।

स्त्री, हीरादिक रत्न, सत्यविद्या, सत्यभाषण, पवित्रता, मधुरवाणी नाम भाषण करने की रीति और विविध अर्थात् अनेक प्रकार के शिल्प ये सब जिस में होवैं, उससे ही लेना चाहिये। भाषण की रीति यह है कि—

**सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।**
**प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥ १॥**
**भद्रम्भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।**
**शुष्कवैरं विवादञ्च न कुर्य्यात्केनचित्सह॥ २॥**

—ये दो श्लोक मनुस्मृति के हैं।

इसका यह अर्थ है कि सत्य ही कहै, मिथ्या कभी न कहै। सदा सब जनों को जो प्रिय लगे वैसा ही कहै।

**पूर्वपक्ष**—प्रिय तो वेश्यागामी, पर-स्त्री-गामी और चोरी करने वाले आदि पुरुषों से उनी बातों को कहै तब उनको अनुकूल प्रिय होता है, अन्यथा प्रिय नहीं होता। इससे ऐसा ही कहना चाहिये वा नहीं?

**उत्तरपक्ष**—इसको प्रियवचन न कहना चाहिये, क्योंकि वेश्यादिक



गमन की इच्छा जब वे करते हैं, तभी उनके हृदय में शङ्का, भय और लज्जा हो जाती है। वह काम तो उनके हृदय को प्रिय ही नहीं है और उनका आचरण करना भी अधर्म है किन्तु उनका जो निषेध करना है वही ठीक-ठीक प्रिय है। जैसे कोई बालक अग्नि पकड़ने को चलै, उसको उसकी माता कहै कि तूं अग्नि न पकड़। वह वचन बालक को प्रिय न होगा, किन्तु आगी में हाथ नावेगा, तब हाथ जल जायगा। उससे बालक को अप्रिय होगा, अर्थात् दुःख ही होगा। किन्तु बालक को निषेध जो करना है कि तूं आग को मत पकड़, वही वचन उसको प्रिय है। प्रिय उसका नाम है कि कभी जिस वचन से किसी का अहित न होय, उसको **प्रियवचन** कहते हैं। और सत्य होय, वह अप्रिय होय, तो उसको न कहै। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि विवाह किस लिये करना होता है और तेरा जन्म किस प्रकार भया? तब उसको इतना ही कहना उचित है कि विवाह का करना सन्तान के लिये है और मेरा जन्म मेरी माता-पिता से हुआ है। जो गुप्त क्रिया है स्त्री से और माता-पिता की उसको कहना उचित नहीं। यद्यपि यह बात सत्य ही है, तो भी सब लोगों को अप्रिय के होने से उस बात का कहना उचित नहीं। तथा दश पांच पुरुष कहीं बैठे होवैं और उस समय में काना, अन्धा, मूर्ख वा दरिद्र पुरुष आवैं, उनसे वे पुरुष कहैं कि काना आओ, अन्धा आओ, मूर्ख आ, वा दरिद्र आओ, ऐसा कहना उचित नहीं। यद्यपि यह बात सत्य है तो भी अप्रिय के होने से न कहना चाहिये, किन्तु देवदत्त आ, यज्ञदत्त आओ, ऐसा कहना उचित है। फिर आप के आंख में कुछ रोग भया था वा जन्म से ऐसी ही है? तब वह प्रसन्नता से सब बात कह देगा जैसी की भई थी। इससे इस प्रकार का सत्य होय और वह अप्रिय भी होय, तो कभी न कहै॥

**प्रियं च नानृतं ब्रूयात्।**

और जो बात अन्य को प्रिय होय, परन्तु वह अनृत अर्थात् मिथ्या होय, तो उसको कभी न कहै। जैसे कि आजकाल इन राजा और धनाढ्य लोगों के पास खुशामदी लोग बहुत से धूर्त रहते हैं, वे सदा उनको प्रसन्न करने के लिये मिथ्या ही कहते रहते हैं। आप के तुल्य कोई राजा वा

अमीर न हुआ, न है और न होगा। और जो राजा मध्य दिवस के समय में कहै कि इस समय में आधी रात है, तब वे शुश्रूषु लोग कहते हैं कि हाँ! महाराजाधिराज हाँ! देखिये चाँद और चाँदनी भी अच्छी खिल रही है। फिर वे कहते हैं कि महाराज के तुल्य कोई बुद्धिमान् न भया, न है, न होगा। तब तो वह मूर्ख राजा और धनाढ्य प्रसन्नता से फूल के ढोल हो जाते हैं। फिर वे ऐसी बात कहते हैं कि महाराज! आप के प्रताप के सामने किसी का प्रताप नहीं चलता है। आप का प्रताप कैसा है जैसा कि सूर्य और चांद। ऐसा कह-कह के बहुत धन हरण कर लेते हैं। वे राजा और धनाढ्य लोग उन्हीं से प्रसन्न रहते हैं क्योंकि आप जैसा मूर्ख वा पण्डित होता है, उसको वैसे ही पुरुष से प्रसन्नता होती है। कभी उनको सत्पुरुषों का सङ्ग नहीं होता और कभी सत्पुरुषों का सङ्ग हो जाय, तो भी वे खुशामदी धूर्त्त राजा और धनाढ्य लोगों को मूर्खता के होने से उनको प्रसन्नता सत्य बात के सुनने से कभी नहीं होती। क्योंकि जैसा जो पुरुष होता है, उसको वैसा ही संग मिलता है। ऐसे व्यवहार के होने से आर्य्यावर्त्त देश के राज्य और धन बहुत नष्ट हो गये और जो कुछ है उसकी भी रक्षा इस प्रकार से होनी दुर्लभ है। जब तक कि सत्य व्यवहार, सत्यशास्त्र और सत्सङ्गों को न करेंगे, तब तक उनका नाश ही होता जायगा, कभी बढ़ती न होगी।

खुशामदी लोगों के विषय में यह दृष्टान्त है कि कोई राजा था। उसके पास पण्डित, वैरागी और नौकर वे खुशामदी लोग बहुत से रहते थे। किसी दिवस राजा के रसोई में बैंगन का शाक मसाले डालने से बहुत अच्छा बना। फिर राजा भोजन करने को जब बैठा, तब स्वाद के होने से उस शाक को अधिक खाया। राजा भोजन करके सभा में आया, जहाँ कि वे खुशामदी लोग बैठे थे, उन से राजा ने कहा कि बैंगन का शाक बहुत अच्छा होता है। तब वे खुशामदी लोग सुन के बोले कि वाहवा! महाराज की नांई कोई बुद्धिमान् नहीं है। महाराज! आप देखिये कि जब बैंगन उत्तम है तब तो परमेश्वर ने उसके ऊपर मुकुट रख दिया तथा मुकुट के चारों ओर कलगीं रख दी है, और बैंगन का वर्ण श्रीकृष्ण के शरीर का



जैसा घनश्याम है वैसा ही बनाया है, और उसका गूदा मक्खन की नांई परमेश्वर ने बनाया है, इससे बैंगन का शाक उत्तम क्यों न बनै। फिर जब उस शाक ने बादी की, तब रात भर नींद भी न आई और ८ दश बार शौच भी गया। उससे राजा बड़ा क्लेशित भया। फिर जब प्रातःकाल भया, तब भीतर से राजा बाहर आया, वे खुशामदी लोग भी आये। जब राजा का मुख बिगड़ा देखा, तब उन खुशामदी लोगों ने भी उनसे अधिक मुख बिगाड़ लिया। फिर वे सब खुशामदी लोग राजा के पास जाके बैठे। राजा बोले कि बैंगन का शाक तो अच्छा होता है, परन्तु बादी करता है। तब वे बोले कि वाहवा! महाराज के तुल्य कोई बुद्धिमान् नहीं है। एक ही दिन में बैंगन की परीक्षा कर ली। देखिये महाराज कि जब बैंगन भ्रष्ट है, तब तो उसके ऊपर परमेश्वर ने खूंटी गाड़ दी है, उस खूंटी के चारों ओर कांटे लगा दिये हैं, उस दुष्ट का वर्ण भी कोइले के तुल्य रक्खा है तथा परमेश्वर ने उस का गूदा भी श्वेतकुष्ठ के नांई बना दिया है। तब उन खुशामदियों से राजा ने पूछा कि शाम को तुम लोगों ने मुकुट, कलँगी, घनश्याम और मक्खन के तुल्य बैंगन के अवयव वर्णन किये। उसी बैंगन के अवयवों को खूंटी, कांटे, कोइला और कुष्ठ के नांई बनाये। हम कौन बात को सत्य मानैं कि जो कल शाम को कही थी उसको मानैं, वा आज के कहे को मानैं। वाहवा! महाराज किस प्रकार के विवेकी हैं कि विरोध को शीघ्र ही जान लिया। सुनिये महाराज जिस बात से आप प्रसन्न होंगे, उसी बात को हम लोग कहैंगे। क्योंकि हम लोग तो आप के नौकर हैं, सो आप झूंठी वा सच्ची बात कहैंगे, उसी बात को हम लोग पुष्ट करेंगे। और हम लोग वह साले बैंगन के नौकर नहीं हैं कि बैंगन की स्तुति करैं। हम को बैंगन से क्या लेना है। हम को तो आप की प्रसन्नता से प्रसन्नता है, आप असत्य कहो तो भी हम को सत्य है।

वे इस प्रकार की सम्मति रखते हैं कि राजा सब दिन नशा करै और मूर्ख ही बना रहै। फिर जब वे और कोई राजा वा धनाढ्य के पास जाते हैं, तब उसी की खुशामद करते हैं जिसके पास पहिले रहते थे उसकी निन्दा करते हैं। इस प्रकार से खुशामदी मनुष्यों ने राजाओं की और

धनाढ्यों की मति भ्रष्ट कर दी है।

जो बुद्धिमान् राजा और धनाढ्य लोग हैं, इस प्रकार के मनुष्यों को पास भी नहीं बैठने देते, न आप उनके पास बैठते तथा न उनकी बात सुनते हैं। और जो कोई मिथ्या बात उनके पास कहता है, उसी समय उसको उठा देते हैं और सदा बुद्धिमान्, सत्यवादी, विद्यावान् पुरुषों का सङ्ग करते हैं जो कि मुख के ऊपर सत्य-सत्य कहैं, मिथ्या कभी न कहैं। उन राजाओं और धनाढ्यों की सदा बढ़ती, ऐश्वर्य और सुख होता है। इससे सज्जनों को श्रेष्ठ ही पुरुषों का संग करना चाहिये, दुष्टों का कभी नहीं।

सत्य बात के आचरण में निन्दा वा दुःख होय, तो भी भय न करना चाहिये। भय तो एक परमेश्वर और अधर्म ही से करना चाहिये और किसी से नहीं, क्योंकि परमेश्वर सब काल में सब बातों को जानता है, कोई बात परमेश्वर से गुप्त नहीं रहती। इससे सज्जनों को परमेश्वर ही से भय करना चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हम लोग कुछ भी कर्म न करैं। तथा अधर्म के आचरण से भय करना चाहिये क्योंकि अधर्म से दुःख ही होता है, सुख कभी नहीं। और एक पुरुष की सब लोग स्तुति करैं अथवा निन्दा करैं, ऐसा कोई भी नहीं है। निन्दा इसका नाम है कि—

**गुणेषु दोषारोपणमसूया तथा दोषेषु गुणारोपणमप्यसूयार्थापत्त्या वेद्या॥**

जो कि गुणों में दोषों का स्थापन करना उसका नाम निन्दा है। वैसे ही अर्थापत्ति से यह आया कि दोषों में गुणों का आरोपण भी निन्दा होती है। इससे क्या आया कि—

**गुणेषु गुणारोपणं स्तुतिः, दोषेषु दोषारोपणं च तद्विरोधत्वात्।**

गुणों में गुणों का स्थापन करना और दोषों में दोषों का उसका नाम स्तुति है। जो जैसा पदार्थ है उसको वैसा ही जानैं अर्थात् यथावत् सत्यभाषण करना स्तुति है और अन्यथा अर्थात् मिथ्या भाषण करना निन्दा है।

इसलिये सज्जन लोगों को सदा स्तुति ही करनी चाहिये, निन्दा कभी नहीं। मूर्ख लोग सत्य बात कहने और सत्याचरण के करने में निन्दा करैं, तो भी बुद्धिमान् लोगों को दुःख वा भय न मानना चाहिये, किन्तु प्रसन्नता



ही रखनी चाहिये, क्योंकि उनकी बुद्धि भ्रष्ट है इसलिये भ्रष्ट बात ही सदा कहते हैं। जैसे वे भ्रष्ट लोग भ्रष्टता को नहीं छोड़ते हैं, तो श्रेष्ठ लोग श्रेष्ठता को क्यों छोड़ैं। किन्तु भ्रष्टता भ्रष्ट लोगों को भी अवश्य छोड़नी चाहिये। यदि सब भ्रष्ट लोग विरोध भी अत्यन्त करैं, यहाँ तक कि मरण की भी अवस्था आ जाय, तो भी सत्यवचन और सत्याचरण सज्जनों को कभी न छोड़ना चाहिये, क्योंकि यही मनुष्यों के बीच में मनुष्यत्व है और इसको छोड़ने से मनुष्यत्व तो नष्ट हो ही जाता है, किन्तु पशुत्व भी आ जाता है। आजीविका भी सत्य से करनी चाहिये, असत्य से कभी नहीं। इसमें यह मनु भगवान् का प्रमाण है—

**न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन।**

इसका यह अभिप्राय है कि संसार में बहुत धूर्तलोग असत्य और पाखण्ड से आजीविका करते हैं, वैसे आचरण कभी न करै। वृत्ति अर्थात् आजीविका के हेतु भी असत्य भाषणादिक न करै, किन्तु सत्य ही भाषण से आजीविका करै। यही धर्म सनातन है कि अनृत अर्थात् मिथ्या वही दूसरे को प्रिय होय, तो कभी न कहै, किंच सदा सत्य भाषण ही करै।

दूसरा मनु भगवान् का श्लोक है कि **भद्रं भद्रमित्यादि।** भद्र है कल्याण का नाम सो तीन वार श्लोक में पाठ किया है, इसी हेतु कि कल्याण कारक वचन सदा कहै। जिसको सुनके मनुष्य धर्मनिष्ठ होय और अधर्म त्याग करै। शुष्कवैर अर्थात् मिथ्या वैर और विवाद किसी से न करना चाहिये। जैसे कि आजकाल के पण्डित और विद्यार्थी लोग हठ, दुराग्रह और क्रोध से वाद-विवाद करते-करते लड़ पड़ते हैं। उनके हाथ सिवाय दुःख के कुछ भी नहीं लगता है। इससे जो कुछ अपने को अज्ञात होय, उस विषय को प्रीति पूर्वक विवाद छोड़ कर पूछ ले। आप जो सत्य-सत्य जानता होय सो औरों से कह दे॥

**परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।**

—यह मनुस्मृति का वचन है।

इसका यह अभिप्राय है कि स्वाध्याय अर्थात् विद्या पठन-पाठन और धन का उपार्जन काम नाम विषय सेवा ये दोनों स्वाध्याय और धर्म

से विरुद्ध होवैं तो उनको छोड़ दे, परन्तु विद्या प्रचार और धर्म को कभी न छोड़ै।

**संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।**
**संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः॥**

इत्यादिक सब मनुस्मृति के श्लोक लिखेंगे, सो जान लेना। संतोष इसका नाम है कि सम्यक् प्रसन्न रहैं, सदा अत्यन्त पुरुषार्थ रक्खैं। आलस्य कभी न करें और पुरुषार्थ का छोड़ना संतोष नहीं किन्तु, सब दिन पुरुषार्थ में तत्पर रहै, सब दिन सुखार्थी और जितेन्द्रिय होवै, कभी हर्ष और शोक न करै। किंच जितना सुख है सो संतोष से ही है और जितना दुःख होता है सो लोभ ही से होता है।

**इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः।**
**अतिप्रसक्तिश्चैतेषां मनसा सन्निवर्तयेत्॥ २॥**

—[मनु० ४.१६]

श्रोत्रादि इन्द्रियों के शब्दादिक जो विषय हैं, उन में कामातुर हो के प्रवृत्त कभी न होवै, किन्तु धर्म के हेतु प्रवृत्त होवै और मन से उन में अत्यन्त प्रीति छोड़ता जाय, धर्म और परमेश्वर में प्रीति बढ़ाता जाय॥ २॥

**बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।**
**नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्॥ ३॥**

—[मनु० ४.१९]

जो शास्त्र शीघ्र ही बुद्धि, धन और हित को बढ़ाने वाले हैं, उन शास्त्रों को नित्य विचारै। जैसे कि छः दर्शन, चारों उपवेद और वेदों को नित्य विचारै, उनके विचार से अनेक पदार्थविद्या को प्रकाश करै। किञ्च—

**यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।**
**तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥ ४॥**

—[मनु० ४.२०]

जैसे-जैसे पुरुष शास्त्र का विचार करता है तैसे-तैसे उसका विज्ञान बढ़ता जाता है। फिर विज्ञान ही में उसको प्रीति होती है और में



नहीं॥ ४॥

**ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।**
**नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥ ५॥**

—[मनु० ४.२१]

ऋषियज्ञ अर्थात् पठन पाठन और संध्योपासन १, देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्रादिक २, भूतयज्ञ अर्थात् बलिवैश्वदेव ३, नृयज्ञ अर्थात् अतिथि सेवा ४ और पितृयज्ञ नाम श्राद्ध और तर्पण अपने सामर्थ्य के अनुकूल यथाशक्ति करै, उन्हें कभी न छोड़ै। इतने सब कर्म अविद्वान् पुरुषों के वास्ते हैं। और जो ज्ञानी हैं वे तो यथावत् पदार्थ विद्या और परमेश्वर को जानते हैं, योगाभ्यास करैं, सब शास्त्रों को विचारैं, ब्रह्म विद्या की प्राप्ति और उपदेश भी करैं। इसमें मनु भगवान् का प्रमाण है—

**एतानेके महायज्ञान् यज्ञशास्त्रविदो जनाः।**
**अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति॥ ६॥**

—[मनु० ४.२२]

जितने ज्ञानी हैं वे पांच महायज्ञों को ज्ञान क्रिया ही से करते हैं, बाह्य चेष्टा से नहीं, क्योंकि वे यज्ञशास्त्र के तत्त्वों को जानते हैं। उनकी **अनीहमान** अर्थात् बाहर उनकी कुछ चेष्टा न देख पड़ै, ज्ञान और योगाभ्यास से विषयों को इन्द्रियों में होम कर देते हैं तथा इन्द्रियों को मन में, मन को आत्मा में और आत्मा का परमेश्वर से योग करते हैं। उनको बाहर की चेष्टा करना आवश्यक नहीं॥ ६॥

**वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा।**
**वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम्॥ ७॥**

—[मनु० ४.२३]

कितने योगी और ज्ञानी लोग वाणी में प्राण का होम करते हैं। कितने प्राण में वाणी का होम करते हैं। सदा वाणी और प्राण में यज्ञ की सिद्धि अक्षय अर्थात् जिसका नाश नहीं होता उसको देखते हैं अर्थात् वाणी तो प्राण ही से उत्पन्न होती है और प्राण आत्मा से, आत्मा अविनाशी है, उसको परमात्मा से युक्त कर देते हैं। इससे उनकी मुक्ति ही

हो जाती है। फिर कभी उनको दु:ख का संग नहीं होता है। इससे उन को बाह्य क्रिया का करना आवश्यक नहीं॥ ७॥

**ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा।**
**ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा॥ ८॥**

—[मनु० ४.२४]

जो ज्ञान चक्षु से सब पदार्थों को यथावत् जानते हैं वे ज्ञान ही से ब्रह्मयज्ञादिक पांच महायज्ञों को करते हैं क्योंकि ज्ञानयज्ञों से उनका सब प्रयोजन सिद्ध है। सब क्रिया उन की ज्ञानमूलक ही है क्योंकि उनके हृदय, मन और आत्मा सब शुद्ध हो गये हैं। उनका बाह्य आडम्बर करना आवश्यक नहीं। बाह्य-क्रिया तो उन लोगों के लिये हैं कि जिनका हृदय और आत्मा शुद्ध नहीं। वे अग्निहोत्रादिक यज्ञों को बाह्य-क्रिया से अवश्य करैं, क्योंकि उनके करने से विना हृदय शुद्ध नहीं होगा। उन ज्ञानियों की सेवा और सङ्ग से ज्ञानोपदेश लेवैं, जिससे कि कर्मियों की भी बुद्धि बढ़ै॥ ८॥

**आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा।**
**न कस्यचिद्वसेद् गेहे शक्तिदोऽनर्चितोऽतिथिः॥ ९॥**

—[मनु० ४.२९]

गृहस्थ के घर किसी समय कोई अतिथि आवै तो असत्कृत अर्थात् सत्कार के विना न रहै, जैसा अपना सामर्थ्य हो, वैसा सत्कार करना चाहिये। आसन, भोजन, शय्या, जल, कंद और फल से अवश्य सत्कार करै॥ ९॥ परन्तु ऐसे मनुष्य का सत्कार कभी न करै—

**पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।**
**हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ १०॥**

—[मनु० ४.३०]

**पाषण्डी** अर्थात् वेद विरुद्ध मार्ग में चलने वाले चक्रांकितादिक वैरागी और गोकुलिये गोसांई आदिकों का वचन से भी सत्कार गृहस्थ लोग कभी न करैं। वैसे चोरी, वेश्यागमनादिक **विरुद्ध कर्म करने वाले** पुरुषों का भी सत्कार न करैं। **वैडालव्रतिक** नाम परकार्य के नाश करने वाले, अपने कार्य में तत्पर हैं, जैसे कि विलार मूसे का तो प्राण हर ले



और अपना पेट भर ले, ऐसे पुरुषों का वचन से भी गृहस्थ लोग सत्कार न करें। **शठ** नाम मूर्खों का भी सत्कार न करैं। शठ वे होते हैं कि उन्हें बुद्धि न होय और अन्य का प्रमाण भी न करैं। **हैतुक** नाम वेद-शास्त्र-विरुद्ध कुतर्क के करने वाले, उनका भी वचन से सत्कार न करैं। **बकवृत्ति** अर्थात् जैसे वैरागियों में खाखी लोग भस्म लगा लेते, जटा बढ़ा लेते और काठ की कौपीन धारण कर लेते हैं। फिर ग्राम वा नगर के समीप जाके ठहरते और शंखादिक बजा देते हैं अर्थात् सूचना कर देते हैं कि गृहस्थ लोग आवैं और हमको धन आदिक पदार्थ देवैं। जब गृहस्थ लोग आते हैं तब दूर से देख के ध्यान लगाते हैं, प्रसाद में विष भी दे देते हैं और उनका धन सब हरण कर लेते हैं, उनका गृहस्थ लोग वचन से भी सत्कार न करैं। ऐसे जितने मंडली बांध के फिरते हैं वैरागी और साधु इत्यादिक, उनको साधु न जानना चाहिये, किन्तु बड़ा ठग जानना चाहिये। और कितने गृहस्थ लोग सदावर्त्त और क्षेत्र करते हैं, वे अनुचित करते हैं क्योंकि बड़े धूर्त, गांजा और भांग पीने वाले तथा चौर डाकू वैसे ही लुच्चे सदवर्तों से अन्न लेते और क्षेत्रों में भोजन कर लेते हैं, फिर कुकर्म ही करते रहते और हरामी हो जाते हैं। बहुत से लोग अपना काम काज छोड़ सदावर्तों और क्षेत्रों के ऊपर घर के सब काम और नौकरी चाकरी छोड़ के साधु वा भिखारी बन जाते हैं, फिर सेंत का अन्न खाते और सोते पड़े रहते हैं अथवा कुकर्म करते रहते हैं। इससे संसार की बड़ी हानि होती है। सो जो कोई सदावर्त्त क्षेत्र करता है, उसमें सज्जन वा सत्पुरुष कोई नहीं जाता। इससे गृहस्थ लोग अन्नादिक दान करना चाहैं तो पाठशाला रच लेवैं, उसी में सब दान करैं अथवा जो श्रेष्ठ धर्मात्मा गृहस्थ और विरक्त होवैं, उन को अन्नादिक देवैं और यज्ञ करैं। तब उनको बड़ा पुण्य होय, पाप कभी न होवै। तथा मनु भगवान् का वचन है—

**वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिना।**
**पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत्॥ ११॥**

—[मनु० ४.३१]

जिनों ने ब्रह्मचर्य्याश्रम करके वेदविद्या अर्थात् सब विद्या को पढ़ा

है और धर्माचरण से शुद्ध होवैं, ऐसे श्रोत्रिय अर्थात् विद्वान् और गृहस्थ लोगों का **हव्य** नाम देवकार्य और **कव्य** नाम पितृकार्य में गृहस्थ लोग सत्कार करैं, उन से विपरीत लोगों का सत्कार कभी न करैं॥ ११॥

**शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना।**
**संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः॥ १२॥**

—[मनु० ४.३२]

जो संन्यासाश्रमस्थ विद्यावान् और धर्मात्मा होवैं उन की भी गृहस्थ लोग सेवा करैं और भी जितने अनाथ होवैं, अर्थात् अन्धे, लंगड़े, लूले और जिनका कोई पालन करने वाला न होवै, उनका भी गृहस्थ लोग पालन करैं॥ १२॥

**नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्त्तवदर्शने।**
**समानशयने चैव न शयीत तया सह॥ १३॥**

—[मनु० ४.४०]

जब स्त्री रजस्वला होय उस दिन से लेकर चार दिन तक काम पीड़ा से प्रमत्त भी होय तो भी स्त्री का संग न करै और एक शय्या में स्त्री के साथ कभी न सोवै॥ १३॥

**रजसाभिप्लुप्तां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः।**
**प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥ १४॥**

—[मनु० ४.४१]

जो पुरुष रजस्वला स्त्री से समागम करता है उसकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु ये पांच नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि स्त्री के शरीर से एक प्रकार का अग्नि निकलता है, उससे पुरुष का शरीर रोगयुक्त होता है, रोगयुक्त होने से बुध्यादिक नष्ट हो जाते हैं॥ १४॥

**तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम्।**
**प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्द्धते॥ १५॥**

—[मनु० ४.४२]

जो पुरुष रजस्वला स्त्री का संग नहीं करता, उस पुरुष के बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु ये सब बढ़ते हैं॥ १५॥



**ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।**
**कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥ १६॥**

—[मनु० ४.९२]

एक पहर रात जब रहै, तब सब मनुष्य उठैं। उठके प्रथम धर्म का विचार करैं कि यह-यह धर्म की बात हम को करनी होगी तथा यह-यह अर्थ नाम व्यवहार की बात अवश्य करना होगा। उस धर्म और अर्थ के आचरण में विचार करैं कि परिश्रम थोड़ा होय और वह कार्य सिद्ध हो जाय। और जो शरीर में रोगादि क्लेश हों, उनका औषध, पथ्य और निदान का, इससे यह रोग भया है, इन सबको विचारै। विचार के उनके निवारण का विचार करैं। फिर वेदतत्त्वार्थ नाम परमेश्वर की प्रार्थना करै। और उठ के मल मूत्रादिक त्याग करै, हस्त पाद का प्रक्षालन करें, फिर जो वृक्ष दूध वाले होवैं, उनसे दन्त धावन करैं अथवा खैर के चूर्ण वा सूंघनी से युक्त करके दन्तधावन से दांतों को मलै और स्नान करै। सूर्योदय से पहिले १ वा दो कोस भ्रमण करै। एकान्त में जाके संध्योपासन जैसा कि लिखा है वैसा करै। सूर्योदय के पीछे घर में आके अग्निहोत्र जैसा जिस वर्ण का व्यवहार पूर्वक लिखा है वैसा करै। जब तक पहर दिन न चढ़ै, तबतक। फिर दूसरे प्रहर के प्रारम्भ में तर्प्पण बलिवैश्वदेव और अतिथि सेवा करके भोजन करै। तब जो जिसका व्यवहार है उस व्यवहार को यथावत् करैं। ग्रीष्मऋतु को छोड़के दिवस में न सोवै क्योंकि दिन को सोने से रोग होते हैं। और ग्रीष्म में अर्थात् वैशाख और ज्येष्ठ में थोड़ा सोने से रोग नहीं होता, क्योंकि निद्रा से शरीर में उष्णता होती है सो ग्रीष्म में उष्णता ही अधिक होती है, जल भी अधिक पीने में आता है। फिर जब मनुष्य सोता है तब सब द्वार अर्थात् लोम द्वार से भीतर से जल बाहर निकलता है। उससे सब मार्ग शुद्ध हो जाते हैं, इससे ग्रीष्म ऋतु में सोने से रोग नहीं होता है, अन्य ऋतु में सोने से होता है। और जो कुछ आवश्यक कार्य होय तो ग्रीष्म ऋतु में भी न सोवै, तो बहुत अच्छा है। फिर जब चार वा पांच घड़ी दिन रहै तब सब कार्यों को छोड़ के भोजन के लिये जावै। पहिले शौच स्नानादिक क्रिया करै। तदनन्तर बलिवैश्वदेव,

फिर अतिथि सेवा करके भोजन करै। भोजन करके फिर भी संध्योपासन के वास्ते एकान्त में चला जाय। संध्योपासन करके फिर अपने अग्निहोत्र स्थान में आके अग्निहोत्र करै। जब-जब अग्निहोत्र करैं, तब-तब स्त्री के साथ ही करै। फिर भी जिसका व्यवहार होय वह उसको करै अथवा भ्रमण करै। निदान एक प्रहर रात तक व्यवहार करै, फिर सोवै दो प्रहर अथवा डेढ़ प्रहर तक, फिर उठके वैसे ही नित्य क्रिया करै। सो मध्यरात्रि के मध्य दो प्रहर में जब-जब वीर्य दान करै उसके पीछे कुछ ठहर के दोनों स्नान करैं। पीछे अपने-अपने शय्या में पृथक्-पृथक् जाके सोवैं। जो स्नान न करेंगे तो उनके शरीर में रोग हो जायेंगे क्योंकि उससे बड़ी उष्णता होती है, इसलिये स्नान करने से वह विकार न होगा और वीर्यतेज भी बढ़ेगा। इससे उस समय स्नान अवश्य करना चाहिये। इसमें मनु भगवान् के वचन का प्रमाण है—

**भोजनं हि गृहस्थानां सायं प्रातर्विधीयते। स्नानं मैथुनिनस्स्मृतम्॥**

इसका अर्थ यह है कि दो वेर गृहस्थ लोगों को भोजन करना चाहिये सायं और प्रातःकाल। जो मैथुन करै तो उसके पीछे स्नान अवश्य करै।

**तथा च श्रुतिः—अहरहः संध्यामुपासीत।**
**अहरहरग्निहोत्रं जुहुयात्॥**

इनका यह अभिप्राय है कि सायं और प्रातःकाल में दो वेर सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र करै। दो ही सन्ध्या हैं प्रातः और सायंकाल। मध्याह्न सन्ध्या कहीं नहीं क्योंकि सन्ध्या नाम है सन्धि का। सन्धि दो काल होती है। प्रातःकाल अन्धकार और प्रकाश की सन्धि होती है तथा सायंकाल प्रकाश और अन्धकार की सन्धि होती है। मध्याह्न में केवल प्रकाश ही है, इससे मध्याह्न में सन्ध्या नहीं हो सकती।

**सन्ध्यायन्ति परं तत्त्वं नाम परमेश्वरं यस्यां सा सन्ध्या।**

जिस समय में परमेश्वर का ध्यान करते हैं, इससे इसका नाम सन्ध्या है। अथवा **सन्धये हिता सन्ध्या** मन और जीवात्मा का परमेश्वर से जिस कर्म से सन्धान होय, उसका नाम सन्धि है। सन्धि के लिये जो अनुकूल कर्म होता है, उसका नाम सन्ध्या है, सो दोई हैं।



**तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः संध्यामुपासीत॥**

—यह सामवेद के ब्राह्मण की श्रुति है।

**उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते॥** —यह यजुर्वेद के ब्राह्मण की श्रुति है।

इसका यह अभिप्राय है कि जिससे अहोरात्र अर्थात् रात्रि और दिवस के संयोग में संध्या करैं। जब जीवात्मा बाहर व्यवहार करने को चाहता है, तब बहिर्मुख होता है। मन और इन्द्रियों को भी बहिर्मुख करता है और जीव भी नेत्र, ललाट और श्रोत्र ऊपर के अंगों में विहार करता है, जैसे कि सूर्य उदय होकर ऊपर-ऊपर विहार करता है वैसे। जीव भी जब सोना चाहता है, तब हृदय पर्यन्त नीचे के अंगों में चला जाता है। रात्रि की नांई अन्धकार हो जाता है। विना अपने स्वरूप के किसी पदार्थ को नहीं देखता। जैसे कि सूर्य जब अस्त हो जाता है, तब अन्धकार होने से कुछ नहीं देख पड़ता है, ऐसे ही जीव के ऊपर आने और नीचे जाने का व्यवहार, उसका सन्धान दोनों संध्याकाल में करैं। इसके सन्धान करने से परमेश्वर पर्यन्त का कालान्तर में मनुष्यों को बोध हो जाता है। और जीव का कभी नाश नहीं होता, इससे इसका नाम आदित्य है। इस श्रुति का अर्थ हो गया अर्थात्—

**उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणः सकलं भद्रमश्नुते।**

इस हेतु से उदयकाल और सायंकाल दो संध्या निकलती हैं सो जान लेना। तथा मनुस्मृति के श्लोक भी हैं—

**न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।**
**स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥ १॥**
**प्रातःसन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात्।**
**पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥ २॥**

—[मनु० ४.१०३-१०४]

जो प्रातः और सायंकाल की सन्ध्या नहीं करता उसको श्रेष्ठ द्विज लोग सब द्विज कर्माधिकारों से निकाल देवैं, अर्थात् यज्ञोपवीत को तोड़ के शूद्र कुल में कर देवैं। वह केवल सेवा ही करै जो कि शूद्र का कर्म

है॥ १॥

इससे दो सन्ध्या निकलती हैं। दूसरे श्लोक में सन्ध्या के काल का नियम और दोनों सन्ध्या हैं। दो घड़ी रात से लेके सूर्योदय पर्यन्त प्रातः संध्या के काल का नियम है तथा एक वा आध घड़ी दिन से लेके जब तक तारा न निकलैं, तब तक सायं सन्ध्या के काल का नियम है। और गायत्री का अर्थ और जैसा ध्यान उसका कहा है, वैसा ही दोनों काल में करैं। और जो कहता है कि मध्याह्न संध्या क्यों न होय, तो उनसे पूंछना चाहिये कि मध्य रात्रि में संध्या क्यों न होय और दो पहर के दो मुहूर्त्त में और दो क्षण में संध्या क्यों न हो जाय। ऐसा कहने से तो हजारों संध्या हो जायेंगी और उसके मत में अनवस्था भी आ जायगी, इससे उसका कहना मिथ्या ही है॥ २॥

**अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम्।**
**हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते॥ ३॥**

—[मनु० ४.१७०]

जो नर अधार्मिक अर्थात् अधर्म का करने वाला है और जिसका धन भी अनृत अर्थात् असत्य से आया होय और नित्य हिंसारत अर्थात् पर पीड़ा ही में नित्य रहता होय, वह पुरुष इस संसार में सुख को कभी नहीं प्राप्त होता॥ ३॥

**न सीदन्नापि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत्।**
**अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम्॥ ४॥**

—[मनु० ४.१७१]

यदि मनुष्य बहुत क्लेशित भी होय और धर्म के आचरण से भी बहुत दुःख पावै तो भी अधर्म में मन को प्रविष्ट न करै, क्योंकि अधर्म करने वाले मनुष्यों का शीघ्र ही विपर्यय अर्थात् नाश हो जाता है। ऐसा देखने में भी आता है। इससे मनुष्य अधर्म करने की इच्छा कभी न करै॥ ४॥

**नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।**
**शनैरावर्त्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥ ५॥**



—[मनु० ४.१७२]

जो पुरुष अधर्म करता है उसको उसका फल अवश्य होता है। जो शीघ्र न होगा, तो देर में होगा। जैसे कि गाय जिस समय उसकी सेवा करते हैं, उस समय दूध नहीं देती, किन्तु कालान्तर में देती है, वैसे ही अधर्म का भी फल कालान्तर में होता है। धीरे-धीरे जब अधर्म पूर्ण हो जायगा तब उसके करनेवालों का मूल अर्थात् सुख के कारणों को छेदन कर देगा। इससे वे दुःख सागर में गिरेंगे॥ ५॥

**अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।**
**ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥ ६॥**

—[मनु० ४.१७४]

जब मनुष्य धर्म को छोड़ के अधर्म में प्रवृत्त होता है, तब छल, कपट और अन्याय से पर-पदार्थों को हरण कर लेता है। हरण करके कुछ सुख भी करता है। फिर शत्रु को भी अधर्म, छल और कपट से जीत लेता है, परन्तु उसके पीछे जैसा मूल सहित वृक्ष उखड़कर गिर जाता है, वैसा मूल सहित उस अधर्म करनेवाला पुरुष का नाश हो जाता है॥ ६॥ इससे किसी मनुष्य को अधर्म करना न चाहिये। किञ्च—

**सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।**
**शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः॥ ७॥**

—[मनु० ४.१७५]

सत्य, धर्म और आर्य जो श्रेष्ठ मनुष्य हैं, उनमें और उनके आचरण में सदा स्थित हो, शौच, पवित्रता अर्थात् हृदय की शुद्धि और शरीरादिक पदार्थों की शुद्धि करने में सदा रमण करैं तथा अपने शिष्य, पुत्र और विद्यार्थियों की यथावत् धर्म से शिक्षा करैं और वाणी, बाहु, उदर इनका संयम करैं। अर्थात् वाणी से वृथा भाषण, बाहु से अन्यथा चेष्टा और उदर का संयम अर्थात् भोजन का बहुत लोभ न रक्खैं॥ ७॥

**न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः।**
**न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः॥ ८॥**

—[मनु० ४.१७७]

पाणि=हाथ, पाद अर्थात् पैर उनसे चपलता नाम चंचलता न करै तथा नेत्र से भी चपलता न करै। अनृजु अर्थात् अभिमान कभी न करै, सदा सरल होय और वाक् चपल न होवै अर्थात् बहुत न बोलै, जितना उचित हो, उतना ही भाषण करै। और पराये का द्रोह अर्थात् ईर्ष्या कभी न करै। और कर्म ही परम पदार्थ है, उपासना और ज्ञान कुछ भी नहीं, ऐसी बुद्धि कभी न करै, किन्तु कर्म से उपासना और उपासना से ज्ञान श्रेष्ठ है, ऐसी बुद्धि सदा रक्खै॥ ८॥

**येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।**
**तेन यायात्सताम्मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥ ९॥**

—[मनु० ४.१७८]

जिस मार्ग से उसके पिता और पितामह गये हों, उसी मार्ग से आप भी जावै। उस मार्ग पर जाने से मनुष्य नष्ट नहीं होता, किन्तु सुखी ही होता है और दुःख कभी नहीं पाता।

**पूर्वपक्ष**—यदि पिता और पितामह कुकर्मी होंय, तो भी उनकी रीति से चलना चाहिये वा नहीं?

**उत्तर**—नहीं, क्योंकि इसीलिये मनु भगवान् ने **सतामिति** विशेषण दिया है कि यदि पिता और पितामह सत्पुरुष अर्थात् धर्मात्मा होवैं तो उन की रीति से चलना चाहिए और यदि अधर्मी होवैं तो उनकी रीति से कभी न चलना चाहिये॥ ९॥

**ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।**
**बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः॥ १०॥**
**मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।**
**दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥ ११॥**

—[मनु० ४.१७९-१८०]

ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मातुल अर्थात् मामा, अतिथि, तथा संश्रित अर्थात् मित्र, बालक, वृद्ध, आतुर नाम दुःखी, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी अर्थात् श्वसुरादिक, बान्धव अर्थात् कुटुम्बी, माता, पिता, तथा दामाद,



भ्राता, पुत्र तथा भार्या अर्थात् स्त्री, दुहिता अर्थात् कन्या, दासवर्ग अर्थात् सेवक लोग इनसे विवाद कभी न करै और औरों से भी विवाद न करै। विवाद का करना दुःख मूल ही है, इससे सज्जनों को किसी से विरुद्ध वाद करना न चाहिये॥ ११॥

**प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गन्तत्र वर्जयेत्।**
**प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति॥ १२॥**

—[मनु० ४.१८६]

प्रतिग्रह लेने में समर्थ अर्थात् गुणवान् भी होय और उसको लोग देते भी होंय, तो भी किसी से दान न लेवै, किन्तु अध्यापन नाम पढ़ाना, याजन नाम यज्ञ का कराना अथवा अपने परिश्रम से आजीविका को करै और जो पुरुष प्रतिग्रह लेता है, उसका ब्राह्म तेज अर्थात् विद्या नष्ट हो जाती है, क्योंकि वह खुशामदी हो जायगा। इससे दान का लेना उचित नहीं॥ १२॥

**अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।**
**अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥ १३॥**

—[मनु० ४.१९०]

जो पुरुष तपस्वी और विद्वान् नहीं और प्रतिग्रह में रुचि रखता है, वह उसी दान के साथ पाप समुद्र में डूब मरेगा जैसे कोई पाषाण की नौका से समुद्र वा नदी को तरे, वह तरेगा तो नहीं परन्तु डूब के मर जायगा। वैसे ही प्रतिग्रह लेनेवाले मूर्ख की गति होगी॥ १३॥

**त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।**
**दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च॥ १४॥**

—[मनु० ४.१९३]

एक तो अविद्वान्, दूसरा वैडालव्रतिक तीसरा बकव्रतिक इन तीनों को तो जल का भी दान न देवै और जिसने विधि अर्थात् धर्म से धन का संचय किया होय, उस धन को तीनों को कभी न देवै। जो कोई दाता देगा उसको बड़ा पाप होगा, इसी लोक में उस दाता को बड़ा दुःख होगा और परलोक में उन तीन पुरुषों को बड़ा दुःख होगा, इस लोक में भी

होगा॥ १४॥

**यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्।**
**तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ॥ १५॥**

—[मनु० ४.१९४]

जैसे कोई पाषाण की नौका पर चढ़ के उदक में तरा चाहै, वह तर तो नहीं सकेगा, परन्तु डूब के मर जायगा। तैसे ही परीक्षा के विना दुष्टों को जो दान देता है और जो दुष्ट लेनेवाले हैं, वे सब अज्ञान के होने से अधोगति को जायेंगे अर्थात् दुःख और नरक को प्राप्त होंगे। उनको कभी कुछ सुख न होगा। इससे परीक्षा करके श्रेष्ठ और धर्मात्माओं ही को दान देना चाहिये, अन्य को नहीं॥ १५॥

वैडालव्रतिक और बकव्रतिक मनुष्यों का यह लक्षण है—

**धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।**
**वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥ १६॥**
**अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।**
**शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥ १७॥**

—[मनु० ४.१९५-१९६]

जो मनुष्य धर्मध्वजी अर्थात् धर्म तो कुछ न करै अथवा कुछ करै भी तो फिर अपने मुख से कहै कि मैं बड़ा पण्डित, वैराग्यवान्, योगी, तपस्वी और बड़ा धर्मात्मा हूँ, इसको धर्मध्वजी कहते हैं। जो बड़ा लोभी होय अर्थात् जो कुछ पावै सो भूमि में अथवा जहाँ-तहाँ रख छोड़े, खाने में भी लोभ करै और बड़ा कपटी, छली होय, लोगों को दम्भ का उपदेश करै अर्थात् जैसे कि सम्प्रदायी लोग उपदेश करते हैं कि तुलसी की माला धारण करने से वैकुण्ठ को जाता है और सब पापों से छूट जाता है। तथा रुद्राक्ष माला धारण करने से कैलास को जाता है और सब पापों से दूर हो जाता है। और गङ्गादिक तीर्थ, राम, शिवादिक नाम स्मरण और काश्यादिकों में मरण से मुक्ति हो जाती है। इस प्रकार के उपदेश करके दम्भ और अभिमान में लोगों को गिरा देते हैं और आप भी गिरे रहते हैं। इससे दुःख और बन्धन तो होगा ही और मुक्ति कभी न होगी, किन्तु



धर्माचरण, विद्या और ज्ञान इसके विना मुक्ति कभी नहीं हो सकती। **हिंस्रः** नाम रात दिन जिसका चित्त प्राणियों को पीड़ा देने में नित्य प्रवृत्त रहै, उसको **हिंस्र** कहते हैं। **सर्वाभिसन्धक** अर्थात् अपने प्रयोजन के लिये दुष्ट तथा श्रेष्ठों से मेल रक्खै, सो मेल धर्म से नहीं किन्तु अधर्म ही से धनादिक हरण करने के लिये प्रीति करै, उनको **सर्वाभिसन्धक** कहते हैं, यह वैडालव्रतिक का लक्षण है॥ १६॥

क्रोध के मारे वा कपट छल से **अधोदृष्टि** नाम नीचे देखता रहै, कोई जाने कि वह बड़ा शान्त और वैराग्यवान् है। **नैष्कृतिक** नाम यदि कोई एक कठिन वचन उसे कहै, उसके बदले में दस कठिन वचन उसको कहै तो भी उसकी शान्ति न होय उसको **नैष्कृतिक** कहते हैं। **स्वार्थसाधनतत्पर** अर्थात् अपने स्वार्थ साधन में ही तत्पर अर्थात् किसी को पीड़ा तथा हानि हो जाय और वह अपने स्वार्थ के आगे कुछ न गिनै। **शठ** अर्थात् मूर्ख जो हठ दुराग्रह से निर्बुद्धि होय और अन्य का उपदेश न मानैं उसको **शठ** कहते हैं। **मिथ्याविनीत** नाम विनय तथा नम्रता करै सो कुटिलता से करै, शुद्ध हृदय से नहीं, ऐसे लक्षण वाले को **वकव्रतिक** कहते हैं, अर्थात् जैसे बक नाम बकुला जल के समीप ध्यानावस्थित होके खड़ा रहता है और मत्स्य को देखता भी रहता है, जब मत्स्य उसके पेच में आता है, तब उस को उठा के खा लेता है। तथा जितने धूर्त पाखण्डी होते हैं, वे दूसरे का प्राण भी हरण कर लेते हैं, परन्तु उनको कभी दया नहीं आती। ऐसे ही जितने शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णवादिक सम्प्रदाय वाले हैं, इनमें कोई एक लाखों में अच्छा होता है, और सब वैसे ही होते हैं, इससे गृहस्थ लोग इनकी सेवा कभी न करैं॥ १७॥

**सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।**
**वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥ १८॥**

—[मनु० ४.२३३]

वारि नाम जल, अन्न, गाय, मही अर्थात् पृथिवी, वास नाम वस्त्र, तिल, कांचन नाम सुवर्ण, सर्पि नाम घी ८ इन सब दानों से ब्रह्म अर्थात् वेद विद्या का जो दान है सो सबसे श्रेष्ठ दान है, ऐसा श्रेष्ठ और दान नहीं

है, इससे सब गृहस्थों को अर्थ सहित वेद पढ़ने और पढ़ाने में शरीर, मन और धन से अत्यन्त पुरुषार्थ करना उचित है॥ १८॥

**धर्मं शनैस्सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः।**
**परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्॥ १९॥**

—[मनु० ४.२३८]

सब भूतों को पीड़ा के विना धीरे-धीरे धर्म का संचय मनुष्यों को करना उचित है जैसे कि चींटी धीरे-धीरे मिट्टी को बाहर निकाल के संचय कर देती है तथा धान्य कणों का भी धीरे-धीरे बहुत संचय कर देती है। वैसे ही मनुष्यों को धर्म का संचय करना उचित है क्योंकि धर्म ही के सहाय से मनुष्यों को सुख होता है और किसी के सहाय से नहीं॥ १९॥

**नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।**
**न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥ २०॥**

—[मनु० ४.२३९]

परलोक में सहाय के करने को पिता, माता, पुत्र तथा स्त्री, ज्ञाति नाम कुटुम्बी लोग कोई समर्थ नहीं है केवल एक धर्म ही सहायकारी है और कोई नहीं॥ २०॥

**एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।**
**एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥ २१॥**

—[मनु० ४.२४०]

देखना चाहिये कि जब जन्म होता है तब एक ही होता है और मरण होता है तो भी एक ही होता है। तथा सुख का भोग करता है तो एक ही करता है अथवा दुःख का भोग होता है तो एक ही करता है, इसमें संग किसी का नहीं। इससे सब मनुष्यों को यह उचित है कि अपना पालन वा माता पितादिकों का पालन धर्म ही से जितना धनादिक मिलै, उतने ही से व्यवहार और पालन करैं, अधर्म से कभी नहीं। क्योंकि—

**एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।**
**भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥**

—यह महाभारत [उद्योग ३३.४७] का श्लोक है।



इसका यह अभिप्राय है कि जो अधर्म करेगा, उसका फल वही भोगेगा और माता पितादिक सुख के भोग करने वाले तो हो जायेंगे, परंतु दुःख जो पाप का फल उसमें से भाग कोई न लेगा। किन्तु जिसने किया, वही पाप का फल भोगेगा और कोई नहीं॥ २१॥

**मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।**
**विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥ २२॥**

—[मनु० ४.२४१]

देखना चाहिये कि जब कोई मर जाता है तब काष्ठ वा लोष्ठ जैसा कि मिट्टी के ढेले को पृथिवी में फेंक के चले जाते हैं, वैसे मरे हुए शरीर को अग्नि वा पृथिवी में डाल के विमुख नाम पीठ करके कुटुम्बी लोग चले आते हैं, कुछ सहायता नहीं करते॥ २२॥

**तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।**
**धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥ २३॥**

—[मनु० ४.२४२]

तिससे नित्य ही सहाय के लिये धीरे-धीरे धर्म ही का संचय करैं, क्योंकि धर्म ही के सहाय से दुस्तर जो तम अर्थात् जन्म मरणादिक दुःखसागर का जो संयोग उसका नाश और मुक्ति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति और सर्व दुःख की निवृत्ति होती है अन्यथा नहीं॥ २३॥

**धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम्।**
**परलोकन्नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम्॥ २४॥**

—[मनु० ४.२४३]

जिस पुरुष को धर्म ही प्रधान है अधर्म में लेशमात्र भी जिसकी प्रवृत्ति नहीं तथा तप जो धर्म का अनुष्ठान है और पाप का त्याग इससे जिस का पाप नष्ट हो गया है, उसको वही धर्म परलोक अर्थात् स्वर्गलोक अथवा परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त कर देता है। वह किस प्रकार का शरीरवाला होता है, भास्वन्त अर्थात् तेजोमय वा ज्ञानयुक्त और आकाशवत् अदृष्ट, अच्छेद्य काटने वा दाह करने में न आवै, ऐसा उसका सिद्ध शरीर होता है जैसा कि योगियों का॥ २४॥

**दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन्।**
**अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः॥ २५॥**

—मनुस्मृति [४.२४६]

**दृढ़कारी** अर्थात् जो कुछ धर्म कार्य अथवा धर्मयुक्त व्यवहार को करै, सो दृढ़ ही निश्चय से करै। और **मृदु** अर्थात् अभिमानादिक दोष से रहित होय। **दान्त** अर्थात् जितेन्द्रिय होय और **क्रूराचार** अर्थात् जितने दुष्ट हैं उनका साथ कभी न करै, किन्तु श्रेष्ठ पुरुषों ही का संग करै। **दम** अर्थात् जिसका मन वशीभूत होय, **दान** अर्थात् वेदविद्या का नित्य दान करना और **अहिंस्र** अर्थात् किसी से वैर बुद्धि नहीं, ऐसा ही लक्षणवाला पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता है, अन्य नहीं॥ २५॥

**वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिस्सृताः।**
**तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः॥ २६॥**

—[मनु० ४.२५६]

जिस पुरुष की प्रतिज्ञा मिथ्या होती है अथवा जो मिथ्या भाषण करता है, उसने सब चोरी कर ली, क्योंकि वाणी ही में सब अर्थ निश्चित रहते हैं। केवल वचन ही व्यवहारों का मूल है, उस वाणी से जो मिथ्या बोलता है वह सब चोरी आदिक पापों को अवश्य करता है। इससे मिथ्या भाषण करना उचित नहीं॥ २६॥

**आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।**
**आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥ २७॥**

—[मनु० ४.१५६]

सत्पुरुषों के श्रेष्ठ आचार के करने से आयु, श्रेष्ठ प्रजा और अध्ययन प्राप्त होते हैं और पुरुष में जितने दुष्ट लक्षण हैं वे सब सत्पुरुषों के आचरण और संग करने से नष्ट हो जाते हैं और श्रेष्ठ लक्षण भी उसमें आ जाते हैं, इससे श्रेष्ठ ही आचार को करना चाहिये॥ २७॥

**दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।**
**दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥ २८॥**

—[मनु० ४.१५७]



दुष्ट आचार करनेवाला पुरुष लोक में निन्दित होता है निरन्तर दुःखी ही रहता है। अनेक काम क्रोधादिक हृदय के रोग और ज्वादिक शरीर के रोगों से शीघ्र मर भी जाता है, इससे दुष्टों का आचार कभी न करना चाहिये॥ २८॥

**यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।**
**यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः॥ २९॥**

—[मनु० ४.१५९]

जो-जो पराधीन कर्म होंय, उनको यत्न से छोड़ देवै और जो स्वाधीन होंय, उनको यत्न से कर्त्ता जाय॥ २९॥

**सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।**
**एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥ ३०॥**

—[मनु० ४.१६०]

जो-जो पराधीन कर्म हैं वे सब दुःख रूप ही हैं और जो-जो स्वाधीन कर्म हैं सो-सो सब सुख रूप हैं। सुख और दुःख का समास अर्थात् संक्षेप से यही लक्षण है, सो जान लेवें॥ ३०॥

**यमान्सेवेत सततं न नियमान्केवलान् बुधः।**
**यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान् भजन्॥ ३१॥**

—[मनु० ४.२०४]

यमों का निरन्तर सेवन करना चाहिये। वे यम पूर्व कह दिये हैं वहीं जान लेना और यमों को छोड़ कै पांच जो नियम हैं उनका सेवन न करैं। वे नियम ये हैं—

**शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।**

—यह योगशास्त्र का सूत्र है।

**शौच** नाम पवित्रता रात दिन नहाने धोने में लगा रहै। **सन्तोष** अर्थात् केवल आलस्य से दरिद्र बना रहै। **तप** नाम निरन्तर कुछ चांद्रायणादिकों में प्रवृत्त रहै। **स्वाध्याय** अर्थात् केवल पढ़ने और पढ़ाने ही में प्रवृत्त रहै, धर्मानुष्ठान अथवा विचार कभी न करै और **ईश्वर प्रणिधान** अर्थात् स्वार्थ के लिये ईश्वर की प्रसन्नता चाहै। ये अर्थ

व्यवहारों की रीति से पांच नियमों के किये गये।

और योगशास्त्र की रीति से नियमों के इस प्रकार के अर्थ हैं। मृत्तिका और जलादिकों से बाह्य शरीर की शुद्धि और शान्त्यादिकों के ग्रहण और ईर्ष्यादिकों के त्याग से चित्त की शुद्धता इसका नाम **शौच** है। धर्मयुक्त पुरुषार्थ करने से जितने पदार्थ प्राप्त होंय, उतने ही में संतुष्ट रहै और पुरुषार्थ का त्याग कभी न करै, इसका नाम **सन्तोष** है। क्षुधा, तृषा, शीत और उष्ण इत्यादिक द्वन्द्वों को सहै और कृच्छ्र, चांद्रायणादिक व्रत भी करै, इसका नाम **तप** है। मोक्ष शास्त्र अर्थात् उपनिषदों का अध्ययन करै, ओंकार के अर्थ का विचार और जप करै, उसका नाम **स्वाध्याय** है। पाप कर्म कभी न करै, यथावत् पुण्यकर्मों को करके सिवाय परमेश्वर की प्राप्ति के फल की इच्छा न करै, इसका नाम **ईश्वर प्रणिधान** है। इनको तो करता रहै, परन्तु यमों को न करै, उस को उत्तम सुख नहीं होता है, किन्तु यमों का करना, उसके साथ, गौण नियमों का भी करना ही उचित है और केवल नियमों का करना उचित नहीं।

ऐसे यथावत् विवाह करके गृहस्थ लोग वर्तमान करैं। यह जितनी विद्यावाली स्त्री और पुरुष द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पूर्वोक्त नियम से विवाह का विधान संक्षेप से लिख दिया।

और सब मनुष्यों के बीच में स्त्री और पुरुष जो मूर्ख होंय, उनका यज्ञोपवीत भी हुआ होय, तो उसको तोड़ के शूद्र कुल में कर दें। उनका परस्पर यथायोग्य विवाह भी होना चाहिये। वे सब द्विजों की सेवा करैं और द्विज लोग उनको अन्न वस्त्रादिक उनके निर्वाह के लिये देवैं।

और यह बात भी अवश्य होना चाहिये कि देश देशान्तर से विवाह का होना उचित है क्योंकि पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम देशों में रहने वाले मनुष्यों में परस्पर विवाह के करने से प्रीति होगी और देश देशान्तरों के व्यवहार भी जाने जायेंगे। बलादिक गुण भी तुल्य होंगे और भोजन व्यवहार भी एक ही होगा, इससे मनुष्यों को बड़ा सुख होगा। जैसे कि पूर्व दक्षिण देश की कन्या और पश्चिम उत्तर देश के पुरुषों से विवाह जब होगा और पश्चिम उत्तर देश के मनुष्यों की कन्या और पूर्व तथा दक्षिण



देश में रहने वाले पुरुषों से विवाह होगा, तब बलबुद्धि पराक्रमादिक तुल्य गुण हो जायेंगे। पत्र द्वारा और आने जाने से परस्पर प्रीति बढ़ेगी और परस्पर गुण ग्रहण होगा और सब देशों के व्यवहार सब देशों के मनुष्यों को विदित होंगे। परस्पर विरोध जो है सो नष्ट हो जायगा। इससे मनुष्यों को बड़ा आनन्द होगा।

**पूर्वपक्ष**—जैसे स्त्री मर जाती है, तब पुरुष का दूसरी वार विवाह होता है, वैसे स्त्री का पति मरने से विधवाओं का विवाह होना चाहिये वा नहीं?

**उत्तर**—विवाह तो न होना चाहिये, क्योंकि बहुत वार विवाह की रीति जो संसार में होगी तो, जब तक पुरुष के शरीर में बल होगा, तब तक वह स्त्री उसके पास रहेगी। जब निर्बल होगा, तब उसको छोड़ के दूसरे पुरुष के पास जायगी। जब दूसरा भी बल रहित होगा, तब वह तीसरे के पास जायगी। जब तीसरा भी बलरहित होगा तब चौथे के पास जायगी। ऐसी स्त्री जब तक वृद्धा न होगी, तब तक बहुत पुरुषों का नाश कर देगी। जैसे कि एक वेश्या बहुत पुरुषों को नष्ट कर देती है, वैसे सब स्त्री हो जायेंगी और विषदानादिक भी होने लगेंगे। इससे द्विज कुल में दो वार विवाह का होना उचित नहीं स्त्रियों का। और पुरुषों का भी बहुत विवाह होना उचित नहीं, क्योंकि पुरुषों को भी वीर्य की रक्षा करनी उचित है। जिससे शरीर में बल पराक्रमादिक भी मरण तक बने रहैं। और एक पुरुष बहुत स्त्री के साथ विवाह करता है, यह तो अत्यन्त दुष्ट व्यवहार है, इस को कभी न करना चाहिये। तथा कन्या और वर का पिता जो धन लेके विवाह करते हैं, यह भी अत्यन्त दुष्ट व्यवहार है जैसे कि आजकाल कान्यकुब्जों में है। बहुत गृहस्थ इससे दरिद्र हो जाते हैं। धन के नाश होने से दरिद्र लोग विवाह करने में बड़ा दु:ख पाते हैं। बहुत कन्या वृद्ध हो जाती हैं और विवाह के विना वृद्ध होके मर भी जाती हैं। इससे इस दुष्ट व्यवहार को छोड़ना उचित है। और बंगाले में कुलीन लोगों में बहुत स्त्रियों के साथ एक पुरुष विवाह कर लेता है। एक जो वह मर जाय तो एक के मरने से वे सब स्त्री विधवा हो जाती हैं, यह भी अत्यन्त

दुष्ट व्यवहार है इसको सज्जनों को छोड़ना ही चाहिये।

और जो विधवा हो जाती हैं, उनका कुछ आधार नहीं होने से भी बहुत अनर्थ होते हैं। वे कन्या बाल्यावस्था वा युवावस्था में विधवा हो जाती हैं बहुत दु:खी होती और वे कुकर्म भी करती हैं। बहुत गर्भहत्या और बालहत्या भी होती है इससे विधवाओं का पति के विना रहना भी उचित नहीं क्योंकि इससे बहुत अनर्थ होते हैं। इससे इस व्यवहार का रहना भी उचित नहीं। फिर क्या करना चाहिये कि प्रथम तो जब पूर्ण युवावस्था होय, तब विवाह होना चाहिये। जिससे कि विधवा भी बहुत न होंगी। फिर जब कोई विधवा होय, तब छः पीढ़ी अथवा अपने गोत्र और अपनी जाति में देवर अथवा ज्येष्ठ जो सम्बन्ध से होय, उससे विधवा का पाणिग्रहण होना चाहिये, परन्तु स्त्री की इच्छा से। जब जिस स्त्री का पति मर जाय और मरने का शोक भी निवृत्त हो जाय अर्थात् त्रयोदश दिवस के अनन्तर जब कुटुम्ब के श्रेष्ठ मनुष्य विधवा स्त्री के पास जाके उससे पूछें कि तेरी क्या इच्छा है? जो वह विधवा कहै कि मेरी इच्छा न सन्तान और न नियोग की है, तब तो वह स्त्री चांद्रायणादिक व्रत तथा परमेश्वर का ध्यान और धर्म का अनुष्ठान करै। ऐसे ही मरण तक धर्म का आचरण करै, दूसरे पुरुष का मन से भी चिन्तन न करै। और जो विधवा कहै कि मेरा पुत्र के विना निर्वाह न होगा, तब सब पुरुषों के साम्हने देवर या ज्येष्ठ का पाणिग्रहण करले। उससे एक वा दो पुत्र उत्पादन कर ले, अधिक नहीं। इसमें ऋग्वेद के मन्त्र का प्रमाण है—

**कुहस्विद्दोषा कुह वस्तो अश्विना कुहाभिपित्त्वङ्करतः कुहोषतुः।**
**को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्त्यं न योषा कृणुते सधस्थऽआ॥**

इसका यह अभिप्राय है कि स्त्री और पुरुष ये दोनों के प्रति प्रश्न की नांई कहा है। आप दोनों **दोषा** अर्थात् रात्रि कुह नाम कौन स्थान में वास करते भये और किस स्थान में **अश्वि** नाम दिवस में वास किया था। किस स्थान में इन दोनों ने **अभिपित्वं** अर्थात् प्राप्ति इन पदार्थों की की थी। इन दोनों का निवासस्थान किस देश में था और **शयुत्रा** नाम शयनस्थान इन दोनों का किस स्थान में है। यह दृष्टान्त भया। और इससे यह अभिप्राय



भी आया कि स्त्री और पुरुष का वियोग कभी न होना चाहिये। सब दिन, स्थान और सब देशों में संग ही संग रहैं। अब यह दृष्टान्त है कि जैसे विधवा देवर के साथ रात्रि दिवस, और प्राप्ति का करना, एक देश में वास एक स्थान में शयन और संग-संग रहती है और देवर को सधस्थ अर्थात् स्थान में **आकृणुते** अर्थात् स्वीकार करके रमण और सन्तानोत्पत्ति करती है, वैसे उन दोनों से भी वेदमन्त्र से पूछा गया। और देवर शब्द का निरुक्त में भी अर्थ लिखा है कि—

**देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते।**

देवर अर्थात् विधवा को दूसरा वर पाणिग्रहण करके होता है, उस पुरुष को **देवर** कहते हैं। इस निरुक्त से वर का बड़ा भाई अथवा छोटा भाई वा और कोई भी विधवा का जो दूसरा वर होय उसी का नाम **देवर** आया। इस मन्त्र से विधवा का नियोग अवश्य करना चाहिये, यह अर्थ आया। और मनुस्मृति में भी लिखा है—

**देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।**
**प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥ १॥**

—[मनु० ९.५९]

देवर अथवा छः पीढ़ी देवर वा ज्येष्ठ के स्थान में कोई पुरुष होय, उससे विधवा स्त्री का नियोग करना चाहिये और जिसका उस स्त्री के साथ नियोग भया, वह उस स्त्री के साथ गमन करै, परन्तु जिस स्त्री को सन्तान की इच्छा होय। और सन्तान के अभाव में भी नियोग का होना उचित है॥ १॥

**विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।**
**एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन॥ २॥**
**द्वितीयमेकप्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः।**
**अनिर्वृत्तं नियोगार्थम्पश्यन्तो धर्मतस्तयोः॥ ३॥**

—[मनु० ९.६०-६१]

जो विधवा के साथ नियुक्त होय, सो रात्रि के दोनों मध्य प्रहरों में घृत का शरीर में लेपन करके ऋतुमती विधवा को वीर्य प्रदान करै। मौन

करके अर्थात् बहुत मोहित होके क्रीड़ासक्त न होय, किन्तु सन्तानोत्पत्ति मात्र प्रयोजन रक्खै॥ २॥

कई एक आचार्य, ऋषि लोग ऐसा कहते हैं कि दूसरा भी पुत्र विधवा को होना चाहिये, क्योंकि एक पुत्र जो हो जाता है, उससे नियोग का प्रयोजन सब सिद्ध नहीं होता। ऐसे ही धर्म से विचार करके कहते हैं कि दो पुत्र का होना उचित है॥ ३॥

**विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि।**
**गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम्॥ ४॥**

—[मनु० ९.६२]

विधवा में नियोग का जो प्रयोजन कि दो पुत्र का होना सो विधिपूर्वक जब हो गया, उसके पीछे वह विधवा नियुक्त पुरुष को गुरुवत् मानै और वह पुरुष उस विधवा को पुत्र की स्त्री की नांई मानै अर्थात् फिर समागम कभी न करै। और जैसे कि पहिले सब कुटुम्बियों के सामने पाणिग्रहण किया था और नियम भी किया था कि जब तक दो पुत्र न होवैं, तब तक नियोग रहै वैसे फिर भी सब कुटुम्बियों के सामने दोनों कह देवैं कि हम लोगों का नियम पूर्ण हो गया, अब हम लोग वैसा काम न करेंगे॥ ४॥

**नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तेयातां तु कामतः।**
**तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ॥ ५॥**

—[मनु० ९.६३]

फिर जो वे दोनों विधि अर्थात् उस मर्यादा को छोड़ के कामातुर होके समागम करैं तो पतित हो जांय, क्योंकि ज्येष्ठ और कनिष्ठ इन दोनों को जैसे पुत्र की स्त्री से वा गुरु की स्त्री से गमन करने का पाप होता है वैसा ही पाप होता है, अर्थात् फिर कभी परस्पर कामक्रीड़ा न करैं॥ ५॥

**नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।**
**अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्॥ ६॥**

—[मनु० ९.६४]



उक्त प्रकार से भिन्न पुरुष के साथ विधवा का नियोग कभी न करैं। अपने कुटुम्ब ही में करैं जिससे स्त्री जहाँ की तहाँ बनी रहै और सन्तान से भी कुल की वृद्धि बनी रहै, क्षय कभी न होय। जो और किसी पुरुष के साथ नियोग करेंगे तो स्त्री हाथ से जायगी और सन्तान की हानि होने से कुल की भी हानि होगी। फिर जो कुल की वृद्धि करना सो सनातन धर्म नष्ट हो जायगा। इससे अपने ही कुटुम्ब में नियोग करना उचित है। इस बात की सज्जन लोग शीघ्र ही प्रवृत्ति करैं क्योंकि इसके विना विधवा लोगों को अत्यन्त दुःख होता है और बड़ा पाप होता है। संसार में इस बात के करने से यह दुःख और पाप कभी न होंगे॥ ५॥

**ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।**
**पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि॥ ६॥**

—[मनु० ९.५८]

ज्येष्ठ कनिष्ठ की स्त्री से तथा कनिष्ठ ज्येष्ठ की स्त्री से नियुक्त भी होवैं तो भी आपत्काल के विना अर्थात् दो पुत्र होने के पीछे जो गमन करैं तो पतित हो जांय। इससे आपत्काल ही में नियोग का विधान है॥ ६॥

**यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।**
**तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥ ७॥**

—[मनु० ९.६९]

जिस कन्या का पाणिग्रहण मात्र तो हो जाय और पति का समागम न होय तो उस स्त्री का देवर के साथ विवाह होना उचित है॥ ७॥

परन्तु इस प्रकार से दोनों विधान करैं—

**यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्।**
**मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ॥ ८॥**

—[मनु० ९.७०]

यथाविधि विधवा से देवर विवाह करके परस्पर ऋतु-ऋतु में एक-एक वार समागम करैं, परन्तु वह स्त्री शुक्लवस्त्रधारण करै परन्तु जिसका श्रेष्ठ आचार होय तब और जो दुष्टा होय तो नहीं॥ ८॥

**सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा।**

**पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥ ९॥**

—[मनु० ९.१७६]

जो स्त्री अक्षतयोनि अर्थात् विवाह तथा जाने आने मात्र व्यवहार तो हुआ हो, परन्तु पुरुष से समागम न भया होय, तो पौनर्भव पुरुष अर्थात् विधवा के नियोग से जो उत्पन्न भया होय, उसके साथ उस विधवा का विवाह ही होना उचित है॥ ९॥

यह विधवा नियोग का प्रकरण पूरा हो गया।

जो विधवा नहीं है और किसी प्रकार का आपत्काल है उनके लिये ऐसा विधान है कि जिसका पति परदेश चला जाय और समय के ऊपर न आवै, उस स्त्री के लिए इस प्रकार का विधान शास्त्र में है और पुरुष के लिये भी है—

**प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।**
**विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥ १०॥**

—[मनु० ९.७६]

जो पुरुष स्त्री को छोड़ के परदेश को जाय और जो धर्म के लिये ही गया हो तो आठ वर्ष पर्यन्त स्त्री पति की मार्ग प्रतीक्षा करै, और जो उस समय वह न आवै तो स्त्री पूर्वोक्त प्रकार से नियोग करके पुत्रोत्पत्ति करै, और जो पति बीच में आ जाय तो नियोग छूट जाय, जिससे विवाह किया गया था उसी के पास स्त्री रहै। और किसी उत्तम विद्या पढ़ने के लिये वा कीर्ति के लिये गया होय तो छः वर्ष तक प्रतीक्षा करै। तथा काम के लिये गया हो अर्थात् धन के लिये गया होय कि मैं धन ला के खूब विषय भोग करूंगा, उसकी तीन वर्ष तक स्त्री प्रतीक्षा करै। फिर उक्त प्रकार से नियोग करके पुत्रोत्पत्ति कर लेवै॥ १०॥

**संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः।**
**ऊर्द्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत्॥ ११॥**

—[मनु० ९.७७]

जो दुष्टता कर के स्त्री प्रतिकूल हो जाय अर्थात् अपने पिता वा भाई के पास रुष्ट होके चली जाय तो पति एक वर्ष पर्यन्त राह देखै। फिर दाय



अर्थात् जो कुछ स्त्री को गहनादिक दिया था, उसको लेके, उसका सङ्ग न करै अर्थात् दूसरा विवाह कर लेवै॥ ११॥

**मद्यपासाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्।**
**व्याधिता वाऽधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा॥ १२॥**

—[मनु० ९.८०]

जो स्त्री मद्य पीती होय, [दुराचारिणी होय] तथा विपरीत ही चलै कि आज्ञा को न मानै, व्याधि नाम रोगयुक्त हो जाय वा विषादिक दे के कोई मनुष्य को मार डालै और घर के पदार्थों को सदा नाश करती होय तो उस स्त्री को छोड़ के दूसरा विवाह कर लेवै॥ १२॥

**वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याऽब्दे दशमे तु मृतप्रजा।**
**एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥ १३॥**

—[मनु० ९.८१]

विवाह के पीछे ८ आठ वर्ष तक गर्भ न रहै, और वैद्यक शास्त्र की रीति से परीक्षा भी कर ले फिर अष्टमे वर्ष दूसरा विवाह कर ले। और वन्ध्या का यथावत् पालन करै, परन्तु समागम न करै। और जिसके सन्तान हो के मर जांय और एक भी न जीये तो १० में वर्ष दूसरा विवाह कर ले और उसको अन्न, वस्त्रादिक देवै। और जिस स्त्री से कन्या ही बहुत होवें, पुत्र एक भी न होय तो ग्यारहवें वर्ष दूसरा विवाह कर ले और उस स्त्री का पालन करै। जो दुष्ट स्त्री होय और अप्रिय वचन बोलै तो उसको शीघ्र ही छोड़ के दूसरा विवाह कर लेवै॥ १३॥

वैसा पुरुष भी दुष्ट हो जाय, तो स्त्री भी उसको छोड़ के धर्म से नियोग कर के पुत्रोत्पत्ति कर ले। और एक यह भी व्यवहार है, इसको जानना चाहिये कि अपने शरीर से पुत्र न होय अर्थात् रोग से वीर्यहीन हो गया हो अथवा पीछे किसी रोग से नपुंसक हो गया होय तो अपने स्वजाति के पुरुष से वीर्य लेके पुत्रोत्पत्ति करा लेवै, परन्तु धर्म से, व्यभिचार से नहीं। इसी प्रकार से १२ पुत्र मनुस्मृति में लिखे हैं, जिसको देखने की इच्छा होय सो देख लेवै।

नियोग में और क्षेत्रज्ञादिक पुत्रों के होने में महाभारत में दृष्टान्त भी

है जैसे कि चित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों जब मर गए, तब बड़े भाई जो व्यासजी उनके वीर्य से तीन पुत्र उत्पन्न करा लिये। एक धृतराष्ट्र, दूसरा पाण्डु, तीसरा विदुर ये तीन पुत्र सब संसार में प्रसिद्ध हैं। और युधिष्ठिर, भीम, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव ये पांच औरों के नियोग से उत्पन्न भये हैं, यह बात संसार में प्रसिद्ध है। इससे नियोग का करना और क्षेत्रजादि पुत्रों का होना शास्त्र की रीति और युक्ति से ठीक रहै। इसमें सब श्लोक मनुस्मृति के लिखे हैं।

**पूर्वपक्ष**—और स्मृति के श्लोक क्यों नहीं लिखे?

**उत्तरपक्ष**—अन्य स्मृतियों का वेदों से विरोध [है] और वैदिक ग्रन्थों में प्रमाण भी किसी का नहीं है। ऋषि मुनियों की भी कोई स्मृति नहीं, सिवाय मनुस्मृति के—

**यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः।**

—यह छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति है।

इसका यह अभिप्राय है कि जो कुछ मनुजी ने उपदेश किया है सो यथावत् वेदोक्त है और सत्य ही है जैसे कि रोग के नाश करने का औषध वैसा ही है। यह एक मनुस्मृति ही का [वैदिक ग्रन्थ] में प्रमाण मिलता है और किसी स्मृति का नहीं। और सब लोगों को भी यह बात सम्मत है कि—

**वेदार्थोपनिबन्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।**
**मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते॥**

इस श्लोक से सब पण्डित लोग कहते हैं कि मनुस्मृति के अनुकूल जो स्मृति उसको मानना चाहिये और उससे विरुद्ध किसी स्मृति का प्रमाण नहीं, सो एक बात में तो पण्डितों का और मेरा सम्मत हो गया, परन्तु एक बात में विरोध होता है कि मनु के अनुकूल स्मृतियों को वे मानते हैं और मैं नहीं मानता, क्योंकि मनुस्मृति के अनुकूल तो तब कोई स्मृति होगी जब मनुस्मृति के अर्थ को ही कहै। फिर मनुजी ने तो वह अर्थ कह दिया है, उसका कहना दूसरी वार व्यर्थ है, क्योंकि पीसे भये पिसान का जो पीसना सो व्यर्थ ही होता है। और मनुस्मृति में जो उपदेश करना



था सो सब कर दिया है, कुछ बाकी नहीं रक्खा। इससे भी अन्य स्मृति का होना व्यर्थ ही है। इस बात को पंडित लोग विचार कर लेवैं तो बहुत अच्छी बात है।

और महाभारत में भी जहाँ-जहाँ प्रमाण लिखा तहाँ-तहाँ मनुस्मृति ही का लिखा और किसी स्मृति का नहीं, इससे जाना जाता है कि मनुष्यों ने ऋषियों के नाम प्रमाण के वास्ते लिख-लिख के जाल अपने प्रयोजन के वास्ते बना लिया है। और जो यह बात कहते हैं कि **कलौ पाराशरी स्मृतिः,** सो तो अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि द्वापर के अन्त में व्यास ने मनुस्मृति का ही प्रमाण लिखा है सो क्यों लिखा? शङ्कराचार्य जी ने भी मनुस्मृति का ही प्रमाण लिखा है। और जो सत्य बात है उसका सब दिन प्रमाण होता है, इसमें कुछ शङ्का नहीं। इससे जो पुरुष कहते हैं कि **कलौ** में पाराशरी स्मृति का प्रमाण है सो मिथ्या बात है। और पाराशरी स्मृति के आरम्भ में यह बात लिखी है कि ऋषि लोगों ने व्यासजी के पास जाके पूछा—आप हम से वर्णाश्रम यथावत् कहैं। तब उनसे व्यास जी ने कहा कि मैं यथावत् वर्णाश्रम धर्मों को नहीं जानता, इससे मेरे पिता जो पराशर, उनसे चलके पूछें, वे सब धर्मों को यथावत् कहैंगे। फिर उनके पास जाके सब लोगों ने प्रश्न किया और पराशरजी उनसे कहने लगे। उसमें ही पराशर जी ने कहा कि **कलौ पाराशराः स्मृताः।** इसमें विचार करना चाहिये कि व्यास जी वेदादिक सब शास्त्र जानने वाले, वर्णाश्रम धर्म को क्या नहीं जानते थे, किन्तु अवश्य ही जानते थे। और पराशर अपने मुख से कैसे कहैंगे कि **कलौ** में पाराशर उक्त धर्मों को मानना। यह अयुक्त बात है और उसी में ऐसे-ऐसे अयुक्त श्लोक लिखे हैं कि कोई बुद्धिमान् उनका प्रमाण भी न करै। जैसे कि—

**पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।**
**निर्दुग्धा वापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी॥ १॥**
**अश्वालम्बङ्गवालम्बं संन्यासं पलपैतृकम्।**
**देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत्॥ २॥**
**नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।**

**पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ ३॥**

इनमें देखना चाहिये कि कुकर्मी जो है सोई पतित होता है, वह श्रेष्ठ कैसे होगा, कभी न होगा। और जितेन्द्रिय अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करनेवाला पुरुष है सो अश्रेष्ठ कैसे होगा, किन्तु कभी न होगा। और गाय तो पशु है, सो पशु की क्या पूजा करना उचित है, कभी नहीं। किन्तु उसकी तो यही पूजा है कि घास, जल इत्यादि से उसकी रक्षा करना, सो भी दुग्धादिक प्रयोजन के वास्ते, अन्यथा नहीं। और गधी की भी पूजा वैसी ही होती है जिसको प्रयोजन रहता है वह प्रयोजन के वास्ते करता ही है॥ १॥

और दूसरा श्लोक **अश्वालम्ब** नाम **अश्वमेध, गवालम्ब** नाम **गोमेध** और संन्यासग्रहण और विधवा से देवर के नियोग से पुत्रोत्पत्ति ये सब काल में करना चाहिये, इनका त्याग कभी नहीं। इनसे बड़ा संसार का उपकार है और कुछ पाप नहीं, इसके कहने से अजामेधादिकों का त्याग नहीं आया। अश्वमेध और गोमेध का जो करना उससे बड़ा संसार का उपकार है सो पहिले कह दिया। और संन्यास का त्याग करै तो अर्थात् पाखण्ड करेगा, जैसे कि वैरागी आदिक, उससे तो संसार की बड़ी हानि होती, इससे संन्यास का होना अवश्य है।

**यदन्नाः पुरुषा लोके तदन्नाः पितृदेवताः॥ १॥**

—यह महाभारत का वचन है।

**मधुपर्के तथा यज्ञे पित्र्यदैवतकर्मणि॥ २॥**

जो पदार्थ आप खाय उसी से पञ्च महायज्ञ करै अर्थात् पितृदेव पूजा भी उसी से करै अर्थात् श्राद्ध और होम, मधुपर्क विवाहादिक तथा गोमेधादिक यज्ञ उसी का करै॥ १॥ देवर वा ज्येष्ठ से नियोग का विधि लिख दिया सो वहीं जान लेना। कलि में इनको न करना, सो यह बात मिथ्या ही है॥ २॥

अर्थात् परदेश को पति चला गया होय तो स्त्री दूसरा पति करले, फिर जो पूर्व विवाहित पति आ जाय तो दोनों में बड़ा बखेड़ा होगा क्योंकि एक कहेगा मेरी स्त्री है दूसरा कहेगा मेरी स्त्री है। फिर क्या वे



आधी-आधी स्त्री को कर लें वा पारी लगा लें। सो इस प्रकार का कहना मिथ्या ही है और पांच प्रकार के आपत्काल से ही छठी आपत् आवैगी तो वह स्त्री क्या करैगी। इससे ये तीनों श्लोक मिथ्या ही हैं। वैसे ही पाराशरी में मिथ्या अयुक्त बहुत श्लोक कहे हैं और जो कोई सत्य है सो मनुस्मृति ही का है। इससे पाराशरी का प्रमाण करना सज्जनों को उचित नहीं। और जैसी पाराशरी का प्रमाण करना सज्जनों को उचित नहीं वैसी याज्ञवल्क्यादिक स्मृतियाँ है। इससे मनुस्मृति को छोड़ के और किसी का प्रमाण करना उचित नहीं। इस वास्ते जहाँ-जहाँ प्रमाण लिखा, वहाँ-वहाँ मनुस्मृति का लिखा गया।

जब जिस दिन स्त्री रजस्वला होय, उस दिन से लेके १६ सोलह दिन तक ऋतुकाल है। उन में से पहिले के चार दिन त्याज्य हैं और ११ ग्यारहवां और १३ तेरहवां दिन छोड़ देना और अमावस्या और पौर्णमासी भी त्याज्य है अर्थात् सोलह में से ८ दिन बाकी हैं। उनमें से भी छठवां, आठवां, दशवां और १२ वां दिन वीर्यदान करने में अच्छे हैं क्योंकि इन दिनों में स्त्री के शरीर की धातु सब स्वभाव से तुल्य वर्तमान रहती हैं और ५वां, ७वां और ९वां ये दिन मध्यम हैं, क्योंकि उस दिन स्त्री के धातुओं का अधिक बल होता है, सो पहिले ४ चार दिनों में वीर्यदान करेगा तो प्रायः पुत्र ही होगा अथवा कन्या होगी तो श्रेष्ठ ही होगी। और जो तीन दिनों में वीर्यदान करेगा तो प्रायः कन्या होगी और नपुंसक भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं। इससे ४ चार दिन अथवा ७ सात दिन वीर्य्य दान के उत्तम और मध्यम हैं, अन्य दिन में समागम करेगा, तो क्षीणबल सन्तान होगा। इससे ११ ग्यारहवां वा १३ तेरहवां, अमावस्या और पौर्णमासी इन में वीर्यदान करेगा तो वीर्य नष्ट हो जायगा और जो सन्तान होगा सो भी नष्ट होगा, रोग के होने से। क्योंकि उन दिनों में स्त्री की धातु विषम हो जाती है।

एक-एक मास में स्त्री स्वभाव से रजस्वला होती है, सो उक्त प्रकार के सोलह दिन के पीछे स्त्री का समागम भी न करै क्योंकि मिथ्या वीर्य नष्ट होगा और गर्भ कभी न रहेगा। इसमें मिथ्या वीर्य का नाश कभी न

करना चाहिये। जिस दिन से गर्भ होवै, उस दिन से लेके एक वर्ष तक स्त्री का त्याग करना अवश्य चाहिये, क्योंकि गर्भ का नाश और पुरुष का बल भी नष्ट हो जाता है, इससे एक वर्ष तक त्याग अवश्य करना चाहिये।

जो पुरुष पर स्त्री में अथवा वेश्या-गमन से वीर्य नाश करते हैं, वे बड़े मूर्ख हैं, क्योंकि उनका वीर्य मिथ्या ही जायगा और बड़े रोग होंगे। जो कभी गर्भ रहेगा तो भी उसको कुछ फल नहीं, क्योंकि जिसकी स्त्री है उसी का सन्तान होगा और वीर्य देनेवाले का नहीं। और वेश्या से जो पुत्र होगा, सो भडुवा ही होगा और जो कन्या होगी तो वह वेश्या ही होगी। इससे वीर्य देनेवालों को कुछ लाभ नहीं सिवाय हानि के। और रोग भी उनको बड़े-बड़े होते हैं, जिससे कि बड़ा दु:ख पाते हैं, क्योंकि जब पर-स्त्री गमन की इच्छा करता है अथवा जिस वक्त समागम करता है तब उसके हृदय में भय, शंका और लज्जा पूर्ण होती है कि इस कर्म को कोई न जानैं। जो कोई जानेगा तो मेरी दुर्दशा हो जायगी। एक तो यह अग्नि, दूसरा मैथुन का अग्नि और तीसरा चिन्ताग्नि कि रात दिन उसी चिन्ता से जलता जायगा, ये तीनों अग्नि से उसकी धातु सब दग्ध हो जाती हैं। इससे महारोगी होके मर जाता है और यह बड़ा पाप भी है, इससे मनुष्य वा स्त्री अल्पायु हो जाते हैं। और जो वेश्या गमन करता है, कुत्ता की नांई वह पुरुष है क्योंकि जैसे कुत्ता सब का जूंठ और छांट किये अन्न को खा लेता है, उसको घृणा नहीं होती, वैसे ही घृणा के न होने से सज्जन लोग उस पुरुष को कुत्ते के नांई जानैं। और जो व्यभिचारिणी स्त्री और वेश्या उनको भी कुत्ती की नांई जानैं, क्योंकि इन को भी घृणा नहीं होती है।

और देखना चाहिये कि माली और खेती करने वाले लोग अपने बाग में और अपने ही खेत में वृक्ष वा अन्न बोते हैं, अन्य के बाग वा क्षेत्र में नहीं। ये मूर्ख भी हैं तो भी पराए बाग वा खेत में कभी कुछ नहीं बोते।

और जो लौंडेबाजी करते हैं, वे तो सूवर वा कौवे की नांई हैं, क्योंकि जैसे सूवर वा कौवे विष्ठा से बड़ी प्रीति रखते हैं और अरुचि कभी नहीं करते, वैसे वे भी पुरुष विष्ठा जिस मार्ग से निकलती है, उस



मार्ग में बड़ी प्रीति रखते हैं, इससे इस प्रकार के जो मनुष्य हैं, वे मूर्ख से बढ़कर हैं कि वीर्य जो सब बीजों से उत्तम बीज है, उसको व्यर्थ नष्ट करते हैं और केवल पाप ही कमाते हैं। जो युक्ति से वीर्य के रखने में सुख होता है, उतना सुख लाख वक्त स्त्री के समागम से भी नहीं होता।

और जब ४८ वा ४४ वा ४० वा ३६ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम से वीर्य की रक्षा करैं, फिर जब पूर्ण बल शरीर में हो जाय और स्त्री भी ब्रह्मचर्य्याश्रम करके पूर्ण युवती हो जाय, तब जो उन दोनों को एक वार विषय भोग में सुख होता है, सो बाल्यावस्था में विवाह करने से लाख वक्त समागम में भी सुख नहीं होता और संतान भी रोगयुक्त, नष्ट-भ्रष्ट होते हैं।

जो ब्रह्मचर्याश्रम करनेवाले के सन्तान होंगे तो बड़े सामर्थ्यवान्, धनवान्, शूरवीर, विद्यावान् और सुशील ही होंगे। इससे वारंवार लिखने का यही प्रयोजन है कि ब्रह्मचर्याश्रम तथा विद्या के विना मनुष्य शरीर धारना ही नष्ट है। सदा धर्मयुक्त पुरुषार्थ से विद्या, धन तथा शरीर और नाना प्रकार के शिल्प इनों की वृद्धि ही करनी उचित है।

और स्त्री लोगों के छः दूषण हैं, उनको स्त्री लोग छोड़ दें और सब पुरुष छोड़ा देवैं।

**पानन्दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।**
**स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट्॥**

—यह मनु० [९.१३] का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि **पानं** अर्थात् मद्य और भंगादिक नशा का करना, **दुर्जनसंसर्ग** अर्थात् दुष्ट पुरुषों का संग होना, **पत्या विरह** अर्थात् पति और स्त्री का वियोग नाम स्त्री अन्य देश में और पुरुष अन्य देश में रहै। **अटन्** अर्थात् पति को छोड़ के जहाँ-तहाँ स्त्री भ्रमण करै, जैसे कि नाना प्रकार के मंदिरों में तथा तीर्थों में स्नान के वास्ते और बहुत पाखण्डियों के दर्शन के वास्ते, स्त्री का भ्रमण करना। **स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च** अर्थात् अत्यन्त निद्रा, अन्य के घर में स्त्री का सोना और अन्य के घर में वास करै। पति के विना और अन्य पुरुषों के संग का होना, ये छः अत्यन्त

दूषण स्त्रियों के भ्रष्ट होने के वास्ते हैं कि इन छः कर्मों से ही स्त्री अवश्य भ्रष्ट हो जायगी, इसमें कुछ संदेह नहीं। और पुरुषों के वास्ते भी ऐसे बहुत दूषण हैं—

**मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।**
**बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ १॥**

—[मनु० २.२१५]

माता और स्वसा अर्थात् भगिनी, दुहिता नाम कन्या इनके साथ भी एकान्त में निवास कभी न करै और अत्यन्त सम्भाषण भी न करै और नेत्र से उनका स्वरूप और उनकी चेष्टा न देखै। जो कुछ उन से कहना वा सुनना होय सो नीचे दृष्टि करके कहै वा सुनै। इससे क्या आया कि जितनी व्यभिचारणी स्त्री वा वेश्या और जितने वेश्यागामी वा पर-स्त्री-गामी पुरुष हैं, उनमें प्रीति वा सम्भाषण अथवा उनका संग कभी न करै। इस प्रकार के दूषणों से ही पुरुष भ्रष्ट हो जाता है क्योंकि यह जो इन्द्रियग्राम अर्थात् मन और इन्द्रियां ये बड़े प्रबल हैं। जो कोई विद्वान् अथवा जितेन्द्रिय वा योगी वे भी इस प्रकार के संगों से भ्रष्ट हो जाते हैं तो साधारण जो गृहस्थ वा मूर्ख वह तो अवश्य भ्रष्ट ही हो जायगा। इस वास्ते स्त्री वा पुरुष सदा इन दुष्ट सङ्गों से बचे रहैं। और जो स्त्रियों को अत्यन्त बन्धन में रखते हैं, यह भी बड़ा भ्रष्ट काम है, क्योंकि स्त्रियों को बड़ा दुःख होता है। श्रेष्ठ पुरुषों का तो दर्शन भी नहीं होता और नीच पुरुषों से भ्रष्ट हो जाती हैं।

देखना चाहिये कि परमेश्वर ने तो सब जीवों को स्वतन्त्र रचे हैं और उनको मनुष्य लोग विना अपराध से परतन्त्र अर्थात् बन्धन में रख देते हैं, वे बड़ा पाप करते हैं, सो इस बात को सज्जन लोग कभी न करैं। यह बात मुसलमानों के राज्य से प्रवृत्त भई है, आगे न थी। कुन्ती, गान्धारी और द्रौपद्यादिक स्त्रियां राजसभा में जहाँ कि राजा लोगों की सभा होती थी वहाँ वे भी बैठती थी तथा वार्ता, सम्भाषण भी करती थीं। अपने पति की पंखा और जलादिकों से सेवा भी करती थीं और गार्गी, मैत्रेयी इत्यादिक ऋषि लोगों की स्त्रियां भी सभा में शास्त्रार्थ करती थीं। यह बात महाभारत में तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखी है। इसको अवश्य करना चाहिये।



मुसलमान लोगों का जब राज्य भया था, तब जिस किसी की कन्या वा स्त्री को पकड़ लेते, और भ्रष्ट कर देते थे। उसी दिन से श्रेष्ठ आर्य्यावर्त देशवासी लोग स्त्रियों को घर में रखने लगे और स्त्री लोग भी मुख के ऊपर वस्त्र रखने लगीं, सो इस बात को छोड़ ही देना चाहिये, क्योंकि इस व्यवहार में सिवाय दुःख के सुख कुछ नहीं।

जैसे दाक्षिणात्य लोगों की स्त्रियाँ वस्त्र धारण करती हैं, वैसा ही पहिले था, क्योंकि कभी वस्त्र अशुद्ध नहीं रहता। सब दिन जैसे पुरुषों के वस्त्र शुद्ध रहते हैं, वैसे स्त्री लोगों के भी शुद्ध रहते हैं। इससे इस प्रकार का वस्त्र धारण करना उचित है।

स्त्री लोगों को पति की सेवा और तीर्थ के स्थान में सास, श्वसुर इन तीनों की सेवा जो है सोई स्त्री लोगों का उत्तम कर्म है। और अपने घर का कार्य करना और धनादिकों की रक्षा करना तथा सब कुटुम्ब में परस्पर प्रीति का होना, सब दिन विद्या और नाना प्रकार के शिल्पों की उन्नति स्त्री लोग करैं और पुरुष लोग भी घर में कलह न करैं। परस्पर प्रसन्न होके रहना, यही गृहस्थ लोगों का भाग्य और सुख की उन्नति है।

यह गृहस्थ लोगों की शिक्षा संक्षेप से लिख दी और जो विस्तार से देखना चाहैं सो वेदादिक सत्यशास्त्रों और मनुस्मृति में देख लेवैं।

इसके आगे वानप्रस्थ और संन्यासियों के विषय में लिखा जायगा॥

# पञ्चम उपदेश

## [ वानप्रस्थसंन्यासविधि ]

**ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्॥** —यह बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुति है।

इसका यह अभिप्राय है कि ब्रह्मचर्याश्रम अर्थात् यथावत् विद्याओं को पढ़के फिर गृहाश्रमी होय, फिर वानप्रस्थ होय और वानप्रस्थ होके संन्यासी होय, ऐसा क्रम है। कि इसमें जितने श्लोक लिखेंगे, वे सब मनुस्मृति ही के जान लें।

**एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।**
**वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः॥ १॥**

—मनु० [६.१]

इस प्रकार से विधिवत् गृहाश्रम में रह के स्नातक द्विज अर्थात् विद्या वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वानप्रस्थ होवैं। सो वन में जाके वास करैं। यथावत् निश्चय करके और जितेन्द्रिय होके। सो किस समय वानप्रस्थ होय कि॥ १॥

**गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपतिलमात्मनः।**



**अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥ २॥**

—मनु० [६.२]

जब गृहस्थ **वली** अर्थात् शरीर का चर्म ढीला हो जाय, **पलित** नाम केश श्वेत हो जायं और उसका पुत्र ब्रह्मचर्य से सब विद्याओं को पढ़के विवाह कर लेवै, फिर जब पुत्र का भी पुत्र होय तब वह गृहस्थ वन को चला जाय॥ २॥

**संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।**
**पुत्रेषु भार्यांन्निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥ ३॥**

—मनु० [६.३]

ग्रामों के जितने पदार्थ हैं उन सबों को छोड़ दे और श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वस्त्रादिक भी छोड़ दे, अर्थात् निर्वाह मात्र ले जाय, उसको भी छोड़ दे वन में जा के। अपनी स्त्री को पुत्र के पास रख दे अथवा स्त्री जो कहे कि सेवा के वास्ते मैं चलूंगी, तो संग में लेके वन को दोनों जायं। जो स्त्री कहै कि मैं पुत्रों के पास रहूँगी, तो उसको छोड़ के एकाकी जाय॥ ३॥

**अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।**
**ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥ ४॥**

—मनु० [६.४]

अग्निहोत्र की सब सामग्री अर्थात् कुण्ड और पात्रादिकों को लेके ग्राम से निकल के जितेन्द्रिय होके वन में वास करै॥ ४॥

**मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।**
**एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद्विधिपूर्वकम्॥ ५॥**

—मनु० [६.५]

**मुन्यन्न** नाम मुनियों के विविध जो अन्न सांवा का चावल जो कि वन में विना बोए होते हैं, वे मेध्य होते हैं, अर्थात् बुद्धि वृद्धि करनेवाले हैं उनसे, शाक जोकि पत्र और पुष्प, मूल नाम कन्द जोकि भूमि में से निकलते हैं और फल इनसे पूर्वोक्त पंचमहायज्ञों को विधिपूर्वक नित्य करै॥ ५॥

**वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा।**

**जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च॥ ६॥**

—मनु० [६.६]

मृगचर्म अथवा चीर जो कि वृक्षों के छाल से होता है उसको धारण करै शरीर की रक्षा के वास्ते। सायंकाल और प्रात:काल दो वेर स्नान करै। जटा, दाढ़ी, मोंछ, लोम और नख इन को नित्य धारण करै, अर्थात् गृहाश्रम में इन का धारण करना न चाहिये, सोई लिखा है॥ ६॥

**केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।**
**आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥ ७॥**

—मनु० [६.६५]

सोलह वर्ष में ब्राह्मण, २२ वर्ष में क्षत्रिय, २४ वर्ष में वैश्य और शूद्र भी दाढ़ी मोंछ और नख कभी न रखें, इससे यहाँ वानप्रस्थ के वास्ते धारण लिखा॥ ७॥

**यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद् बलिं भिक्षां च शक्तितः।**
**अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ८॥**

—मनु० [६.७]

जो आप भक्षण करै, उसी से पंचमहायज्ञ सामर्थ्य के अनुकूल करै। जल, मूल नाम कन्द, फल और भिक्षा इनसे अपने आश्रम में कोई अतिथि आवै, उसका भी सत्कार करै॥ ८॥

**स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।**
**दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥ ९॥**

—मनु० [६.८]

**स्वाध्याय** अर्थात् शास्त्र के विचार अथवा योगाभ्यास में नित्ययुक्त होय और **दान्त** नाम उदरता से सब इन्द्रियों को जीते, सब से मित्रता रक्खै, **समाहित** नाम शरीर और चित्त का समाधान रक्खै, अपने कर्म का भी समाधान रक्खै, नित्य औरों को देवै, आप किसी से न लेवै और सब जीवों के ऊपर कृपा रक्खै, पक्षेष्ट्यादिक भी यथावत् करै॥ ९॥

**न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्।**
**न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च॥ १०॥**



—मनु० [६.१६]

फालकृष्ट अर्थात् हल के जोतने से क्षेत्र में जो कुछ होता है उसको कभी न ग्रहण करै और खेत वा खरिहान में छूटा भया जो अन्न उसका भी ग्रहण न करै और जो ग्राम के मूल वा फल उन को ग्रहण कभी न करै॥ १०॥

**अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा।**
**अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा॥ ११॥**

—मनु० [६.१७]

**अग्निपक्वाशन** अर्थात् अग्नि में पका के खावै, कालपक्वभुग् अर्थात् जो अपने आप वृक्षों में फल पक जायं उनको खावै, **अश्मकुट्ट** अर्थात् पाषाण से कूट-कूट के फलादिकों को खाय, **दन्तोलूखलिक** नाम दांत तो मूसल की नांई और मुख उलूखल की नांई वैसे ही हाथ से फलादिक लेके मुख और दांतों से खा लेवै॥ ११॥

**सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा।**
**षण्मासनिचयो वा स्यात्समा निचय एव वा॥ १२॥**

—मनु० [६.१८]

**एक** तो यह दीक्षा है कि जितने से अपना निर्वाह होय उतना ही ले आवै। दूसरे दिन के वास्ते न रक्खै। **दूसरी** यह दीक्षा है कि मास भर के वास्ते फलादिकों का संचय कर लेवै अथवा छ: मास पर्यन्त का संचय कर लेवै, यह **तीसरी** दीक्षा है। चौथी दीक्षा यह है कि साल भर का संचय कर ले इत्यादिक बहुत वानप्रस्थ के वास्ते व्रत लिखे हैं॥ १२॥

**ग्रीष्मे पंचतपास्तु स्याद् वर्षास्वभ्रावकाशिकः।**
**आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयंस्तपः॥ १३॥**

—मनु० [६.२३]

ग्रीष्म नाम वैशाख ज्येष्ठ में जब सूर्य दश घंटा के ऊपर आवै तब चारों दिशाओं में अग्नि कर दे, आप बीच में बैठे, जब तक तीन बजै तब तक। और वर्षाकाल में मैदान में बैठे और अपने ऊपर छाया कुछ न रहै। शीतकाल में गीले वस्त्र धारण करै, इत्यादिक प्रकारों से अत्यन्त उग्र तप

करै क्योंकि विना तप अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता और इन्द्रियों का जय भी नहीं होता, इससे अवश्य तप करना चाहिये॥ १३॥

**अग्नीनात्मनि वैतानान् समारोप्य यथाविधि।**
**अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः॥ २४॥**

—मनु० [६.२५]

जब तप से मन और इन्द्रियां सब वशीभूत हो जायं, तब अग्नि आहवनीय, गार्हपत्य, दाक्षिणात्य, सभ्य और आवसथ्य यह पांच प्रकार का अग्नि होता है और वैतान अर्थात् इष्टियों की सामग्री और अग्निहोत्र की सामग्री उनकी बाह्यक्रिया को छोड़ दे, क्योंकि जितनी बाह्य क्रिया हैं, वे मन की शुद्धि के लिये हैं, सो जब मन शुद्ध हो जाय, तब उनके करने का कुछ प्रयोजन नहीं, किन्तु केवल भीतर की जो क्रिया अर्थात् योगाभ्यास और विचार, इन्हीं को करै॥ १४॥

**अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।**
**शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः॥ १५॥**

—मनु० [६.२६]

शरीर वा इन्द्रियों के सुख की कुछ इच्छा न करै, किन्तु उनका त्याग ही करै और ब्रह्मचारी रहै अर्थात् अपनी स्त्री संग में भी होय तो भी उससे संग कभी न करै। किन्तु स्त्री तो वन में सेवा के वास्ते ही है। और भूमि में शयन करै। शरण अर्थात् जहाँ-जहाँ रहै अथवा बैठे, उस में ममता कि यह मेरा ही है, ऐसा अभिमान कभी न करै, किञ्च वहाँ से कोई उठा दे, तो उठ के चला जाय, दूसरी जगह जा के बैठे। क्रोधादिक कुछ भी न करै, किन्तु प्रसन्न ही रहै॥ १५॥

**तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत्।**
**गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु॥ १६॥**

—मनु० [६.२७]

वन में अन्य जितने वानप्रस्थ लोग होवें, उनसे अपने निर्वाह मात्र भिक्षा करले, अधिक नहीं। अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों गृहाश्रमी वन में रहते होवैं, उनसे अपने निर्वाहमात्र भिक्षा कर ले॥ १६॥



**ग्रामादाहृत्य वाश्नीत्यादष्टौ ग्रासान्वने वसन्।**
**प्रतिगृहापुटेनैव पाणिना शकलेन वा॥ १७॥**

—मनु० [६.२८]

जब दृढ़ जितेन्द्रिय हो जाय तो भी वन में रहे, परन्तु कभी-कभी ग्राम में चला आवै, भिक्षा करने के वास्ते। अपने दो हाथ वा एक हाथ में जो गृहस्थों को घर में अन्न भया होय, उसको प्रीति से जितना कोई देवै, उतना ले लेवै, परन्तु आठ ग्रास मात्र ले, फिर उसको लेके वन में चला जाय। जहाँ कि जल होय, वहाँ बैठ के आठ ग्रास खाले, अधिक नहीं॥ १७॥

**एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।**
**विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः॥ १८॥**
**ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः।**
**विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये॥ १९॥**

—मनु० [६.२९-३०]

इन दीक्षाओं को और अन्य दीक्षाओं को भी वन में रहता भया वह वानप्रस्थ सेवन करै। नाना प्रकार की जो उपनिषदों की श्रुति उनको आत्मज्ञान अर्थात् ब्रह्मविद्या के वास्ते नित्य विचारै॥ १८॥

ऋषियों ने अर्थात् यथावत् वेदमन्त्रों के अर्थ जाननेवाले और ब्राह्मणों ने अर्थात् ब्रह्मविद्या के जाननेवालों ने और गृहस्थों ने अर्थात् पूर्ण विद्यावाले धर्मात्माओं ने जिन श्रुतियों का सेवन किया होय, उनको नित्य योगाभ्यास और ज्ञानदृष्टि से विचार करैं क्योंकि विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और तप अर्थात् योगसिद्धि इन की वृद्धि के और शरीर की शुद्धि के वास्ते अर्थात् दशेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन १९ तत्त्वों के मिलने से लिंग शरीर कहाता है, इसके शुद्धि के वास्ते॥ १९॥

**आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम्।**
**वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते॥ २०॥**

—मनु० [६.३२]

इन महर्षियों की क्रियाओं के मध्य किसी क्रिया को करके शरीर

छूट जाय तो भी वह विद्वान् शोक भयादिक दुःखों से छूट के ब्रह्मलोक अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति अथवा उत्तम स्वर्ग की प्राप्ति उसे होती है॥ २०॥

**वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।**
**चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत्॥ २१॥**

—मनु० [६.३३]

इस प्रकार से वानप्रस्थाश्रम को यथावत् आयु के तीसरे भाग को समाप्ति पर्यन्त वनों में विहार कर के जब आयु का चतुर्थ भाग अर्थात् ७० सत्तर वर्ष के ऊपर आयु के चतुर्थभाग में सब संगों को अर्थात् स्त्री, यज्ञोपवीत, शिखादिक को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् सब देशान्तर में भ्रमण करै। किसी पदार्थ में मोह वा पक्षपात कभी न करै। वह स्त्री अपने पुत्रों के पास चली जाय अथवा वन में तपश्चर्या करै॥ २१॥

इसमें कोई शंका करै कि यज्ञोपवीतादिक चिह्नों के छोड़ने से क्या होता है अर्थात् इनको न छोड़ना चाहिये।

**उत्तर**—अच्छा यज्ञोपवीतादिक चिह्नों के रखने से क्या होता है?

**पूर्वपक्ष**—यज्ञोपवीतादिकों से द्विज देख पड़ता है और विद्या के चिह्न से विद्या की परीक्षा भी होती है।

**उत्तर**—कि जब संसार के व्यवहार और अग्नि होत्रादिक बाह्यक्रिया जिनमें उपवीति, निवीति और प्राचीनवीति यज्ञोपवीत से क्रिया करनी होती हैं, उन अग्निहोत्र, बाह्यक्रियाओं को तो छोड़ दिया और कहीं प्रतिष्ठा विद्या से करानी उसको नहीं, फिर यज्ञोपवीतादिक का रखना उसको व्यर्थ ही है। इसमें यह प्रमाण है—

**प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्॥**

—यह यजुर्वेद के ब्राह्मण की श्रुति है।

इसका यह अभिप्राय है कि प्राजापत्य इष्टि को करके उसमें सर्ववेदस **वेदस विद्ऌ लाभे** जो-जो यज्ञोपवीतादिक बाह्यचिह्न प्राप्त हुये थे, उन सभों को **हुत्वा** नाम **त्यक्त्वा** अर्थात् छोड़ के ब्राह्मण विद्या, ज्ञानवान् तथा वैराग्य इत्यादिक गुणवाला **परिव्रजेत् परितः सर्वतः व्रजेत्** सब संसार के बन्धनों से मुक्त होके संन्यासी हो जाय।



**लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चोत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।** —यह बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुति है।

इसका यह अभिप्राय है कि **लोकैषणा** अर्थात् लोक के जन निन्दा करैं वा स्तुति करैं और अप्रतिष्ठा करैं, तो भी जिसके चित्त में कुछ हर्ष और शोक न होय और जितने लोक के विषय भोग हैं, स्त्री, धन, हस्त्यश्वचन्दनादिक इनसे उठके अर्थात् इनको तुच्छ जान के जैसे वे हर्ष शोक के देने वाले हैं वैसे यथावत् समझ के सत्यधर्म्म और मुक्ति अर्थात् सब दुःखों की निवृत्ति और परमेश्वर की प्राप्ति इन में स्थिर हो के आनन्द में रहै और किसी का पक्षपात अथवा किसी से भय कभी न करै।

**वित्तैषणा** अर्थात् धन की इच्छा और धन की प्राप्ति में प्रयत्न और लोभ कि मुझको धन अधिक होय और जितने धनाढ्य हैं उनसे धन प्राप्ति के वास्ते बहुत प्रीति करै, द्रव्य को बड़ा पदार्थ जान के संचय करना और दरिद्रों से धन के नहीं होने से प्रीति का न करना और धनाढ्यों की स्तुति करना, इन सब बातों का जो छोड़ना उसका नाम वित्तैषणा का त्याग है।

**पुत्रैषणा** अर्थात् अपने पुत्रों में मोह का करना वा जो सेवक लोग हैं उनसे मोह अर्थात् प्रीति करना और उनके सुख में हर्ष का होना और उनके दुःख में शोक का होना, उसका पुत्रैषणा नाम है।

**एषणा** नाम इच्छा का तीन पदार्थों में होना, इन तीनों एषणाओं से जो बद्ध नहीं है, वही संन्यासी होता है। और पक्षपात रहित भी संन्यासी यथावत् होता है, क्योंकि जितने ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हैं, उनको बहुत व्यवहारों के होने से बुद्धिमान् होय तो भी भय, शंका और लज्जा कुछ किसी व्यवहार में रहती ही है। और जो संन्यासी होता है उसको किसी संसार सम्बन्धी व्यवहार का करना आवश्यक नहीं वा किसी मनुष्य से शंका, लज्जा, भय और पक्षपात कभी नहीं होता।

**आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।**
**भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्द्धते॥ २२॥**

—मनु० [६.३४]

आश्रम से आश्रम को जाके अर्थात् क्रम से ब्रह्मचर्याश्रमादिक तीनों

को करके, यथावत् अग्निहोत्रादिक यज्ञों को करके जितेन्द्रिय जब हो जाय, भिक्षा दे दे और बलि अर्थात् बलिवैश्वदेव करके परिश्रान्त अत्यन्त श्रमयुक्त जब होय, तब संन्यास ले, तो उसका संन्यास यथावत् बढ़ता जाय, खंडित न होय॥ २२॥

**ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।**
**अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः॥ २३॥**

—मनु० [६.३५]

तीन ऋण अर्थात् ऋषि, पितृ और देवऋण इनको [दूर] करके मोक्ष के वास्ते संन्यास में चित्त प्रविष्ट करै और इन तीनों को [दूर] न करके जो संन्यास की इच्छा करता है, सो नीचे गिर पड़ता है, उसको मोक्ष नहीं प्राप्त होता॥ २३॥ वे कौन तीन ऋण हैं—

**अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रानुत्पाद्य धर्मतः।**
**इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥ २४॥**

—मनु० [६.३६]

विधिवत् अर्थात् उक्त प्रकार से ब्रह्मचर्याश्रम को करके सब वेदों को पढ़ै अर्थ सहित तथा अङ्ग, उपवेद और छः शास्त्र सहित पढ़ै। फिर पढ़के यथावत् पढ़ावै, क्योंकि विद्या का लोप इस प्रकार से कभी न होगा, यह **प्रथम ऋषि ऋण** है, इसमें जप और संध्योपासन भी जान लेना। सब मनुष्यों के ऊपर यह परमेश्वर की आज्ञा है कि ब्रह्मचर्याश्रम से विद्याओं को पढ़ना और पढ़ाना इसके विना सब आश्रम नष्ट हैं, जैसे कि मूल के विना वृक्ष नष्ट हो जाता है।

उक्त प्रकार से पुत्रों को शिक्षा धर्म की, विद्या पढ़ने और पढ़ाने की करै। अपनी कन्या अथवा अपना पुत्र विद्या के विना कभी न रहै। सब श्रेष्ठ गुणवाले होवैं, ऐसा कर्म माता-पिता को करना उचित है। और जो अपने सन्तानों को श्रेष्ठ गुणवाले न करेंगे, तो उन माता-पिताओं ने बालक को जैसा मार डाला। फिर मारना तो अच्छा, परन्तु मूर्ख रखना अच्छा नहीं। इसी में उक्त प्रकार से तर्पण और श्राद्ध भी जान लेना यह **दूसरा पितृऋण** है।



**[ तीसरा देवऋण ]** फिर गृहाश्रम में यथावत् अग्नि होत्रादिकों का अनुष्ठान करै, जिससे कि सब संसार का उपकार होय, इससे उसका भी बड़ा उपकार है अर्थात् पुण्य से सुख पाता है सो इन तीन ऋणों को उतार के मोक्ष अर्थात् संन्यास करने में चित्त देवैं, अन्यथा नहीं॥ २४॥

**अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।**
**अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः॥ २५॥**

—मनु० [६.३७]

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेदों को न पढ़के यथावत् धर्मों से पुत्रों का उत्पादन भी न करैं, अग्निहोत्रादिक यज्ञ भी न करैं, फिर जो मोक्ष अर्थात् संन्यास की इच्छा करै, संन्यास तो उसका न होगा, किन्तु संसार में ही गिर पड़ेगा॥ २५॥

**एक बात** तो संन्यास के क्रम की हो गई। **दूसरी यह बात** है कि—

**प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।**
**आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्॥ २६॥**

—मनु० [६.३८]

प्राजापत्य इष्टि का सब यथावत् निरूपण करके उसमें सर्ववेदस अर्थात् यज्ञोपवीतादिक जितने चिह्न प्राप्त भये थे उनको दक्षिणा में देके और पूर्वोक्त पांच अग्नियों को आत्मा में समारोपण करके ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् वानप्रस्थ को भी न करै अर्थात् गृहाश्रम ही से संन्यास ले लेवै॥ २६॥

**यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।**
**तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥ २७॥**

—मनु० [६.३९]

जो सब भूतों को अभयदान अर्थात् ब्रह्म विद्या दान देके घर से ही संन्यास लेता है, तिसको तेजोमय लोक प्राप्त होता है, अर्थात् परमेश्वर ही प्राप्त होते हैं, फिर कभी जन्ममरण में वह पुरुष नहीं आता। सदा आनन्द में परमेश्वर को प्राप्त होके रहता है॥ २७॥

**आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः।**
**समयोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत्॥ २८॥**

—मनु० [६.४१]

**आगार** अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम से भी संन्यास लेले, परन्तु **अभिनिष्क्रान्त** जब अन्तर्मुख मन हो जाय कि विषय सेवा की इच्छा थोड़ी भी न होय और पवित्र गुणों से अर्थात् शमदमादिकों से **उपचित** नाम जब युक्त होय और **मुनि** अर्थात् मननशील, सत्य-सत्य विचार वाला होय और सब कामों को जीत ले, कोई काम उसके मन को अधर्म में न लगा सके। स्थिर चित्त होय **निरपेक्ष** किसी संसार के पदार्थ की सिवाय परमेश्वर की प्राप्ति के अपेक्षा न होय, तब ब्रह्मचर्याश्रम से भी संन्यास लेवै तो भी कुछ दोष नहीं॥ २८॥

इसमें श्रुतियों का भी प्रमाण है—

**यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा॥ १॥**

**ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्॥ २॥**

—यह यजुर्वेद के ब्राह्मण की श्रुति है।

इसका यह अभिप्राय है कि जिस दिन पूर्ण वैराग्य होय, उसी दिन संन्यासी हो जाय। वानप्रस्थाश्रम अथवा गृहाश्रम से और जब पूर्णविद्या और पूर्ण वैराग्य और पूर्णज्ञान और विषय भोग की इच्छा कुछ भी न होय, तो ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास ले लेवै तो भी कुछ दोष नहीं।

**पूर्वपक्ष**—यह बात परमेश्वर की आज्ञा से विरुद्ध है क्योंकि परमेश्वर का अभिप्राय प्रजा की वृद्धि करने में जाना जाता है और प्रजा की हानि में नहीं। जो कोई संन्यास लेगा सो विवाह न करेगा, इससे संसार की वृद्धि न होगी, इस वास्ते संन्यास का लेना उचित नहीं। जब तक जिये तब तक गृहाश्रम में रह के संसार के व्यवहार और शिल्प विद्याओं की उन्नति करै, इससे संन्यास का करना उचित नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या पढ़के गृहाश्रम ही में रहना उचित है।

**उत्तरपक्ष**—ऐसा कहना उचित नहीं, क्योंकि ब्रह्मचर्याश्रम न होगा तो विद्या की उन्नति न होगी और गृहाश्रम न करने से आगे मनुष्य की उत्पत्ति संसार का व्यवहार ये सब नष्ट हो जायेंगे और वानप्रस्थ के न होने से मन भी शुद्ध न होगा और संन्यास के न होने से सत्यविद्या और



सत्योपदेश की उन्नति न होगी। पाखंड और अधर्म का खण्डन भी न होगा। इससे संसार की उन्नति का नाश होगा, क्योंकि ज्ञान की वृद्धि होने से सब सुखों की वृद्धि होती है, अन्यथा नहीं। इसमें देखना चाहिए कि ब्रह्मचारी को पढ़ने से रातदिन अवकाश ही नहीं रहता और गृहस्थ को भी बहुत व्यवहार के होने से चित्त फंसा ही रहता है और वानप्रस्थ का तप ही में चित्त रहता है और कुछ विचार भी करता है। जो संन्यासी होगा, वह विचार के विना अन्य व्यवहारहीन रहेगा। इससे पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का यथार्थ विचार करके औरों को भी उपदेश करेगा। सब देशों में भ्रमण करेगा, इससे सब देशों के मनुष्यों को उस के संग और सत्य उपदेश के सुनने से बड़ा लाभ होगा। जो गृहस्थ होगा, उसका जहाँ-जहाँ घर है, वहाँ-वहाँ प्रायः रहेगा, अन्यत्र भ्रमण न कर सकेगा। इससे संन्यासी का होना भी उचित है।

परमेश्वर न्यायकारी है और विद्या की उन्नति भी चाहता है, जिसको विषय भोग की इच्छा न होगी, उसको परमेश्वर कैसे आज्ञा देंगे कि तू विवाह कर। जैसे कि कोई पुरुष को रोग कुछ नहीं, उससे वैद्य कहै कि तूँ कुछ औषध खा, वह औषध क्यों खायगा और जिसको भोजन करने की इच्छा न होय, उसको कोई बल से कहे कि तूं अवश्य भोजन कर, तो वह विना क्षुधा के भोजन कैसे करेगा, किन्तु कभी न करेगा। ऐसे ही जिसको विषय भोग और संसार के व्यवहारों की इच्छा नहीं, वह विवाह और संसार के व्यवहार कैसे करेगा, कभी न करेगा। संसार के जनों से कुछ प्रयोजन न होने से सबके मुख पर सत्य ही कहेगा। अपने सामने जैसा राजा, वैसी ही प्रजा को समझेगा। इस वास्ते जिस पुरुष को विद्या, ज्ञान, वैराग्य, पूर्ण जितेन्द्रियता होय और विषय भोग की इच्छा न होय, उसी को संन्यास लेना उचित है अन्य को नहीं।

जैसे कि आजकाल आर्यावर्त्त देश में बहुत से सम्प्रदायी लोग हो गये हैं, वे केवल धूर्त्तता से पराया धन हरण कर लेते हैं और पराई स्त्री को भ्रष्ट कर देते हैं। और मूर्खता तथा पक्षपात के होने से मिथ्या उपदेश करके मनुष्यों की बुद्धि नष्ट कर देते हैं और अधर्म में प्रवृत्त करा देते हैं। इससे

इनका तो बन्द ही होना उचित है क्योंकि इनके होने से संसार का बहुत अनुपकार होता है।

**कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता।**
**समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तलक्षणम्॥ २९॥**

—मनु० [६.४४]

कपाल अर्थात् भिक्षापात्र, वृक्ष के जड़ में निवास और कुत्सित वस्त्र, [किसी से सहायता न ले] और सबके ऊपर समबुद्धि, न किसी से प्रीति और न किसी से वैर, यह मुक्त पुरुष अर्थात् संन्यासी का लक्षण है॥ २९॥

**नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।**
**कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा॥ ३०॥**

—मनु० [६.४५]

जो संन्यासी होय सो मरने और जीने में शोक वा हर्ष न करै किन्तु काल की प्रतीक्षा किया करै, जब मरण समय आवै, तब शरीर छोड़ दे, शरीर से मोह कुछ न करै। जैसा कि छोटा नौकर स्वामी की आज्ञा जब होती है, तभी वह काम करने लगता है, जहाँ कहै, वहाँ चला जाता है। तथा संन्यासी किसी पदार्थ से सिवाय परमेश्वर के मोह वा प्रीति न करै॥ ३०॥

**दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।**
**सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥ ३१॥**

—मनु० [६.४६]

इसका अर्थ तो पहिले कर दिया है, परन्तु संन्यास धर्म के प्रकरण में लिखने का यह प्रजोजन है कि बहुत लोग कहते हैं कि संन्यासी किसी को उपदेश न करै। इनसे पूछना चाहिए कि **सत्यपूतां वदेद्वाचं** सत्य अर्थात् प्रमाण और विचार से यथावत् निश्चय करके सत्य-सत्य उपदेश करै। सब विद्या से जो पूर्ण विद्वान् संन्यासी सो तो उपदेश न करै और जितने पाखण्डी मूर्ख लोग हैं वे उपदेश करैं, तभी तो संसार का सत्यानाश होता है। जितने मूर्ख पाखण्डी उनका तो ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि वे उपदेश ही न करने पावैं और जितने विद्वान् संन्यासी लोग हैं, वे सदा



उपदेश किया करैं, अन्य कोई नहीं। अन्यथा मूर्ख पाखण्डियों के उपदेश से देश का नाश होता है, जैसे कि आजकाल आर्यावर्त्त देश की अवस्था भई है॥ ३१॥

**क्रुध्यन्तं प्रति न क्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।**
**सप्त द्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतां वदेत्॥ ३२॥**

—मनु० [६.४८]

जो कोई क्रोध करै, उससे संन्यासी क्रोध न करै और कोई निन्दा करै उसको भी कल्याण का उपदेश करै। किञ्च सप्तद्वार मुख, नासिका के दो छिद्र, दो छिद्र आंख के और कान के इन सात द्वारों में जो वाणी विखर रही है, उससे मिथ्या कभी न कहै, अर्थात् संन्यासी सदा सत्य ही बोलै॥ ३२॥

**क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।**
**विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥ ३३॥**

—मनु० [६.५२]

केश सिर के सब बाल, नख और श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी मोंछ इनको कभी न रक्खै अर्थात् छेदन करा देवै, पात्री एक ही पात्र रक्खै और एक ही दंड रक्खै। इससे तीन दण्डों का धारना पाखण्ड ही है जैसा कि चक्रांकितों का। कुसुंवा रंग से रंगे वस्त्र पहिरैं और गेरु के वा मृत्तिका के रंगे नहीं, अथवा श्वेत वस्त्र धारण करैं। निश्चयबुद्धि होके सब भूतों से राग द्वेष छोड़ के, अपने ब्रह्मानन्द में विचरै॥ ३३॥

**एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे।**
**भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति॥ ३४॥**

—मनु० [६.५५]

एक वेर भिक्षा करै, अत्यन्त भिक्षा में आसक्त न होय, क्योंकि जो भोजन में आसक्त होगा, सो विषय में भी आसक्त होगा॥ ३४॥

**विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।**
**वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्॥ ३५॥**

—मनु० [६.५६]

जब गांव में धूम न देख पड़े, मूसल वा चक्की का शब्द न सुन पड़े, किसी के घर में अंगार न देख पड़े, सब गृहस्थ लोग भोजन कर चुकें और भोजन करके पत्री और सकोरे बाहर फेंक देवैं, उस समय संन्यासी गृहस्थ लोगों के घर में भिक्षा के वास्ते नित्य जायं। और जो ऐसा कहते हैं कि हम पहले ही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखण्ड ही जानना, क्योंकि गृहस्थ लोगों को पीड़ा होती है और जो विरक्त होके वैरागी आदिक अपने हाथ से लेके करते हैं, वे बड़े पाखण्डी हैं॥ ३५॥

**अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत्।**
**प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः॥ ३६॥**

—मनु० [६.५७]

जब भिक्षा का लाभ न होय, तब विषाद न करै और लाभ में हर्ष न करै। प्राणरक्षण मात्र प्रयोजन रक्खै, भिक्षा में प्रसक्त न होय और विषयों के संगों से पृथक् रहै॥ ३६॥

**अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः।**
**अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते॥ ३७॥**

—मनु० [६.५८]

अत्यन्त श्रेष्ठ पदार्थ स्तुत्यादिक उनकी निंदा ही करै, क्योंकि स्तुत्यादिक बन्धन ही करने वाले हैं मुक्त भी होय तो भी इससे बद्ध ही हो जाता है॥ ३७॥

**अल्पान्नाव्यवहारेण रहः स्थानासनेन च।**
**ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत्॥ ३८॥**

[—मनु० ६.५९]

अल्पान्न भोजन, एकान्त स्थान में निवास, इनों से विषयों में प्रवर्त्त भई इन्द्रियों को निवर्त्त कर दे॥ ३८॥

**इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।**
**अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥ ३९॥**

—मनु० [६.६०]

इन्द्रियों का निरोध [करने से] राग-द्वेष [को त्यागने से] और



अहिंसा [का पालन करने से] मोक्ष का अधिकारी होता है, अन्यथा नहीं॥ ३९॥

**दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।**
**समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम्॥ ४०॥**

—मनु० [६.६६]

जिस किसी आश्रम में दोषयुक्त पुरुष भी होय, परन्तु धर्म ही को करै और सब भूतों में समबुद्धि अर्थात् राग द्वेष रहित होय, सोई पुरुष श्रेष्ठ है। जितने बाह्य चिह्न हैं यज्ञोपवीत, दंड दोनों को धारण करै और धर्म न करै, तो धारण मात्र ही से कुछ नहीं हो सकता। और तिलक, छापा, माला ये तो सब पाखण्डों के ही चिह्न हैं, इनको को तो कभी न धारना चाहिये॥ ४०॥

**फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यबुप्रसादकम्।**
**न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥ ४१॥**

—मनु० [६.६७]

यद्यपि कतक नाम निर्मलीवृक्ष का फल जल को शुद्ध करने वाला है सो जब उसको पीसके जल में डालै तब तो जल शुद्ध हो जाता है और जो पीसके न डालै **कतकवृक्षस्य फलाय नमः** ऐसा माला लेके जप किया करै वा उसका नाम जल के पास लिया करै, उससे जल कभी न शुद्ध होगा। वैसे ही नाम मात्र से कुछ नहीं होता, जब तक धर्म नहीं करता॥ ४१॥

**प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।**
**व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥ ४२॥**

—मनु० [६.७०]

**ओम् भूः, ओम् भुवः, ओम् स्वः, ओम् महः, ओम् जनः, ओम् तपः, ओम् सत्यं** इस मन्त्र का हृदय में उच्चारण करै। पूर्वोक्त रीति से तीन वार भी प्राणों का निग्रह करै तो भी उस संन्यासी का परम तप जानना॥ ४२॥

**दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।**

**तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ ४३॥**

—मनु० [६.७१]

जैसे सुवर्णादिक धातुओं को अग्नि में तपाने से मैल नष्ट हो जाता है, वैसे ही प्राण के निग्रह से इन्द्रियों के मल भस्म हो जाते हैं॥ ४४॥

**प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।**
**प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥ ४५॥**

—मनु० [६.७२]

प्राणायामों से सब इन्द्रिय और शरीर के दोषों को भस्म कर दे और धारणा योगशास्त्र की रीति से करै, उससे वैर, राग और द्वेष जो हृदय में पाप, उसको छोड़ा दे। प्रत्याहार से इन्द्रियों का विषयों से निरोधकर के संग-दोषों को जीत ले और ध्यान से अल्पज्ञादिक अनीश्वर के जितने गुण उनको छोड़ा दें अर्थात् सर्वज्ञादिक गुण सम्पादन करैं॥ ४५॥

**उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।**
**ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः॥ ४६॥**

—मनु० [६.७३]

स्थूल और सूक्ष्म उनमें जो परमेश्वर व्याप्त है और अपने शरीर में जो अपना आत्मा और परमात्मा उनकी जो गति नाम ज्ञान उसको समाधि से सम्यक् देख ले, जो दुष्ट लोगों को देखने में कभी नहीं आती॥ ४६॥

**सम्यक्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते।**
**दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते॥ ४७॥**

—मनु० [६.७४]

जब संन्यासी सम्यक् ज्ञान से सम्पन्न होता है, तब कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान से हीन संन्यासी है, सो मोक्ष को तो नहीं प्राप्त होता, किन्तु संसार में ही गिर पड़ता है॥ ४७॥

**अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः।**
**तपसश्चरणैश्चाग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्॥ ४८॥**

—मनु० [६.७५]



निर्वैर, इन्द्रियों से विषयों का असंग, वैदिक कर्म का करना, अत्यन्त उग्र तप—इन्हों से मोक्ष पद को सिद्ध लोग प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं॥ ४८॥

**अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।**
**चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरोषयोः॥ ४९॥**
**जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।**
**रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत्॥ ५०॥**

—मनु० [६.७६-७७]

हाड़ जिस का खंभा है नाड़ियों से बांधा भया, मांस और रुधिर का ऊपर लेपन, चाम से ढपा हुआ, दुर्गन्ध मूत और विष्ठा से पूर्ण॥ ४९॥

जरा और शोक से युक्त, रोग का घर, क्षुधा-तृषादिक पीड़ाओं से नित्य आतुर और नित्य ही रजस्वल अर्थात् जैसी रजस्वला स्त्री, नित्य जिसकी स्थिति नहीं और सब भूतों का निवास, ऐसा जो यह देह, इसको संन्यासी योगाभ्यास से छोड़ दे॥ ५०॥

**नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।**
**तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद् ग्राहाद्विमुच्यते॥ ५१॥**

—मनु० [६.७८]

जैसे वृक्ष जब नदी के तट से जल में गिर के चला जाय, वैसे ही समाधियोग से इसको छोड़ै, तब बड़ा भारी जन्म मरण रूप संसार में दु:ख, उस सब दु:ख से छूट के मुक्त हो जाय॥ ५१॥

**प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्।**
**विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति परं पदम्[१]॥ ५२॥**

—मनु० [६.७९]

जितने अपनी सेवा करने वाले उनमें ध्यान योग से सब पुण्य को छोड़ दे और दु:ख देने वाले पुरुषों में सब पापों को छोड़ दे, इससे पापपुण्य रहित जब शुद्ध होता है, तब सनातन परमोत्कृष्ट ब्रह्म उसको प्राप्त होता है, फिर कभी दु:खसागर में नहीं आता॥ ५२॥

---

१. मनुस्मृति में 'परं पदम्' के स्थान पर 'सनातनम्' पाठ मिलता है। —सम्पादक

**यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निस्पृहः।**
**तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥ ५३॥**

—मनु० [६.८०]

जब सब प्रकार से संन्यासी का अन्तःकरण और आत्मा शुद्ध हो जाता है, उसका यह लक्षण है कि किसी पदार्थ में मोह नहीं होता, तब वह पुरुष जीता भया और मृत्यु होके निरन्तर ब्रह्म सुख उसको प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं॥ ५३॥

**अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगान् शनैःशनैः।**
**सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते॥ ५४॥**

—मनु० [६.८१]

इस विधि से जितने देहादिक अनित्य पदार्थ हैं इनको धीरे-धीरे छोड़ और हर्ष-शोक, सुख-दुःख, शीत-उष्ण, राग-द्वेष, जन्म-मरणादिक सब द्वन्द्वों से छूट के जीता भया अथवा शरीर छोड़ के ब्रह्म ही में सदा रहता है, फिर दुःख सागर में कभी नहीं गिरता क्योंकि पूर्व सब दुःखों को भोग से अनुभव किया है, फिर बड़े भाग्य और अत्यन्त परिश्रम से परमेश्वर की प्राप्ति भई, क्या वह मूर्ख है कि परमानन्द को छोड़के फिर दुःख में गिरै, कभी न गिरेगा॥ ५४॥

**ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम्।**
**न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते॥ ५५॥**

—मनु० [६.८२]

संन्यास का यही मार्ग है कि नित्य ध्यानावस्थित होके एकान्त में सब पदार्थों का यथावत् ज्ञान करना, सो इस प्रकरण में सब ध्यान नाम मात्र से कह दिया, परन्तु इसका यथावत् विधान पातञ्जल दर्शन में लिखा है, वहाँ सब देख लेवैं, अन्यथा सिद्ध कभी न होगा, क्योंकि प्राणायामादिक आध्यात्म विद्या जो कोई नहीं जानता, उसको संन्यास ग्रहण का कुछ फल नहीं होता, उसका संन्यास-ग्रहण ही व्यर्थ है॥ ५५॥

**अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।**
**आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्॥ ५६॥**



—मनु० [६.८३]

अधियज्ञ ब्रह्म जो ओंकार, उसका जप, उसका अर्थ जो परमेश्वर, उसमें नित्य चित्त लगावै। और आधिदैविक इन्द्रियां और अन्तःकरण उसके दिशादिक देवता श्रोत्रादिकों के, उनका जो परस्पर सम्बन्ध, उसको योग से साक्षात् करै और आध्यात्मिक जीवात्मा और परमात्मा का यथावत् ज्ञान और प्राणादिकों का निग्रह, इसको यथावत् करै, तब उस पुरुष का मोक्ष हो सकता है, अन्यथा नहीं॥ ५६॥

**एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम्।**
**वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत॥ ५७॥**

—मनु० [६.८६]

मुख्य संन्यासी नियतात्मा नाम जिनका आत्मा स्थिर शुद्ध हो गया है, उनका धर्म ऋषिलोगों से मनु जी कहते हैं, 'मैंने कह दिया'। और जो वेदसंन्यासिक अर्थात् गौण संन्यासी उसका कर्म योग मुझसे आप सुन लेवैं॥ ५७॥

**ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।**
**एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः॥ ५८॥**

—मनु० [६.८७]

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी वे चारों गृहस्थाश्रम से उत्पन्न होते हैं पृथक्-पृथक्। क्योंकि गृहाश्रम न होय तो मनुष्य की उत्पत्ति ही न होय, फिर ब्रह्मचर्यादिक आश्रम कभी न होंगे। इससे उत्पत्ति तथा सब आश्रमों का अन्न, वस्त्र, स्थान और धनादिक दानों से गृहस्थ लोग ही पालन करते हैं। इन दो बातों में गृहस्थ ही मुख्य हैं, विद्या ग्रहण में ब्रह्मचारी, तप में वानप्रस्थ, विचार योग और ज्ञान में संन्यासी श्रेष्ठ है॥ ५८॥

**सर्वेऽपिक्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविता।**
**यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमाङ्गतिम्॥ ५९॥**

—मनु० [६.८८]

सब आश्रमी यथावत् शास्त्रोक्त क्रम जो धर्माचरण, उससे चलने

वाले पुरुषों का, वे आश्रमों के जितने व्यवहार श्रेष्ठ हैं, उनसे सब आश्रमी लोग मोक्ष पा सकते हैं, परन्तु बाहर देखने मात्र भेद रहेगा, उनका भीतर व्यवहार संन्यासवत् एक ही होगा॥ ५९॥

**चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।**
**दश लक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥ ६०॥**

—मनु० [६.९१]

ब्रह्मचारी आदिक सब आश्रमी दश लक्षण हैं जिस धर्म के, उस धर्म का नित्य सेवन करैं। वे लक्षण ये हैं॥ ६०॥

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ ६१॥**

—मनु० [६.९२]

धर्म है नाम न्याय का, न्याय है नाम पक्षपात को छोड़ना, उसका **पहिला लक्षण अहिंसा** किसी से वैर न करना। **दूसरा लक्षण धृति** कि अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता होय तो भी धर्म को छोड़ के चक्रवर्ती राज्य का ग्रहण न करना। **तीसरा लक्षण क्षमा** कोई स्तुति वा निन्दा अथवा वैर करै तो भी सबको सह ले, परन्तु धर्म को न छोड़ै तथा सुख-दुःखादिक भी सब सह ले, परन्तु अधर्म कभी न करै। **दम** नाम चित्त से अधर्म करने की इच्छा न करै, इसका नाम है दम। **अस्तेय** अर्थात् चोरी का त्याग, किसी का पदार्थ आज्ञा के विना ले लेना, इसका नाम चोरी है, इसका जो सदा त्याग उसका नाम है अस्तेय। **शौच** नाम पवित्रता, सदा शरीर, वस्त्र, स्थान, अन्नपात्र और जल तथा घृतादिक, शुद्ध देश में निवास, रागद्वेषादिक का त्याग इसका नाम शौच है। **इन्द्रियनिग्रह** श्रोत्रादिक इन्द्रिय वे अधर्म में कभी न जावैं और इन्द्रियों को सदा धर्म में स्थिर रक्खैं तथा पूर्वोक्त जितेन्द्रियता का करना इसका नाम इन्द्रियनिग्रह है। सत्यशास्त्रपठन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, सुविचार, एकान्त-सेवन, परमेश्वर में विश्वास और परमेश्वर की प्रार्थना, स्तुति और उपासना, शील, संतोष का धारण, इनसे सदा बुद्धि-वृद्धि करनी इसका नाम **धी** है। **विद्या** नाम पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान होना, जो



जैसा पदार्थ है, उसको वैसा ही जानना, उसका नाम विद्या है। **सत्य** सदा सत्य भाषण करना पूर्वोक्त नियम से। **अक्रोध** नाम क्रोध, काम, लोभ, मोह, शोक, भयादिकों का त्याग, उसका नाम क्रोध का त्याग है। इतने संक्षेप से **धर्म के ग्यारह लक्षण** लिख दिये। परन्तु वेदादिक सत्य शास्त्रों में धर्म के इत्यादिक सहस्त्रों लक्षण लिखे हैं। जिसकी इच्छा होय उन शास्त्रों में देख लेवै।

अब इसके आगे अधर्म के लक्षण लिखे जाते हैं। अधर्म नाम अन्याय का, अन्याय नाम पक्षपात का न छोड़ना, इसके भी एकादश लक्षण हैं। **पहिला लक्षण हिंसा** अर्थात् वैर बुद्धि का करना॥ ६२॥

**परद्रव्येष्वभिज्ञानं मनसानिष्टचिन्तनम्।**
**वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्ममानसम्॥ ६२॥**
**पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यमपि सर्वशः।**
**असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥ ६३॥**
**अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।**
**परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥ ६४॥**

—मनु० [१२.५-७]

परद्रव्य हरण करने की छल, कपट और अन्याय से इच्छा यह **दूसरा लक्षण अधर्म** का है। और **तीसरा लक्षण** पर का अनिष्ट चिन्तन, अन्य जीवों को दुःख देना, अपना सुख चाहना। **चौथा वितथाभिनिवेश** अर्थात् मिथ्या निश्चय जो जैसा पदार्थ है, उसको वैसा न जानना, किन्तु विपरीत ही जानना। जैसे कि विद्या को अविद्या और अविद्या को विद्या जानना। सत्य, अचौर, श्रेष्ठ, साधु इनको असत्य, चौर, अश्रेष्ठ, असाधु जानना। और पाषाणादिक मूर्त्ति और उनके पूजने से देव बुद्धि और मुक्त का होना इत्यादिक मिथ्या निश्चय से जान लेना, ये तीन मन से अधर्म के लक्षण उत्पन्न होते हैं। **पारुष्य** नाम कठोर वचन बोलना जैसे कि **आगच्छ काण** इत्यादिक इसका नाम पारुष्य है। **मिथ्या भाषण** नाम असत्य का बोलना, देखने सुनने और हृदय से विरुद्ध बोलना, उसका नाम असत्य भाषण है। **पैशुन्य** नाम चुगली खाना, जैसे कि किसी ने धन

देने को कहा वा दिया, उससे राजा के वा अन्य के समीप जाके उसके कार्य की हानि करनी और उनके सामने उसकी निन्दा करनी अर्थात् अन्य पुरुष की प्रतिष्ठा वा सुख देख के हृदय से बड़ा दु:खित होय, फिर जहाँ तहाँ चुगली खाता फिरै, इसका नाम पैशुन्य है। **असंबद्धप्रलाप** नाम पूर्वापर विरुद्ध भाषण और प्रतिज्ञा की हानि जैसे कि भागवतादिक और कौमुद्यादिक ग्रन्थों में पूर्वापर विरुद्ध और मिथ्याभाषण हैं, इसका नाम असंबद्ध प्रलाप है। **अदत्तानामुपादानं** विना आज्ञा से पर पदार्थ का ग्रहण करना, अर्थात् चोरी, **हिंसा** नाम पशुओं का हनन करना, अपनी इन्द्रियों की पुष्टि के वास्ते मांस का खाना और पशुओं का मारना यह राक्षस विधान है, और यज्ञ के वास्ते जो पशुओं की हिंसा है वह भी पाप है। जिन पशुओं से संसार का उपकार होता है, उन पशुओं को कभी न मारना चाहिए क्योंकि इनको मारने से आगे पशु, दूध और घी की उत्पत्ति ही मारी जाती है और इन्हीं से संसार का पालन होता है, इससे पशुओं की स्त्रियों को तो कभी न मारना चाहिए, और जो इन पशुओं को मारना है इसका नाम हिंसा है। **पर-दारोपसेवन** पर-स्त्री-गमन अर्थात् वेश्या वा अन्य किसी की स्त्री के साथ गमन करना और अन्य पुरुषों के साथ स्त्री लोगों का गमन करना दोनों को तुल्य पाप है। ये **एकादश अधर्म के लक्षण** कह दिये। इनसे अन्य भी वेदादिक शास्त्रों में **अभिमानादिक** सहस्रों अधर्म के लक्षण लिखे हैं, सो उनके विना पठन और अधर्म के न जानने से कभी ज्ञान नहीं हो सकता।

धर्म और अधर्म सब मनुष्यों के वास्ते एक ही हैं इनमें भेद नहीं। जितने भेद हैं, वे सब भ्रम ही से हैं, क्योंकि सबका ईश्वर एक ही है। इससे उसकी आज्ञा भी सबके वास्ते एक रस ही निश्चित होनी चाहिए, किन्तु जो सत्य बात वा असत्य बात है सो तो सर्वत्र एक ही होती है। उसी को जितने बुद्धिमान् लोग जानते हैं वे किसी जाल वा बन्धन में नहीं गिरते, किन्तु धर्म ही करते हैं और अधर्म को छोड़ देते हैं, यही बुद्धिमानों का मार्ग है। और जितने सम्प्रदाय जाल, पाखण्ड हैं, वे मूर्खों ही के हैं। चारों आश्रम वाले पुरुष धर्म ही का सेवन करैं, अधर्म का कभी नहीं॥



**दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः।**
**वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यस्येदनृणो द्विजः॥ ६५॥**

—मनु० [६.९४]

दश लक्षण और एक योगशास्त्र की रीति से एवं ग्यारह लक्षण जिस धर्म के कह दिये उस धर्म का अनुष्ठान यथावत् करैं। समाहित चित्त होके वेदान्तशास्त्र को विधिवत् सुनके अनृण जो द्विज नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीन विद्वान् होके यथाक्रम से संन्यास ग्रहण करैं॥ ६५॥

**संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन्।**
**नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत्॥ ६६॥**

—मनु० [६.९५]

बाह्य जितने कर्म उनका त्याग करै और आभ्यन्तर योगाभ्यासादिक जितने कर्म उनको यथावत् करै। इससे सब कर्म दोष अर्थात् अन्त:करण की मलिनता रागद्वेष इत्यादिकों को छोड़ा दै। निश्चित होके वेदों का अभ्यास सदा करै और अपने पुत्रों से अन्न, वस्त्र, शरीर निर्वाह मात्र ले लेवै। नगर के समीप एकान्त में जाके वास करै। नित्य घर से भोजन आच्छादन करै, हानि वा लाभ में कुछ दृष्टि न दे। किसी का जन्म वा मरण होय घर में, तो भी कुछ उसमें मोह वा द्वेष न करै। अपनी मुक्ति के साधन में सदा तत्पर रहै॥ ६६॥

**एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः।**
**संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमाङ्गतिम्॥ ६७॥**

—मनु० [६.९६]

इस प्रकार से सब बाह्य कर्मों को छोड़ दे। स्वकार्य जो मुक्ति का होना अर्थात् सब दु:खों से छूटके परमेश्वर को प्राप्त होना, इस कार्य में तत्पर होय। इससे भिन्न पदार्थ की इच्छा कभी न करै। इस प्रकार के संन्यास से सब पापों का नाश कर दे और परमगति जो मोक्ष उसको प्राप्त हो जाय।

**पूर्वपक्ष**—संन्यासी धातुओं का स्पर्श करै वा नहीं?

**उत्तर**—अवश्य, धातुओं के स्पर्श के विना किसी का निर्वाह नहीं

हो सकता क्योंकि भू आदिक धातुओं का स्पर्श भाषा वा संस्कृत बोलने में निश्चित ही करेगा और वीर्यादिक ७ सात धातुओं का भी स्पर्श निश्चित होगा और सुवर्णादिक जितनी धातु हैं उनका भी स्पर्श होगा।

**पूर्वपक्ष— यतीनां कांचनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम्।**
**चौराणामभयं दद्यात्स नरो नरकं व्रजेत्॥**

इस श्लोक से यह आपका कथन विरुद्ध हुआ। संन्यासी को सुवर्ण, ब्रह्मचारी को ताम्बूल, चौरों को अभय का देने वाला पुरुष नरक में जाता है॥

**उत्तरपक्ष— ब्रह्मोवाच**

**गृहीणां काञ्चनं दद्याद्वस्त्रं वै ब्रह्मचारिणाम्।**
**चौराणामासनन्दद्यात्स नरो नरकं व्रजेत्॥**

इससे आपका कहना विरुद्ध हुआ जैसा कि मेरा वचन उस श्लोक से।

यह कौन शास्त्र का श्लोक है?

अच्छा वह कौन शास्त्र का है?

यह तो पद्धति का है।

अच्छा तो यह हमारी पद्धति का है और ब्रह्मा का कहा है।

ऐसा श्लोक ब्रह्माजी कभी न रचेंगे।

अच्छा तो यह मैंने रचा है, जैसा कि वह किसी ने रच लिया है। ये दोनों श्लोक अर्थ विचारने से मिथ्या ही हैं क्योंकि संन्यासी को काञ्चन नाम सुवर्ण के देने से इनने नरक लिखा। इससे पूछना चाहिए कि चांदी हीरादिक रत्न, भूमि, राज्य और स्थान देने से तो नरक को नहीं जायगा और ब्रह्मचारी के विषय में भी जान लेना। चौर के विषय में जो इसने लिखा सो तो ठीक ही है और सब मिथ्या कथन है। अच्छा तो श्लोक का ऐसा पाठ है॥

**यतिहस्ते धनन्दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणम्।**

अन्यत्पूर्ववत्। यह भी मिथ्या श्लोक है क्योंकि यती के पाद और आगे वा वस्त्र से बांध के धन देने में तो पाप न होगा। इससे ऐसी जो बात



कहना, सो मिथ्या ही है। और जो धन में दोष अथवा गुण है सो सर्वत्र तुल्य ही है जैसा उपद्रव धन के रखने में गृहस्थों को होता है, इससे संन्यासी को धन के रखने में कुछ अधिक उपद्रव होगा, क्योंकि गृहस्थों के स्त्री, पुत्र और भृत्यादिक रक्षा करने वाले हैं। उसको कोई नहीं। शरीर के निर्वाह मात्र धन रखले तब तो विरक्त को भी कुछ दोष नहीं और जो अधिक रक्खेगा सो तो मोक्ष पद को अप्राप्त होके संसार में गिर पड़ेगा। जैसे कि वैरागी, गुसांई बहुत से महन्त और मठधारी हो गये हैं जो कि गृहस्थों से भी नीच हो जाते हैं तथा गुसांई धन को पाके अमीर हो जाता है।

इससे क्या आया कि पहिले तो अधिकार के विना संन्यास ग्रहण नहीं करना चाहिए। जब तक विद्या, ज्ञान, वैराग्य और जितेन्द्रियता पूर्ण न हो जाय, तब तक गृहाश्रम ही में रहना उचित है। इससे धातुस्पर्श, धन देने और लेने में दोष कहते हैं यह बात मिथ्या ही है। उनको कोई दे अथवा न दे और विरक्त लेवै अथवा न लेवै, अपनी-अपनी इच्छा के आधीन यह व्यवहार है।

एक बात देखना चाहिए कि जो विद्वान् सो सब पदार्थों का गुण और

दोष जानता है उसको देनेवाला स्वर्ग जाय सो तो ठीक बात है। परन्तु नरक को वह जाता है, यह बात अत्यन्त नष्ट है। वह विद्वान् जो संन्यासी सत्कार और उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में हर्ष कभी न करेगा। असत्कार और अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति में शोक न करेगा। सो देने लेने वाले दोनों धर्मात्मा और विद्यावान् होंगे, तब तो उभयत्र सुख हो सकता है। और जो दोनों कुकर्मी हैं तो पाप ही है। जैसे कि चक्रांकितादिक वैरागी और गोकुलिये गुसांई और नान्हक, कबीरादिकों के सम्प्रदायी लोग हैं। और मूर्ख ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी इनको देने में पाप ही होगा, पुण्य कुछ नहीं, क्योंकि पुण्य तो विद्वान् और धर्मात्माओं को देने में है अन्यथा नहीं।

चार वर्ण और चार आश्रम इनकी शिक्षा संक्षेप में लिख दी और विस्तार से जो देखना चाहै सो वेदादिक सत्य शास्त्रों में देख लेवै।

इससे आगै राजा और प्रजा के विषय में लिखा जायगा।

# षष्ठ उपदेश

## [ राजा-प्रजाधर्म ]

**राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।**
**सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा॥ १॥**

—मनुस्मृति

राजधर्मों को मनु भगवान् कहते हैं कि मैं कहूँगा। जिस प्रकार से राजा को वर्तमान करना चाहिए, जिन गुणों से राजा होता है और जिन कर्मों के करने से परम सिद्धि होती है कि राज्य करै और सद्गति भी उसकी होय। इसको यथावत् प्रतिपादन आगे-आगे किया जायगा॥ १॥

**ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।**
**सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥ २॥**

—मनुस्मृति



जैसा ब्राह्मणों का संस्कार होता है वैसा ही सब संस्कार यथाविधि जिसका होता है अर्थात् सब विद्याओं में पूर्ण, बल, बुद्धि, पराक्रम, तेज, जितेन्द्रियता और शूरवीरता जिस मनुष्य में इस प्रकार के गुण होवैं और कोई मनुष्य उस देश में विद्यादिक गुणों में उससे अधिक न होय, ऐसे पुरुष को देश का राजा करना चाहिए। तब वह देश आनन्दित और अत्यन्त सुखी होता है, अन्यथा नहीं। उस राजा का मुख्य यही धर्म है कि अपनी प्रजा की यथावत् रक्षा करै॥ २॥

**अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।**
**रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः॥ ३॥**

—मनुस्मृति

जिस देश में धर्मात्मा राजा विद्वान् नहीं होता, उस देश में भयादिक दोष बहुत हो जाते हैं। इस वास्ते राजा को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है कि यह सब जगत् की रक्षा करै और जगत् में अधर्म न होने पावै॥ ३॥

**इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।**
**चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥ ४॥**

—मनुस्मृति

इन्द्र, अनिल नाम वायु, यम [नाम न्यायकारी], अर्क नाम सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र, वित्तेश अर्थात् कुबेर इन आठ, राजाओं की नीति और गुणों से मनुष्य राजा होने का अधिकारी होता है तैसे ही **इन्द्र** का गुण शूरवीरता, दाता का होना। इन्द्र जैसा प्रजा की रक्षा सब प्रकार से करता है, तथा ही राजा। **वायु** का गुण, बल और दूत द्वारा सब प्रजा के वर्तमान का जानना। जैसा कि वायु सब के हृदय में व्याप्त होके धारण करता है और सब मर्मों को जानता है। **यम** का गुण पक्षपात को छोड़ना, सदा न्याय ही करना, अन्याय कभी नहीं। जैसा कि भरत राजा ने अपने पुत्र जो अन्यायकारी ९ नव उनका स्वहस्त से शिरच्छेदन कर दिया। और सगर ने अपना एक जो पुत्र असमंजा, थोड़े अपराध से वन में निकाल दिया। यह बात महाभारत में विस्तार से लिखी है कि अपने पुत्र का जब पक्षपात न किया तो और का कैसे करेंगे। **अर्क** नाम सूर्य जैसा कि सब

पदार्थों को तुल्य प्रकाश करता है और अन्धकार का नाश कर देता है, ऐसे ही राजा सब राज्य में प्रजा के ऊपर तुल्य प्रकाश करै और अधर्म करने वाले जितने दुष्ट अन्धकार रूप, उनका नाश कर दे। और जैसे **अग्नि** में प्राप्त भया पदार्थ दग्ध हो जाता है, वैसे ही धर्म नीति से विरुद्ध करनेवाले पुरुषों को दग्ध अर्थात् यथावत् दण्ड देवै। जैसा कि अग्नि सूखे वा गीले पदार्थों को भस्म कर देता है। और मित्र वा शत्रु जब-जब अधर्म करैं, तब-तब कभी दण्ड के विना न छोड़ै। **वरुण** का गुण, ऐसे पाश अर्थात् बन्धनों से दुष्टों को बांधे कि फिर छूटने न पावैं और कभी छूटैं तो ऐसा दुःख पावैं कि उस दुःख का विस्मरण कभी न होय, जिससे अधर्म में उनका चित्त कभी न जाय। **चन्द्र** का गुण, जैसे कि चन्द्रमा सब प्राणियों को तथा स्थावर औषधियों को शीतल प्रकाश से तथा पुष्टि से आनन्द युक्त कर देता है तथा राजा अपनी प्रजा के ऊपर कृपा दृष्टि रक्खै और प्रजा की पुष्टि कि किसी प्रकार से प्रजा दुखित न होवै, सदा प्रसन्न ही रहै। **कुबेर** का गुण, जैसे कि कुबेर बड़ा धनाढ्य है, धन की वृद्धि और धन की रक्षा यथावत् करता है, वैसे राजा भी धन की वृद्धि और धन की रक्षा सदा करै, जिससे कि राजा के ऊपर ऋण वा दारिद्र्य कभी न होवै। अपने वा प्रजा के ऊपर जब आपत्काल आवै, तब उस धन से अपनी वा प्रजा की रक्षा कर लेवैं। इन **आठ गुणों** से राजा होता है अन्यथा नहीं॥ ४॥

**सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।**
**स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥ ५॥**

—मनु० [७.७]

प्रभाव अर्थात् गुणों ही से अग्नि, वायु, आदित्य, सोम, धर्मराज, कुबेर, वरुण और महेन्द्र नाम इन्द्र, राजा ही इन गुणों से जब युक्त होता है, तब वही राजा, ये आठ नाम वाला होता है॥ ५॥

**कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिञ्च देशकालौ च तत्त्वतः।**
**कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनःपुनः॥ ६॥**

—मनु० [७.१०]

सो राजा कार्य और शक्ति नाम सामर्थ्य, देश और काल, तत्त्व



अर्थात् यथावत् इन को विचार के करै, किसके वास्ते कि धर्म सिद्धि के वास्ते वारंवार विश्वरूप धारण करता है॥ ६॥

**यस्य प्रसादे पद्माश्रीर्विजयश्च पराक्रमे।**
**मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः॥ ७॥**

—मनु० [७.११]

जिसकी कृपा से दरिद्र जो है सो धनाढ्य हो जाय और अकृपा से दुष्ट दरिद्र हो जाय और पराक्रम में निश्चय करके विजय होय, इससे राजा सर्व तेजोमय होता है और जिसके क्रोध में दुष्टों का मृत्यु ही वास करता हो अर्थात् सब प्रकार के गुण बल पराक्रम जिसमें होवैं, वही राजा हो सकता है, अन्यथा नहीं॥ ७॥

**तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः।**
**अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत्॥ ८॥**

—मनु० [७.१३]

जो राजा धर्म को इष्ट अर्थात् धर्मात्मा और विद्वानों के ऊपर निश्चित करै तथा अनिष्ट अर्थात् मूर्ख और दुष्टों के बीच में दण्ड की व्यवस्था करै उस धर्म को कोई मनुष्य न छोड़ै किन्तु सब लोग करैं। जिससे धर्मात्मा और विद्वानों की बढ़ती होय और मूर्ख और दुष्टों की घटी होय, इस हेतु अवश्य इस व्यवस्था को करै॥ ८॥

**तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।**
**ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः॥ ९॥**

—मनु० [७.१४]

उस राजा के लिये दण्ड को परमेश्वर ने पूर्व ही उत्पन्न किया, वह दण्ड कैसा है, ब्रह्म तेजोमय ब्रह्म परमेश्वर और विद्या का नाम है उनका जो तेज अर्थात् सत्य-सत्य व्यवस्था वही दण्ड कहलाता है। फिर वह दण्ड कैसा है कि परमेश्वर से ही उत्पन्न भया, क्योंकि परमेश्वर न्यायकारी है, उसकी आज्ञा न्याय करने की ही है। उसी का नाम दण्ड है। और जो न्याय है कि पक्षपात का छोड़ना, सोई धर्म है। जो धर्म है, सोई सब भूतों की रक्षा करने वाला है, अन्य कोई नहीं है। सो वह दण्ड राजा के आधीन

रक्खा गया है, क्योंकि वही राजा समर्थ है इस दण्ड के धारण करने में, अन्य कोई नहीं। जो कोई राजा कहै कि धर्म की बात हम नहीं सुनते, तो उसका कहना मिथ्या है क्योंकि धर्म न करेगा और धर्म का स्थापन तथा पालन भी न करेगा, वह राजा ही नहीं। राजा तो वह होता है कि धर्म का यथावत् स्थापन करै और अधर्म का खण्डन करै, यही राजा का मुख्य पुरुषार्थ है॥ ९॥

**तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।**
**भयाद् भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च॥ १०॥**

—मनु० [७.१५]

उस दण्ड के भय से ही जितने जड़ और चेतन भूत हैं दण्ड के नियम से वे सब भोग में आते हैं। अपना-अपना जो पुरुषार्थ अर्थात् अधिकार उसमें यथावत् चलते हैं। अपने स्वधर्म अर्थात् जो-जो जिसका व्यवहार करने का अधिकार उससे भिन्नमार्ग में कभी नहीं चलते हैं॥ १०॥

**तं देशकालौ शक्तिञ्च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः।**
**यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्त्तिषु॥ ११॥**

—मनु० [७.१६]

उस दण्ड को अन्याय करने वाले जो मनुष्य हैं उनमें यथावत् स्थापन करैं अर्थात् यथावत् दण्ड देवै। परन्तु देश, काल, सामर्थ्य और विद्या इन से यथावत् तत्त्व का विचार करके दण्ड दे, क्योंकि अदण्ड्य पुरुष को अर्थात् धर्मात्मा को कभी दण्ड न दिया जाय और अधर्मात्मा पुरुष को दण्ड के विना त्याग कभी न किया जाय॥ ११॥

**स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।**
**चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥ १२॥**

—मनु० [७.१७]

राजा पुरुष **नेता** अर्थात् व्यवस्था में सब जगत् को चलाने वाला, **शासिता** अर्थात् यथावत् शिक्षक दण्ड ही है। किञ्च राजा और प्रजास्थ मनुष्य सब तुल्य ही हैं जैसा राजा मनुष्य है वैसे ही और सब मनुष्य हैं। इस वास्ते मनु भगवान् ने लिखा कि दण्ड ही राजा, दण्ड ही पुरुष, दण्ड



ही नेता और दण्ड ही शासिता, जिसमें यथावत् विद्यादिक गुण और दण्ड की व्यवस्था होय, सोई राजा है, अन्य कोई नहीं। और ब्रह्मचर्याश्रमादिक **चार आश्रम** और **चारों वर्णों** का यथावत् स्थापन तथा उनका रचन करनेवाला दण्ड ही है, किन्तु **प्रतिभूः** अर्थात् जामिन है इसके विना धर्म वा वर्णाश्रम व्यवस्था नष्ट हो जाती है, कभी नहीं चलती। उस व्यवस्था के विना जितने उत्तम व्यवहार हैं वे तो नष्ट हो ही जाते हैं, किन्तु भ्रष्ट व्यवहार भी हो जाते हैं, जैसे कि आज काल आर्यावर्त्त देश की व्यवस्था है॥ १२॥

**दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।**
**दण्डः सुप्तेषु जगर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥ १३॥**

—मनु० [७.१८]

सब प्रजा को दण्ड ही शिक्षा करता है और दण्ड ही सब जगत् का रक्षक है। जब प्राणी सो जाते हैं तब प्रायः मृतक हो जाते हैं, परन्तु दण्ड ही नहीं सोता, इससे सब आनन्द से सोके उठते हैं। उठके अपना-अपना काम काज और आनन्द करते हैं और जो दण्ड सो जाय, तो जगत् का ही नाश हो जाय, इससे जो दण्ड है सोई धर्म है, ऐसा बुद्धिमान् लोगों का दृढ़ निश्चय है॥ १३॥

**समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।**
**असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥ १४॥**

—मनु० [७.१९]

उस दण्ड को सम्यक् विचार करके जो धारण करता है वह राजा सब प्रजा को प्रसन्न कर देता है और जो विचार के विना दण्ड देता है वा आलस्य, मूर्खता से दण्ड को छोड़ देता है, वही राजा सब जगत् का नाश करने वाला होता है। **राजृ दीप्तौ** इस धातु से राजा शब्द सिद्ध होता है। **दीप्ति** नाम प्रकाश का है जो सब धर्मों का प्रकाश और अधर्म मात्र का नाश करै, उसका नाम **राजा** है। और जो ऐसा नहीं है, उसका नाम राजा तो नहीं रखना चाहिए, किन्तु उसका नाम डाकू और अन्धकार रखना चाहिये॥ १४॥

**दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः।**
**सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्॥ १५॥**

—मनु० [७.२४]

दण्ड के नाश से सब वर्णाश्रम नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म की जितनी मर्यादा वे भी सब नष्ट हो जाती हैं और सब लोगों में प्रकोप अर्थात् अधर्म पूर्ण हो जाता है, इससे दण्ड को कभी न छोड़ना चाहिए॥ १५॥

**यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।**
**प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति॥ १६॥**

—मनु० [७.२५]

जिस देश में श्यामवर्ण रक्त जिसके नेत्र ऐसा जो पाप नाश करने वाला दण्ड विचरता है उस देश में प्रजा मोह वा दुःख को नहीं प्राप्त होती परन्तु दण्ड का धारण करनेवाला राजा विद्वान् और धर्मात्मा होय तो, अन्यथा नहीं॥ १६॥

कैसा राजा होय कि—

**तस्याहुः सम्प्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।**
**समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्॥ १७॥**

—मनु० [७.२६]

इस दण्ड का सम्यक् चलाने वाला सत्यवादी कभी भी मिथ्या न बोलै और जो कुछ करै सो विचार से ही सत्य-सत्य करै, असत्य कभी नहीं। **प्राज्ञ** अर्थात् पूर्ण विद्या और पूर्ण बुद्धि जिसको होय धर्म, अर्थ और काम इनको यथावत् जानता होय, उसको दण्ड चलाने का अधिकारी कहते हैं, और किसी को नहीं॥ १७॥

**तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते।**
**कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते॥ १८॥**

—मनु० [७.२७]

उस दण्ड अर्थात् धर्म को राजा यथावत् निश्चय से करेगा तो धर्म, अर्थ और काम ये तीन राजा के सिद्ध हो जायेंगे और जो कामात्मा अर्थात् वेश्या, परस्त्री, लौंडे इत्यादिकों के साथ फंसा रहता है तथा नम्रता, शील,



नीति, विद्या, धैर्य, बुद्धि, बल, पराक्रम तथा सत्पुरुषों का संग, इनको छोड़ के **विषम** नाम कुटिल अर्थात् अभिमान ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य और क्रोध इनसे युक्त होके, कर्म विपरीत करने से वह राजा विषम पुरुष हो जाता है। नीच बुद्धि, नीच संग, नीच कर्म और नीच स्वभाव इत्यादिक दोषों से पुरुष जब युक्त होगा, तब वह पुरुष नाम राजा क्षुद्र हो जायगा। जब धर्मनीति से दण्ड यथावत् न कर सकेगा, तब उसी के ऊपर दण्ड आके गिरेगा। सो दण्ड से हत हो जायगा, जैसे कि आज काल आर्यावर्त्त देश के राजाओं की दशा नित्य देखने में आती है॥ १८॥

**दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्द्धरश्चाकृतात्मभिः।**
**धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्॥ १९॥**
**ततो दुर्गं च राष्ट्रञ्च लोकं च सचराचरम्।**
**अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन् देवांश्च पीडयेत्॥ २०॥**

—मनु० [७.२८-२९]

दण्ड जो है सो बड़ा भारी तेज है उसका धारण करना मूर्ख लोगों को कठिन है। जब वे दण्ड अर्थात् धर्म से विचल जाते हैं तब कुटुम्ब सहित राजा का, वह दण्ड नाश कर देता है॥ १९॥

तदनन्तर **दुर्ग** जो किला, **राष्ट्र** नाम राज्य, **चर अचर** लोग अन्तरिक्ष में रहने वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रादिक लोकों में रहने वाले अथवा **मुनि** नाम विचार करने वाले, **देव** नाम पूर्ण विद्या वाले उनका नाश और अत्यन्त पीड़ा करता है। इससे क्या आया कि पक्षपात को छोड़ के यथावत् दण्ड को करना चाहिए तभी सुख की उन्नति होगी और जो दण्ड को यथावत् न्याय से न करेंगे, तो उनका ही नाश हो जायगा॥ २०॥

**सोऽसहायेन मूढेन लब्धेनाकृतबुद्धिना।**
**न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च॥ २१॥**

—मनु० [७.३०]

सो श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से रहित **मूढ़** नाम मूर्ख, **लुब्ध** नाम बड़ा लोभी, **अकृतबुद्धि** जिसको बुद्धि नहीं है सो राजा मूर्ख है। वह न्याय से दंड कभी न दे सकेगा क्योंकि जो जितेन्द्रिय होता है, वही राज्य करने का

अधिकारी होता है। और जो विषयासक्त तथा मूढ़, सो कभी दण्ड देने वा राज्य करने को समर्थ नहीं होता॥ २१॥

राजा कैसा होना चाहिए कि—

**शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।**
**प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता॥ २२॥**

—मनु० [७.३१]

शुचि जो बाहर भीतर अत्यन्त पवित्र होय, सत्यधर्म से सदा जिसका सन्धान रहै तथा जैसी शास्त्र में परमेश्वर की आज्ञा है वैसा ही करै। सुसहाय अर्थात् सत्पुरुषों का सङ्ग जो करता है और बड़ा बुद्धिमान् वही राजा दण्ड व्यवस्था करने को समर्थ होता है, अन्यथा नहीं॥ २२॥

**वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्।**
**वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते॥ २३॥**

—मनु० [७.३८]

जितने ज्ञानवृद्ध, विद्यावृद्ध तपोवृद्ध, पवित्र, विचक्षण वेदवित्, धर्मात्मा, धैर्यवान् होवैं, उनकी ही राजा नित्य सेवा और सङ्ग करै। जो इन पुरुषों का राजा संग करैगा, तो उसका राक्षस अर्थात् दुष्ट पुरुष भी सत्कार और आज्ञा करैंगे॥ २३॥

**एभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः।**
**विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित्॥ २४॥**

—मनु० [७.३९]

जो राजा विनीतात्मा होवै अर्थात् सब श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न भी होवै, तो भी उत्तम पुरुषों से विनय को ग्रहण करै, क्योंकि जो अभिमानादिक दोषों से रहित और विद्या नम्रतादिक गुणों से युक्त होता है, उस राजा का कभी नाश नहीं होता॥ २४॥

**त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।**
**आन्विक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भांश्च लोकतः॥ २५॥**

—मनु० [७.४३]

तीनों वेदों को जो पाठ, स्वर और अर्थ सहित पढ़ा होवै उससे तीन



वेदों को राजा यथावत् पढ़ै। दण्ड नीति जो कि सनातन राजधर्म शिक्षा अर्थात् [दण्ड] देने की जो व्यवस्था है, इसको भी पढ़ै तथा आन्वीक्षिकी जो न्यायशास्त्र, आत्मविद्या और श्रेष्ठ मनुष्यों से कहने, पूंछने और निश्चय करने के वास्ते वार्त्ताओं का आरम्भ, इनको राजा यथावत् पढ़ै और पढ़के यथावत् करै॥ २५॥

**इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।**
**जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥ २६॥**

—मनु० [७.४४]

राजा रात दिन इन्द्रियों के जीतने में नित्य ही प्रयत्न करै, क्योंकि जो जितेन्द्रिय राजा होता है, वही प्रजा को वश में स्थापन करने में समर्थ होता है। और जो अजितेन्द्रिय अर्थात् कामी सो तो आप ही नष्ट भ्रष्ट हो जाता है, फिर प्रजा को वश करने में समर्थ कैसे होगा। इससे क्या आया कि जो शरीर, मन और इन्द्रिय इनको वश में रखता है, सोई राजा प्रजा को वश में कर सकता है, अन्यथा कभी प्रजा वश में राजा के नहीं होती। जब तक प्रजा वश में न होगी, तब तक निश्चल राज्य कभी न होगा। इससे जो जितेन्द्रिय होय उसको ही राजा करना चाहिए, अन्य को नहीं॥ २६॥

**दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।**
**व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ २७॥**

—मनु० [७.४५]

जो राजा कामी होता है, उसमें दश दुष्ट व्यसन अवश्य होंगे और जो क्रोधी राजा होगा, उसमें आठ दुष्ट व्यसन अवश्य होंगे। उनको अत्यन्त प्रयत्न से छोड़ दें, अन्यथा राजा ही राज्यसहित नष्ट हो जाता है॥ २७॥

फिर क्या होगा कि—

**कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।**
**वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥ २८॥**

—मनु० [७.४६]

जो राज काम से उत्पन्न भये जो दश दुष्ट व्यसन उन में जब फस जायगा, तब उसका **अर्थ** नाम द्रव्य और राज्यादिक सब पदार्थ तथा धर्म

इन से रहित हो जायगा अर्थात् दरिद्र और पापी हो जायगा। और क्रोध से उत्पन्न होते हैं जो आठ दुष्ट व्यसन, उन में फस जाने से, वह राजा आप ही मर जाता है। इससे इन अठारह दुष्ट व्यसनों को राजा छोड़ दे, जो अपने कल्याण की इच्छा होवै॥ २८॥

कौन से १८ अठारह दुष्ट व्यसन हैं—

**मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।**
**तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ २९॥**

—मनु० [७.४७]

**मृगया** नाम शिकार का खेलना, **अक्ष** नाम पासाओं से क्रीड़ा वा द्यूत का करना, **दिवास्वप्न** दिवस में सोना, **परिवाद** नाम वृथा वार्त्ता वा किसी की निन्दा करना, **स्त्री** नाम वेश्या और पर-स्त्री-गमन तो अत्यन्त भ्रष्ट है, किन्तु अपनी जो विवाहित स्त्री उससे भी काम से आसक्त होके अत्यन्त फस जाना वा स्वस्त्री में अत्यन्त वीर्य का नाश करना, **मद** नाम भांग, गांजा, अफीम और मद्य इनका सेवन करना, **तौर्यत्रिकं** नृत्य का देखना और करना वादित्रों का बजाना वा सुनना, गान का सुनना वा कराना, **वृथाट्या** नाम वृथा जहां तहां भ्रमण करना अथवा वृथा वार्त्ता वा हास्य करना, यह काम से दश व्यसन समूह गण उत्पन्न होते हैं। इसको प्रयत्न से राजा छोड़ दे, इसको जो न छोड़ेगा तो धर्म और अर्थ अर्थात् धन सहित राज्य नष्ट हो जायगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं॥ २९॥

क्रोध से आठ उत्पन्न जो दुष्ट व्यसन वे ये हैं—

**पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।**
**वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥ ३०॥**

—मनु० [७.४८]

**पैशुन्य** नाम चुगली करना, **साहस** नाम विचार के विना अन्याय से पर पदार्थ का हरण कर लेना अभिमान बलयुक्त होके, **द्रोह** नाम सज्जनों से भी प्रीति का न करना, **ईर्ष्या** नाम पर-सुख न सहना, **असूया** नाम गुणों में दोष और दोषों में गुणों का कहना, **अर्थदूषण** नाम अपने पदार्थों का वृथा नाश करना अथवा अभिमान से दूसरे के कहे अर्थ में अनर्थ का



लगाना, **वाग्दण्डज पारुष्य** नाम विना विचारे मुख से बोल देना अथवा कठोर वचन का कहना इसका नाम है वाक् पारुष्य, विना विचारे दण्ड का देना वा अपराध के विना किसी को दण्ड देना, अपराध के ऊपर भी पक्षपात से मित्रादिकों को दण्ड का न देना, यह क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन युक्तगण उत्पन्न होता है। इसको अत्यन्त प्रयत्न से राजा छोड़ दे, अन्यथा अपने शरीर सहित शीघ्र ही राज्य का नाश हो जाता है॥ ३०॥

इन दोनों गणों का जो मूल है सो यह है—

**द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।**
**तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ॥ ३१॥**

—मनु० [७.४९]

जिससे कामज और क्रोधज दोनों गण उत्पन्न होते हैं अर्थात् सब पाप और सब अनर्थों का मूल लोभ ही है, ऐसा सब विद्वान् लोग जानते हैं। उस लोभ को प्रयत्न से राजा छोड़ दे, क्योंकि लोभ से ही दोनों गण पूर्वोक्त कामज और क्रोधज उत्पन्न होते हैं। इससे राजा और सज्जन लोग जो सब पापों का मूल उस को ही छेदन कर देवें। इसके छेदन से सब अनर्थ और पाप नष्ट हो जायेंगे जैसे कि मूल छेदन से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं॥ ३१॥

**पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।**
**एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ ३२॥**

—मनु० [७.५०]

**पान** नाम मद्यादिक नशा का करना, अक्ष तथा स्त्री, मृगया पूर्वोक्त सब जान लेना, ये चार कामज गण में अत्यन्त दुष्ट हैं, ऐसा राजा जानै॥ ३२॥

**दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।**
**क्रोधजोऽपि गणो विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा॥ ३३॥**

—मनु० [७.५१]

दण्ड का निपातन, वाक्पारुष्य और अर्थ दूषण ये तीन क्रोध के गण में अत्यन्त दुष्ट हैं। १८ अठारह में से ये सात अत्यन्त दुष्ट हैं॥ ३३॥

**सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषंगिणः।**
**पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान्॥ ३४॥**

—मनु० [७.५२]

चार काम के गण में और तीन क्रोध के गण में सर्वत्र ये अनुसंगी हैं कि एक होवै तो दूसरा भी हो जाय। इन सातों में पूर्व-पूर्व अत्यन्त दुष्ट हैं। ऐसा विचारवान् को जानना चाहिये। जैसे कि अर्थ दूषण से वाक्पारुष्य दुष्ट है वाक्पारुष्य से दण्ड का निपातन, दण्ड के निपात से शिकार, शिकार से स्त्रियों का सेवन, इससे अक्ष क्रीड़ा और सबसे दुष्ट मद्यादिक पान है, ऐसा निश्चित सब सज्जनों को जानना चाहिए॥ ३४॥

**व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।**
**व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः॥ ३५॥**

—मनु० [७.५३]

व्यसन और मृत्यु इन दोनों में जो व्यसन है सो मृत्यु से भी बुरा है क्योंकि जो व्यसनी पुरुष है सो पापों में फसके नीच-नीच गति को चला जाता है और जो व्यसनरहित पुरुष है सो मर जाय तो स्वर्ग अर्थात् सुख को प्राप्त होता है। इससे जिसका बड़ा दुष्ट भाग्य होता है वही दुष्ट व्यसन में फस जाता है और जिसका भाग्य अच्छा होता है वह दुष्ट व्यसनों से दूर रहता है॥ ३५॥

**मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्ष्यान् कुलोद्गतान्।**
**सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥ ३६॥**

—मनु० [७.५४]

फिर राजा सात वा आठ पुरुषों को अपने पास रखले। वे कैसे होवैं कि बड़े उदार, सब शास्त्र के जानने वाले, शूरवीर, जिनों ने प्रमाणों से पदार्थ विद्या पढ़ ली है, श्रीमानों के उत्तम कुल में जिनका जन्म होय, उनकी यथावत् परीक्षा करके राजा देखले, क्योंकि राज्य के कार्य एक से कभी नहीं हो सकते। इससे जितने पुरुषों से अपना काम हो सके, उतने पुरुषों की परीक्षा कर-कर के रखले। उनसे यथावत् काम लेवै, परन्तु विना परीक्षा मूर्ख को कभी न रक्खै। और विना उन सभासदों की सम्मति से किसी छोटे काम को भी राजा स्वतन्त्र होके न करै और जो स्वाधीन होके राजा कुकर्म करै, तो वे सभास्थ पुरुष राजा को दण्ड दें, फिर दण्ड



से भी न मानै तो उसको निकालके दूसरा राजा उसी वक्त बैठा दें॥ ३६॥

**सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।**
**सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ ३७॥**

—मनु० [१२.१००]

सेनापति, राज्य करने के योग्य राजा, दण्ड देने वाला, सर्वलोकाधिपति अर्थात् राजा के नीचे मुख्य सर्वोपरि जिसका नाम दीवान कहते हैं, ये चार अधिकार वेद और सब सत्यशास्त्र इन में पूर्ण विद्वान् होवैं उनही को देवैं, अन्य को नहीं, क्योंकि वे चार अधिकार मुख्य हैं। विना विद्वानों के वे चार अधिकार यथावत् नहीं होते। और जो मूर्ख, काम, क्रोधादिक दोषयुक्त इनको देने से वे चार अधिकार नष्ट हो जायेंगे। इस वास्ते अत्यन्त परीक्षा करके चार पुरुष विद्वानों को चार अधिकार देना चाहिए, जिससे कि विजय, राज्यवृद्धि, धर्म, न्याय और सब व्यवहारों की यथावत् व्यवस्था होय, अन्यथा स्वराज्य और ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं॥ ३७॥

**तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान्कुलोद्गतान्।**
**शुचिनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने॥ ३८॥**

—मनु० [७.६२]

उन अमात्यों के समीप राज्य कार्य करने के वास्ते राजा शूर, चतुर, कुलीन, पवित्र जो होवें उनको रख देवै, अमात्य उनसे सब राज्य कार्यों को सिद्ध करैं। उनमें से जितने शूर होवैं उनको जहाँ-जहाँ शंका वा युद्ध, वहाँ-वहाँ रख दे और जितने भीरु होंय उनको भीतर गृह के अधिकार में रक्खै, जहाँ कि स्त्री लोग और कोश वहाँ डरने वालों को रक्खै और जहाँ शूरवीर लोगों का काम होय वहाँ शूरवीरों को रक्खै॥ ३८॥

**दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।**
**इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिन्दक्षं कुलोद्गतम्॥ ३९॥**

—मनु० [७.६३]

फिर राजा दूत को रक्खै। वह दूत कैसा होय कि सब शास्त्र विद्या से पूर्ण होय, मनुष्य को हृदय की बात, गमन, शरीर की आकृति और चेष्टा, इनसे जान लेना जो कि उसके हृदय में होय, पवित्र, चतुर और बड़े

कुल का जो पुरुष होय, ऐसे पुरुष को राजा दूत का अधिकार देवै॥ ३९॥

**अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।**
**वपुष्मानभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥ ४०॥**

—मनु० [७.६४]

फिर वैसे को दूत करै कि राजा में बड़ी प्रीति जिसकी होय, **दक्ष** नाम बड़ा चतुर, एक वक्त कही बात को कभी न भूलै और जैसा देश, जैसा काल, वैसी बात को जानै। **वपुष्मान्** नाम रूप बल और शूरवीरता जिसमें होय, **वीतभी** नाम किसी से जिसको भय न होय, **वाग्मी** बड़ा वक्ता, धृष्ट और प्रगल्भ होवै, ऐसा जो दूत राजा का होय, सो श्रेष्ठ होता है॥ ४०॥

**अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।**
**नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ॥ ४१॥**

—मनु० [७.६५]

दण्ड देने का जितना व्यवहार वह सर्वशास्त्रवित् धर्मात्मा पुरुषों के आधीन रक्खै और दण्ड अन्याय से न होने पावै, किन्तु विनयपूर्वक ही होवै। कोश और राज्य यह दोनों राजा के अधिकार में रहैं। **सन्धि** नाम मिलाप, **विपर्य** नाम विरोध, ये दोनों दूत के आधीन राजा रक्खै॥ ४१॥

**तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।**
**ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च॥ ४२॥**

—मनु० [७.७५]

**तत्** नाम दुर्ग किला सब प्रकार के आयुध, **धनधान्य** नाम अन्न, वाहन सवारी, ब्राह्मण विद्वान्, **शिल्पी** नाम कारीगर लोग, नाना प्रकार के यन्त्र तथा घास आदिक चारा और **उदक** नाम जल इनसे पूर्ण सदा रहै, कमती किसी बात की न होय॥ ४२॥

**तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः।**
**गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्॥ ४३॥**

—मनु० [७.७१]

उस श्रेष्ठ देश में सब प्रकार से श्रेष्ठ अपना घर राजा रहने को बनवावै,



सब प्रकार से उस स्थान की रक्षा करै और सब ऋतुओं में जिस घर में सुख होवै, **शुभ्र** नाम सुफेद वह घर होवै, चारों ओर घर के जल और श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वृक्ष, हरे-हरे पेड़ रहैं। उसमें आप रहै, सब राज्य को देखै, भ्रमण करै और सबके ऊपर सदा दृष्टि रक्खै, जिससे कोई अन्याय न करने पावै॥ ४३॥

**तदध्यास्योद्वहेद् भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।**
**कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्॥ ४४॥**

—मनु० [७.७७]

उस स्थान में रह के अपने वर्ण की, सब श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त और बड़े कुल में उत्पन्न भई अत्यन्त हृदय को प्रसन्न करनेवाली, उत्तम जिसका रूप और सब विद्यादिक श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न स्त्री के साथ राजा विवाह करै। देखना चाहिए कि ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्या का पढ़ना, सब राज्य कार्य का प्रबन्ध करना और सब व्यवहारों को यथावत् जानना, पीछे राजा का विवाह मनु भगवान् ने लिखा। इससे क्या आया कि ४८ वा ४४ वा ४० चालीस वा ३६ वर्ष में राजा को विवाह करना उचित है। इससे पहिले कभी नहीं और स्त्री भी २० वर्ष से ऊपर २५ वर्ष तक की होना चाहिए, तब राजा का सन्तान सर्वोत्तम होय, अन्यथा नष्ट भ्रष्ट ही हो जाना है॥ ४४॥

**पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्।**
**तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च॥ ४५॥**

—मनु० [७.७८]

सब शास्त्रों में विशारद नाम निपुण, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और सत्यवादी जो कि पूर्वोक्त लक्षण वाला कहा, उसको पुरोहित करै। और ऋत्विज भी वैसे ही को करै। राजा के जितने अग्निहोत्रादिक गृह्यकर्म और इष्टियां उनको नित्य करैं॥ ४५॥

**यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः।**
**धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद् भोगान्धनानि च॥ ४६॥**

—मनु० [७.७९]

अग्निष्टोम से ले के जितने अश्वमेध तक यज्ञ हैं, उनमें से कोई यज्ञ को राजा करै सो पूर्ण क्रिया और पूर्ण दक्षिणा से करै। जितने विद्वान् और धर्मात्मा होवैं, उनको नाना प्रकार के भोजन करावै और दक्षिणा भी देवै॥ ४६॥

**सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्।**
**स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु॥ ४७॥**

—मनु० [७.८०]

श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा वर्ष-वर्ष के, प्रजा से करों को राजा लिया करै। केवल वेद-विहित और धर्मशास्त्रोक्त आचार में तत्पर होवै। जितनी प्रजा में कन्या, युवती और वृद्धा होवैं, इनको कन्या, भगिनी और माता की नांई राजा जानै, जितने बालक, युवा और वृद्ध उनको पुत्र, भाई और पिता की नांई राजा जानै। अधिक क्या, कि सब प्रजा को पुत्र की नांई जानै और आप पिता की नांई वर्तमान करै॥ ४७॥

**अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः।**
**तेऽस्य सर्वाण्यवक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम्॥ ४८॥**

—मनु० [७.८१]

जहाँ-जहाँ, जैसा-जैसा काम होय, वहाँ-वहाँ, नाना प्रकार के मन्त्रियों को रख देवै, सब प्रजा के सुख के वास्ते सब कार्यों को देखते रहैं और व्यवस्था करते रहैं, जिससे कि अधर्म न होने पावै, परन्तु वे मूर्ख न होवैं, किन्तु सब विद्वान् ही होवैं॥ ४८॥

**आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।**
**नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते॥ ४९॥**
**न तं स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति।**
**तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः॥ ५०॥**
**न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित्।**
**वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम्॥ ५१॥**

—मनु० [७.८२-८४]

जो ब्रह्मचर्याश्रम से गुरुकुल में गुरु के पास विद्या पढ़ के पूर्ण विद्वान् होके आवैं, उनको राजा यथायोग्य सत्कार करै और यथायोग्य उनको अधिकार भी देवै। जिससे कि सत्य विद्या का लोप कभी न होय, किन्तु सब विद्या सब मनुष्यों के बीच में सदा प्रकाशित रहै। अर्थात् पुरुष वा स्त्री विद्यारहित न रहने पावै यही राजाओं का अक्षयनिधि अर्थात् अक्षय पुण्य है जो कि **ब्रह्म** नाम वेद का यथावत् पढ़ना और यथावत् वेदोक्त कर्मों का करना, इससे आगे कोई पुण्य नहीं है क्योंकि॥ ४९॥



जितने धन हैं सुवर्णरजतादिक, पुत्र, दारा और शरीर उनको चोर ले सकते हैं, शत्रु भी हरण कर सकते हैं और उनका नाश भी हो जाता है, परन्तु जो विद्या-निधि है उसको न चोर, न शत्रु हर सकते हैं और न कभी उसका नाश होता है। इससे राजा लोगों को विद्या का प्रकाश रूप जो निधि उसको विद्वानों के बीच में स्थापन करना चाहिए और नित्य उस का प्रचार करना चाहिए॥ ५०॥

जो विद्या निधि है उसको कोई उठाई गिरा उठा नहीं सकता, न उसको व्यथा अर्थात् कभी पीड़ा होती है, अग्निहोत्रादिक जितने यज्ञ हैं, उनसे यह जो विद्यारूप श्रोत्र और मुख में ब्रह्म के जानने वाले अथवा पढ़नेवाले के मुख रूप वेदि में होम अर्थात् विद्या का जो स्थापन करना है सो वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ है। इससे राजा लोगों को अवश्य-अवश्य चाहिए कि शरीर, मन और धन से अत्यन्त प्रयत्न विद्या के प्रचार में करैं, इसी से राजा लोगों का ऐश्वर्य, पूर्ण आयु, बल, बुद्धि और पराक्रम सदा अधिक होते हैं॥ ५१॥

**संग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्।**
**शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम्॥ ५२॥**

—मनु० [७.८८]

संग्रामों से कभी निवृत्त न होना कि जब तक उस शत्रु को न जीत ले, तब तक उपाय में ही रहै किन्तु भागने के समय में भाग भी जाना। और पराक्रम के समय में पराक्रम करना, इसका नाम शूरवीरपना है। जो कि पशु की नांई मार खाना वा मर जाना, इसका नाम शूर वीरता नहीं, किन्तु बुद्धि ही से विजय होता है, अन्यथा कभी नहीं। प्रजाओं का पालन

करना, जितने जितने विद्वान्, सत्यवादी, धर्मात्मा, ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् सब विद्याओं में पूर्ण उनका यथावत् सत्कार करना, यही राजा लोगों का कल्याण करने वाला परम श्रेष्ठ कर्म है, अन्य कोई नहीं॥ ५२॥

**आहवेषु मिथ्योऽन्योऽन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।**
**युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥ ५३॥**

—मनु० [७.८९]

प्रजा के पालन करने के वास्ते श्रेष्ठ धर्मात्माओं का यथावत् पालन और दुष्टों का ताड़न करने के लिये जितना अपना सामर्थ्य, उससे यथावत् सब पुरुष मिलके परस्पर जो राजा लोग हनन दुष्टों का करते हैं, उसमें अपने भी मरण से जो शंका नहीं करते हैं और युद्ध में पीठ नहीं देखाते हैं अर्थात् कभी युद्ध से भागते नहीं, पर सहर्ष और शूरवीरता से जो युद्ध करते हैं, उनका इस लोक में अखण्डित राज्य होता है और मर जांय तो मरने के पीछे परम स्वर्ग को प्राप्त होते हैं क्योंकि उन राजा लोगों का जितना कर्म है, सो सब धर्म के वास्ते ही है और शूरवीरता से उत्साहपूर्वक निर्भय समय में देह का जो छोड़ना सोई स्वर्ग जाने का कारण है॥ ५३॥

युद्ध में धर्म से इतने नियम राजा लोगों को अवश्य मानना चाहिए।

**न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्।**
**न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः॥ ५४॥**
**न च हन्यात् स्थलारूढ़न्न क्लीबन्न कृताञ्जलिम्।**
**न मुक्तकेशन्नासीनन्न तवास्मीति वादिनम्॥ ५५॥**
**न सुप्तन्न विसन्नाहं न नग्नन्न निरायुधम्।**
**नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्॥ ५६॥**
**नायुधव्यसनप्राप्तन्नार्तन्नातिपरीक्षतम्।**
**न भीतन्न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्॥ ५७॥**

—मनु० [७.९०-९३]

कूट आयुध अर्थात् कपट, छल से कोई भी, कभी युद्ध में न मारै। रिपु नाम शत्रुओं का कर्णि नाम कुटिलशस्त्र विष से युक्त शस्त्र से तथा अग्नि से तपाये इन शस्त्रों से शत्रु को कभी न मारै॥ ५४॥



जो आसन में बैठा होय, नपुंसक, हाथ को जोड़ ले, जिसके शिर के बाल खुल जांय, मैं आपका हूँ मुझको मत मारो, जो ऐसा कहै॥ ५५॥

जो सोता होय, विषाद को प्राप्त भया होय वा नग्न हो गया होय, आयुध से रहित कि जिसके हाथ में शस्त्र न होय, जो युद्ध न करता होय वा देखने को आया होय अथवा दूसरे के साथ आया होय[ ॥५६॥] मूर्छित हो गया होय शस्त्र के प्रहार से, दुःखित हो गया होय और शस्त्रों के लगने से शरीर में छेदन हो गया होय, भयभीत हो गया होय, जो युद्ध से भाग खड़ा होय, इनको युद्ध में राजा कभी न मारै, क्योंकि सत्पुरुष राजाओं का यही धर्म है जो युद्ध करने को आवै शूरवीरता से, उसी को मारै, अन्य को नहीं, किन्तु पकड़ के सुख में अपने वश में उसी वक्त कर ले। जो स्त्री और बालक हैं, उनको मारने की इच्छा भी राजा लोग न करैं, क्योंकि जो युद्ध की इच्छा वा युद्ध नहीं करते हैं, उनके मारने में बड़ा पाप है, इससे कभी इनको न मारै॥ ५७॥

और जो राजा का भृत्य होय वह युद्ध न करै वा युद्ध से भाग जाय अथवा छल, कपट रक्खै युद्ध में उसको बड़ा भारी पाप होता है।

**यस्तु भीतःपरावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः।**
**भर्त्तुर्यद् दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते॥ ५८॥**

—मनु० [७.९४]

जो भृत्य भययुक्त होके युद्ध से भाग जाता है और भागे हुए को भी शत्रु लोग मार डालैं तो बड़ी कृतघ्नता उसने किया क्योंकि राजा ने उसका पालन और सत्कार किया था सो युद्ध के वास्ते ही किया था, सो युद्ध उसने कुछ किया नहीं, राजा के किये को नाश करने से वह कृतघ्न होता है और जो राजा का कुछ पाप उसको वही प्राप्त होता है॥ ५८॥

**यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।**
**भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु॥ ५९॥**

—मनु० [७.९५]

उस भृत्य ने जो कुछ परलोक के वास्ते पुण्य किया था, इस सब पुण्य को राजा ले लेता है और उस भृत्य को घोर नरक होता है सुख कभी

नहीं। यही धर्म स्वामी और सब सेवकों का भी है कि जो जिस का स्वामी वा जो जिसका भृत्य वे परस्पर हित करने ही में सदा प्रवृत्त रहैं, छल और कपट मन से भी न करै, अन्यथा दोनों अधर्मी होते हैं॥ ५९॥

**रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः।**
**सर्वद्रव्याणि कुप्यञ्च यो यज्जयति तस्य तत्॥ ६०॥**

—मनु० [७.९६]

रथ, घोड़ा, हाथी, छाता, धनधान्य, पशु गाय छेरी आदिक, स्त्री और वस्त्रादिक सब द्रव्य, घी वा तैल का कुप्पा इनको जो युद्ध करने वाला जीते सोई ले लेवै। उनमें से राजा कुछ न ले॥ ६०॥

**राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।**
**राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्॥ ६१॥**

—मनु० [७.९७]

परन्तु सब भृत्य लोग सोलहवां हिस्सा उन द्रव्यों में से राजा को देवें, जो राजा और सेना ने मिल के जीता होय द्रव्य मिला भया, उसमें से राजा भी सोलहवां हिस्सा भृत्यों को देवै। इसमें राजा अधिक वा न्यूनता कभी न करै, क्योंकि इसके विना युद्ध में उत्साह कभी कोई न करेगा॥ ६१॥

**अलब्धमिच्छेद् दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।**
**रक्षितं वर्द्धयेद् वृध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत्॥ ६२॥**

—मनु० [७.१०१]

चार भेद हैं पुरुषार्थ के, अलब्ध जो राज्यादिक उनको दण्ड से ग्रहण करै, जो प्राप्त भया उसकी खूब बुद्धि और प्रीति से रक्षा करै, और रक्षित पदार्थों को व्याजादिक उपायों से बढ़ावै, और जो बढ़ा भया धन उसको विद्या-दान यज्ञ धर्मात्माओं का पालन और अनाथों के पालन में लगावै इनमें से भी वेदादिक सत्यशास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने ही में बहुधा धन खर्च करै अन्य में नहीं॥ ६२॥

**वकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत्।**
**वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्॥ ६३॥**

—मनु० [७.१०६]



राजा सब अर्थों के संग्रह करने में अत्यन्त बुद्धि से विचार करै जैसाकि मत्स्यादिक ग्रहण करने के वास्ते बगुला ध्यानावस्थित होके विचार करता है, वैसे राजा भी ध्यानावस्थित होके सब अर्थों का विचार करै। युद्ध समय में सिंह की नांई पराक्रम करै जिससे विजय होवै और पराजय कभी न होय। आपत्काल में अथवा दुष्टों के निग्रह करने के वास्ते ऐसा गुप्त रहै जैसा कि चीता वा भेड़िया। और खरहा जैसे अपने बिल से निकल के कूदता दौड़ता चला जाता है, वैसे ही राजा शत्रु की सेना से निकल के भाग जाय वा छिप जाय अथवा किला तोड़ने में और शत्रु के ग्रहण करने में पराक्रम करै॥ ६३॥

**शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।**
**तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्॥ ६४॥**

—मनु० [७.११२]

जैसे शरीर दुर्बल करने से बलादिक जो प्राण वे क्षीण हो जाते हैं, वैसे ही राज्य के नाश अर्थात् अरक्षण से राजा लोगों के भी प्राण क्षीण हो जाते हैं अर्थात् राज्य सहित नष्ट हो जाते हैं॥ ६४॥

**यथाल्पाऽल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः।**
**तथाल्पाऽल्पो गृहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः॥ ६५॥**

—मनु० [७.१२९]

जैसे जोंक, बछड़ा और भौंरा थोड़ा-थोड़ा रुधिर, दूध और सुगन्ध को जिनसे ग्रहण करते हैं उनका नाश कभी नहीं करते, वैसे ही राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा कर ग्रहण करै साल-साल में॥ ६५॥

**परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।**
**कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥ ६६॥**

—मनु० [७.१५२]

जब सब अमात्यों के साथ वा प्रजास्थ पुरुषों के साथ कोई व्यवहार के निश्चय के वास्ते राजा विचार करै उनमें जिस बात में परस्पर विरोध होय उसमें से विरुद्धांश को छोड़ाके सिद्धांत में सबकी जब एकता होय, उस बात का आरंभ करै, अन्य का नहीं। कन्याओं का सोलहवें वर्ष से

पहिले विवाह कभी न होने पावै तथा चौबीस वर्ष के आगे कन्या विवाह के विना कभी न रहने पावै, जिसको की विवाह की इच्छा होय। तथा कुमार पुरुषों का २५ वर्ष के पहिले विवाह किसी का न होने पावै और ४०, ४४ वा ४८ वर्ष के आगे विवाह के विना पुरुष भी न रहैं। तब तक कन्या और पुरुषों को विद्या दान राजा करै और उनसे करावै तथा उनकी रक्षा भी राजा करावै, जिससे कि कोई भ्रष्ट न होवै और विद्याहीन भी कोई कन्या वा पुरुष न रहै। यही राजा लोगों का परम धर्म और परम पुरुषार्थ है जिससे सब व्यवहार उत्तम होते हैं, अन्यथा नहीं। और जिस पुरुष वा कन्या को विवाह की इच्छा ही न होवै, उसके ऊपर राजा वा अन्य का कुछ बल नहीं॥ ६६॥

**दूतसम्प्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च।**
**अन्तःपुरप्रचारञ्च प्रणिधीनां च चेष्टितम्॥ ६७॥**

—मनु० [७.१५३]

दूत को भेजना और उससे सब यथावत् व्यवहारों का जानना, **कार्यशेष** नाम इतना कार्य सिद्धि हो गया और इतना कार्य सिद्ध [होना] बाकी है उसको विचार से यथावत् पूर्ण करै। जिस नगर में वा जिस स्थान में रहै, उन मनुष्यों का यथावत् अभिप्राय जान ले। प्रणिधी नाम दूती अथवा दासी इनकी भी चेष्टा को यथावत् जानै, जिससे कि कोई विघ्न न होने पावै॥ ६७॥

**कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः।**
**अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च॥ ६८॥**

—मनु० [७.१५४]

ये आठविध जो कर्म राजा, अमात्य, सेना, कोश और राज्य ये पांच वर्ग हैं जिसमें उस कर्म को तत्त्व से जानै और उसकी रक्षा भी करै। अपने में सबकी प्रीति वा अप्रीति तथा मण्डल के राजाओं का व्यवहार और उनके मन की इच्छा इसको यथावत् राजा जानता रहै। जिससे आपत्काल अकस्मात् कभी न आवै॥ ६८॥

**मध्यमस्य प्रचारञ्च विजिगीषोश्च चेष्टितम्।**



**उदासीनप्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः॥ ६९॥**

—मनु० [७.१५५]

अपने और पर-राज्य की सीमा में जो राजा होय, **विजिगीषु** नाम शत्रु के तरफ से जो जीतने को आवै, उदासीन जो अपने वा शत्रु के पक्ष में न होवै और शत्रु इन चारों की चेष्टा और अभिप्राय को यथावत् राजा जान लेवै, अन्यथा सुख कभी न होगा। इससे अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक राज्य के मूल जितने हैं उनको कहै, उनको तत्पर होके जानै, जानके यथावत् व्यवस्था करै॥ ६९॥

इनको साम अर्थात् मिलाप, दान अर्थात् धन का देना, भेद नाम परस्पर सभों को तोड़ फोड़ रक्खै और दण्ड ये चार राजा लोगों के साधन हैं, परन्तु उन चारों में से मिलाप उत्तम है उससे नीचे दान और भेद, सबसे कनिष्ठ दण्ड है इससे तीन उपाय से जब कार्य सिद्धि न होवै तब दण्ड करै। इनका तत्त्व यह है कि जिससे बहुत धर्मात्मा होवैं और दुष्ट न होवैं, ऐसे उपाय विद्यादिक दानों से राजा सदा करता रहै।

एक तो उक्त प्रकार से युवावस्था में ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या को पढ़ के विवाह का होना। और पांचवें वर्ष पुत्र वा कन्या को पढ़ने के वास्ते न भेजैं तो उनके माता-पितादिकों के ऊपर राजा अवश्य दण्ड करै, यथावत् पठन और पाठन की व्यवस्था करै। जो कोई इस मर्यादा को भङ्ग करै विद्यादिक गुण ग्रहण न करै, तब उस मनुष्य को शूद्र का अधिकार दे देवै और शूद्रादिक नीचों में कोई उत्तम होवै, उसको यथा योग्य द्विज का अधिकार देवै जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्यों के दुष्ट पुत्र वा कन्या मूर्ख हो जायं, तब उनको शूद्र कुल में रख दे और शूद्रादिकों में जब द्विजत्व अधिकार के योग्य होवैं, तब यथा योग्य द्विज का अधिकार देवै अर्थात् द्विज बना देवै। तब जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के पुत्र वा कन्या एक, दो, तीन वा जितने शूद्र हो गये होंय, उनके बदले पुत्र वा कन्याओं को राजा गिन-गिन के देवै तथा शूद्रादिकों को भी, क्योंकि जिसको एक ही पुत्र वा कन्या है और वह शूद्र हो गया अथवा शूद्र का पुत्र वा कन्या द्विज हो गये, फिर उनका वंश तो छिन्न ही हो गया। इससे राजा लोगों से

यथायोग्य गिन-गिन के लिये जायं और दिये भी जायं।

दूसरी बात यह है कि वेदादिक सत्यशास्त्रों का अत्यन्त प्रचार करै और जो कोई जाल पुस्तक रचै वा पढ़ै पढ़ावै उसको राजा शिरच्छेदन तक दण्ड देवै। जिससे कि कोई मिथ्या जाल पुस्तक न रचै।

तीसरी बात यह है कि जब कोई जितेन्द्रिय, पूर्ण विद्यावान्, पूर्णज्ञानवान्, सत्यवादी, दयालु और तीव्र बुद्धि वाला विवाह करना न चाहै और विरक्त होना चाहै, उसकी राजा यथावत् परीक्षा करके आज्ञा देवै और कह दे कि आप सत्यविद्या, सत्य उपदेश का प्रचार संसार में करैं। उसका आकार, स्वभाव और गुण पत्र में लिखे और ग्राम-ग्राम नगर-नगर में विदित कर दे जिससे कि कोई पुरुष उसका अपमान न करै और उसके वेष वा नाम से कोई फिरने न पावै।

चौथी बात यह है कि कोई मूर्ख, धूर्त्त, अधर्मी और मिथ्यावादी विरक्त न होने पावै, क्योंकि उसके विरक्त होने से सब संसार की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जैसी उसकी भ्रष्टबुद्धि होगी, वैसा ही उपदेश करेगा, अच्छा कहाँ से करेगा। इससे ऐसा पुरुष विरक्त न होने पावै, जो विरक्त होय तो उसको पकड़ के दण्ड दे।

पांचवीं बात यह है कि जो कोई कर्मकाण्ड का अधिकारी होय, उसको कर्मकाण्ड में रक्खै सो कर्मकाण्ड वेदोक्त लेना, तन्त्र वा पुराण की एक बात भी न लेनी। पूर्वमीमांसा अर्थात् जैमिनि जो व्यास जी के शिष्य उसके किये सूत्रों के अनुसार कर्मकाण्ड की व्यवस्था राजा नित्य रक्खै। संध्योपासन, अग्निहोत्र से ले अश्वमेध तक **कर्मकाण्ड** है उसके **दो भेद** हैं, एक तो सकाम, दूसरा निष्काम। **सकाम** यह कहाता है कि विषय भोग, ऐश्वर्य के वास्ते कर्म का करना और **निष्काम** यह है कि कर्मों से मुक्ति ही का चाहना, उससे भिन्न पदार्थों की चाहना नहीं। उसमें जो वेद के मन्त्र हैं, वे ही देव हैं, इनसे भिन्न कोई देव नहीं। और मन्त्रों के कहने वाले परमेश्वर परमदेव हैं, ऐसा ही निश्चय पूर्वमीमांसादिकों और निरुक्तादिकों में किया है।

**दूसरा उपासना का काण्ड** है सो भी वेदोक्त ही लेना। उसके



व्यवस्था के निमित्त पातञ्जलि मुनि के सूत्र और उसके ऊपर व्यास मुनि जी का किया भाष्य तथा दश उपनिषद् इन्हीं को रक्खै। इनमें जैसी उपासना की व्यवस्था है उसी पूर्वक आप और अपनी प्रजा को चलावै। पाषाणादिक मूर्त्तिपूजनादिक उपासना ही नहीं, इससे इसको छोड़ना ही उचित है।

**तीसरा ज्ञान काण्ड** है उसमें पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का यथावत् तत्त्वज्ञान का होना इसका विधान वेद, दश उपनिषद् और व्यासजी का किया शारीरक सूत्र उनकी रीति से ज्ञान काण्ड की व्यवस्था करै, उसमें आप राजा चलै और प्रजा को भी चलावै।

और जितने पूर्वोक्त शैव, वैष्णव, शाक्तादिक पाखण्ड लिखे हैं उनको कभी न प्रचलित करै क्योंकि ये सब पाखण्ड हैं, तीनों काण्ड में नहीं है उनसे विरुद्ध ही हैं। इन पाखंडों के चलने में राजा और राज्य नष्ट हो जाते हैं सो अत्यन्त प्रयत्नों से इन पाखण्डों का अंकुर मात्र भी न रहने पावै।

जैसे कि आजकाल आर्यावर्त्त देश में मण्डली की मण्डली फिरती हैं, लाखों पुरुषों ने विरक्तता धारण की है, यह मिथ्या जाल ही है। इन लाखों में कोई एक पुरुष विरक्तता के योग्य है और सब पाखण्ड में रत हैं इनकी राजा यथावत् परीक्षा करै। सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सब विद्याओं में निपुण और शान्त्यादिक गुण जिसमें होय उसको तो विरक्त ही रहने दे, इससे जितने विपरीत होंय, उनको यथायोग्य हल ग्रहणादिक कर्मों में राजा लगा देवै। इस व्यवस्था को अवश्य करै, अन्यथा कभी सुख न होगा॥

**सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।**
**द्वैधीभावं संश्रयञ्च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा॥ ६५॥**

—मनु० [७.१६०]

**सन्धि** नाम मिलाप, **विग्रह** नाम विरोध, **यान** नाम यात्रा कि शत्रु के ऊपर चढ़ना, **आसन** नाम युद्ध का न करना और अपने राज्य का प्रबन्ध करके घर में बैठे रहना, **द्वैधीभाव** नाम दो प्रकार का बल अर्थात् सेना रच

लेना। इन छः गुणों का विचार किया है सो मनुस्मृति में विचार लेना और भी बहुत प्रकार के राजकर्मों का उसी में विचार किया है सो देख लेवें।

**प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान्।**
**रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह॥ ६६॥**

—मनु० [७.२०३]

जिस राजा को जीत ले, उससे नियम कर दे कि जब हम तुमको बोलावैं वा जैसी आज्ञा करैं उसको यथावत् करना और मेरे अमात्य के तुल्य होके यथोक्त मेरी आज्ञा करो, यथावत् तुम धर्म से सब काम करो अन्याय मत करो। पराजय के शोक निवारण के निमित्त राजा और राजा के सब पुरुष मिल के उनको रत्नादिक देके उस राजा को प्रसन्न करैं, जिससे कि उसको पराजय से दुःख भया होय, उसका सत्कार से निवारण हो जाय। फिर उनकी यथावत् आजीविका कर दे। जिससे उनके भोजनादिकों का निर्वाह हो सके, उतनी जीविका कर दे। और जो राजा धर्म से राज्य करै विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम और जितेन्द्रिय होय, उससे न युद्ध करै, न उससे राज्य लेने की इच्छा करै, किन्तु उसको बन्धु और मित्रवत् जानै॥ ६६॥

**प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।**
**कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कृष्टमाहुररिं बुधाः॥ ६७॥**

—मनु० [७.२१०]

पण्डित, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, कृतज्ञ और धैर्यवान् पुरुष से वैर कभी न करै जो कभी वैर करैगा तो उसको दुःख ही होगा, ऐसे पुरुष का पराजय कभी नहीं हो सकता॥ ६७॥

**एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः।**
**व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत्॥ ६८॥**

—मनु० [७.२१६]

इस प्रकार से सर्व राज सम्बन्धी जो कर्म उसका विचार मन्त्रियों के साथ करके **व्यायाम** नाम दण्ड मुग्दर करके सिंह की नांई अथवा नट की नांई अभ्यास करके मध्याह्न समय के पहिले भोजन करै। भोजन करके,



न्याय घर में जाके, सब न्यायों को यथावत् करै।

जितनी राज सम्बन्धी बातें लिखी हैं ये सब मनुस्मृति सप्तमाध्याय की हैं। यहाँ तो संक्षेप से लिखी हैं, विस्तार से देखना चाहै तो वहाँ देख लै।

एक यह बात अवश्य होनी चाहिए कि जो मनुष्य राजा हो, उसी की आज्ञा में चलैं, यह बात ठीक नहीं, क्योंकि राजा तो प्रतिष्ठा और मान के वास्ते सर्वोपरि है, परन्तु विचार करने को एक पुरुष समर्थ नहीं होता। जितने देश वा अन्य देश में बुद्धिमान् पुरुष होवैं उन सबकी राजा एक सभा रक्खै, उस सभा में आप भी रहै, फिर सब पुरुषों के विचार से जो बात ठीक-ठीक ठहरे, उस बात को सब करैं। इससे क्या आया कि जो राजा अन्यायकारी हो जाय तो उसको निकाल बाहर करैं और उसी के स्थान में उक्त लक्षण वाले क्षत्रिय को सिंहासन पर बैठा देवैं, क्योंकि राजा तो प्रजा के भय से अन्याय न कर सकेगा और प्रजा राजा के भय से अन्याय न कर सकेगी। राजा जब अन्याय करै तब उसको यथावत् दण्ड दे दे॥ ६८॥

**कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।**
**तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥ ६९॥**

—मनु० [८.३३६]

जिस अपराध में प्रजास्थ पुरुष के ऊपर एक पैसा दण्ड होय, उसी अपराध को जो राजा करै उस के ऊपर हजार पैसे दण्ड होय। यह केवल उपलक्षण मात्र है कि प्रजा से हजार गुना दंड राजा के ऊपर होय क्योंकि राजा जो अधर्म करेगा तो धर्म का पालन कौन करेगा, कोई भी न करेगा। इससे दोनों के ऊपर दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए॥ ६९॥

**अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।**
**षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च॥ ७०॥**
**ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।**
**द्विगुणं वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणवद्धि सः॥ ७१॥**

—मनु० [८.३३७-३३८]

जितना पदार्थ कोई चोरावै वह मूर्ख वा बालक न होय किन्तु गुण

और दोषों को जानता होवै सो शूद्र चोर होय तो उससे आठ गुण दण्ड ले, वैश्य से सोलह गुण, क्षत्रिय से ३२ गुण और [६४], १०० वा १२८ गुण दण्ड राजा ब्राह्मण से लेवै, क्योंकि श्रेष्ठ होके नीच कर्म करै, उसको अधिक ही दण्ड होना चाहिए॥ ७१ ॥

**पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।**
**नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यत्स्वधर्मे न तिष्ठति॥ ७२ ॥**

—मनु० [७.३३५]

पिता, आचार्य विद्यादाता, सुहृत् नाम मित्र, माता, भार्या नाम स्त्री, पुत्र और पुरोहित जब-जब अपराध करैं, तब-तब कभी दण्ड के विना न छोड़ै, क्योंकि राजा के सामने कोई अपराधी अदण्ड्य नहीं, क्योंकि जो स्वधर्म में स्थित न रहै ॥ ७२ ॥

**अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।**
**अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥ ७३ ॥**

—मनु० [८.१२८]

जो राजा अन्याय करनेवाले को दण्ड नहीं देता और न अपराधी को दण्ड देता है, उसकी बड़ी अपकीर्ति होती है और नरक को भी वह जाता है। इससे राजा को अवश्य चाहिए कि पक्षपात को छोड़ के यथावत् दण्ड व्यवस्था रक्खै, किसी का पक्षपात कभी न करै। इससे क्या आया कि किसी ने मनुस्मृति में वा अन्यत्र से ऐसे श्लोक प्रक्षिप्त किया होय कि ब्राह्मण वा संन्यासी आदि को दण्ड न देना, उसको सज्जन लोग मिथ्या ही मानैं॥ ७३ ॥ क्योंकि—

**धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते।**
**शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः॥ ७४॥**

—मनु० [८.१२]

धर्म अधर्म से विद्ध अर्थात् घायल भया, राजा और सभासदों के पास धर्मी और अधर्मी दोनों आवें, फिर उस धर्म का जो घाव उसको राजा और सभासद् न निकालैं जैसे कि घाव को औषध्यादिक यत्नों से अच्छा करते हैं, वैसे ही धर्मात्मा का सत्कार और दुष्टों के ऊपर दण्ड



जिस सभा में यथावत् न होगा, उस सभा के राजा और सभासद् सब मनुष्यों को मुरदे ही जानना तथा जहाँ-जहाँ शिष्ट पुरुषों की अथवा सत्यासत्य निश्चय के वास्ते सभा होवै, फिर जिस सभा में सत्य का स्थापन न होय और असत्य का खण्डन वे भी सब सभासद् मूढ़ ही हैं और मुरदे क्योंकि॥ ७४॥

**सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समंजसम्।**
**अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी॥ ७५ ॥**

—मनु० [८.१३]

पुरुष प्रथम तो सभा में प्रवेश ही न करै और जो सभा में प्रवेश करै तो सत्य ही कहै, मिथ्या कभी न कहै, क्योंकि जानता भया पुरुष सत्यासत्य को न कहै अथवा जैसा जानता होय, उससे विरुद्ध कहै, तो भी वह मनुष्य पापी हो जाता है। इससे क्या आया कि जैसा जो पुरुष हृदय से जानता होय वैसा ही कहै, उससे विरुद्ध भी न कहै, क्योंकि सत्य बोलना ही सब धर्मों का मूल है और असत्य अधर्म का मूल है। इसमें महाभारत का प्रमाण है—

**न सत्याद्धि परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।**

इसका यह अभिप्राय है कि सत्य बोलने से बढ़कर कोई धर्म नहीं और मिथ्या बोलने से बढ़कर कोई पाप नहीं। इससे सत्यभाषण ही सदा करना चाहिए, मिथ्या कभी नहीं॥ ७५ ॥

**यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।**
**हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥ ७६ ॥**

—मनु० [८.१४]

जिस राजा की सभा में धर्म का अधर्म और सत्य का अनृत नाश करता है राजा तथा अमात्यों के देखते भी, फिर वे न्याय नहीं करैं तथा सर्वत्र सभा में उनको भी सज्जन लोग नष्ट ही जानैं क्योंकि॥ ७६ ॥

**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**
**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्॥ ७७॥**

—मनु० [८.१५]

जो पुरुष धर्म का नाश करता है अर्थात् धर्म को छोड़ के अधर्म करता है, उसको अवश्य ही धर्म मार डालता है। उस अधर्मी की रक्षा करने को ब्रह्मादिक देव भी समर्थ नहीं और परमेश्वर भी अपनी आज्ञा को अन्यथा नहीं करते, क्योंकि परमेश्वर तो सत्य सङ्कल्प ही है। इससे जैसी आज्ञा विचार के यथावत् की है वही रहती है कि अधर्म करै सो अधर्म का फल पावै और धर्म करै सो धर्म का। और जो पुरुष धर्म की रक्षा करता है, उसकी धर्म भी सदा रक्षा करता है। उसका नाश करने को तीनों लोक में कोई भी समर्थ नहीं, इससे सब सज्जन लोग धर्म का नाश और अधर्म का आचरण कभी न करैं॥ ७७॥

**वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।**
**वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्॥ ७८॥**

—मनु० [८.१६]

जो मनुष्य धर्म का लोप अर्थात् धर्म को छोड़ के अधर्म करता है, वही शूद्र वा भड़ुवा है क्योंकि वृष नाम धर्म का है और भगवान् भी तीनों लोक में धर्म ही है जो आज्ञा करने वाला है सो आज्ञा से भिन्न नहीं, क्योंकि उसके आत्मरूप ही आज्ञा है। उस धर्म को जो त्याग करता है उसको देव नाम विद्वान् लोग शूद्र वा भड़ुवा की नांई जानते हैं। इससे धर्म का त्याग कभी न करना चाहिए॥ ७८॥

**एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।**
**शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥ ७९॥**

—मनु० [८.१७]

देखना चाहिये कि सब जगत् में एक धर्म ही सब मनुष्यों का मित्र है, अन्य कोई नहीं, क्योंकि धर्म मरने के पीछे भी साथ देता है और धर्म से भिन्न जितने पदार्थ हैं वे शरीर के छोड़ने के साथ ही छूट जाते हैं, परन्तु धर्म का संग सदा बना रहता है, इससे धर्म को कोई कभी न छोड़ै॥ ७९॥

**पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।**
**पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति॥ ८०॥**

—मनु० [८.१८]



जिस सभा में अन्याय होता है उस सभा में यह बात होती है कि जो अधर्म को करता है उसको अधर्म का चौथा हिस्सा प्राप्त होता है। उसके जो मिथ्या साक्षी हैं उनको अधर्म का तृतीयांश मिलता है जितने सभासद् हैं कि राजा के अमात्य, उनको एक अंश मिलता है और एक अंश अधर्म का राजा को मिलता है अर्थात् उस अधर्म के चार हिस्से हो जाते हैं और चारों को उक्त प्रकार से एक-एक हिस्सा मिल जाता है॥ ८०॥

**राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।**
**एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥ ८१॥**

—मनु० [८.१९]

जिस सभा में धर्म और अधर्म का विवेक यथावत् होता है कि यथावत् पक्षपात को छोड़के सत्य-सत्य ही न्याय होता है उस सभा के राजा, साक्षी और अमात्य सब धर्मात्मा हो जाते हैं और जिसने अधर्म किया उसी के ऊपर सब अधर्म होता है किञ्च वही अधर्म का फल भोगता है। राजादिक आनन्द से पुण्य का फल भोगते हैं, दुःख कभी नहीं। इससे राजा अमात्य और साक्षी पक्षपात से अन्याय कभी न करैं॥ ८१॥

**बाह्यैर्विभावयेल्लिंगैर्भावमन्तर्गतन्नृणाम्।**
**स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च॥ ८२॥**

—मनु० [८.२५]

जब कोई वादी प्रतिवादी का न्याय करने लगै तब बाहर के चिह्नों से भीतर के भाव को जान लेवै। उसका शब्द, रूप, **इङ्गित** नाम सूक्ष्म हृदय और नाड़ी की चेष्टा, आकृति तथा नेत्र की चेष्टा और बाह्य अंगों की भी चेष्टा इनसे सत्य-सत्य निश्चय करले कि इनने अपराध किया है और इनने नहीं किया। एक बात यह भी परीक्षा की है जो हाथ के मूल में धमनी नाड़ी और हृदय उनको वैद्यक शास्त्र की रीति से स्पर्श करके यथावत् परीक्षा करै, फिर यथावत् दण्ड और अदण्ड करै॥ ८२॥

इन १८ अठारह स्थानों में विचार की व्यवस्था है—

**तेषामाद्यमृणादानं निःक्षेपोऽस्वामिविक्रयः।**

**संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च॥ ८३॥**
**वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।**
**क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः॥ ८४॥**
**सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।**
**स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहमेव च॥ ८५॥**
**स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।**
**पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह॥ ८६॥**
**एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतान्नृणाम्।**
**धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम्॥ ८७॥**

—मनु० [८.४-८]

**ऋण** का लेना और देना १. **निक्षेप** के दो भेद हैं, जो गिन के तौल के वा किसी के पास पदार्थ रक्खै, उसका नाम **निक्षेप** है। दूसरा गुप्तबांध के किसी के पास धरावट रक्खी और आधे-आधे धन से व्यवहार करना २. **अस्वामिविक्रय** नाम अन्य का पदार्थ कोई बेच ले वा किसी का पदार्थ कोई दबा ले ३. **संभूयसमुत्थान** नाम धर्मार्थ, यज्ञार्थ वा दक्षिणा के वास्ते धन दिया जाय, इनमें विवाद का होना वा अन्यथा करना ४. और दिये भये पदार्थ को छिपाले ५. नौकरी का देना वा न देना अथवा न लेना ६. प्रतिज्ञा का भंग करना ७. बेचना और खरीदना ८. पशुओं का स्वामी और उनके पालने वाले में विवाद का होना ९. सीमा में विवाद का होना १०. कठोर वचन और विना विचारे दण्ड देना ११. चौरी १२. साहस नाम परस्पर स्त्री पुरुषों का व्यभिचार और डांकूपना १३. किसी की स्त्री को बल से वा फुसला कर ले लेना १४. स्त्री और पुरुषों के परस्पर नियम उनको भंग करना १५. दायभाग १६. द्यूत नाम जूवा १७ और जो प्राणी अर्थात् स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, गाय, हस्ती, अश्वादिक पशुओं को दाव में धर के द्यूत का करना, उसका नाम समाह्वय है १८. इन अठारह व्यवहारों में प्रजा में अत्यन्त विवाद होता है। इनका उक्त लक्षण, दूत प्रेषण और पूछने से राजा यथावत् न्याय करै। इन न्यायों का विधान यथावत् मनुस्मृति के अष्टमाध्याय और नवमाध्याय की रीति से करना चाहिये॥ ८७॥



**दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम्।**
**राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्विषम्॥ ८८॥**

—मनु० [८.४०]

जो प्रजा में चोरी होय तो उसमें जितने पदार्थ चोरी जायं, उन सब पदार्थों को चोरों का निग्रह करके जो जिसका पदार्थ चोरी गया होय, उसको चोरों से लेके, पदार्थ के स्वामी को राजा दे दे और जो चोर न पकड़ा जाय और पदार्थ न मिलै, तो अपने पास से राजा दे दे क्यों कि इसी वास्ते राजा का होना आवश्यक है। प्रजा नित्य राजा को देती है इस वास्ते कि अपना पालन राजा यथावत् करै। जो यथावत् पालन न करेगा और प्रजा से धन लेगा तो वही राजा चोर और डाकू के पाप का भागी होगा। जो चोरों से मिलके चोरी के धन को ग्रहण करने की इच्छा करै, वह राजा नहीं है, किन्तु वही चोर और डाकू है॥ ८८॥

**यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः।**
**तादृशान् संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतं च तैः॥ ८९॥**

—मनु० [८.६१]

राजा और धनिक लोगों को जिस प्रकार के साक्षी व्यवहारों में करना चाहिए उनको यथावत् कहते हैं और साक्षियों को जैसा सत्य-सत्य ही कहना चाहिए॥ ८९॥

**गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः।**
**अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि॥ ९०॥**

—मनु० [८.६२]

गृहस्थ पुत्रवाले और वे उदार होवैं फिर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रवर्णों में से कार्य वाला पुरुष जिनको कहै कि ये मेरे साक्षी हैं और कोई आपत्काल के विना न होय॥ ९०॥

**आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः।**
**सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांश्च वर्जयेत्॥ ९१॥**

—मनु० [८.६३]

ब्राह्मणादिक सब वर्णों में जो आप्त बड़ा धर्मात्मा, सत्यवादी और

जितेन्द्रिय होवै तथा सर्वधर्म को जानता होय और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भयशोकादिक दोष जिसमें न होवैं, सत्य बोलने ही का जिसका नियम होय, ऐसे को ही राजा और प्रजा साक्षी करैं। इनसे विपरीत मनुष्यों को कभी साक्षी न करैं॥ ९१ ॥

**नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः।**
**न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्त्ता न दूषिताः॥ ९२॥**

—मनु० [८.६४]

जितने परस्पर व्यवहार से सम्बन्ध रखते होंय, अनाप्त नाम जिनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मूर्खत्वादि दोष होवैं, सहायकारी होवैं वा शत्रु होवैं, जो वादी प्रतिवादी के दोष वा गुणों को जानता होय, रोग से आर्त होय वा दुष्ट कर्म को करने वाले, इस प्रकार के मनुष्यों को राजा वा प्रजा साक्षी कभी न करैं॥ ९२ ॥

**न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ।**
**न श्रोत्रियो न लिंगस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः॥ ९३॥**

—मनु० [८.६५]

राजा, **कारुक** नाम शिल्पी, **कुशीलव** नाम कुदारी से आजीविका करनेवाले, श्रोत्रिय नाम वेद पढ़ानेवाला, लिंगस्थ ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ, **संगेभ्योविनिर्मुक्त** नाम संन्यासी इनको भी राजा वा प्रजा साक्षी न करैं। क्योंकि कारुक और कुशीलव तो मूर्ख हैं, राजा न्याय करनेवाला होता है वेदपाठी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इनको साक्षी करने से पढ़ना पढ़ाना, तप और विचार में विघ्न होगा। इससे इनको साक्षी न करना चाहिये॥ ९३ ॥

**नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत्।**
**न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः॥ ९४॥**

—मनु० [८.६६]

**पराधीनवक्तव्य** नाम सिखाने से साक्षी होवै, डांकू विरुद्ध कर्म करनेवाला, वृद्ध, बालक, नीच और अजितेन्द्रिय तथा एक ही पुरुष साक्षी इनको राजा वा प्रजा कभी साक्षी न करैं॥ ९४॥



**नार्त्तो न मत्तो नोन्मत्तो नक्षुतृष्णोपपीडितः।**
**न श्रमार्त्तो न कामार्त्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः॥ ९५॥**

—मनु० [८.६७]

दुःखी मत्त नाम भांगमद्यादिक पीनेवाला, उन्मत्त नाम पागल, क्षुधा और तृषा से जो पीड़ित होवै, श्रम करके दुःखी होवै, कामातुर, क्रोधी और चोर इनको राजा और प्रजा साक्षी कभी न करैं॥ ९५॥

**स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।**
**शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः॥ ९६॥**

—मनु० [८.६८]

विद्यासत्यभाषण [युक्त और] जितेन्द्रिय जो स्त्रियां होवैं, वे स्त्रियों की साक्षी होवैं, द्विजों के सदृश सत्यवादी द्विज, शूद्रों के सत्यवादी शूद्र, चांडालादिकों के सत्यवादी चांडालादिक साक्षी होवैं, अन्य कोई नहीं। और भी मनुस्मृति के अष्टमाध्याय में विस्तार से साक्षी का विधान लिखा है, जो देखना चाहै सो देख ले॥ ९६॥

**साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च।**
**वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः॥ ९७॥**

—मनु० [८.७२]

जितने बलात्कार के कर्म, चोरी, पर-स्त्री से व्यभिचार वा ग्रहण, कठोर वचन वा विना विचारे दण्ड का देना, इन कर्मों में साक्षी की परीक्षा ही राजा न करै, किन्तु यथावत् विचार करके इनको दण्ड देना उचित है॥ ९७॥

**सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते।**
**तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः॥ ९८॥**

—मनु० [८.८३]

सत्य बोलने से साक्षी पवित्र और मिथ्या बोलने से महापापी होता है। धर्म भी बोलने ही से बढ़ता है। इससे सब मनुष्यों को सत्य ही साक्षी देनी चाहिए, मिथ्या कभी बोलना नहीं॥ ९८॥

**आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।**

**मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्॥ ९९॥**

—मनु० [८.८४]

साक्षी से पूछना चाहिये कि तेरे आत्मा का साक्षी तूं ही है और तेरी सद्गति का करने वाला भी तूं ही है क्योंकि जो तूं सत्य बोलेगा तो तुझको कभी दुःख न होगा और मिथ्या बोलने से सदा तूं दुःखी ही रहेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं। इससे हे मित्र! सब साक्षियों में से उत्तम जो साक्षी अपना आत्मा उसका मिथ्या बोलने से अपमान तूं मतकर और जो तूं अपमान स्वात्मा का करेगा तो किसी प्रकार से तेरी सद्गति नहीं होगी, किन्तु असद्गति ही होगी। इससे सत्य ही साक्षी बोलै, मिथ्या कभी नहीं॥ ९९॥

**ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः।**
**मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा॥ १००॥**

—मनु० [८.८९]

ब्रह्मघ्न नाम ब्रह्मवित् पुरुषों का मारने वाला और वेदोक्त कर्मों का त्यागी, स्त्री और बालकों का मारने वाला, मित्र का द्रोही, कृतघ्न इनको जैसे कुम्भी पाकादिक दुःख रूपी लोक और जन्म प्राप्त होते हैं, वे तुझ को सब होवैं, जो तू सत्य न बोलै॥ १००॥

**जन्मप्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम्।**
**तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा॥ १०१॥**

—मनु० [८.९०]

हे भद्र! हे साक्षिन्! जो तूं मिथ्या कहेगा तो तैने जितना पुण्य जन्मभर किया है, वह सब तेरा पुण्य कुत्ते को प्राप्त होय, इससे तूं सत्य बोले॥ १०१॥

**एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणं मन्यसे।**
**नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥ १०२॥**

—मनु० [८.९१]

हे कल्याण! तूं जानता है कि मैं एक ही हूँ, ऐसा तूं मत जान, क्योंकि न्यायकारी सर्वज्ञ जो परमेश्वर सब जगत् में व्यापी नित्य स्थित है, सोई तेरे हृदय में भी व्यापक है। तेरा जो पाप वा पुण्य इन सब को यथावत्



जानता है, इससे तू परमेश्वर और अधर्म से भय करके सत्य ही बोल॥ १०२॥

**यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः।**
**तेन चेदविवादस्ते मा गंगाम्मा कुरून् गमः॥ १०३॥**

—मनु० [८.९२]

जो यम नाम यथावत् न्याय से व्यवस्था करने वाला, वैवस्वत नाम सूर्यादिक सब जगत् का प्रकाश करने वाला, देव नाम स्वप्रकाश स्वरूप सर्वान्तर्यामी तेरे हृदय में भी नित्यस्थित है उस परमेश्वर से शत्रुता वा विवाद तुझको न करना होय, तो तूं सत्य ही बोल। और जो तूं परमेश्वर ही से विरोध रक्खेगा तो तुझको कभी सुख न होगा। और जो तूं सत्य ही बोलेगा तो गङ्गा वा कुरुक्षेत्र में प्रायश्चित्त करना वा राजगृह में दण्ड अथवा परलोक, पर-जन्म में नरकादिक सब दुःखों की प्राप्ति तुझको कभी न होगी। इससे तुझको अवश्य सत्य ही बोलना चाहिये, मिथ्या कभी नहीं॥ १०३॥

**यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते।**
**तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः॥ १०४॥**

—मनु० [८.९६]

जिस पुरुष का क्षेत्रज्ञ जो हृदयस्थ आत्मा, विद्वान् नाम सब पाप पुण्य को जानने वाला, सोई अपना आत्मा जिस कर्म में शंका नहीं करता है, जिसमें भय, शङ्का और लज्जा होवै उस कर्म को कभी नहीं करता कि सत्याचरण और सत्यवचन ही बोलता है, उससे अधिक अन्य धर्मात्मा पुरुष कोई नहीं, ऐसा देव नाम विद्वान् लोग निश्चित जानते हैं। और भी मनुस्मृति के अष्टमाध्याय में बहुत सा विस्तार लिखा है सो देख लेना। व्यवहारों को निश्चय करने के वास्ते दूत का भेजना और उक्त प्रकारों से यथावत् निश्चय हो सकता है अन्यथा नहीं॥ १०४॥

**उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।**
**चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च॥ १०५॥**

—मनु० [८.१२५]

उपस्थ नाम लिंगेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हस्त, पाद, चक्षु, नासिका, कान, धन और देह ये दश दण्ड देने के स्थान हैं इन्हीं में दण्ड का स्थापन होता है॥ १०५॥

**वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।**
**तृतीयं धनदण्डन्तु वधदण्डमतः परम्॥ १०६॥**

—मनु० [८.१२९]

प्रथम तो वाग्दण्ड करै कि ऐसा काम कोई दुष्ट न करै। दूसरा धिक्दण्ड कि तुझको धिक्कार है दुष्ट, तैनें नीच कर्म किया। तीसरा धन दण्ड कि उससे धन ले लेना। चौथा दण्ड कि उसको मार डालना॥ १०६॥

**अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात्।**
**दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति॥ १०७॥**

—मनु० [८.१७१]

राजा जो न लेने की वस्तु हो, उसको कभी न ले और लेने का अपना जो कर, उसमें से एक कौड़ी भी न छोड़े, क्योंकि इससे राजा की दुर्बलता जानी जाती है, उस राजा का इस लोक वा परलोक में नाश ही होता है। इससे क्या आया कि जो राजा अपने अंशों को प्रजा से यथावत् लेता है और प्रजा के अंश को कभी ग्रहण नहीं करता, सोई राजा श्रेष्ठ है॥ १०७॥

**यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः।**
**अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः॥ १०८॥**

—मनु० [८.१७४]

जो राजा अन्याय तथा मोह से कार्यों को करता है, उस राजा का शीघ्र ही नाश हो जाता है क्योंकि उसको शत्रु लोग शीघ्र ही वश में कर लेते हैं॥ १०८॥

**संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित्।**
**आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः॥ १०९॥**

—मनु० [८.२००]

प्रजा में भोग नाना प्रकार का देख पड़े उसको राजा विचार करै कि आमदनी इनको कहाँ से होती है। जो आमदनी निश्चित होय तो कुछ



चिन्ता नहीं और जो नौकरी व्यापार वा कुछ उद्यम न करै और भोग नाना प्रकार का करता होय, उसको पकड़ के राजा दण्ड दे, क्योंकि अवश्य यह चौर्यादिक कुकर्म करता होगा। इसके पास धन कहाँ से आया, भोग का कारण आगम ही है और संभोग का कारण संभोग कभी नहीं ऐसी मर्यादा है, इसको राजा अवश्य पालन करै॥ १०९॥

**धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम्।**
**पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद् भवेत्॥ ११०॥**

—मनु० [८.२१२]

किसी ने किसी को पठन पाठन, अग्निहोत्रादिक यज्ञ, सुपात्रों को देने के वास्ते वा अपने भोजनादिक निर्वाह के निमित्त धन दिया गया कि इतने काम के हेतु हम आपको धन देते हैं, सो आप इतना ही काम इससे करैं, और पुण्य के वास्ते दान दिया होय, फिर वह वैसा कर्म न करै कि वेश्यागमन, वा नशादिक प्रमाद उस धन से करै तो उससे सब धन ले लिया जाय, जिसने कि दिया था, वही ले ले और जो उसको वह न दे, तो राजा उसको पकड़ के दण्ड से दिवा दे॥ ११०॥

**धनुःशतं परीहारो ग्रामस्थस्यात्मसन्ततः।**
**शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु॥ १११॥**

—मनु० [८.२३७]

गांव के चारों ओर १०० सौ धनुष परिमाण से मैदान रक्खै धनुष्य होता है साढ़े तीन हाथ का अथवा कोई बलवान् पुरुष एक दण्डा को लेके खूब बल से फेंके, जहाँ वह दण्ड पड़े, उससे फिर फेंके, उस स्थान से भी तीसरी वार फेंके, जहाँ वह दण्डा जाय, वहाँ तक मैदान रक्खै। इसमें सौ धनुष से कुछ अधिक मैदान रहेगा और नगर के चारों ओर तिगुणा मैदान रक्खै, क्योंकि ग्राम वा नगर में वायु शुद्ध रहेगा। इससे रोग थोड़े होंगे और पशुओं को सुख होगा। इस वास्ते अवश्य इतना मैदान रखना चाहिए॥ १११॥

**परमं यत्नमातिष्ठेत् स्तेनानां निग्रहे नृपः।**
**स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्द्धते॥ ११२॥**

—मनु० [८.३०२]

चोरों के निग्रह में राजा अत्यन्त यत्न करै क्योंकि चोरों ओर दुष्टों के निग्रह से राजा की कीर्ति और राज्य नित्य बढ़ते चले जाते हैं, अन्यथा नहीं॥ ११२॥

**रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन्।**
**यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः॥ ११३॥**

—मनु० [८.३०६]

जो राजा धर्म नाम न्याय से सब भूतों की रक्षा करता है और दुष्टों को दण्ड से मारता है, वह राजा सहस्रों वा सैकड़ों रुपैयों से अर्थात् लक्ष और कोटि रुपैयों से जानों कि नित्य यज्ञ ही करता है क्योंकि राजा का मुख्य धर्म यही है श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का ताड़न करना॥ ११३॥

**अरक्षितारं राजानं बलिं षट्भागहारिणम्।**
**तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम्॥ ११४॥**

—मनु० [८.३०८]

जो राजा धर्म से यथावत् प्रजा का पालन नहीं करता और प्रजा से धान्य में षष्ठांश इत्यादिक करों को लेता है वह राजा कर क्या लेता है कि सब संसार के मलों को खाता है और सबके जैसी विष्ठादिकों की शुद्धि करता है चाण्डाल, वैसा ही वह राजा है॥ ११४॥

**निग्रहेण च पापानां साधूनां संग्रहेण च।**
**द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः॥ ११५॥**

—मनु० [८.३११]

जो राजा पापी पुरुषों को अत्यन्त उग्र दण्ड देता है और श्रेष्ठों की रक्षा तथा सम्मान करता है वह राजा सदा पवित्र है और स्वर्ग का भागी है जैसे कि द्विजाति लोग विद्या, तप और यज्ञों से पवित्र रहते हैं॥ ११५॥

**यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्त्तैस्तेन स्वर्गे महीयते।**
**यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति॥ ११६॥**

—मनु० [८.३१३]

जो राजा आर्त नाम दुःखी लोग गाली तक भी दें, तो भी सहन करता है, सोई राजा स्वर्ग में पूज्य होता है। और जो ऐश्वर्य के अभिमान से



किसी का सहन नहीं करता, इसी से वह राजा नरक को जाता है, क्योंकि जो समर्थ है उसी को सहन करना चाहिए और जो निर्बल है सो तो अपने ही से सहन करेगा॥ ११६॥

**राजनिर्धूतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।**
**निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥ ११७॥**

—मनु० [८.३१८]

जिनके ऊपर अपराध करने से राजाओं का दण्ड होता है फिर वे इस लोक में आनन्द पाते हैं और मरने के पीछे उत्तम स्वर्ग को प्राप्त होते हैं, जैसे कि धर्मात्मा सुकृति लोग॥ ११७॥

**येन येन यथांगेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।**
**तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥ ११८॥**

—मनु० [८.३३४]

जिस-जिस अंग से जैसा-जैसा कर्म मनुष्यों के बीच में करैं चोर लोग, उस अंग को अर्थात् नेत्र से चोरी करने के वास्ते इशारा (चेष्टा) करैं, उसका नेत्र निकाल दें। जो जीभ से चोरी का उपदेश करै तो उसकी जीभ काट ले। पग और हाथ से किसी की वस्तु उठावै, तो राजा उसका पग, हाथ काट ले, क्योंकि एक को दण्ड देने से सब लोग उस दुष्ट कर्म को छोड़ देते हैं। दण्ड जो होता है सो सब जगत् के मनुष्यों के वास्ते उपदेश है॥ ११८॥

**अनेन विधिना राजा कुर्वाणस्स्तेननिग्रहम्।**
**यशोऽस्मिन् प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥ ११९॥**

—मनु० [८.३४३]

इस विधि से चोरों का निग्रह करता है वह राजा, इस लोक में अत्यन्त कीर्त्ति को प्राप्त होता है और मरके अत्यन्त उत्तम स्वर्ग को प्राप्त होता है, इससे चोरों का निग्रह अत्यन्त प्रयत्न से राजा करै॥ ११९॥

**वागदुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः।**
**साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः॥ १२०॥**

—मनु० [८.३४५]

जो पुरुष दुष्टवचन कहना सिखलाता वा चोरी का उपदेश करता है और किसी को मरवा डालता है छल कपट से, वह **साहसिक पुरुष** कहाता है। जैसे कि गुंडे और वैराग्यादिक संप्रदायवाले, वे सब पापियों में भी बड़े पापी हैं, क्योंकि पापी तो आप ही दुष्ट होता है और जितने दुष्ट उपदेश करने वाले हैं वे सब जगत् को दुष्ट कर देते हैं, इससे॥ १२०॥

**न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।**
**समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान्॥ १२१॥**

—मनु० [८.३४७]

जितने पुरुष **साहसिक** नाम दुष्टकर्म करने और कराने वाले होंय, अर्थात् अधर्म का उपदेश, चोरी, परस्त्री, वेश्यागमन और जूवा इनको करने वाले सब साहसिक गिन लेना, उनको मित्रकारण से और उनसे बहुत धन लाभ होता होय, तो भी इनको राजा न छोड़ै, क्योंकि सब भूतों को भय देनेवाले वे ही हैं॥ १२१॥

**गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।**
**आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥ १२२॥**

—मनु० [८.३५०]

गुरु वा [गुरु का] पुत्र अथवा पिता, बालक वा वृद्ध वा ब्राह्मण कि सब शास्त्रों को पढ़ा हुआ और बहुश्रुत नाम सब शास्त्र को सुनने वाला वह जो आततायी नाम धर्म को छोड़ के अधर्म में प्रवृत्त भया होय तो इन पुरुषों को मार ही डालना उचित है। इसमें कुछ विचार न करना, क्योंकि दण्ड ही से सब शिष्ट हो जाते हैं, विना दण्ड कोई नहीं, इससे सबके ऊपर दण्ड का होना उचित है कि कोई अपराधी पुरुष दंड के विना रहने न पावै॥ १२२॥

**परदाराभिमर्षेषु प्रवृत्तान्नॄन् महीपतिः।**
**उद्वेजनकरैर्दण्डैश्चिह्नयित्वा प्रवासयेत्॥ १२३॥**

—मनु० [८.३५२]

जो पुरुष पर-स्त्री-गमन में प्रवृत्त होवै वा अन्य पुरुषों से स्त्री लोग



गमन करैं, उनके ललाट में चिह्न करके देश [से] बाहर निकाल दे, जो पहिले चोरी करै उसके ललाट में कुत्ते के पंजा की नांई लोहे का चिह्न अग्नि में तपा के लगा दे कि मरण तक वह चिह्न न बिगड़े। फिर जो दूसरी वार वही पुरुष चोरी करै तो हाथ वा पग उसका राजा काट डालै, और फिर भी चोरी करै वा करावै तो पहिले दिन नाक काट ले, दूसरे दिन कान, तीसरे दिन जीभ, चौथे दिन नख निकाल ले, पांचवें दिन आंख, छठवें दिन शिरच्छेदन कर दे सब मनुष्यों के सामने, जिससे कि फिर चोरी की इच्छा भी कोई न करै। और जो परस्त्री वा वेश्या के पास गमन करै अथवा पर पुरुषों से स्त्री लोग गमन करैं, उनके ललाट में पुरुष के लिंग इन्द्रिय का चिह्न अग्नि में तपाके लगा दे और स्त्री के भगेन्द्रिय का चिह्न पुरुष को ललाट में लगा दे, जिससे कि मरण तक लज्जा और अप्रतिष्ठा उनकी होवै, उनको देख के और कोई इन कर्मों में प्रवृत्त न होय क्योंकि॥ १२३॥

**तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः।**
**येन मूलहरो धर्मः सर्वनाशाय कल्पते॥ १२४॥**

—मनु० [८.३५३]

इन्हीं कर्मों से प्रजा के मनुष्य वर्णसंकर और पापी हो जाते हैं जिससे कि मूल सहित धर्म नष्ट हो जाता है इससे इनके निग्रह में राजा अत्यन्त यत्न करै॥ १२४॥

**भर्त्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।**
**तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥ १२५॥**

—मनु० [८.३७१]

जो स्त्री जाति और गुणों के अभिमान अथवा मूर्खता से विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुष से व्यभिचार करती है, उसको नगर, ग्राम वा देश की स्त्रियों और पुरुषों के सामने कुत्तों से चिथवा डालै। इस रीति से उस का मरण हो जाय जिससे कि अन्य कोई स्त्री ऐसा काम कभी न करै॥ १२५॥

**पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।**

**अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्॥ १२६॥**

—मनु० [८.३७२]

जो पुरुष पर-स्त्री से गमन करै, उसको लोहे के पर्यंक अग्नि से तपा और नीचे काष्ठों से अग्नि करके व्यभिचार रूप पाप करने वाले पुरुष को सोला दे। उसी के ऊपर उसका शरीर दग्ध हो जाय और मर जाय। यह भी कर्म सब पुरुष और स्त्रियों के सामने ही होना चाहिए, जिससे कि सबको भय हो जाय, फिर ऐसा काम कोई पुरुष न करै॥ १२६॥

**यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।**
**न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्॥ १२७॥**

—मनु० [८.३८६]

जिस राजा के पुर वा राज्य में चोर, पर-स्त्री-गामी, दुष्ट वचन का कहने वाला, साहसिक और दण्डघ्न अर्थात् जो दण्ड को न मानै ये सब नहीं हैं, वह राजा शक्रलोक अर्थात् स्वर्ग के राज्य का भागी होता है अन्यथा नहीं॥ १२७॥

**एतेषां निग्रहो राज्ञः पंचानां विषये स्वके।**
**साम्राज्यकृत् स्वजात्येषु लोके चैव यशस्करः॥ १२८॥**

—मनु० [८.३८७]

जिस राजा के राज्य में पूर्वोक्त पांच दुष्ट पुरुष नहीं होते, वह राजा सब राजाओं के बीच में सम्राट् चक्रवर्ती होने के योग्य है और लोगों में बड़ी कीर्ति का करने वाला है॥ १२८॥

**दास्यं तु कारयन् लोभाद् ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान्।**
**अनिच्छतः प्राभवत्वाद् राज्ञा दण्डः शतानि षट्॥ १२९॥**

—मनु० [८.४१२]

जो ब्राह्मण भी द्विज लोगों से सेवा कराते हैं उनकी इच्छा के विना, उनको राजा छःसै मुद्रा दण्ड करै, क्योंकि सेवा करना बुद्धिमान् श्रेष्ठ लोगों का धर्म नहीं, वह व्यवहार शूद्र का ही है क्योंकि जो मूर्ख पुरुष है वह अन्य क्या काम करेगा विना सेवा के॥ १२९॥

**अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान् वाहनानि च।**



**आयव्ययौ च नियतावाकरान् कोषमेव च॥ १३०॥**

—मनु० [८.४१९]

नित्य-नित्य राजा सब राज कर्मों में अपने अधिकारी, अमात्य, चेष्टा वा कर्म वाहन, हस्ती, अश्व, रथ और नौकादिक आय नाम पदार्थों का आना, व्यय नाम पदार्थों का खर्च, पदार्थों का समूह, शस्त्रों का समूह और धन का कोष, इनको यथावत् देखता रहै कि कोई पदार्थ वा कोई कर्म नष्ट वा अन्यथा न होय॥ १३०॥

**एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान् समापयन्।**
**व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्॥ १३१॥**

—मनु० [८.४२०]

इस प्रकार से सब व्यवहारों को न्यायपूर्वक जो राजा करता है, वह सब पापों से छूट के परम गति जो मोक्ष, उसको प्राप्त होता है। जिस व्यवहार को किया चाहै, उसको सम्यक् विचार के करै, जिससे कि वह कार्य पूर्ण हो जाय, अपूर्ण कभी न रहै॥ १३१॥

**अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा।**
**उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः॥ १३२॥**

—मनु० [९.२०१]

क्लीब नाम नपुंसक, पतित नाम पापी, जन्म से अंध तथा बधिर, उन्मत्त नाम पागल, जड़ नाम मूर्ख, मूक और जो विद्याहीन वा अजितेन्द्रिय, काम, क्रोधादिकों में रत, ये सब दाय भाग न पावैं क्योंकि ये दाय भाग पावेंगे तो सब पदार्थों का व्यर्थ नाश कर देंगे। इससे राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिए कि अपने पुत्र को वा प्रजा के सन्तानों को जितने पदार्थ, राज्य और धनादिक उनमें से कुछ न दिलावै और जो कोई मूर्खता वा मोह से उनको दायभाग देवै, तो उसको राजा दण्ड दे। और नपुंसकादिकों से, दिये हुए पदार्थ को ले के, यथावत् रक्षा करै, क्योंकि मूर्खों के हाथ पदार्थ वा अधिकार आवेगा, तो शीघ्र सबका नाश करके आप ही दरिद्र बन जायेंगे, फिर राजा के राज्य में सब दरिद्रता छाय जायगी। फिर राजा को भी कुछ प्राप्ति प्रजा से न हो सकेगी, इससे राज्य और धनादिक जितने

प्रजाओं के पदार्थ हैं, उन पदार्थों को राजा कभी न दे और न दिलावै। जो सम्यक् विद्या, बुद्धि और विचार से उन पदार्थों की रक्षा में योग्य होय, उसकी सम्यक् विद्या, बुद्धि और विचार से उन पदार्थों का स्वामी उसको कर दे अन्यथा नहीं॥ १३२॥

**सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा।**
**ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद् भवेत्॥ १३३॥**

—मनु० [९.२०२]

परन्तु उन नपुंसकादिकों को अपने सामर्थ्य के योग्य वह दायभाग लेने वाला भोजन, वस्त्र और उनका स्थानादिक से योग क्षेम यथावत् करै, जो वह भोजनादिक भी उनको न दे, तो पतित हो जाय और राजा उसको दण्ड भी दे। इससे क्या आया कि भोजन और वस्त्रादिकों के विना वे दु:खी न रहैं और जो उनका पुत्र योग्य होय, तो उसके पिता के दायभाग को राजा दिलावै, इस बात को राजा प्रयत्न से करै, अन्यथा राज्य वृद्धि नहीं होगी [१३३]।

राजा अपनी प्रजा की रक्षा और हित में सदा प्रवृत्त रहै और प्रजा भी राजा की रक्षा तथा हित में प्रवृत्त रहै। जो प्रजा को आपत्काल आवै तो राजा सब प्रयत्नों से प्रजा की रक्षा करै अर्थात् राजा को आपत्काल किसी प्रकार का आवै तो प्रजास्थ सब मनुष्य राजा का सब प्रकार से सहाय करैं, क्योंकि प्रजा राजा के पुत्र की नांई होती है। पिता को अवश्य चाहिए कि अपनी प्रजा की सदा रक्षा करै तथा प्रजा पुत्र की नांई, जैसे कि पिता की पुत्र रक्षा करता है, वैसी राजा की प्रजा रक्षा करै। और जिस बात से प्रजा को पीड़ा होय उस बात को राजा कभी न करै और राजा को जिस बात में दु:ख होय उस बात को प्रजा कभी न करै। जैसे कि जिन पशुओं वा जिन पदार्थों से सब प्रजा का उपकार होता है, उसका राजा कभी विनाश न करै। जैसे कि गाय, भैंस, छेरी, बैल और ऊंट तथा गधादिक इन को कभी न मारै और न मरवावै, क्योंकि दुग्ध, घृत, अन्नादिक और सब व्यवहार इन्हीं से सब मनुष्यों का चलता है तथा राजा का भी। इनका मारना दोनों को अनुचित ही है।



राजा, भृत्य तथा प्रजा युद्ध से निवृत्त कभी न होवै, क्योंकि युद्ध से निवृत्त होंगे तो उसी वक्त शत्रु लोग सब पदार्थों को छीन लेंगे तथा मार डालेंगे वा अत्यन्त दु:ख देंगे। जब युद्ध का समय आवै तब राजा जल, अन्न, मनुष्य, शस्त्र, यान सब पदार्थों की पूर्त्ति रक्खै, जिससे कि किसी पदार्थ के विना दु:ख किसी को न होवै और युद्ध में युद्ध का आचार विचार रक्खै। युद्ध करते भी जांय और खाते पीते भी जायं, कुछ शंका न रक्खै। उस वक्त जूते, वस्त्र, शस्त्र धारण किये रहैं, युद्ध और भोजन भी करते जायं। ऐसा न करैं कि वस्त्र, जूते, शस्त्र इत्यादिक सब छोड़ के हाथ गोड़ धोके भोजन करैं, तब तक शत्रु लोग मार डालैं।

देखना चाहिए कि युधिष्ठिर जी के राजसूय और अश्वमेध यज्ञ में सब समुद्र पार टापू भूगोल के सब राजा आये थे। वे सब ब्राह्मण, क्षत्रियों के साथ एक पंक्ति में भोजन करते थे और विवाह भी उनका परस्पर होता था जैसे कि काबिल कन्धार की कन्या गान्धारी, धृतराष्ट्र से विवाही गई थी तथा मद्री ईरान देश के राजा की कन्या पांडु से विवाही गई थी। अर्जुन के साथ नाग अर्थात् अमेरीका के लोगों की कन्या विवाही गई थी, इत्यादिक व्यवहार महाभारत में लिखे हैं।

और शूद्र ही सब ब्राह्मण और क्षत्रियादिकों के घर में पाक कराने वाले थे जिनका नाम सूद ऐसा प्रसिद्ध था। जो शूद्र पाक करने वाला होता है उसकी **सूद** ऐसी संज्ञा होती थी, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वे तो विद्या पठन और पाठन तथा नाना प्रकार के पुरुषार्थ और शिल्प विद्या से पदार्थों का रचन इन्हीं में सदा प्रवृत्त रहैं। रसोई आदिक सेवा सब लोगों की शूद्र ही करैं अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनकी भोजन के लिए एकता ही होनी चाहिए जिससे कि परस्पर प्रीति होवै और भोजन के बड़े-बड़े बखेड़े हैं, वे सब नष्ट हो जांय। कोई पर देश को जाता है, तब पात्रादिकों का भार गधे की नांई उठाया करता है तथा मांजना और चौका देना अन्न, काष्ठ, अग्न्यादिक को अपने हाथ से ले आना और बनाना, गमन से बड़े पीड़ित हो के आये, फिर भी समय के ऊपर भोजन का होना, इससे बड़े दु:ख होते हैं। इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनके एक

भोजन होने से किसी को किसी प्रकार का दु:ख नहीं होगा, क्योंकि शूद्र ही सब कर देगा और खिलावै पिलावैगा, परन्तु ब्राह्मणादिकों ही के पदार्थ सब पात्रादिक होवैं, शूद्र के घर के नहीं। [शूद्र] शुद्ध होके बनावै और ब्राह्मणादिक विद्यादिक श्रेष्ठ पदार्थों की उन्नति करें जिससे कि सब सुख होंवैं। इससे इस बात को राजा लोग अवश्य करैं, इसके विना उनकी उन्नति नहीं होनी है।

देखना चाहिए भोजन के पाखण्डों से आर्यावर्त्त देश का नाश हो गया। ब्राह्मणादिक चौका देने लगे, ऐसा चौका दिया कि राज्य, धन और स्वतन्त्रतादिक सुखों के ऊपर चौका ही फेर दिया कि सब आर्यावर्त्त देश को सफाचट कर दिया। इससे राजा लोगों को चाहिए कि व्यर्थ पाखण्ड प्रजा में न होने देवैं।

विवाह का जिस काल में जैसा पूर्व नियम लिखा है और परीक्षा, उसी प्रकार से राजा करवावै। ब्रह्मचर्याश्रम कन्या वा पुरुष का जब हो जाय तभी विवाह की आज्ञा राजा दे। कि यही सब सुख और धर्म का मूल है, अन्य नहीं। सब देश देशान्तरस्थ पुरुषों से भोजन, विवाह और परस्पर प्रीति रक्खैं। प्रजा में जितने धर्मात्मा, बुद्धिमान्, पक्षपात रहित और सब विद्याओं में पूर्ण, इनकी सम्मति से सब काम और सब नियम हुआ करैं कि जिसके ऊपर सब प्रजा प्रसन्न होवैं, वही राजा होय उस देश का, उस राजा को सब प्रजा प्रसन्न रक्खे। ऐसे सब परस्पर विद्या और सब गुणों की उन्नति करैं अर्थात् राजा और सभा की सम्मति के विना प्रजा में कुछ कर्म न होवै और प्रजा की सम्मति के विना सभा और राजा कुछ कर्म न करैं। किन्तु दोनों की सम्मति के विना कुछ राज कार्य न होने पावै, क्योंकि इसके होने से उस देश में कभी दु:ख के दिन न आवेंगे, सदा आनन्द ही रहेगा॥

चोर दो प्रकार के होते हैं, एक तो प्रसिद्ध, दूसरा अप्रसिद्ध। प्रसिद्ध वे होते हैं कि हाटधारी डांकू और पाखण्डी जैसे कि वैराग्यादिक मन्दिर रच के सब मनुष्यों से फुसलाने वा दुष्ट उपदेश बुद्धि भ्रष्ट करके धनादिक पदार्थों को हरण कर लेते हैं। यहाँ तक कि मनुष्यों को मूड़ के चेला बना



लेते हैं। इनको राजा दण्ड से निवृत्त कर दे।

**पूर्वपक्ष**—इनको दण्ड न देना चाहिए, क्योंकि वे तो प्रसन्नता से धन लेते हैं और प्रसन्नता से उनको देते हैं। इनके ऊपर दण्ड का होना उचित नहीं।

**उत्तर**—इनको अवश्य दण्ड देना चाहिए, क्योंकि जैसे कोई पुरुष छोटे बालक को फुसला के वा कुछ पुष्प फल वा खाने की चीज हाथ में देके वस्त्र, आभूषण, वा धनादिक पदार्थों को प्रसन्नता से ले लेता है और बालक भी उसको प्रसन्नता से दे देता है, फिर लेके वह भाग जाता है, फिर उसके ऊपर राजा दण्ड करता ही है। वैसे ही जितने प्रजा में विद्या, बुद्धि और विचारहीन पुरुष हैं, वे बालक की नांई हैं। उनमें से भी प्रसाद, चरणोदक, कण्ठी, माला, छापा और तिलक एकादश्यादिक माहात्म्य सुनाना, तीर्थ-नाम-स्मरण और स्तोत्र, पाठ इत्यादि को सुनाना इत्यादिक छल से धनादि पदार्थों को लेते हैं फिर उनके ऊपर दण्ड क्यों न करना चाहिए, किन्तु अवश्य ही करना चाहिए। जो राजा इनको दण्ड न देगा तो उसकी प्रजा सब भ्रष्ट हो जायगी और राज्य का भी नाश हो जायगा क्योंकि वे अधर्म करते हैं और कराते हैं। नाम रखते हैं धर्म का और वेद का, वे चलाते हैं पाखण्ड को। इससे इस जाल को राजा अवश्य छेदन कर दे कि कोई उसके देश में पाखण्ड न रहै और न होने पावै। वे पाषाणादिकों की मूर्त्तियों को बना और मन्दिर को रच के उनमें उन मूर्त्तियों को बैठा के उनका नाम शिव नारायणादिक रखते हैं। कलावत्तू झूठे वा सच्चे आभूषणों को पहिरा के फिर घड़ी, घंटा, नगारा, रणसिंघा और शंख इत्यादिकों को बजा के मूर्खों को मोहित करके सब धनादिक पदार्थों को हरण कर लेते हैं। जैसे कि डांकू लोग नगारादिक बजा के प्रसिद्ध धन हर लेते हैं। इन ठगों को दण्ड के विना कभी न छोड़ना चाहिए। क्योंकि—

**अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।**
**अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव च मन्त्रदम्॥ १३४॥**

—मनु० [२.१५३]

इसमें मनु भगवान् का प्रमाण है कि जो अज्ञानी है सोई बालक है।

और ज्ञानी अर्थात् सत्य उपदेश और विचार का करने वाला सोई पिता होता है। इससे क्या आया कि जो अज्ञानी है, उसको बालक कहना चाहिए॥ १३४॥

जितने दुकानदार प्रसिद्ध चोर उनके ऊपर भी राजा अत्यन्त दृष्टि रक्खै कि वे प्रसिद्ध चोरी कभी न करने पावैं॥

**तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्।**
**षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्॥ १३५॥**

—मनु० [८.४०३]

तुला नाम तराजू की दण्डी और तराजू की परीक्षा करै, पक्ष-पक्ष, मास-मास, क्योंकि दुकानदार लोग बीच का सूत और दोनों पल्ले दण्डी के बीच में छेद करके पारा भर देते हैं, उससे लेते हैं तब अधिक ले लेते हैं, और देते हैं तब न्यून देते हैं। जब बुद्धिमान् जाय तब और भाव, जब मूर्ख जाय तब और भाव, ऐसा करके मूड़ लेते हैं। प्रतीमान अर्थात् प्रतिमा नाम छटांक आदिक उसको घटा बढ़ा लेते हैं। उससे भी अधिक लेते हैं और न्यून देते हैं। फिर महाजन और साहुकार बने रहते हैं, परन्तु वे बड़े ठग हैं। जैसे कि व्यास अर्थात् एकादशी, भागवतादिकों की कथा करनेवाले और मन्दिरों के पूजारी और सम्प्रदायवाले, वैरागी, शैव, वाममार्गी आदिक पण्डित, महात्मा और सिद्ध ये तो ऊपर से बने रहते हैं, परन्तु उनको सब जगत् के ठगने वाले जानना। वैश्य और ये सब प्रसिद्ध चोर हैं, इनको दण्ड से राजा उपदेश कर दे। ऐसा दण्ड दे कि कोई इस प्रकार का मनुष्य प्रजा में न रहने पावै। तभी राजा और प्रजा की उन्नति होगी, अन्यथा नहीं।

पुराण शब्द विशेषणवाची सदा है। जैसे कि पुरातन, प्राचीन, सनातन शब्द हैं इनके विरोधी नवीन, अद्यतन, अर्वाचीन, इदानीन्तन शब्द विशेषण वाची हैं कि यह चीज नयी है अर्थात् पुरानी नहीं। ऐसे परस्पर विशेषण विरोध से निवर्तक होते हैं। तथा देवालय, देवमन्दिर, देवागार, देवायतन इत्यादिक **नाम यज्ञशाला** के हैं, क्योंकि जिस स्थान में देवों की पूजा होय, उसी के ये नाम हैं। देव हैं वेद के सब मन्त्र और परमेश्वर, क्योंकि



परमेश्वर सबका प्रकाशक है और वेद के मन्त्र भी सब पदार्थ विद्याओं के प्रकाशने वाले हैं, इससे इनका नाम देव है। सोई शास्त्र में लिखा है—

**यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रः।** —यह निरुक्त का वचन है।

इसका यह अभिप्राय है कि जहाँ-जहाँ देवता शब्द आवै, वहाँ-वहाँ मन्त्र ही को लेना। परन्तु कर्मकाण्ड में उपासना और ज्ञानकाण्ड में परमेश्वर ही देव है। जैसे कि **अग्निमीळे पुरोहितम्** इत्यादिक ऋग्वेद के मन्त्र हैं तथा **अग्निर्देवता** इत्यादिक यजुर्वेद के मन्त्र हैं, इसमें अग्नि देवता है। इससे अग्नि शब्द देवता विशेषण पूर्वक जिस मन्त्र में होगा, उससे जो अग्नि शब्द वाला मन्त्र होवै उसको ले लेना। जैसा कि **अग्निमीळे पुरोहितम्** इत्यादिक। यही बात व्यासजी के शिष्य जैमिनि ने कर्मकाण्ड के ऊपर पूर्व मीमांसा एक दर्शन शास्त्र बनाया है उसमें विस्तार से लिखी है कि मन्त्र ही देव हैं और कोई नहीं। उसमें इस प्रकार के दोष लिखे हैं जैसे—

**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।**

इत्यादिक मन्त्रों से भिन्न जो ब्रह्मादिक देव उनके भी पूजन का अत्यन्त निषेध किया है। सो ठीक ही किया है, क्योंकि ब्रह्मादिक देव नित्य पञ्चमहायज्ञ और अग्निष्टोमादिक यज्ञों को करते हैं तब वे यजमान होते हैं, फिर उनसे अन्य देव कौन हैं कि ब्रह्मादिकों के यज्ञ में जिन की पूजा की जाय वा भाग लेवैं। उनके सिवाय अन्य कोई देव देहधारी नहीं है। और कोई कहे कि उनसे ही अन्य देव हैं तो उनसे पूछा जाता है कि वे जब यज्ञ करैंगे तब उनसे आगे भी देव तीसरे माने जायेंगे। तीसरे जब यज्ञ करेंगे, तब चौथे इनसे आगे देव माने जायेंगे। ऐसे ही अनवस्था उनके मत में आवेगी। इससे परमेश्वर और मन्त्रों ही को देव मानना चाहिए और अन्य को नहीं।

जब ब्रह्मादिक, विद्यासिद्ध, ज्ञानयोग और सत्यवचन, गुणवालों का निषेध जैमिनि जी ने किया तो पाषाणादिक मूर्त्तियों की पूजा का निषेध अत्यन्त हो गया, क्योंकि पाषाणादिक मूर्त्तियों में जो देव भाव करना है सो तो अत्यन्त पामरपना है, इस बात में कुछ सन्देह नहीं। और जो कहै कि वे हैं तो पाषाणादिक, परन्तु मेरे भाव से देव हो जाते हैं और फल भी

देते हैं, तो उनसे पूछना चाहिए कि आपका भाव सत्य है वा मिथ्या ? जो वे कहैं कि सत्य है, तो दुःख का भाव कोई नहीं चाहता और सुख का अभाव। फिर उनको दुःख का भाव और सुख का अभाव क्यों होता है ? जो अन्य पदार्थ में अन्य का भाव करना है सो मिथ्या ही है, जैसे कि अग्नि में जल का भाव करके हाथ डालै, तो हाथ जल ही जायगा, इससे ऐसा भाव मिथ्या ही है। और जो पाषाणादिकों को पाषाणादिक मानना और देवों को देव मानना यह भाव तो सत्य है जैसा कि अग्नि को अग्नि मानना और जल को जल। इससे क्या आया कि जो जैसा पदार्थ है, उसको वैसा ही मानना, अन्यथा नहीं।

फिर उनसे पूछना चाहिए कि आप लोग भाव से पाषाणादिकों को देव बना लेते हो और उनसे अपनी इच्छा के योग्य फल ले लेते हो, तो उस भाव से आप ही देव क्यों नहीं बन जाते और चक्रवर्त्यादिक राज्यरूप फल को क्यों नहीं पाते तथा सब दुःखों का नाश रूप फल क्यों नहीं होता ? फिर वे ऐसा कहैं कि सुख वा दुःख और चक्रवर्त्यादिक राज्यों का पाना कर्मों का फल है। यह बात तो आप लोगों की सत्य है कि जैसा कर्म करै वैसा ही फल होता है। फिर आप लोगों ने कहा था कि पाषाणादिक मूर्त्तियों से फल मिलता है यह बात आपलोगों की झूठी हो गई।

**पूर्वपक्ष**—जब तक वेद मन्त्रों से प्राण प्रतिष्ठा नहीं करते तब तक तो वे पाषाणादिक ही हैं। और प्राण प्रतिष्ठा के करने से वे देव हो जाते हैं।

**उत्तर**—यह बात भी आप लोगों की मिथ्या है क्योंकि वेद वा ऋषि-मुनियों के किये शास्त्रों में प्राण प्रतिष्ठा का पाषाणादिक मूर्त्तियों में एक अक्षर भी नहीं तो मन्त्र कैसे होंगे। जिस-जिस मन्त्र से प्राण प्रतिष्ठा करते कराते हो, उस-उस मन्त्र का आप लोग अर्थ भी नहीं जानते। जैसाकि **प्राणदा०, अपानदा०, उद्‌बुध्यास्वाग्ने०,** इससे लेके **ओम् प्रतिष्ठ** यहाँ तक।

एक मन्त्र है—**सहस्त्रशीर्षा पुरुषः०, शन्नो देवीरभिष्टय०** [अथर्व० १.६.१] **प्राणं ददातीति प्राणदः परमेश्वरः।**

इत्यादिक अर्थ मन्त्रों का है। इन पाषाणादिक मूर्त्तियों में प्राण प्रतिष्ठा



करना इसका लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं और **प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।** यह तो मिथ्या संस्कृत किसी ने रच लिया है और वेदों के मन्त्र में भी आपलोगों के कहने की रीति से दोष आते हैं कि वेद के मन्त्रों से तो प्राण प्रतिष्ठा करी जाय। फिर प्राणों का मूर्त्ति में लेश भी नहीं देख पड़ता है। इससे यह बात भी न करनी चाहिए, क्योंकि जो प्राण मूर्त्ति में आते, तो मूर्त्ति चेतन ही बन जाती। सो तो जैसी पूर्व जड़ थी, वैसी ही जड़ सदा रहती है। पाषाणादिक मूर्त्तियों में प्राण के जाने और आने का छिद्र भी नहीं। परन्तु मनुष्य जो मर जाता है उसके शरीर में सब छिद्र मार्ग प्राण के जाने और आने के यथावत् हैं, उसमें प्राण प्रतिष्ठा करके क्यों नहीं जिला लेते हैं कि कोई मनुष्य कभी मरने ही न पावै। ऐसा किसी का भी सामर्थ्य नहीं, इससे यह बात अत्यन्त मिथ्या है। पूजा नाम सत्कार है **देवपूजा** होम ही से होती है, अन्य प्रकार से नहीं, क्योंकि मनु आदिक ऋषि लोगों के ग्रन्थों में और वेद में यही बात लिखी है॥

**स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि॥** [मनु० ३.८१]

इस पूर्वोक्त श्लोक से होम ही से देवपूजा यथावत् करनी चाहिए। ऐसा सिद्ध भया कि होम जो है सोई देवपूजा है और जिन स्थानों में होम होवै, उन्हीं का देवालयादिक नाम जानना।

**यद्वित्तं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः।**
**अयज्वनान्तु यद्वित्तमासुरस्वं प्रचक्षते॥**

—मनु० [११.२०]

जो यज्ञ ही को नित्य करता है उसका जो धन सो देव शब्द वाच्य है। जो कोई यज्ञ के वास्ते अन्य पुरुषों से धन लेके भोजन छादनादिक उससे करै और यज्ञ को न करै, उसका नाम **देवल** है।

**कुत्सितो देवलो देवलकः कुत्सिते इत्यनेन कन् प्रत्ययः।**

जो यज्ञ के धन की चोरी करके भोजन, छादनादिक करै, उससे पर-स्त्री-गमन, वेश्या-गमन भी करै, उसको **देवलक** कहते हैं। यह देवल से भी दुष्ट है। इन दोनों का श्रेष्ठ कर्मों में देवपितृकर्मादिक यज्ञों में निषेध है कि इनको निमन्त्रण वा अधिकार कभी न देना। ऐसे ही नाम स्मरण,

एकादशी इत्यादिक काल, काश्यादिक देश, इनका जो माहात्म्य जिस किसी ने लिखा है वह सब मिथ्या ही है, क्योंकि वेदादिक सत्यशास्त्रों में इनका कुछ भी लेख नहीं देखने में आता। और युक्ति से भी यह प्रतिमा पूजनादिक मिथ्या ही है। ऐसे व्यवहारों में राजा और प्रजा को भ्रम हो सकता है। इस निमित्त लिखा गया है कि राजा और प्रजा इन भ्रमों में प्रवर्त न होवैं, न किसी को होने दें।

जितनी युद्ध की विद्या उसको यथावत् जानै और प्रजा को जनावैं। नाना प्रकार की पदार्थ-विद्या तथा शिल्प-विद्या का भी राजा और प्रजा सदा अत्यन्त प्रकाश रक्खैं। युद्ध विद्या के दो भेद हैं, एक शस्त्र विद्या, दूसरी अस्त्र विद्या। **शस्त्रविद्या** यह कहाती है कि तलवार, बंदूक, तोप, लकड़ी, पाषाण और मल्लविद्यादिकों का यथावत् जानना और चलाना, दूसरे के शस्त्रों का निवारण करना और अपनी रक्षा करनी तथा शत्रु को मारना। और **अस्त्रविद्या** यह कहाती है कि जो पदार्थों के परस्पर मेलन और गुणों से होती है जैसा कि आग्नेयास्त्र। ऐसे पदार्थों का रचन करैं कि वायु के स्पर्श से उससे अग्नि उत्पन्न होवै। फिर उसको फेंकने से जो पदार्थ उसके समीप होय, उसको वह भस्म ही कर देता है। जैसे दीपशलाका को घसने से अग्नि उत्पन्न होता है वैसे ही सब अस्त्र विद्या जानो। इस प्रकार की आर्यावर्त्त में पूर्व बहुत पदार्थ रचने की उन्नति थी। जैसे कि **विशल्या** एक औषधि राजा लोग रच लेते थे। कैसा ही घाव शस्त्र से हो जाय, परन्तु उसको घस के लगाया, उसी वक्त वह घाप पूर जाय और उसमें पीड़ा भी कुछ नहीं होती थी। तथा **विमान** अर्थात् आकाशयान बहुत प्रकारों के और **जहाज** समुद्र पार जाने के निमित्त तथा



द्वीपान्तर में जाते और आते थे। यह महाभारत तथा वाल्मीकि रामायण में लिखी है। आर्यावर्त्त के राजाओं की आज्ञा और राज्य सब द्वीप द्वीपान्तर में था, क्योंकि युधिष्ठिरादिकों के राजसूय तथा अश्वमेध में सब द्वीप द्वीपान्तर के राजा आये थे। यह सभा और आश्वमेधिक पर्व में महाभारत में लिखी है।

जैन और मुसल्मानों ने बहुत से इतिहास नष्ट कर दिए। इससे बहुत बात यथावत् मिलती भी नहीं। बड़े बलवान् तथा विद्यावान् इस देश में होते थे। इसी देश में भूगोल के सब मनुष्य विद्या वा आचार सीखते थे। सब स्त्रियां भी आर्यावर्त्त में विद्यावाली होती थीं। सो आजकाल आर्यावर्त्त देशवालों की जैसी मूर्खता और दशा है ऐसी कोई देश की न होगी। फिर भी वेदादिक सत्यविद्याओं को यथावत् पढ़ैं और पढ़ावैं, धर्माचरण और श्रेष्ठ आचार राजा और प्रजा की परस्पर प्रीति तथा परस्पर गुण ग्रहण करैं, तभी मनुष्यों को आनन्द होगा, अन्यथा नहीं। ब्रह्मचर्याश्रम ४८, ४४, ४०, ३६, ३०, २५ वर्ष तक होना, सब विद्याओं का ग्रहण करना, वीर्य का निग्रह, जितेन्द्रियता और यथावत् न्याय का करना पक्षपात छोड़के, यही सब सुखों के मूल हैं।

मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम और नवम अध्यायों में राजा और प्रजा का धर्म विस्तार से लिखा है, महाभारत और वेदादिकों में भी बहुत प्रकार से लिखा है राजा और प्रजाओं का धर्म, जो देखना चाहै सो देख ले। इसमें तो हमने संक्षेप से लिखा है।

इसके आगे ईश्वर और वेद विषय में लिखा जायगा॥

# सप्तम उपदेश

## [ ईश्वर और वेदविषय ]

**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**
**स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १॥**

**अग्रे** नाम जब कुछ जगत् उत्पन्न ही नहीं भया था, तब एक अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव **हिरण्यगर्भ** अर्थात् परमेश्वर ही था। सो सब भूतों का जनक और पति है, दूसरा कोई नहीं। सोई परमेश्वर पृथिवी से लेके स्वर्गपर्यन्त जगत् को रच के धारण करता भया। **तस्मै एकस्मै परमेश्वराय देवाय, हवि** नाम प्राण चित्तमनादिकों से स्तुति प्रार्थना और उपासना हम लोग नित्य करें॥ १ ॥

**पूर्वपक्ष**—ईश्वर की सिद्धि किसी प्रकार से नहीं हो सकती और ईश्वर के मानने का प्रयोजन भी कुछ नहीं, क्योंकि हर्दी, चूना और जल के मिलाने से एक रोरी पदार्थ हो जाता है। ऐसे ही पृथिव्यादिक स्थूलभूत तथा इनके परमाणु और जीव परस्पर मिलने से सब पदार्थों की उत्पत्ति होती है। जैसे कि मिट्टी, जल, चाक और दण्डादिक सामग्री से कुलाल घटादिक पदार्थों को रच लेता है, इनसे भिन्न पदार्थ की अपेक्षा नहीं। वैसे ही जीव और पृथिव्यादिक भूतों से भिन्न जो ईश्वर उसके मानने का कुछ आवश्यक नहीं। स्वभाव ही से सब जगत् होता है। और जगत् नित्य भी है, कभी इसका नाश नहीं होता, फिर जगत् रूपकार्य को देखके कारण जो ईश्वर उसका अनुमान करते हैं, सो व्यर्थ हो गया। और प्रत्यक्ष ईश्वर का कोई गुण नहीं है, इससे प्रत्यक्ष भी ईश्वर के विषय में नहीं बनता। जब ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं तो उपमान कैसे बन सकेगा कि इसके तुल्य ईश्वर है। जब तीन प्रमाण नहीं बनते, तब शब्द प्रमाण कैसा बनेगा। शब्द प्रमाण मनुष्य लोग ऐसे ही परम्परा से कहते और सुनते चले आते हैं। किसी ने किसी से कहा कि मैंने वन्ध्या का पुत्र सींग वाला देखा, ऐसा अन्यों से कहा, अन्यों ने अन्य पुरुषों से कहा, ऐसे ही अन्धपरम्परावत् कहते और सुनते चले आते हैं। इससे ईश्वर की सिद्धि किसी प्रकार से नहीं हो सकती।

**उत्तरपक्ष**—ईश्वर की सिद्धि यथावत् होती है, क्योंकि जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति मानेगा, उसके मत में यह दोष आवेगा, जगत् में जितने पदार्थ हैं उनके विलक्षण-विलक्षण संयोग, आकृति तथा गुण और स्वभाव देख पड़ते हैं। जैसे कि मनुष्य और वानर, आम का और बबूर



का वृक्ष इत्यादिकों में विलक्षण-विलक्षण गुण और आकृति देख पड़ती है। इन नियमों का कर्ता कोई न होगा, तो ये नियम कभी न बनैंगे, क्योंकि जड़ पदार्थों में तो मिलने वा जुदा होने की यथावत् समर्थता नहीं कि उनमें ज्ञान गुण ही नहीं। जो ज्ञान गुणवाला होता है वही यथावत् नियम कर सकता है, अन्य नहीं। जो जीव है, सो ज्ञान वाला तो है, परन्तु जीव का उतना सामर्थ्य ही नहीं। इससे कोई पृथिव्यादिक भूत और जीव से भिन्न पदार्थ अवश्य है, जो सब जगत् का कर्त्ता और नियमों का नियन्ता है, वही ईश्वर है। किन्तु स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति जो मानता है उसके मत में ये दोष आवेंगे।

यह पृथिवी स्वभाव से जो होती तो इसका कर्त्ता और नियन्ता न होता। इस पृथिवी से भिन्न दशवें कोश अन्तरिक्ष में दूसरी आप से आप पृथ्वी बन जाती, सो आज तक नहीं बनी। इससे जाना जाता है कि जीव और सब भूतों से सर्वशक्तिमान्, सब जगत् का कर्त्ता और नियन्ता परमेश्वर, उसी को ईश्वर कहते हैं।

दूसरा दोष कि जितने परमाणु पृथिव्यादिक भूतों के हैं वे सब मिल गए अथवा इनसे विना मिले भी हैं, जो कहै, सब मिल गए तो त्रसरेण्वादिक हमको प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, इससे वह बात मिथ्या हो गई। और जो कहे कि कुछ मिले, कुछ नहीं मिले भी हैं, तो उनसे पूछना चाहिए कि सब क्यों नहीं मिले अथवा पृथक्-पृथक् क्यों न रहे तथा एक प्रकार के रूपवाले सब पदार्थ क्यों नहीं हुए? भिन्न-भिन्न संयोग और रूप के होने से सब जगत् का कर्ता और नियन्ता अवश्य सिद्ध होता है।

तीसरा दोष उसके मत में यह है कि कोई कर्म कर्त्ता के विना होता है वा नहीं? जो वह कहे कि वनादिकों में घासादिक पदार्थ आप ही से होते हैं, उसका कर्ता और निमित्त कोई नहीं देख पड़ता। उससे पूछना चाहिए कि पृथिव्यादिक सब भूत निमित्त हैं और सब बीज विना कर्त्ता और नियन्ता के कभी नहीं बन सकते, क्योंकि आम के बीज में जैसा परमाणुओं का मेलन कर्ता ने किया है, वैसे ही अङ्कुर, पत्र, पुष्प, फल, काष्ठ और स्वाद देखने में आते हैं। उससे भिन्न जो कदली उसके अवयव

वा स्वाद आम से कोई नहीं मिलते क्योंकि सब पदार्थों में परमाणु तो वे ही हैं फिर रचने वाले के विना भिन्न-भिन्न पदार्थ कैसे होंगे। इससे जाना जाता है कि सब जगत् का रचनेवाला कोई पदार्थ है।

जो चूना, हर्दी और जल के मिलाने से रोरी होती है, उसका मेलन करने वाला जब मिलाता है, तब वे मिल के रोरी होती है। वे आप से आप तो नहीं मिलते। इससे वह दृष्टान्त मिथ्या हो गया। कुम्हार का जो दृष्टान्त दिया, सो कोहार स्थानी आपने जीव को रक्खा, क्योंकि ईश्वर को तो आप मानते ही नहीं। सो जीव सर्वशक्तिमान् नहीं क्योंकि परमाण्वादिकों का संयोग वा वियोग जीव कभी नहीं कर सकता। जो जीव कर सकता तो, चाहता तो सूर्य, चन्द्रादिक लोकों को रच लेता, सो रच सकता नहीं, इससे जाना जाता है कि सब जगत् का कर्ता और नियन्ता कोई अवश्य है। जब जगत् रचा गया है, तो नित्य कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक नहीं रचा था, तब तक नहीं था। और जो रचने से भया है, सो कभी मिट भी जायगा। विना कर्ता वा कारण के कर्म वा कार्य नहीं होता तो यह नाना प्रकार की रचना और इतना बड़ा कार्य जगत् कभी नहीं हो सकता। इससे तीन प्रकार का जो अनुमान है सो ईश्वर में यथावत् घटता है कि कारण के विना कार्य कभी नहीं हो सकता। कार्य से कारण अवश्य जाना जाता है और कर्ता के विना कर्म नहीं होता। इससे पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट तीन प्रकार का अनुमान ईश्वर को यथावत् सिद्ध करता है। ईश्वर के सर्वशक्तिमत्त्व, दयालुता और न्यायकारित्वादिक गुण जगत् में प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं। स्वाभाविक गुण और गुणी का नित्य सम्बन्ध होता है। जैसाकि रूप और अग्नि का। सो जैसे अग्नि का रूप देख पड़ता है और अग्नि नेत्र से नहीं देख पड़ता, परन्तु हमलोग ज्ञान से अग्नि को प्रत्यक्ष देखते हैं क्योंकि अग्नि को बुद्धि से प्रत्यक्ष हम लोग न देखते तो अग्नि को ले आने और अग्नि से जितने व्यवहार होते हैं उनमें प्रवृत कभी न होते। इससे जैसा अग्नि हमको प्रत्यक्ष है गुण और गुणों के ज्ञान से, वैसे ज्ञान से परमेश्वर भी प्रत्यक्ष है। जो धर्मात्मा और योगी पुरुष होते हैं, उनको परमाणु, जीव और परमेश्वर भी यथावत् प्रत्यक्ष होते हैं। जो कोई



इसमें संदेह करै, सो करके देख ले।

उपमान प्रमाण तो परमेश्वर में नहीं हो सकता, क्योंकि परमेश्वर के सदृश कोई पदार्थ नहीं, जिसकी उपमा परमेश्वर में हो सकै, परन्तु परमेश्वर की उपमा परमेश्वर ही में हो सकती है। ऐसा जगत् में व्यवहार देखने में आता है कि आप के तुल्य आप ही होवै। वैसे हम लोग भी कह सकते हैं कि परमेश्वर के तुल्य परमेश्वर ही है और कोई नहीं। जब तीन प्रमाणों से ईश्वर की सिद्धि हो गई, तो शब्द प्रमाण भी अवश्य होगा। सो शब्द प्रमाण इस प्रकार का लेना—

**दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।**
**अप्रमाणो ह्यमनाः शुभ्रोऽक्षरात्परतः परः॥ २॥**

—[मुण्डक २.१.२]

**दिव्य** नाम सब जगत् का प्रकाशक, अमूर्त्त, निराकार और सदा अशरीर, **पुरुष** नाम सब जगह में पूर्ण, सोई बाहर और भीतर एक रस, **अज** कभी जिसका जन्म नहीं होता, **अप्रमाण** नाम किसी प्रकार की चेष्टा वा लीला नहीं करता, **अमना** नाम रागद्वेषसंकल्पविकल्पादिक दोष रहित, **अक्षर** जो जीव, उससे परे जो प्रकृति, उससे भी परमेश्वर श्रेष्ठ और पर है॥ २॥

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ ३॥** —[श्वेता० १.६.१४] [मुण्डक० २.२] मन्त्र [१०]

उस परमेश्वर में सूर्य, चन्द्र, तारे, बिजली और अग्नि कुछ भी प्रकाश नहीं कर सकते, किन्तु सूर्यादिकों को परमेश्वर ही प्रकाशते हैं। सब जितना जगत् है उसके प्रकाश से प्रकाशित होता है परमेश्वर का प्रकाशक कोई नहीं॥ ३॥

**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ४॥**

—[श्वेताश्वतर ३] मन्त्र [१९]

परमेश्वर निरंकार है, परन्तु उसमें शक्तियां सब हैं। हाथ परमेश्वर

को नहीं है, परन्तु हाथ की शक्ति ऐसी है कि सब चराचर को पकड़ के थांम रक्खा है। तथा पाद नहीं है, परन्तु सबसे वेग वाला है। नेत्र नहीं है, परन्तु चराचर को यथावत् सबकाल में देख रहा है। कान नहीं है, परन्तु चराचर को बात सुनता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार तो नहीं है, परन्तु मन, निश्चय और स्मरण अपने स्वरूप का आप ही जानने वाला है और वह सबको जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जान सकता कि इतना बड़ा वा इस प्रकार का वा इतना सामर्थ्य उसमें है, ऐसा कोई नहीं जान सकता। उस परमेश्वर को ज्ञानी और शास्त्र सर्वोत्कृष्ट, पूर्ण और सनातन कहते हैं॥ ४॥

**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसन्नित्यमगन्धवच्च यत्।**
**अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥ ५॥**

—[कठोपनिषद् १.३] मन्त्र [१५]

वह परमेश्वर अशब्द अर्थात् कहने और सुनने मात्र से नहीं जाना जाता, विना उसके आज्ञा पालन, विज्ञान, प्रीति और योगाभ्यास के। स्पर्श, रूप, रस और गन्ध परमेश्वर में नहीं, इससे परमेश्वर का ज्ञान सहस्रों पुरुषों में किसी को होता है, सबको नहीं। वह कैसा है अनादि और अनन्त जिसका आदि कारण अथवा अन्त को कोई नहीं देख सकता, क्योंकि उसका मरण वा अन्त नहीं हैं तो कैसे कोई देख सकै। परमेश्वर बुद्धि से भी सूक्ष्म और परे है, जो कोई परमेश्वर को जानता है, सो जन्म मरणादिक सब दुःखों से छूट के परमेश्वर को प्राप्त होता है, फिर कभी उसको दुःख लेश मात्र भी नहीं होता॥ ५॥

**समानिर्धूत्तमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।**
**न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥ ६॥**

—मन्त्र०

जिस पुरुष का धर्माचरण, विद्या और समाधि योग से चित्त शुद्ध हो जाता है, उसका चित्त परमेश्वर के ज्ञान में और प्राप्ति के योग्य होता है। जब समाधि योग में चित्त और परमेश्वर का योग होता है, उस वक्त ऐसा आनन्द उस जीव को होता है कि कहने में भी नहीं आता, क्योंकि वह



जीव अपने अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि ही से ग्रहण करता है, वहाँ तीसरा कोई नहीं है जिससे कहैं। कि फिर जागरितावस्था में कहने में भी नहीं आता, क्योंकि वह परमेश्वर, उसका आनन्द और उसको जानने वाला जीव तीनों अद्भुत पदार्थ हैं, इससे वह सब आनन्द कहने में नहीं आता॥ ६॥

**आश्चर्योऽस्य वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा।**
**आश्चर्योऽस्य ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ ७॥**

—[कठ १.२] मन्त्र [५]

परमेश्वर का वक्ता और प्राप्ति होने वाला दोनों आश्चर्य पुरुष हैं क्योंकि आश्चर्य जो परमेश्वर उसको जानने वाला भी आश्चर्य ही होता है। जिसको ब्रह्मवित् पुरुषों का उपदेश हुआ होय और अपने भी सब प्रकार से विद्यावान् शुद्ध और योगी [हो], तब परमेश्वर को जान सकता है, सो भी आश्चर्य है, अन्यथा नहीं॥ ७॥

**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।**
**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमेतत्॥ ८॥**

—[कठ १.२] मन्त्र [१५]

जिस पद अर्थात् परमेश्वर [का] सब वेद अभ्यास पुनः पुनः उसी ही का कथन करते हैं, अर्थात् वे परमेश्वर ही को कहते हैं और उसके वास्ते ही हैं। जिसकी प्राप्ति की इच्छा से मनुष्य लोग ब्रह्मचर्य से यथावत् विद्या पढ़ते हैं कि हमलोग परमेश्वर को जानैं, उसकी प्राप्ति के विना अनन्त सुख [की प्राप्ति] और सब दुःख की निवृत्ति नहीं होती। यही बात यमराज नचिकेता से कहते हैं कि हे नचिकेता! जो ओङ्कार का अर्थ है, सोई परब्रह्म है॥ ८॥

**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।**
**सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ ९॥**

—[श्वेताश्वतर ६] मन्त्र [११]

**एक** जो अद्वितीय परमेश्वर ब्रह्म है सोई सब भूतों में गूढ़ है अर्थात् गुप्त कि सब जगह में प्राप्त है। फिर भी मूढ़ लोग उसको नहीं जानते। सब भूतों का अन्तरात्मा कि निकट से भी निकट सब संसार का वही है।

**अध्यक्ष** नाम स्वामी और सब भूतों का निवास स्थान सबसे श्रेष्ठ, सबके ऊपर विराजमान, सबका साक्षी कि कोई कर्म जीव का उनसे विना जाना नहीं रहता, किन्तु सब जानते हैं। चेतन स्वरूप और **केवल** अर्थात् उसमें कुछ भी नहीं मिला है, एक रस, चेतन स्वरूप ही है जैसा दूध में जल मिला रहता है वैसा नहीं। जितने अविद्या, जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषा, तमोरजः और सत्त्व गुणादिक जगत् के हैं, उनसे सदा भिन्न होने से परमेश्वर निर्गुण है और सच्चिदानन्द सर्वशक्तिमत्व, दयालु, न्यायकारित्व और सर्वज्ञादिक गुणों से सदा सगुण है॥ ९॥

**न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।**
**परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥ १०॥**

—[ श्वेताश्वतर ६] मन्त्र [८]

परमेश्वर सदा कृतकृत्य है। उसको कर्तव्य कुछ नहीं कि इसको करने के विना हमको सुख न होगा, ऐसा नहीं। करण जैसा कि चक्षु के विना रूप नहीं देख सकता, ऐसा भी परमेश्वर में नहीं। किन्तु विविध शक्ति, स्वाभाविक अनन्त सामर्थ्य परमेश्वर का सुना जाता है कि अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया परमेश्वर में स्वाभाविक ही है इसमें कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि परमेश्वर के तुल्य वा अधिक कोई नहीं॥ १०॥

**एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।**
**दृश्यते त्वग्र्या बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ ११॥**

—[कठ० १.३] मन्त्र [१२]

यह जो परमेश्वर सब भूतों से सूक्ष्म, व्यापक और गुप्त है इससे मूढ़ जो विज्ञान और योगाभ्यास हीन उनकी बुद्धि में नहीं प्रकाशित है। जितने सूक्ष्मदर्शी, यथावत् विद्यावान् उनकी शुद्धि और सूक्ष्म जो बुद्धि, विद्या, विज्ञान और योगाभ्यास से होती है, उससे परमेश्वर को वे यथावत् जानते हैं, अन्यथा नहीं॥ ११॥

**तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।**
**तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ १२॥**

—[यजुः० ४०] मन्त्र [५]



सोई परमेश्वर प्राणादिकों को चेष्टा कराता है और आप अचल ही है, वह अधर्मात्मा और मूढ़ पुरुषों से अत्यन्त दूर है और धर्मात्मा, विज्ञान वाले पुरुषों से अत्यन्त निकट अर्थात् उनका अन्तर्यामी है सोई ब्रह्म सब जगत् के बाहर, भीतर और मध्य में पूर्ण ही है॥ १२॥

**अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।**
**तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ १३॥**

—[यजुः० ४०] मन्त्र [४]

यह ब्रह्म निष्कम्प निश्चल है, परन्तु मन से भी वेगवाला है। इस ब्रह्म को देव अर्थात् चक्षुरादिक इन्द्रियां प्राप्त नहीं होती, क्योंकि इन्द्रिय और मन का वही आत्मा है। सो आत्मा का बाह्य जो शरीर सो उसको कभी नहीं देख सकता। वह आत्मा तो सबको देख सकता ही है। और मन वेग से जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ व्यापक होने से परमेश्वर आगे देख पड़ता है, सो परमेश्वर जितने वेगवाले हैं, उनको उल्लंघन कर लेता है, अर्थात् परमेश्वर के कोई गुण के तुल्य वा अधिक किसी का गुण सामर्थ्य नहीं। सो परमेश्वर स्थिर, व्यापक और चेतन उसकी सत्ता से उसमें ठहरा भया। **मातरिश्वा** अर्थात् माता जो आकाश उस में चलने और रहने वाला जो प्राण सो चेष्टादिक सब कर्मों का कर्ता है, अन्यथा नहीं॥ १३॥

**यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।**
**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ १४॥**

—[यजुः० ४०] मन्त्र [७]

जिस परमेश्वर के जानने से सब भूत प्राणिमात्र आत्मा के तुल्य हो जाते हैं कि किसी भूत से न राग और न द्वेष, उसको कभी राग और द्वेष नहीं होते, क्योंकि वह एक जो अद्वितीय उस परमेश्वर में स्थिर ज्ञानवाला जो पुरुष उनको किसी में मोह वा किसी से क्या शोक अर्थात् उसको कभी मोह वा शोक होते ही नहीं॥ १४॥

**वेदाहमेतं पुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसःपरस्तात्।**
**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ १५॥**

—[यजुः० ३१.१८]

जो ब्रह्मवित् पुरुष, उसका यह अनुभव है कि पूर्ण सबसे बड़ा, प्रकाश स्वरूप और सबका प्रकाशक जन्म-मरण, सुख-दुःख और अविद्या जो तम उससे भिन्न उस परमेश्वर को जानता है, सब दुःख से छूट के परमानन्द, उसको जानने से, यथावत् प्राप्त भया हूँ उसी को जान के **अतिमृत्यु** जो परमेश्वर कि जिसमें जन्म मरणादिक दुःखों का लेशमात्र भी नहीं अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है और कोई इससे भिन्न मोक्ष का मार्ग नहीं॥ १५॥

**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः सभाभ्यः॥ १६॥** —[यजुः० ४०] मन्त्र [८]

सो परमेश्वर सब पदार्थों में एक रस अद्वितीय पूर्ण है। सब जगत् का कर्ता, स्थूल, सूक्ष्म और अकाय अर्थात् जागरित, [स्वप्न] और सुषुप्ति इन तीन शरीर रहित, शुद्ध, निर्मल, सर्वदोष रहित जिसको पाप का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं, सर्वज्ञ, सर्वविद्वान्, अनन्त जिसका विचार और ज्ञान सबके ऊपर विराजमान, स्वयंभू नाम जिसकी कभी उत्पत्ति न होय, आपसे आप ही सदा सनातन होवै, जिनने वेदरूप सर्वज्ञ विद्या का, हिरण्यगर्भादिक **शाश्वत** नाम निरन्तर प्रजाओं को अर्थों का अर्थात् वेदों का यथावत् उपदेश किया है उस परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए।

इतना संक्षेप से संहिता और ब्राह्मणों के मन्त्रों से शब्द प्रमाण लिख दिया सो जान लेना।

**पूर्वपक्ष**—परमेश्वर रागी है वा विरक्त वा उदासीन? जो रागी होगा तो दुःखी वा असमर्थ होगा। सदा जो विरक्त होगा तो कुछ भी न करेगा और संसार का धारण भी न होगा और जो उदासीन होगा तो अपने स्वरूपस्थ साक्षीवत् रहेगा अर्थात् बद्ध जो ईश्वर होगा तो कभी रच सकेगा नहीं, मुक्त होगा तो जगत् को रचेगा ही नहीं, इससे ईश्वर की सिद्धि नहीं होती।

**उत्तर**—परमेश्वर रागी नहीं, क्योंकि अपने से उत्तम कोई पदार्थ



नहीं है कि जिस में राग करै, अपने स्वरूप में अपना राग कभी नहीं बनता। सर्वव्यापी होने से अप्राप्त पदार्थ ईश्वर को कोई नहीं तथा सर्वशक्तिमान् के होने से भी राग ईश्वर में नहीं बन सकता। विरक्त भी ईश्वर नहीं क्योंकि पहिले जो बद्ध होता है सोई बन्धन के छूटने से विरक्त कहाता है, सो ईश्वर को बन्धन तीनों काल में भी नहीं भया, फिर उसको विरक्त कैसे कह सकैं, उदासीन भी वह होता है कि पहले बन्धन में होय, पीछे ज्ञान के होने से उदासीन हो जाय, ऐसा ईश्वर नहीं। ईश्वर की अचिन्त्यशक्ति है कि सब में रहै और किसी का भी लेशमात्र संगदोष न लगे। इससे ऐसी शंका जीव के बीच में घट सकती है, ईश्वर में नहीं।

**पूर्वपक्ष**—जितने पदार्थ हैं वे सब सन्देह युक्त ही हैं, निश्चय यथावत् एक का भी नहीं होता।

**उत्तर**—आपने यह बात कही सो निश्चित है वा नहीं? जो कहो कि निश्चित है तो सब पदार्थ सन्देह युक्त नहीं भये। आपकी बात निश्चित होने से। और जो आप कहैं कि यह मेरी बात भी निश्चित नहीं, तो आपकी बात का प्रमाण ही नहीं हुआ, क्योंकि **लक्षणप्रमाणाभ्यां पदार्थसिद्धिः** लक्षण और प्रमाणों के विना किसी पदार्थ की निश्चित सिद्धि नहीं होती। सो आपने सब पदार्थों में सन्देह सिद्ध कहा, सो किस प्रमाण से उसकी सिद्धि होती है। किसी प्रमाण से सन्देह को आप सिद्ध किया चाहोगे तो उस प्रमाण में भी आपका निश्चय नहीं होगा क्योंकि आप सब पदार्थों को सन्देहयुक्त कह चुके हैं। इससे आपका सन्देह ही सन्देह से नष्ट हो गया। फिर आप किसी व्यवहार में प्रवर्त्त न हो सकोगे जैसे कि गमन, भोजन, छादन, देखना-सुनना इत्यादिक भी सन्देह युक्त होने से प्रवृत्ति भी इनमें न होनी चाहिए। प्रवृत्ति तो आप करते ही हैं, इससे आपने जो कहा कि सब व्यवहार और पदार्थ सन्देहयुक्त ही हैं, यह बात आप की मिथ्या हो गई। इससे क्या आया कि लक्षण और प्रमाणों से जो निश्चित पदार्थ होता है, उसको निश्चित ही मानना चाहिए, इसमें सन्देह करना व्यर्थ ही है। सो प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से ईश्वर की यथावत् सिद्धि होती ही है, उसको मानना ही चाहिए।

**प्रश्न**—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चारों के मिलने से चेतन भी उसमें होता है जब वे पृथक्-पृथक् हो जाते हैं तब सब कला बिगड़ जाती हैं। फिर उसमें कुछ नहीं रहता। इससे जगत् का रचनेवाला कोई नहीं, आपसे आप ही जगत् और जीव होता है।

**उत्तर**—आप भी इन चारों को मिलाके जीव और जीव के जितने गुण उनको देखला देवैं, सो कभी नहीं देख पड़ेंगे, क्योंकि पहिले ही से सब स्थूल भूतों में सब सूक्ष्म भूत मिल रहे हैं। फिर उनमें ज्ञानादिक गुण क्यों नहीं देख पड़ते, इससे जीव पदार्थ इन भूतों से भिन्न ही है जिसके ये गुण हैं—

**इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।**

—यह गौतम मुनि का सूत्र है।

इसका यह अभिप्राय है कि **इच्छा** किसी प्रकार का चाहना, जिसके गुणों को जानता है उसकी प्राप्ति की चाहना करता है। जिसमें दोषों को जानता है, उसमें **द्वेष** अर्थात् चाहना नहीं करता। **प्रयत्न** नाना प्रकार की शिल्पविद्या से पदार्थों का रचना, शरीर तथा भार का उठाना, इसका नाम प्रयत्न है। **सुख** नाम अनुकूल का चाहना और जानना। **दुःख** प्रतिकूल का जानना और छोड़ने की इच्छा करना। **ज्ञान** जैसा जो पदार्थ है, उसका तत्त्व पर्यन्त यथावत् विवेक करना। इसका नाम जीव है। ये गुण पृथिव्यादिक जड़ों के नहीं, किन्तु जीव के ही हैं। **लिंग** शरीर, बुद्धि जिससे जीव निश्चय करता है।

**बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्।**—यह गौतम जी का सूत्र है।

**बुद्धि, उपलब्धि** और **ज्ञान** ये तीनों नाम एक ही पदार्थ के हैं। मन जिससे एक पदार्थ को विचार के दूसरे का विचार करता है॥

**युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।** —यह गौतमजी का सूत्र है।

जिससे एक पदार्थ ही को एक काल में ग्रहण करता है, एक को ग्रहण करके, दूसरे का दूसरे काल में ग्रहण करता है, एक काल में दोनों का नहीं, इसका नाम **मन, चित्त** जिससे कि जीव पूर्वापर का स्मरण करता है जो कि पहिले देखा और सुना था, इसका नाम चित्त है। **अहङ्कार** जिससे अभिमान जीव करता है। ये चार मिल के **अन्तःकरण** कहाता है, इससे जीव भीतर मनो राज्य करता है। ये चारों एक ही हैं, परन्तु व्यापार भेद से चार भिन्न-भिन्न नाम हैं। बाह्य करण जिससे कि बाहर जीव व्यापार करता है, **श्रोत्र** जिससे शब्द सुनता है, **त्वचा** जिससे स्पर्श जानता है, **नेत्र** जिससे रूप को जानता है, **जिह्वा** जिससे रस को जानता है, **नासिका** जिससे गन्ध को जानता है। ये पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ है इनसे जीव बाह्य पदार्थों को जानता है।



**वाक्** जिससे शब्द बोलता है, **पाद** जिससे गमन करता है, **हस्त** जिससे ग्रहण करता है, **पायु** जिससे मल का त्याग करता है, **लिंग** जिससे मूत्र और विषय भोग करता है। ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं। इनसे जीव बाह्य कर्म करता है।

**प्राण** जिससे ऊर्ध्व चेष्टा करता है, **अपान** जिससे अधः चेष्टा करता है, **व्यान** जिससे सब सन्धियों में चेष्टा करता है, **उदान** जिससे जल और अन्न को कण्ठ से भीतर आकर्षण कर लेता है, **समान** जिससे नाभिद्वार से सब रसों को सब शरीर में प्राप्त कर देता है। ये पांच मुख्य प्राण कहाते हैं।

**नाग** जिससे डकार लेता है, **कूर्म** जिससे नेत्र को खोलता और मून्दता है, **कृकल** जिससे छींकता है, **देवदत्त** जिससे जम्भाई लेता है, **धनञ्जय** जिससे शरीर की पुष्टि करता है और मरे पीछे भी शरीर को नहीं छोड़ता, जो कि मुरदे को फुलाता है। ये पांच उप प्राण हैं। ये दश एक ही हैं परन्तु क्रिया भेद से दश नाम भये हैं। ये २४ तत्त्व मिल के लिंग शरीर कहाता है। कोई उपप्राण को नहीं मानता उसके मत में १९ होते हैं। और कोई पाँच सूक्ष्मभूत जोकि परमाणुरूप हैं और पूर्वोक्त चार भेद अन्तःकरण के इन नव तत्त्वों का लिङ्ग शरीर कहाता है। इस लिङ्ग शरीर में जो अधिष्ठाता, कर्ता और भोक्ता उसको जीव कहते हैं जो कि एक काल में सब बुध्यादिकों के किये कर्मों का अनुभव करता है, चेतनस्वरूप है, उसका नाम जीव है। उसकी अधिक व्याख्या मुक्ति के प्रकरण में की जायगी, सो जीव भिन्न पदार्थ ही है। चारों के मिलाने से जीव के गुण और

जीव कभी नहीं उत्पन्न होता। इससे यह [जो] बात कही थी कि चारों के मिलने से जीव भी होता है, यह बात खण्डित हो गई।

**प्रश्न**—ईश्वर सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी है। जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है, वैसा ही जीव पाप वा पुण्य करेगा। फिर जीव को दण्ड क्यों होता है, क्योंकि उससे अन्यथा जीव कुछ नहीं कर सकता। जो अन्यथा जीव करेगा, तो ईश्वर का सर्वज्ञान नष्ट हो जायगा इससे जैसा ईश्वर ने पहिले ही निश्चय कर रक्खा है, वैसा जीव करता है। ईश्वर जानता भी है, फिर आपसे उसको निवृत्त क्यों नहीं कर देता। जो निवृत्त नहीं कर देता, तो दण्ड क्यों देता है।

**उत्तर**—ईश्वर है अत्यन्त दयालु, जब जीवों को ईश्वर ने रचा तब विचार करके सबको स्वतन्त्र ही रख दिये, क्योंकि परतन्त्र के रखने से किसी को कभी सुख नहीं होता। जैसे कि कोई अपनी इच्छा से मरण तक एक स्थान में रहता है, तो भी इसमें उसको कुछ दु:ख नहीं मालूम होता। उसको जो कोई एक घड़ी भर भी पराधीन बैठाय रक्खै, तो बड़ा उसको दु:ख होता है। इससे परमेश्वर ने सब जीव स्वतन्त्र रक्खै हैं। जो चाहता तो परतन्त्र भी रख सकता। परन्तु परमेश्वर बड़ा दयालु और कृपासागर है, इससे सब स्वतन्त्र रक्खे हैं। परन्तु आज्ञा ईश्वर की है कि जो जैसा कर्म करैगा, वह वैसा फल भोगेगा, सो आज्ञा उसकी सत्य ही है। इससे क्या आया कि कर्मों के करने और पुण्यों के फल भोगने में जीव स्वतन्त्र हैं, और पापों के फल भोगने में पराधीन हैं। जीव कर्मों के करने वाले और भोगने वाले हैं। जैसा जीव कर्म करेगा, वैसा ही ईश्वर ने ज्ञान से निश्चय पहिले ही किया है और जैसा ईश्वर ने निश्चय किया है, वैसा ही कर्म करता है और भोगता ही है। त्रिकालज्ञान में ईश्वर स्वतन्त्र और अपने कर्मों के करने में जीव स्वतन्त्र तथा भोगने में [परतन्त्र] हैं।

**प्रश्न**—जीव का निजस्वरूप क्या [है] ?

**उत्तर—विशिष्टजीवत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्याम्।**

—यह कपिल मुनि जी [कृत सांख्य ६.६३] का सूत्र है। इसका यह अभिप्राय है कि जैसा आयना मिट्टी से बनता है परन्तु



शुद्ध के होने से जो उसके साम्हने पदार्थ होगा, सो उसमें यथावत् देख पड़ेगा। अथवा लोहे को अग्नि में रखने से अग्नि के गुण वाला होता है, उन दोनों में प्रतिबिम्ब वा अग्नि भिन्न है, क्योंकि उनसे पृथक् भी वे देख पड़ते हैं और पृथक् भी वे हो जाते हैं। इससे दर्पण और लोहे से व्यतिरिक्त हैं अर्थात् जुदे हैं। और जो केवल जुदे होते तो उनके गुण दर्पण और लोहे में न होते, इससे उनमें अन्वय भी उनका देख पड़ता है, वैसे ही **लिंग शरीर** जो है, उसका अधिष्ठाता है, सोई जीव है। दर्पण के तुल्य अन्त:करण शुद्ध है स्थूल देह बाहर का है और जिसमें गाढनिद्रा होती है, सत्त्व, रजस् और तमोगुण मिल के **प्रकृति** कहाती है, जिसका नाम **अव्यक्त परम सूक्ष्मभूत** और **प्रधान** भी है, वह **कारण शरीर** कहलाता है। सो सब प्राणियों का व्यापक के होने से एक ही है। दोनों के बीच में मध्यस्थ लिंग शरीर है। चेतन एक जीव और दूसरा परमेश्वर ही है, तीसरा कोई नहीं। सो परमेश्वर है विभु, व्यापक, सर्वत्र एक रस, जहाँ-जहाँ लिंग शरीर विशिष्ट जीव रहता है, वहाँ-वहाँ परमेश्वर ही पूर्ण है, सो लिंग शरीर में उसका सामान्य प्रकाश है और विशेष प्रकाश चेतन का ही है जैसे दर्पण में सूर्य का विशेष प्रकाश होता है, सो परमेश्वर का सदा संयोग रहता है, वियोग कभी नहीं। इससे सदा परमेश्वर के अन्वय होने से वह चेतन ही रहता है वह जीव कहाता है। और लिंग देह से परमेश्वर भिन्न के होने से पृथक् भी है, क्योंकि लिंग शरीर से युक्त जीव स्वर्ग, नरक, जन्म और मरण इत्यादिकों में भ्रमण करता है, परन्तु परमेश्वर निश्चल है, उसके साथ भ्रमण नहीं करते हैं और उसके गुण दोषों के भोग वा संगी कभी नहीं होते हैं। कारण शरीर के ज्ञान, लोभ और क्रोधादिक गुण जीव में आते हैं, और स्थूल शरीर के शीतोष्ण, क्षुधा, तृषादिक गुण भी जीव में आते हैं, क्योंकि दोनों शरीर के मध्यस्थवर्ती जीव है, इससे दोनों शरीरों के गुण का भी संग जीव करता है। इसका स्पष्ट अन्य व्याख्यान मुक्ति और बन्ध के विषय में किया जायगा।

**प्रश्न**—ईश्वर व्यापक नहीं हो सकता, क्योंकि जितने परमाण्वादिक पदार्थ हैं, वे जहाँ रहते हैं उतने अवकाश को ग्रहण अवश्य करते हैं। फिर

उसी अवकाश में दूसरे परमाणु वा ईश्वर की स्थिति कभी नहीं हो सकती। और उसके बीच में अन्य पदार्थ भी रहैं, तो वह परमाणु ही नहीं क्योंकि बहुत पदार्थों के संयोग से विना संधि वा पोल उसमें नहीं हो सकता। सब वियोग की अन्तावस्था जो है उसको परमाणु कहते हैं कि फिर जिसका विभाग न हो सके।

**उत्तर**—ईश्वर व्यापक है, क्योंकि परमाणु से भी सूक्ष्म है जैसे त्रिसरणु के आगे संयोग वा वियोग बुद्धि से हम लोग जानते और करते हैं, वैसे ही परमाणु का वियोग भी बुद्धि से कर सकते हैं, और ईश्वर की विभुता भी ज्ञान से जान सकते हैं, क्योंकि परमेश्वर विभु न होते तो परमाणु का रचन, संयोग, वियोग और धारण भी न कर सकते, फिर परमाणु का धारण भी कैसे होता। जैसे पुष्प में गन्ध, दूध में घृत, घृत में स्वाद और गन्ध, और उन सब पदार्थों में आकाश नाम पोल ये सब व्यापक हैं उन-उन पदाथों में, वैसे परमेश्वर भी परमाणु और प्रकृत्यादिक तत्त्वों में व्यापक ही है।

**प्रश्न**—अच्छा, ईश्वर सिद्ध और व्यापक भी हो, परन्तु उसकी उपासना, प्रार्थना और स्तुति करनी आवश्यक नहीं, क्योंकि कोई व्यवहार ईश्वर के सम्बन्ध का प्रत्यक्ष नहीं देख पड़ता, इससे ईश्वर अपनी ईश्वरता में रहे और हम जीव लोग अपनी जीवता में रहैं।

**उत्तर**—ईश्वर की उपासना, प्रार्थना और स्तुति अवश्य सब जीवों को करनी चाहिए। जैसे कि कोई किसी का उपकार करै, उसका प्रत्युपकार उसको अवश्य करना चाहिए, जो प्रत्युपकार नहीं करता, सो अवश्य कृतघ्न होता है, क्योंकि उसने उसके साथ भलाई की और उसने उसके साथ बुराई की, जैसा उसने सुख दिया था, फिर उसने उसको सुख कुछ नहीं दिया वा उसने विरोध ही कर लिया, इससे वह पुरुष कृतघ्न होता है। जैसे माता-पिता और कोई स्वामी जिसका पालन करते हैं, वे केवल अपने उपकार के हेतु करते हैं कि यह भी मेरा पालन समर्थ होके करैगा। जब वह पुत्र वा भृत्य यथावत् पालन नहीं करता, संसार में सज्जन लोग उसको कृतघ्न कहते हैं। जो माता और पिता अथवा स्वामी उनका पालन



करते हैं जिन पदार्थों से, वे घृत, जल, पृथिवी और अन्नादिक सब परमेश्वर के रचे हैं, जो जिसको रचता है, वही उसका माता-पिता और मुख्य स्वामी होता है। उन पदार्थों से अपना वा पुत्रादिकों का पालन करते हैं। जैसे किसी ने अपने भृत्य से कहा कि तूं इसकी सेवा कर वा मेरे इस पदार्थ को लेके उस को दे आ। जब वह सेवा वा पदार्थ को प्राप्त होवै, तब पदार्थ दाता स्वामी के ऊपर वह प्रीति करै वा भृत्य के, किन्तु पदार्थ दाता स्वामी ही से प्रीति करेगा भृत्य से नहीं। किञ्च जिसका पदार्थ होवै, उसी से प्रीति करनी चाहिए। जैसे युद्ध में जय वा पराजय, राज्य की प्राप्ति अथवा हानि, राजा की होती है भृत्यों की नहीं। वैसे ही परमेश्वर का जगत् है, जगत् में जितने पदार्थ हैं, उनका स्वामी परमेश्वर ही है। इससे परमेश्वर की अत्यन्त प्रीति से स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए, अन्य किसी की नहीं। सेवा तो माता-पिता और विद्या का देनेवाला श्रेष्ठ और सुपात्र की भी करनी चाहिए। और जो ईश्वर की उपासना न करेगा, वह कृतघ्न हो जायगा, क्योंकि ईश्वर ने हम लोगों पर अनेक उपकार किए हैं। जितने जगत् में पदार्थ रचे हैं वे सब जीवों के सुख के हेतु रचे हैं। और जीवों को स्वतन्त्र कर्म करने में रख दिये हैं। इसमें यह यजुर्वेद का प्रमाण है—

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।**
**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥**

—[यजुः० ४०.२]

इसका यह अभिप्राय है कि जीव स्वतन्त्र आप ही आप कर्म करता है। सो इस संसार में आप ही आप कर्म करता हुआ १०० सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करै परन्तु अधर्म कभी न करै, सदा धर्म ही करै। जो जीव कहेगा कि मरना मुझको अवश्य है, इससे पाप को न करना चाहिए। ऐसे जीव विचार से कर्म करेगा सो पापों में लिप्त कभी न होगा॥

**यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति।**
**यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते॥** —[यजुर्ब्राह्मण]

इस श्रुति का अर्थ पहिले कर दिया है परन्तु इसका यही अभिप्राय

है कि जो जैसा कर्म करै वह वैसा ही फल पावै, ऐसी ईश्वर की आज्ञा है।

**यथर्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये।**
**स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः॥**

—यह मनु [१.३०] का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि जैसे वसन्तादिक ऋतुओं के लिंग अर्थात् शीतोष्णादिक ऋतुओं में प्राप्त होते हैं, वैसे सब जीव अपने-अपने किए कर्मों को प्राप्त होते हैं॥ १॥

जो पुरुष ईश्वर की उपासना न करेगा, वह महाकृतघ्न होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

**प्रश्न**—जीव जब विद्यादिक शुद्ध गुण और योगाभ्यास से अणिमादिक सिद्धिवाला होता है, उसी को ईश्वर मानना चाहिए, उससे भिन्न स्वतन्त्र ईश्वर मानने का कुछ प्रयोजन नहीं। वही सिद्ध जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, धारण और प्रलय करेगा। इससे सनातन ईश्वर कोई नहीं, किन्तु साधनों से ईश्वर बहुत हो जाते हैं।

**उत्तर**—इनसे पूछना चाहिए कि जब जीव, जीव का शरीर, इन्द्रियां और पृथिव्यादिक तत्त्वों को कोई रचेगा, तब तो विद्यादिक गुण और योगाभ्यास से कोई जीव सिद्ध होगा। जो वे ऐसा कहैं कि जन्म ही से कोई सिद्ध हो जायगा, तो उनकी कही 'साधनों से सिद्ध होता है', यह बात मिथ्या हो जायगी। और साधनों से विना सिद्ध होवै, तो सब जीव सिद्ध क्यों नहीं होते। इससे यह बात उनकी मिथ्या हो गई। सदा सनातन सिद्ध सब ऐश्वर्य वाला साधनों से विना स्वतः प्रकाशस्वरूप ईश्वर है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

**प्रश्न**—जीव कर्म करते हैं और ईश्वर कराता है, क्योंकि ईश्वर की सत्ता के विना एक पत्ता भी नहीं चल सकता। इससे ईश्वर के सहाय से जीव कर्मों को करता है, आप से आप कुछ करने को समर्थ नहीं।

**उत्तर**—जीव आप ही आप स्वतन्त्र कर्मों को करता है, ईश्वर कुछ नहीं कराता। क्योंकि जो ईश्वर कराते तो जीव कभी पाप नहीं करता, सो



जीव पुण्य और पाप करता ही है इससे ईश्वर नहीं कराता और जो ईश्वर कराता तो जीव से ईश्वर को अधिक पाप होता। जैसे एक मनुष्य चोरी करता है और दूसरा कराता है, इसमें करने वाले से कराने वाले को पाप अधिक होता है, क्योंकि यह प्रेरणा उसको नहीं करता तो वह चोरी कभी न करता। सो एक प्रेरणा करने वाला अनेक मनुष्यों को चोर बना देता है। इससे उसको अधिक पाप होता है। इस वास्ते ईश्वर कभी नहीं कराता और जो ईश्वर कराता तो जीव काठ की पुतली की नांई होता, जैसे उसको नचावै, वैसा नाचे। फिर भी वही परतन्त्रता में जो दोष कहा, सोई आ जाता। इससे ईश्वर सब जगत् का करने वाला होता है परन्तु जीवों के कर्मों को करने वा कराने वाला नहीं।

**प्रश्न**—जो ईश्वर जीवों को न रचता, तो जीव क्यों पाप करते और दुःख भी क्यों भोगते। जैसे कि किसी ने कूंआ खोदा, उसमें कोई मनुष्य भी गिर पड़ता है, जो वह कूंआ न खोदता, तो कोई न गिरता। वैसे ईश्वर जीवों को न रचता, तो जीव क्यों पाप करते।

**उत्तर**—ऐसा न कहना चाहिए, क्योंकि जो कोई राजा भृत्यों को रखता है और पुत्रों को मनुष्य उत्पादन करता है वा गुरु शिष्यों को शिक्षा करता है, सो सब इसी वास्ते करते हैं कि सब धर्म की रक्षा और धर्माचरण करैं, पाप करने का अभिप्राय इनका नहीं। और जैसे बालक वा भृत्य के हाथ में लकड़ी, शिक्षा वा शस्त्र देते हैं, सो अपने शरीर की और स्वामी की आज्ञा तथा धर्म की रक्षा के वास्ते देते हैं। ऐसा अभिप्राय उनका नहीं है कि उनसे आप अपने ही को मार के मर जाय। वैसे ही परमेश्वर ने जीव रचे हैं सो केवल धर्माचरण और मुक्त्यादिक सुख के वास्ते रचे हैं। और जो जीव पाप करता है, सो अपनी मूर्खता ही से करता है, वैसा ही दुःख भोगता है। हस्तादिक जीवों के वास्ते इन्द्रिय रची हैं, सो केवल जीवों के व्यवहार सिद्ध होवैं और उनसे सब सुख कार्यों को करैं। इनमें से कोई अपने हाथ से अपनी आंख निकाल लेता है वा अपना गला काट देता है, सो केवल अपनी मूढ़ता से करता है, माता-पितादिकों का वैसा अभिप्राय नहीं। इससे वह प्रश्न अच्छा नहीं।

**प्रश्न**—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं?

**उत्तर**—सर्वशक्तिमान् है।

**प्रश्न**—जो सर्वशक्तिमान् होय, तो अपना नाश भी ईश्वर कर सकता है वा नहीं।

**उत्तर**—ईश्वर अविनाशी पदार्थ है, अत्यन्त सूक्ष्म, जिसका किसी प्रकार वा शस्त्र से नाश नहीं हो सकता, क्योंकि जिस पदार्थ का रूप और स्पर्श होवै, उसी का अग्नि, जल, वायु, अथवा शस्त्रों से नाश हो सकता है अन्यथा नहीं। नाश शब्द का यह अर्थ है कि अदर्शन अथवा कारण में मिल जाना, सो परमेश्वर कोई इन्द्रिय से दृश्य नहीं कि फिर अदर्शन उसको होय और इसका कोई कारण भी नहीं, जिसमें ईश्वर मिल जाय। इससे ईश्वर के नाश की शंका करनी भी अनुचित है। और ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, परन्तु उसकी शक्ति न्याय युक्त ही है, अन्याय युक्त नहीं। इससे ईश्वर सदा न्याय ही करता है कि अविनाशी पदार्थ को अविनाशी जानता है और उसके नाश की इच्छा नहीं करता। और जो विनाश वाला पदार्थ है उसका नाश न होवै, ऐसे भी इच्छा नहीं करता, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान निर्भ्रम है, जो जैसा पदार्थ है, उसको वैसा जानता और वैसा ही करता है।

**प्रश्न**—जो ईश्वर दयालु है तो न्यायकारी नहीं, और जो न्यायकारी है तो दयालु नहीं, क्योंकि न्याय उसका नाम है कि धर्म करना और पक्षपात का छोड़ना। इससे क्या आया कि दण्ड देने के योग्य को दण्ड देना और अदण्ड्य को कभी दण्ड न देना। सो जो दयालु होगा सो तो कभी दण्ड न दे सकेगा, क्योंकि दया नाम है करुणा और कृपा का सो सदा अन्य के सुख और उपकार में रहैगा। इससे ईश्वर को दयालु मानो, तो न्यायकारी मत मानो।

**उत्तर**—न्यायकारी का तो बहुत स्थानों में अर्थ कर दिया है और दयालु का भी, परन्तु न्याय और दयालु इन दोनों का थोड़ा सा भेद है। दण्ड का जो देना और जीवों की स्वतन्त्रता का रखना और सब पदार्थ बुद्ध्यादिकों का देना, सर्वज्ञ, सर्व पदार्थ की जिसमें यथार्थ पदार्थ विद्या



है उस वेद शास्त्र का प्रकाश करना, यह बड़ी ईश्वर की दया है कि जो जैसा कर्म करै वह वैसा ही फलपावै अर्थात् यथावत् जो दण्ड का देना है सो उसके और उससे भिन्न सब जीवों के ऊपर ईश्वर दया करता है कि कोई न पाप करै और न दुःख पावै। जैसे राजदण्ड है, सो केवल हम मनुष्यों के ऊपर दया का प्रकाश ही है, क्योंकि राजा का यह अभिप्राय होता है कि कोई अनर्थ में प्रवृत्त न होवै। जो हम दण्ड न देंगे तो सब मनुष्य अधर्म में प्रवृत्त हो जायेंगे, इससे अपराधी एक पुरुष के ऊपर अत्यन्त कठिन दण्ड देता है कि सब मनुष्य भय के होने से अधर्म में प्रवृत्त न होवैं। वैसा ही ईश्वर की सब जीवों के ऊपर दया है कि एक को दुःखी देख के अन्य पुरुष पाप में प्रवृत्त न होवैं। और फिर जीव को यहाँ तक अधिकार दिया है कि अणिमादिक सिद्धि, त्रिकालदर्शन और आप जीव ईश्वर संयोग से अनन्त सुख को पा सकता है कि कभी जिसको फिर दुःख न होवै, इससे ईश्वर न्यायकारी और दयालु है इसमें कुछ विरोध नहीं।

**प्रश्न**—ईश्वर सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी किस प्रकार से है?

**उत्तर**—देखना चाहिए कि जितने जीव हैं उनको तुल्य पदार्थ दिये हैं, पक्षपात किसी का भी नहीं किया और जैसी व्यवस्था न्याय से यथायोग्य करनी चाहिए, वैसी ही की है, इससे ईश्वर न्यायकारी है। जगत् में सूर्य्य, चन्द्र, पृथिव्यादिकभूत, वृक्षादिक स्थावर और मनुष्यादिक चर इनका रचना हम लोग देखके तथा धारण और प्रलय को देख के आश्चर्य, ईश्वर की अनन्त शक्ति को निश्चित जानते हैं, क्योंकि सर्वशक्तिमान् जो न होता तो सब प्रकार का विचित्र जगत् न रच सकता। इससे हमलोग जानते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

**प्रश्न**—ईश्वर विद्यावान् है वा नहीं?

**उत्तर**—ईश्वर में अनन्त विद्या है, क्योंकि जो विद्या न हो तो यथायोग्य जगत् की रचना को न जानता, जगत् की रचना यथा योग्य करने से पूर्ण विद्या ईश्वर में है।

**प्रश्न**—ईश्वर का जन्म होता है वा नहीं?

**उत्तर**—उसका जन्म कभी नहीं होता, क्योंकि जन्म लेने का प्रयोजन कुछ नहीं। जो समर्थ नहीं होता, सोई दूसरे का सहाय लेता है। जो सर्वशक्तिमान् है, उसको किसी के सहाय से कुछ प्रयोजन नहीं। आप ही सब कार्य को कर सकता है।

**प्रश्न**—राम, कृष्णादिक अवतार ईश्वर के भए हैं, यसूमसीह ईश्वर का पुत्र और महम्मद आदि पुरुषों को उपदेश करने के वास्ते भेजा, यह बात संसार में प्रसिद्ध है। अपने भक्तों के वास्ते शरीर धारण करके दर्शन दिया और नाना विधि लीला की कि जिस को गाके भक्त लोग तर जाते हैं। फिर आप कैसे कहते हो कि जन्म ईश्वर का नहीं होता।

**उत्तर**—यह बात युक्ति से विरुद्ध है और शास्त्र प्रमाण से भी, क्योंकि ईश्वर अनन्त है जिसका देश, काल और वस्तु से भेद नहीं है, एक रस है जिसका खण्ड कभी नहीं होता और आकाशादिक बड़े स्थूल पदार्थ भी परमेश्वर के सामने एक परमाणु के योग्य भी नहीं। और शरीर जो होता है सो शरीरी से स्थूल होता है जैसे घर में रहने वालों से घर बड़ा होता है। सो ईश्वर का शरीर किस पदार्थ से बन सकता है कि जिसमें ईश्वर निवास करै और जो किसी में निवास करेगा तो अनन्त न रहैगा, क्योंकि शरीर से शरीरी छोटा ही होता है। जब शरीर के सहाय से रावण वा कंसादिकों को मारै तथा उपदेश भी करै, विना शरीर से न कर सके, तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् ही नहीं और जो रावणादिकों को मारा चाहै और उपदेश करा चाहै तो सर्वव्यापी और अन्तर्यामी होने से एक क्षण में सब जगत् को मार डालै और उपदेश भी कर देवै तथा अपने भक्तों को प्रसन्न भी कर देवै। इससे ईश्वर की ईश्वरता यही है कि विना सहाय से सब कुछ कर सकता है। और जो सहाय के विना न कर सके, तो उसका सर्वशक्तिमत्त्व ही नष्ट हो जाय। इससे ईश्वर का कभी जन्म और किसी का सहाय लेता है ऐसी शंका करना व्यर्थ है।

**प्रश्न**—जैसे सब जगत् की उत्पत्ति होती है ईश्वर की भी उत्पत्ति किसी से होती होगी?

**उत्तर**—ईश्वर से कौन बड़ा पदार्थ है कि जिससे ईश्वर उत्पन्न होवै।



पहिले ही प्रश्न के उत्तर से इसका उत्तर हो गया। और जो उत्पन्न होता है उसको ईश्वर हम लोग नहीं मानते, किन्तु जिसकी उत्पत्ति कभी न होवै और सब संसार की जिससे उत्पत्ति होवै, उसी को वेदादिक सत्यशास्त्र और सज्जन लोग ईश्वर मानते हैं और को नहीं। जो कोई ईश्वर की भी उत्पत्ति मानता है, उसके मत में अनवस्था दोष आवैगा कि जैसे उसने ईश्वर की उत्पत्ति मानी फिर ईश्वर के पिता की भी उत्पत्ति मानना चाहिए और ईश्वर के पिता के पिता की भी उत्पत्ति माननी चाहिए, ऐसे ही आगे-आगे मानने से अनवस्था आ जायगी। अतः जिसकी वह उत्पत्ति न मानेगा, उसी को हम लोग ईश्वर कहते हैं, अन्य को नहीं।

**प्रश्न**—ईश्वर साकार है वा निराकार?

**उत्तर**—ईश्वर निराकार है, क्योंकि जो निराकार न होता तो सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सबका धारने वाला और सर्वान्तर्यामी और नित्य कभी न होता, इससे ईश्वर निराकार ही है।

**प्रश्न**—ईश्वर चेतन है अथवा जड़?

**उत्तर**—जो जड़ होता तो सब जगत् की रचना और ज्ञानादिक अनन्त गुण वाला कभी न होता, इससे ईश्वर चेतन ही है।

यह थोड़ा-सा ईश्वर के विषय में लिख दिया। इससे आगे वेद विषय में लिखा जायगा। उसी ईश्वर ने सर्वज्ञ सर्व विद्यायुक्त और सत्य-सत्य विचार सहित कृपा करके वेद शास्त्र सब जीवों के ज्ञानादिक उपकार के वास्ते रचा है।

**प्रश्न**—ईश्वर निराकार है, उसको मुख नहीं, फिर वेद का उच्चारण और रचना कैसे किया?

**उत्तर**—यह शंका असमर्थों में होती है कि विना मुख से मुख का काम न कर सकै। ईश्वर विना मुख से मुख का काम कर सकता है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। और जो ऐसा न मानेगा उसके मत में यह दोष आवैगा कि हाथ, पांव, आंख, शरीर और कान विना जगत् कैसे रचा। जैसे विना हाथ आदिक के सब जगत् को रचा तो वेद के रचने में कुछ शंका नहीं।

**प्रश्न**—ओष्ठादिक स्थानों का जिह्वा से वायु की प्रेरणा होने से अक्षर उच्चारण हो सकते हैं अन्यथा नहीं।

**उत्तर**—फिर भी वही दोष आवेगा कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् न होगा, क्योंकि ओष्ठादिक के स्पर्श और प्राण विना ईश्वर उच्चारण नहीं कर सकता तो ईश्वर पराधीन ही हुआ और हाथादिकों के विना ईश्वर ने जगत् भी न रचा होगा जैसा कि ओष्ठादिक स्थान और प्राण विना उच्चारण नहीं कर सकता। ऐसी शंका जीव में घट सकती है ईश्वर में नहीं।

**प्रश्न**—लेखनी, मसी इनसे ककारादिक अक्षर बनते हैं विना इनके नहीं, फिर ईश्वर ने कहाँ से कागद, लेखनी, मसी, छुरिका, चाकू और पटिया यह सामग्री पाई, जिससे सब अक्षर रचे।

**उत्तर**—यह बड़ी शंका आपने की कि ईश्वर को अनीश्वर ही बना दिया। अच्छा मैं आपसे पूछता हूँ कि नासिका, आंख, ओष्ठ, कान, नख, लोम, नाड़ी और उनका सन्धान तथा आकार विना सामग्री और साधन शरीर रच लिया तथा अक्षर भी रच लिए।

**प्रश्न**—फिर यह लिखी लिखाई पुस्तक संसार में कैसे आई और किन्होंने पाया, आकाश से गिरी वा पाताल से आ गई?

**उत्तर**—आपका शरीर, वृक्ष, पर्वत और इतनी बड़ी पृथिवी अन्तरिक्ष में कैसे आ गए जैसे ये आ गए वैसे पुस्तक भी आ गई, इसमें क्या आश्चर्य, कुछ भी नहीं। अग्नि, वायु और आदित्य सृष्टि के आदि में भये थे, उनने वेद पाये, उनसे ब्रह्मा ने पढ़ा, ब्रह्मा से विराट ने, विराट से मनु ने, मनु से दश प्रजापतियों ने पढ़े और उनसे प्रजा में फैल गये।

**प्रश्न**—अग्न्यादिकों ने ईश्वर से वेदों को कैसे पढ़े?

**उत्तर**—इसमें दो बात हैं। ईश्वर ने उनको आकाशवाणी की नांई सब शब्द, सब मन्त्र, उनके स्वर, अर्थ और सम्बन्ध भी सुना दिए। इससे वेदों का नाम श्रुति रक्खा है अथवा उनके हृदय में ईश्वर अन्तर्यामी है उसने उसी हृदय में वेदों का प्रकाश कर दिया फिर उनों ने अन्यों पर प्रकाश कर दिए।

**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदान् प्रहिणोति तस्मै।**



**तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥**

—यह वैदिक प्रमाण है।

इस का यह अभिप्राय है कि जो ईश्वर ब्रह्मादिक देव और सब जगत् का रचन कर्ता भया इससे पहिले ही वेदों को रच के ब्रह्मा को अग्न्यादि देव नाम हिरण्यगर्भादि द्वारा जना दिये क्योंकि विद्या के विना सब जीव अन्धे होते हैं, कुछ नहीं जान सकते, जैसे पशु। इससे परमेश्वर ने वेद का प्रकाश कर दिया, सब मनुष्यों को सब पदार्थ विद्या जानने के हेतु।

**प्रश्न**—ईश्वर ने उन देव अर्थात् विद्वानों के हृदय में प्रकाश वेदों का किया, सो लोगों ने बात बना ली है कि परमेश्वर ने वेद बनाए हैं, ऐसा हम लोग कहेंगे, तो वेदों में सब लोग श्रद्धा करेंगे और उनका प्रमाण भी करेंगे। परन्तु अनुमान से यह निश्चित जाना जाता है कि उन अग्न्यादिक देव विद्वानों ने ही वेद बना लिए हैं।

**उत्तर**—परमेश्वर ने आकाश से लेके क्षुद्र घास पर्यन्त जगत् को रच के प्रकाश कर दिया, और सर्वोत्कृष्ट सब पदार्थों का जिससे निश्चय होता है, उस विद्या को प्रकाश न करै तो यह परमेश्वर में दोष आता है कि परमेश्वर दयालु नहीं, और छली भी है, क्योंकि ऐसा अनुमान से जाना जायगा। अपनी विद्या का प्रकाश इस वास्ते नहीं किया कि सब जीव विद्या पढ़ने से ज्ञानी और सुखी हो जायेंगे फिर मुझको जानके अनन्त आनन्द युक्त भी हो जायेंगे, यह दोष परमेश्वर में आवेगा। जैसे कोई आजीविका विद्या से करता होय, सो कोई पण्डित न होवै ऐसी इच्छा करता है। जो कोई पण्डित होगा तो मेरी प्रतिष्ठा और आजीविका न्यून हो जायगी, ऐसा क्षुद्रबुद्धि से वह मनुष्य चाहता है। और जो सज्जन लोग हैं वे तो सदा विद्यादिक गुणों का प्रकाश किया करते हैं। सो परमेश्वर अपनी अनन्त विद्या का प्रकाश क्या न करेगा, किन्तु अवश्य ही करेगा, क्योंकि एक ओर जगत्, और एक ओर विद्या, इन दोनों में से भी विद्या अत्यन्त उत्तम है, सो ईश्वर क्या आजीविकाधीन और प्रतिष्ठा के लोभ से विद्या का प्रकाश न करेगा, किन्तु अवश्य ही करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं। और जो कोई ऐसा कहै कि पण्डितों ने वेद विद्या रच ली है, उनसे

पूछा जाता है कि वे विना शास्त्र के पढ़ने से पण्डित कैसे भए। और जो वे कहैं कि अपनी बुद्धि और विचार से हो गये, तो आज काल भी बुद्धि और विचार से हो जांय, सो विना विद्या के पढ़ने से कोई पण्डित नहीं होता, क्योंकि जब सृष्टि रची गई, उस समय कोई मनुष्य नहीं था विना परमेश्वर के। फिर वह अनुमान से जाना जाता है, वह अनुमान भी यथार्थ कभी न हो सकेगा। आज तक बहुत बुद्धिमान् पदार्थों का विचार करते हैं, सो किसी पदार्थ के गुण वा दोष जानते हैं, परन्तु इतने इसमें गुण हैं वा इतने ही दोष हैं, ऐसा निश्चय उनको नहीं होता। जितनी अपनी बुद्धि, उतना ही जानते हैं, अधिक नहीं। और परमेश्वर सब पदार्थों को यथावत् जानता है, सो अपना ज्ञान और विद्या क्या परमेश्वर गुप्त रक्खैगा। ऐसा ईर्ष्यावाला परमेश्वर हो गया कि सर्वज्ञ अपनी विद्या का प्रकाश न करै। किन्तु दयालु के होने से और ईर्ष्या, कपट, छलादि दोष रहित होने से अवश्य विद्या का प्रकाश करैगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

**प्रश्न**—वेद की आप परमेश्वर से उत्पत्ति मानते हो, जैसे जगत् की, सो जैसा जगत् अनित्य है, वैसा वेद भी अनित्य होगा।

**उत्तर**—वेद के पुस्तक और पठन पाठन जब तक जगत् रहैगा, तब तक वेद के पुस्तक और पठन पाठन भी रहैंगे। जब जगत् नष्ट होगा, उसके साथ ये तीन भी नष्ट होंगे, परन्तु वेद नष्ट न होंगे, क्योंकि वह विद्या परमेश्वर की है जैसे परमेश्वर नित्य है वैसे विद्यादिक गुण भी परमेश्वर के नित्य हैं।

**प्रश्न**—वेद की रचना कोई बुद्धिमान् हो सो रच सकता है, क्योंकि—

**वृतं शुद्धं सनातनं विजानीहि वृतं**
**ह वा देवानां देवऋषीणामृषिर्मुनीनाम्मुनिः।**

ऐसे और ह वा शब्द के रचने से वेद की जैसी संस्कृत वैसी मनुष्य पण्डित भी रच सकता है जैसा कि यह संस्कृत हमने रच लिया है, फिर आप कैसे वेद के रचने का असम्भव मानते हैं कि परमेश्वर विना वेद को कोई नहीं रच सकता।

**उत्तर**—हम लोग संस्कृत मात्र से वेद का निश्चय नहीं करते कि परमेश्वर ने रचा है, क्योंकि संस्कृत तो जैसा तैसा पण्डित भी रच सकता है, परन्तु परमेश्वर के गुण उस संस्कृत में नहीं देख पड़ते। जो मनुष्य होगा, सो अवश्य पक्षपात किसी स्थान में करैगा। और परमेश्वर पक्षपात किसी प्रकार से कभी न करैगा, क्योंकि परमेश्वर पूर्णानन्द और पूर्ण काम है। सो वेद में किसी प्रकार से एक अक्षर में भी पक्षपात देखने में नहीं आता। फिर देहधारी सब विद्याओं में यथावत् पूर्ण कभी नहीं होता, सो जब कोई पुस्तक रचेगा, तब जिस विद्या में निपुण होगा, उस विद्या की बात अच्छी प्रकार से लिखेगा, परन्तु जिस विद्या को नहीं जानता, उसका विषय जब आवेगा, तब कुछ नहीं लिख सकेगा, जो लिखेगा तो अन्यथा लिखेगा। और परमेश्वर सब विद्याओं के विषयों को यथावत् लिखेगा सो वेदों में सब विद्या यथावत् लिखी हैं। मनुष्य जब ग्रन्थ रचेगा उसमें कोई बुद्धिमान् होगा तो भी सूक्ष्म दोष आवेंगे कि धर्म का किसी प्रकार से खण्डन और अधर्म का मण्डन थोड़ा भी अवश्य आ जायगा। परमेश्वर के लिखने में धर्म का खण्डन वा अधर्म का मण्डन किसी प्रकार से लेशमात्र भी न आवेगा, सो वेद में ऐसा ही है। मनुष्य शब्द अर्थ और सम्बन्ध इनको जितनी बुद्धि उतना ही जानेगा, अधिक नहीं, सो वैसे ही शब्द अपने ग्रन्थ में लिखेगा, जिससे एक, दो, तीन, चार वा पांच प्रयोजन जैसे तैसे निकल सकें और परमेश्वर सर्वज्ञ के होने से शब्द, अर्थ और सम्बन्ध ऐसे रक्खेंगे कि जिनसे असंख्यात प्रयोजन और सब विद्या यथावत् आ जांय सो परमेश्वर का ऐसा समर्थ्य है, अन्य का नहीं। सो वैसे वेद ही हैं कि जिनसे असंख्यात प्रयोजन और सब विद्या निकलती हैं क्योंकि परमेश्वर ने सब विद्या युक्त वेदों को रचे हैं, इससे सब कार्य वेदों से सिद्ध होते हैं।

और वेदों के नाम लिख के गोपालतापिनी, रामतापिनी, कृष्णतापिनी और अल्लोपनिषदादिक मनुष्यों ने बहुत ग्रन्थ रच लिए हैं, परन्तु विद्वान् यथावत् विचार करके देखै तो उन ग्रन्थों में जैसी मनुष्यों की क्षुद्र बुद्धि वैसी ही क्षुद्रता देख पड़ती है। सो परमेश्वर और उनके वचनों में दिन और रात का जैसा भेद है, वैसा भेद देख पड़ता है।

**प्रश्न**—वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर का रचा है वा किसी देहधारी का?

**उत्तर**—वेद देहधारी का रचा कभी नहीं है किन्तु परमेश्वर ही ने रचा है। परन्तु वेद अपौरुषेय और पौरुषेय भी है क्योंकि पुरुष देहधारी जीव का नाम है और पूर्ण के होने से परमेश्वर का भी। अपौरुषेय तो इससे है कि कोई देहधारी जीव का रचा नहीं और पौरुषेय इस वास्ते है कि पूर्ण पुरुष जो परमेश्वर उसने रचा है इससे पौरुषेय भी है। और परमेश्वर की विद्या सनातन है, सोई वेद है, इससे भी वेद अपौरुषेय है, क्योंकि परमेश्वर की विद्या जो वेद उसकी उत्पत्ति वा नाश कभी नहीं होता, परन्तु पुस्तक, पठन और पाठन इन तीनों का जगत् के प्रलय में प्रलय हो जाता है। वेद ईश्वर में नित्य रहते हैं, इससे वेद का नाश कभी नहीं होता।

**प्रश्न**—जैसे वेद ईश्वर से उत्पन्न होता है वैसा जगत् भी ईश्वर से उत्पन्न होता है, जैसा जगत् विनश्वर है वैसा वेद भी विनश्वर है। और जो वेद नित्य होगा तो जगत् भी नित्य होगा।

**उत्तर**—जगत् जो है सो प्रकृति, परमाणु और उनके परस्पर मिलाने से परमेश्वर से उत्पन्न भया है सो कभी कारण जो परमेश्वर उसमें कार्य रूप जगत् नष्ट हो जायगा। परन्तु वेद, जगत् जैसा कार्य है वैसा नहीं, क्योंकि वेद तो परमेश्वर की विद्या है, सो जो नाश हो जाय तो परमेश्वर विद्याहीन होने से अविद्वान् ही हो जाय। सो परमेश्वर अविद्वान् कभी नहीं होता, सदा पूर्ण ज्ञान और पूर्ण विद्यावाला रहता है। सो जैसा क्रम परमेश्वर की विद्या में है, वैसा ही क्रम शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, मन्त्र और संहिता अर्थात् पूर्वापर मन्त्रों का सम्बन्ध जो मन्त्र जिससे पूर्व वा पीछे लिखना चाहिए सो सब परमेश्वर ही ने रक्खे हैं। इससे कुछ सन्देह नहीं। जैसा जगत् का संयोग वा वियोग होता है, वैसा वेद विद्या का संयोग वा वियोग कभी नहीं होता, क्योंकि परमेश्वर और परमेश्वर के विद्यादिक सब गुण भी नित्य हैं, इससे वेद विद्या नित्य ही है। जो ऐसा न मानेगा, उसके मत में अनवस्था दोष आवेगा कि कोई विद्या पुस्तक स्वयंभू और



ईश्वर का रचा नहीं मानेगा तो सब पुस्तकों के सत्य वा असत्य का निश्चय कैसे करेगा? क्योंकि एक पुस्तक स्वतः प्रमाण रहेगा और उसके प्रमाण से वा अप्रमाण से सत्य वा मिथ्या पुस्तक का निश्चय हो सकता है और जो कोई पुस्तक स्वतः प्रमाण ही न होगा तो कोई पुस्तक का निश्चय नहीं हो सकेगा, क्योंकि एक मनुष्य ने अपनी बुद्धि की कल्पना से पुस्तक रचा, दूसरे ने उसका अपनी बुद्धि से खण्डन कर दिया, दूसरे का तीसरे ने, तीसरे का चौथे ने, ऐसे ही किसी पुस्तक का प्रमाण न होगा। फिर अनवस्था भ्रम के होने से सदा रहैगी। इससे वेद पुस्तक स्वतः प्रमाण होने से परमेश्वर ही का रचा है, अन्यथा नहीं, क्योंकि ऐसी सुगम संस्कृत ललित पद सत्यार्थ युक्त अनेक प्रयोजन और अनेक विद्यासहित स्वल्प अक्षर सुगम वेद ही की पुस्तक है अन्य नहीं। और जगत् के किसी पदार्थ का कुछ निश्चय मनुष्य अपनी बुद्धि से कर सकता है, परन्तु ईश्वर स्वरूप और उनके न्यायकारित्वादिक अनन्त गुण वेद पुस्तक में जैसे लिखे हैं वैसा लेख कोई संस्कृत वा भाषा पुस्तक में नहीं, क्योंकि किसी की वैसी बुद्धि नहीं हो सकती कि परमेश्वर का स्वरूप और यथावत् गुण लिख सकै, सो ऐसा ही जानना चाहिए कि हमलोगों पर अत्यन्त कृपा से परमेश्वर ने अपना स्वरूप और अपने सत्यगुण वेद पुस्तक में प्रकाश कर दिए हैं जिससे कि हम लोग भी परमेश्वर का स्वरूप और गुण वेद पुस्तक से जान के अत्यन्त आनन्दयुक्त होते हैं। सो पक्षपात को छोड़ के यथावत् विद्यायुक्त पुरुष अत्यन्त वेदार्थ का विचार करैगा, सोई अनन्त सुख को पावेगा, अन्यथा नहीं।

**प्रश्न**—ऐसे ही सब मनुष्य एक-एक पुस्तक को परमेश्वर की मानते हैं जैसे कि वाइविल्, इञ्जील और कुरान् वैसे आपलोगों को भी वेद में आग्रह है जिससे कि अत्यन्त स्तुति करते हैं जो वेद परमेश्वर का रचा होगा तो वे पुस्तक परमेश्वर के रचे क्यों नहीं। इसमें क्या प्रमाण है कि वेद ही ईश्वर का रचा है और अन्य पुस्तक नहीं?

**उत्तर**—सब मनुष्यों का प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि सब मनुष्य पूर्ण विद्यावाले आप्त और पक्षपात रहित नहीं होते, जिससे कि सब

मनुष्यों के कहने का प्रमाण हो जाय। जो आप्त और पक्षपात रहित होवैं, उन्हीं का प्रमाण करना योग्य है, अन्य का नहीं, क्योंकि जो मूर्खों का हम लोग प्रमाण करैं, तो बड़ा भारी दोष आ जायगा। वे अन्यथा भाषण करते हैं और अन्यथा कर्म भी करते हैं, इससे आप्तलोगों का प्रमाण करना चाहिए। और वेद के सामने इञ्जील और कुरानादि की कुछ गणना ही नहीं हो सकती, किन्तु उनमें विद्या की बात तो कुछ नहीं है, जैसी कि कहानी होय वैसे वे पुस्तक हैं।

**प्रश्न**—आप्त का निश्चय कैसे हो सकता है? वेदवाले कहते हैं कि हमारी बात सत्य है अन्य लोग कहते हैं कि हम लोगों की बात सत्य है। इसमें क्या प्रमाण है कि यही बात सत्य है अन्य नहीं?

**उत्तर**—इसका समाधान तृतीय समुल्लास में कह दिया है कि ऐसा लक्षण वाला आप्त होता है और प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से सत्य वा असत्य का यथावत् निश्चय भी होता है। उनमें निश्चय करके सत्य को मानना चाहिए, असत्य को नहीं।

**प्रश्न**—वेद किसी देश विशेष और भिन्न देश में रहने वाले मनुष्यों के हेतु हैं वा सब मनुष्यों के हेतु हैं?

**उत्तर**—वेद सब मनुष्यों के वास्ते हैं क्योंकि जो विद्या और सत्य बात होती है, सो सबके हेतु होती है। और वेद में कहीं नहीं लिखा कि इस देश वा उन मनुष्यों के हेतु वेद बनाया गया, और अधिकार भी इनका है, और इनका नहीं। जैसे कि बाविल, मूसा और इसराईल कुलादिकों के वास्ते पुस्तक आई और मुहम्मदादिकों के हेतु कुरान्, यह बात मनुष्यों की होती है, अपने देश वाले के ऊपर प्रीति और अन्य के ऊपर नहीं। जो ईश्वर का वचन सो तो सर्वज्ञ और सब जगत् का स्वामी है, इससे तुल्य कृपा और तुल्य दृष्टि ही रक्खैगा, अन्यथा नहीं। ऐसा पुस्तक वेद का ही है, अन्य नहीं, क्योंकि अन्य पुस्तकों में ऐसी विद्या नहीं और कहानी की नांई उनमें कथा है और पक्षपात बहुत से हैं। इससे वेद पुस्तक ही ईश्वर कृत है, अन्य नहीं। इसमें किसी को जो सन्देह होय तो पक्षपात को छोड़ के तीनों पुस्तकों का विद्या, प्रीति और सज्जनता से विचार करैं। तब यही



निश्चय होगा कि वेद पुस्तक ही ईश्वर कृत है, अन्य नहीं।

**प्रश्न**—वेदों का सब मनुष्यों को पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार है वा नहीं?

**उत्तर**—इसका विचार तृतीय समुल्लास में वर्ण व्यवस्था के कथन में किया गया है, वहीं जान लेना। इस प्रकार से वहाँ लिखा है कि जो मूर्ख है वह शूद्र है, उसका पढ़ना वा उसको पढ़ाना व्यर्थ है, क्योंकि उसको बुद्धि के नहीं होने से कुछ विद्या नहीं आयेगी। अन्य व्यवस्था चतुर्थ समुल्लास में देख लेना।

**प्रश्न**—शूद्रादिकों का वेद सुनने का अधिकार है वा नहीं?

**उत्तर**—जिसको कान इन्द्रिय है और उसके समीप जो शब्द होगा, उसको अवश्य सुनेगा। सो वेद का शब्द अथवा अन्य शब्द होवै, वह सबको सुनेगा। परन्तु शूद्र मूर्ख होने से सुन के भी कुछ न कर सकेगा। इस हेतु जहाँ-तहाँ निषेध लिखा है कि शूद्र को वेद न पढ़ाना चाहिए कि उसको कुछ आना नहीं।

**प्रश्न**—वेद व्यास जी ने वेद रचे हैं, इससे उनका नाम वेद व्यास पड़ा है। यह बात भागवत में लिखी है, फिर आप कैसी बात कहते हैं कि वेद ईश्वर ने रचे हैं?

**उत्तर**—यह बात अत्यन्त मिथ्या है, क्योंकि व्यास जी ने भी वेद पढ़े थे और अपने पुत्र शुकदेवादिकों को पढ़ाये थे और उनका पिता पराशर, उसका पितामह शक्ति और प्रपितामह वशिष्ठ, ब्रह्मा और बृहस्पत्यादिकों ने भी पढ़े थे। जो व्यास के बनाये वेद होते तो वे कैसे पढ़ते क्योंकि व्यास जी तो बहुत पीछे भये हैं। और जो उनका नाम वेदव्यास पड़ा है सो इस रीति से पड़ा है कि—

**वेदेषु व्यासो विस्तारो नाम विस्तृता बुद्धिर्यस्य स वेदव्यासः॥**

व्यास जी ने वेदों को पढ़के और [को] पढ़ाये हैं, जिससे सब जगत् में वेद का पठन और पाठन फैल गया और उनकी बुद्धि वेदों में विशाल थी कि यथावत् शब्द, अर्थ और सम्बन्ध से वेदों को जानते थे, इससे इनका नाम वेदव्यास रक्खा गया। पहिले इनका नाम जन्म का कृष्णद्वैपायन

था। वेदव्यास नाम विद्या के गुण से भया है इससे भागवत में जो बात लिखी है, सो वेदों की निन्दा के हेतु लिखी है। उसका यह अभिप्राय था वेदों की निन्दा में, कि जिसने वेद रचे हैं, उसी ने भागवत भी रचा और वेदों के पढ़ने से व्यास जी को शान्ति भी न भई, किन्तु भागवत के रचने से उनको शान्ति भई और भागवत वेदों का फल है, अर्थात् वेदों से भी उत्तम है। सो यह बात दुर्बुद्धि जो बोपदास उसकी कही है, क्योंकि व्यास जी के नाम से उसने सब भागवत रचा है। इस हेतु कि व्यास जी के नाम लिखने से सब लोग प्रमाण करैं और वेदों की निन्दा से मेरे ग्रन्थ की प्रवृत्ति के होने से सम्प्रदाय की वृद्धि और धन का लाभ होय। इससे सज्जन लोग इस बात को मिथ्या ही मानैं।

**प्रश्न**—वेद ईश्वर ने संस्कृत भाषा में क्यों रचे? क्या ईश्वर की भाषा संस्कृत ही है? जो देश भाषा में रचते तो सब मनुष्य परिश्रम के विना वेदों को समझ लेते। और संस्कृत जानने के हेतु व्याकरणादिक सामग्री पढ़नी चाहिए। इसके विना वेदों का अर्थ कभी मालूम न होगा।

**उत्तर**—संस्कृत में इस हेतु वेद रचे गये हैं कि छोटे पुस्तक में सब विद्या आ जायं और जो भाषा में रचते तो बड़े-बड़े ग्रन्थ हो जाते और एक देश का ही उपकार होता, सब देशों का नहीं। और जितनी देश भाषा हैं, उनमें रचते तब तो पुस्तकों का पारावार ही न होता। इससे ईश्वर ने सर्वज्ञ भाषा में वेद रचे हैं कि किसी देश की भाषा न रहै और सब भाषा जिससे निकलै, क्योंकि संस्कृत किसी एक देश की भाषा नहीं। जैसे ईश्वर किसी एक देश का नहीं, किन्तु सब देशों के स्वामी हैं। वैसी ही संस्कृत भाषा है कि किसी एकदेश की नहीं।

**प्रश्न**—देवलोग और आर्यावर्त्त देश की प्रथम भाषा संस्कृत थी। इसी को मुसलमान लोग जिन्न भाषा कहते हैं क्योंकि जैसी प्रवृत्ति संस्कृत की पहिले आर्यावर्त्त में थी, वैसी किसी देश में न थी। जिस देश में कुछ प्रवृत्ति भई होगी, सो आर्यावर्त्त से ही भई होगी। अब भी आर्यावर्त्त में अन्य देशों से संस्कृत की अधिक प्रवृत्ति है। इससे यह निश्चय होता है कि संस्कृत भाषा आर्यावर्त्त की मुख्य भाषा थी।



**उत्तर**—यह देव लोग की भाषा नहीं क्योंकि—

**बृहस्पतिः प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्येता।**

—यह महाभाष्य का वचन है।

इन्द्र ने बृहस्पति से संस्कृत भाषा पढ़ी और बृहस्पति ने अङ्गिरा प्रजापति से, उनने मनु से, मनु ने विराट से, विराट् ने ब्रह्मा से ब्रह्मा ने हिरण्यगर्भादिक देवों से, उनने ईश्वर से, जो देवलोग की भाषा होती तो वे क्यों पढ़ते और पढ़ाते। क्योंकि देश भाषा तो व्यवहार से परस्पर आ जाती है। इससे देवलोग की संस्कृत भाषा नहीं। और जब ब्रह्मादिकों की भाषा नहीं, तो आर्यावर्त्त देशवालों की कैसी होगी कभी नहीं। परन्तु ऐसा जाना जाता है कि आर्यावर्त्त देश में पहिले प्रवृत्ति अधिक थी। सब ऋषि मुनि और राजा लोग आर्य्यावर्त देशवासी लोगों ने परम्परा से संस्कृत पढ़ा और पढ़ाया है। इससे आर्यावर्त्त देश की भी संस्कृत भाषा नहीं। और जो मुसलमान लोग इसको जिन्न भाषा कहते हैं सो तो केवल ईर्ष्या से कहते हैं। जैसे कि आर्यावर्त देशवासियों का नाम हिन्दू रख दिया, सो यह संस्कृत जिन्न भाषा भी नहीं, क्योंकि जिन्न तो भूत-प्रेत-पिशाचों का ही नाम है। भूत, प्रेत और पिशाच होते ही नहीं और जो होते होंगे तो लोक-लोकान्तर में होते होंगे यहाँ नहीं। फिर उनकी भाषा यहाँ कैसे आ सकेगी। इससे यह बात अत्यन्त मिथ्या है क्योंकि उनको ऐसी पदार्थ विद्या और धर्माधर्म विवेक की बुद्धि ही नहीं। फिर ये संस्कृत विद्या सर्वोत्तम को कैसे कह सकते वा रच सकते हैं और रचते होते तो अन्य देशों में भी रच लेते तथा किसी पुरुष से अब भी कहते। इससे ऐसी बात सज्जन लोगों को न मानना चाहिए।

**प्रश्न**—देश भाषा भिन्न-भिन्न सब कैसे बन गई और किससे बनी?

**उत्तर**—सब देश भाषाओं का मूल संस्कृत है क्योंकि संस्कृत जब बिगड़ता है तब अपभ्रंश कहाता है फिर अपभ्रंश से देश भाषा होती है। जैसे कि घट शब्द से घड़ा, घृत शब्द से घी, दुग्ध शब्द से दूध, नवनीत शब्द से नैनू, अक्षि शब्द से आँख, कर्ण शब्द से कान, नासिका शब्द से नाक, जिह्वा शब्द से जीभ, मातर शब्द से मादर, यूयं शब्द से यू, वयं शब्द

से वी, गूढ़ शब्द का गोड इत्यादिक जान लेना। और एक पदार्थ के बहुत नाम हैं जैसे कि गौः नाम गाय, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा, क्षोणी, क्षिति, अवनी, उर्वी, पृथ्वी, मही, रिपः, अदितिः, इडा, निर्ऋतिः, भूः, भूमिः, पूषाः, गातुः, गोत्रा, ये २१ पृथिवी के नाम हैं। सो भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न २१ नामों में से भिन्न-भिन्न का अपभ्रंश होने से भिन्न-भिन्न भाषा बन जाती है। और एक नाम बहुत अर्थों का होता है। जैसे कि सिंह, वानर, घोड़ा, सूर्य्य, मनुष्य, देव और चोर इत्यादिक का नाम हरि है। इससे भी भिन्न-भिन्न देश में भिन्न-भिन्न भाषा होती है क्योंकि किसी देश में सिंह नाम से उस पशु का व्यवहार किया, किसी देश में हरि शब्द से वानर का ग्रहण किया, किसी देश में हरि शब्द से घोड़े को लिया, किसी देश में हरि शब्द से सूर्य्य को लिया, किसी देश में हरि शब्द से चोर को लिया, इस हेतु देशभाषा भिन्न-भिन्न हो गई और मनुष्यों के उच्चारण भेद से भी भिन्न-भिन्न भाषा हो जाती है। जैसे कि ज्ञ् यह दोनों अकार में मिलने से अक्षर यह ज्ञ होता है सो आजकाल इसका लेख ऐसा हो गया है **ज्ञ**। इस एक अक्षर के अन्यथा उच्चारण से तीन भेद हो गये हैं। गुजराती लोग **गकार** और **नकार** का उच्चारण करते हैं। महाराष्ट्रादिक दाक्षिणात्य लोग **द** और **नकार** का उच्चारण करते हैं और अन्य लोग **गकार** और **यकार** का उच्चारण करते हैं तथा तालव्य **श** मूर्द्धन्य **ष** और दन्त्य **स** इन तीनों के स्थान में बंगाली लोग **तालव्य शकार** का उच्चारण करते हैं। मध्य और पश्चिम देशवाले तीनों के स्थान में **दन्त्य सकार** का उच्चारण करते हैं। तथा किसी की जीभ कठिन होती है, वह प्रायः शब्दों को अन्यथा उच्चारण करता है। और जिस देश में विद्या का लेश भी न होय, उस देश में सङ्केत व्यवहार करने के हेतु शब्दों का संकेत कर लेते हैं कि इस शब्द से इसको जानना और इस शब्द से इसको जानना। जैसे दाक्षिणात्य लोगों ने घी का नाम तूप रख लिया और उत्तर देश पर्वत वासियों ने घी का नाम चोखा रख लिया। और गुजरातियों ने चावल का नाम चोखा रख लिया। इससे भी देश देशान्तर की भाषा भिन्न-भिन्न हो गई है। इसी प्रकार से अन्य कारणों को भी विचार लेना।



**प्रश्न**—वेद में अश्वमेधादिक यज्ञों की क्रिया जो लिखी है सो जैसी बालकों की बात होय कुछ बुद्धिमानपने की नहीं दीखती, क्योंकि घोड़े को सब जगह में फिराते हैं। उसको कोई जो बांध ले उससे फिर युद्ध करते हैं। सो व्यर्थ युद्ध बना लेते हैं। मित्र से भी ऐसी बात से वैर हो जाता है। इत्यादिक ऐसी-ऐसी बुरी बात जिसमें लिखी हैं। वह वेद ईश्वर का बनाया कभी न होगा?

**उत्तर**—ये सब बात मिथ्या हैं, वेद में एक भी नहीं लिखी हैं किन्तु

लोगों ने कहानी बना ली है।

**प्रश्न**—ईश्वर ने ऐसा क्यों नहीं किया कि विना पढ़ने और सुनने से सब मनुष्यों को वेद यथावत् आ जाते तब तो ईश्वर की दयालुता जान पड़ती, अन्यथा क्या दयालुता कि बड़े परिश्रम से वेद के अर्थों को मनुष्य लोग जानते हैं।

**उत्तर**—फिर भी स्वतन्त्रता हानि दोष आ जाता, क्योंकि परमेश्वर की प्रेरणा से वेद उनको आ जायं, अपने परिश्रम और स्वतन्त्रता से नहीं और जो परिश्रम विना पदार्थ मिलता है, उसमें प्रसन्नता भी नहीं होती। विना परिश्रम कुछ भी काम नहीं होता। जैसे कि खाना-पीना, उठना-बैठना, कहना-सुनना, आना और जाना इत्यादिक परिश्रम से ही होते हैं, अन्यथा नहीं। परिश्रम के विना कुछ नहीं होता और इतनी बड़ी जो पदार्थ विद्या सो कैसे होगी। जीव को कान आदि इन्द्रिय, बुद्धि और प्राण कहने और सुनने का सामर्थ्य भी दिया है और विद्या का प्रकाश भी कर दिया है। इससे ईश्वर दया रहित कभी नहीं होते। और जीव को जो स्वतन्त्र रख दिया है, यह बड़ी दया ईश्वर की है। और कोई भी नई शंका करै उसका समाधान और बुद्धिमान् लोग विचार के देवैं।

ईश्वर और वेद के विषय में संक्षेप से कुछ थोड़ा सा लिख दिया और जो विस्तार से देखा चाहै, सो वेदादिक सत्यशास्त्रों में देख लेवैं।

इसके आगे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के विषय में लिखा जायगा॥

# अष्टम उपदेश

## [ जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलय ]

**ब्रह्मविदाप्नोति परं तदेषाभ्युक्ता सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता सोऽश्नुते सर्वान् कामान् ब्रह्मणा**



**सह विपश्चितेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥४॥** —तैत्तिरीय शाखा की श्रुति है।

**सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति॥** —यह छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति है।

**नासदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्रजो न व्योमा परो यत्।**
**किमावरीवः कुहकस्य शर्मण्यम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥**
—यह ऋग्वेद [८.७.१७.१] की श्रुति है।

**आत्मा वा इदमग्र आसीन्नान्यत् किंचन्मिषत्।**
**स ईक्षत लोकानु सृजा इति॥** —यह ऐतरेय ब्राह्मण की श्रुति है।

इत्यादिक वेदादि की श्रुतियों से यह निश्चित जाना जाता है कि एक अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर ही सनातन था और जगत् लेशमात्र भी नहीं था। उसने सब जगत् को रचा। सो इन मंत्रों में जितने नाम हैं, वे सब परमेश्वर के ही हैं। इनका अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है, वहाँ देख लेना। उस परब्रह्म को जो मनुष्य जानता है, उस अनन्त पंडित परमेश्वर के साथ मिलके उसके सब काम पूर्ण हो जाते हैं। वह परमेश्वर एक अद्वितीय था, दूसरा कोई नहीं। उसने जगदुत्पत्ति की इच्छा करी कि बहुत प्रकार की प्रजा को मैं उत्पन्न करूँ। उसी क्षण में नाना प्रकार की सब प्रजा उत्पन्न हो गई। सो इस क्रम से पहले आकाश को उत्पन्न किया कि जो सब जगत् का निवास करने का स्थान, सो आकाश अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है जो कि अनुमान से भी कठिनता से समझने में आता है। उससे स्थूल द्विगुण वायु उत्पन्न भया। उससे अग्नि त्रिगुण भया, त्रिगुण अग्नि से चतुर्गुण जल भया और जल से पंचगुण भूमि भई। भूमि से औषधि, औषधियों से वीर्य, वीर्य से शरीर। इस प्रकार आकाश से लेके तृण पर्यन्त परमेश्वर से सृष्टि रच ली। सो शब्द और संख्यादिक गुण वाला आकाश रचा, फिर वायु आदिक चारों के परमाणु रचे, परमाणु साठ मिला के एक अणु रचा, दो अणु से एकद्व्यणुक और तीन द्व्यणुक से एक त्रसरेणु और

अनेक त्रसरेणु को मिला के यह जो देख पड़ता है, सब जगत्, इसको रच दिया।

**प्रश्न**—परमेश्वर को क्या प्रयोजन था कि जगत् को रचा?

**उत्तर**—इससे पूंछना चाहिये कि प्रयोजन क्या कहाता है।

**यमर्थमधिकृत्य प्रवर्त्तते तत्प्रयोजनम्।**

—यह गोतम मुनि जी का सूत्र है।

इसका यह अभिप्राय यह है कि जिस पदार्थ को अधिक मान के जीव प्रवृत्त होवै, उसको कहना प्रयोजन। सो परमेश्वर पूर्ण काम है, उसको कोई प्रयोजन अधिक नहीं है, क्योंकि उससे कोई पदार्थ उत्तम वा अप्राप्त नहीं, फिर प्रयोजन का जो प्रश्न करना सो अयुक्त है।

**प्रश्न**—जगत् के रचने की इच्छा किई सोई विना प्रयोजन से इच्छा नहीं हो सकती?

**उत्तर**—इच्छा के जगत् में तीन कारण देख पड़ते हैं। पदार्थ की अप्राप्ति और वह उत्तम होवै तथा अपने से भिन्न होवै। परमेश्वर में तीनों में से एक भी नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान् के होने से कोई पदार्थ की अप्राप्ति कभी नहीं होती, तब परमेश्वर से कोई पदार्थ उत्तम भी नहीं और सर्वव्यापक के होने से अत्यन्त भिन्न कोई पदार्थ नहीं, इससे इच्छा की घटना ईश्वर में नहीं हो सकती।

**प्रश्न**—जगत् रचने की प्रवृत्ति विना प्रयोजन वा इच्छा के कभी नहीं हो सकती?

**उत्तर**—अच्छा, इच्छा तो नहीं बन सकती तथा प्रयोजन भी नहीं बन सकता। परन्तु इच्छा और प्रयोजन मानो तो जगत् का होना वही इच्छा और प्रयोजन मान लेओ। इससे भिन्न इच्छा वा प्रयोजन कोई नहीं, क्योंकि जो ऐसा मानैं कि अपने आनन्द के वास्ते जगत् को रचा। उससे हमलोग पूछते हैं कि जब तक जगत् नहीं रचा था, तब परमेश्वर क्या दु:खी था जो कि आनन्द के वास्ते जगत् को रचा। सो दु:ख का परमेश्वर में लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं। जो आप ऐसे पूछने में आग्रह करैं कि जगत् के रचने में और भी कुछ प्रयोजन होगा तो आपसे मैं पूछता हूँ कि जगत्



के नहीं रचने में क्या प्रयोजन है? जो आप कहैं कि जगत् के रचने में जगत् की लीला देखने से आनन्द होता होगा और जगत् के जीव भक्ति करैं, तो जब तक जगत् की लीला नहीं देखी थी और जगत् के जीव भक्ति भी नहीं करते थे, तब परमेश्वर अवश्य दु:खी होगा। इससे ऐसा प्रश्न व्यर्थ होता है, इसमें आग्रह नहीं करना चाहिये। रचना से ईश्वर के सामर्थ्य का सफल होना ही रचना का प्रयोजन है।

**प्रश्न**—ईश्वर ने जगत् रचा, सो जगत् रचने की सामग्री थी अथवा अपने में से ही जगत् रचा वा अपने ही सब जगत् रूप बन गया?

**उत्तर**—इसका विचार अवश्य करना चाहिये कि विना सामग्री से कोई पदार्थ नहीं बन सकता, क्योंकि कारण के विना किसी कार्य की उत्पत्ति हम लोग नहीं देखते, सो कारण तीन प्रकार का होता है। एक उपादान, दूसरा निमित्त और तीसरा साधारण। सो उपादान यह कहाता है कि किसी से कुछ लेके कोई पदार्थ बनाना, सो कार्य और कारण का इसमें कुछ भेद नहीं होता। दोनों एक ही रूप होते हैं। जैसे मट्टी को लेके घड़े को बना लेते हैं। कपास को लेके वस्त्र, सोने को लेके गहना, लोहे को लेके शस्त्र और काष्ठ को लेके किवाड़ आदिक। सो घड़ादिक जितने हैं वे मृत्तिकादिकों से भिन्न वस्तु नहीं हैं, किन्तु वही वस्तु है, इस प्रकार का उपादान कारण जानना। दूसरा निमित्त कारण जो कि उन कुलालादिक शिल्पी लोग नाना प्रकार के पदार्थों को रचने वाले, निमित्त कारण में जानना, क्योंकि मृत्तिकादिकों का ग्रहण करके अनेक पदार्थों को रचते हैं किन्तु अपने शरीर से पदार्थ लेके नहीं रचते, इससे ऐसा निमित्त कारण होता है कि जो पदार्थ बनावे, उससे भिन्न सदा रहै और उस पदार्थ को रचले। तीसरा साधारण कारण होता है, जैसा कि प्राण, काल, देश, चक्र और सूत्रादिक, क्योंकि ये सब कर्त्ता के आधीन और हेतु रहते हैं, इससे अवश्य विचार करना चाहिये [कि] परमेश्वर इस जगत् का तीनों कारणों में से कौन कारण है? अर्थात् तीनों कारण है। जो उपादान कारण होवै तो क्षुधा, तृषा, शीतोष्ण, भ्रम, जन्म और मरणादिक दोष ईश्वर में आ जायेंगे क्योंकि उपादन से उपादेय भिन्न नहीं हो सकता

अर्थात् ईश्वर से जगत् भिन्न नहीं होगा। इससे उक्त दोष अवश्य ही आवेंगे। इसमें जो कोई ऐसा कहै कि जैसे स्वप्नावस्था में मिथ्या पदार्थ अनेक देख पड़ते हैं और रज्जु में सर्प बुद्धि होती है, इत्यादिक सब कल्पित भ्रान्त पदार्थ हैं। उनसे वस्तु में कुछ दोष नहीं आ सकता। स्वप्न से जीव की कुछ हानि नहीं होती और सर्प से रज्जु की। उनसे पूंछना चाहिये सर्प की भ्रान्ति रज्जु में और स्वप्न में हर्ष शोकादिक दुःख किसको भये, जो वह कहे कि ब्रह्म को ही भये, फिर वह ब्रह्म शुद्ध नहीं रहा तथा ज्ञानस्वरूप नहीं रहा, क्योंकि भ्रम जो होता है सो अज्ञान से ही होता है, विना अज्ञान से नहीं। फिर वेदों में सर्वज्ञ सदा भ्रान्तिरहित ब्रह्म को लिखा है, उसकी क्या गति होगी तथा बन्ध मोक्षादिक दोष भी ब्रह्म में आ जायेंगे। जो वह कहे कि भ्रम से बन्ध और मोक्ष है वस्तु से नहीं। फिर भी नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव परमेश्वर को वेद में लिखा है, सो बात झूठी हो जायगी, यह बड़ा दोष होगा। और जो बद्ध होगा सो जगत् को कैसे रच सकेगा और जो मुक्त होगा सो जगत् रचने की इच्छा ही न करेगा। फिर परमेश्वर से जगत् कैसे बनेगा। और जो कोई केवल निमित्त कारण मानै तो जगत् का साक्षात् कर्ता नहीं होगा, किन्तु शिल्पीवत् होगा अथवा उस को महाशिल्पी कहो और उसके पास सामग्री भी अवश्य माननी चाहिये। फिर जो सामग्री मानेंगे तो जगत् भी नित्य होगा, क्योंकि जिससे जगत् बना है वह सामग्री ईश्वर के पास सदा रहती ही है। फिर एक अद्वितीय जगत् की उत्पत्ति के पहिले परमेश्वर था, जगत् लेशमात्र भी नहीं था, यह वेदादिक शास्त्रों का प्रमाणों से कहना वह व्यर्थ होगा, इससे निमित्त कारण मानने से भी यह दोष आवेगा और जो साधारण कारण मानैं तो भी जड़ पर आश्रित रचने में असमर्थ ईश्वर होगा और कुलालादिक के नाईं पराधीन होगा, जैसे कुलालादिक के विना घटादि कार्य्य पराधीन होते हैं क्योंकि जैसे चक्रादिक के विना कुलालादि घटादिक नहीं रच सकते हैं, फिर वह ईश्वर पराधीन होने से सर्वशक्तिमान् नहीं रहेगा क्योंकि कोई का सहाय किसी काम में न ले और अपनी शक्ति से सब कुछ करै उसको कहते हैं सर्वशक्तिमान्। सो साधारण कारण जब



माना जायगा तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर कभी न रहेगा, इससे तीनों प्रकार में दोष आते हैं।

इस वास्ते अत्यन्त विचार करना चाहिए जिसमें कि कोई दोष न आवै। इसमें यह विचार है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। जो सर्वशक्तिमान् होता है उसमें अनन्त सामर्थ्य सामग्री होती है। सो वह सामग्री स्वाभाविक है जैसा कि स्वाभाविक गुण गुणी का सम्बन्ध होता है। वह दूसरा पदार्थ नहीं है और एक भी नहीं। उस सामग्री से सब जगत् को परमेश्वर ने बनाया।

**प्रश्न**—जो गुण की नांई स्वाभाविक सामग्री है सो गुणी से भिन्न कभी नहीं होती, क्योंकि स्वाभाविक जो गुण है सो गुणी से भिन्न कभी नहीं होता। इससे क्या आया कि सामग्री सहित परमेश्वर जगत् रूप बन गया?

**उत्तर**—ऐसा न कहना चाहिए, क्योंकि जो जिसका पदार्थ होता है वह उसी का कहाता है। सो परमेश्वर का अनन्त सामर्थ्य स्वाभाविक ही है, अन्य से नहीं लिया। वह सामर्थ्य अत्यन्त सूक्ष्म है और स्वाभाविक के होने से परमेश्वर का विरोधी भी नहीं, किन्तु उसमें ही वह सामर्थ्य रहता है, उससे सब जगत् को ईश्वर ने रचा है, इससे क्या आया कि भिन्न पदार्थ को नहीं लेके जगत् के रचने से उपादान कारण जगत् का परमेश्वर ही हुआ, क्योंकि अपने से भिन्न दूसरा कोई पदार्थ नहीं है कि जिसे लेके जगत् को रचे, सो अपने स्वाभाविक सामर्थ्य गुणरूप से जगत् को रचा। इससे सब जगत् का उपादान कारण परमेश्वर ही है, परन्तु आप जगत् रूप नहीं बना तथा अपनी शक्ति से नाना प्रकार के जगत् को रचने से दूसरे के सहाय विना, इससे जगत् का निमित्त कारण ईश्वर ही है, अन्य कोई नहीं तथा साधारण कारण भी जगत् का ईश्वर है क्योंकि किसी अन्य पदार्थ से सहाय से जगत् को ईश्वर ने नहीं रचा। किन्तु अपनी सामर्थ्य से जगत् को रचा है। इससे साधारण कारण भी जगत् का ईश्वर है, अन्य कोई नहीं। और जो अन्य कोई होता तो विरुद्ध कार्य जगत् में देख पड़ते। विरुद्ध कार्यों को हम लोग जगत् में नहीं देखते हैं इससे जगत् के तीनों कारण

परमेश्वर ही हैं अन्य कोई नहीं।

**प्रश्न**—परमेश्वर निराकार और व्यापक है अथवा नहीं?

**उत्तर**—परमेश्वर निराकार और व्यापक ही है, क्योंकि निराकार न होता तो एक देश में रहता और कहीं देख भी पड़ता, सो एक देश में नहीं है। और कहीं देख भी नहीं पड़ता, इससे निराकार ही ईश्वर को जानना चाहिए। और जो निराकार न होता, तो सर्वव्यापक न होता, [जो सर्वव्यापक न होता] तो सर्वात्मा और सब जगत् का अन्तर्यामी न होता। सो सब जगत् का आत्मा सर्वान्तर्यामी के होने से व्यापक ही ईश्वर है, अन्यथा नहीं।

**प्रश्न**—सब जगत् का रचन और धारण ईश्वर किस प्रकार से करता है?

**उत्तर**—जैसा जगत् में हम देखते हैं वैसा ही ईश्वर ने जगत् रचा है परन्तु इसमें यह प्रकार है कि आकाश तो परमाणु से भी सूक्ष्म है और वायु के परमाणु का यह स्वभाव देखने में आता है कि नीचे ऊंचे और समदेश में गमन करने वाले परमाणु हैं क्योंकि जो त्वचा इन्द्रिय से प्रत्यक्ष स्थूलवायु को हमलोग वैसा ही स्वभाव वाला देखते हैं। कभी ऊर्ध्व, कभी नीचे और कभी तिरछा चलता है। इससे हम लोग परमाणु का अनुमान करते हैं। इसमें अन्य भी बहुत कारण हैं क्योंकि वायु में अनेक तत्त्व मिलै हैं परन्तु हमलोग मुख्य की गणना से इस बात को लिखते हैं तथा अग्नि का ऊर्ध्व, जल का नीचे और पृथिवी का सम तथा अनेकविध गति को देख के परम सूक्ष्म परमाणु रूप जो तत्त्व उनका भी अनुमान करते हैं कि वे भी इसी प्रकार के हैं। सो परमेश्वर ने पृथिवी में अनेक तत्त्वों का मेलन किया है, क्योंकि जो मेल न होता तो तत्त्वों के स्वाभाविक गुण पृथिवी में न देख पड़ते। जैसे कि वायु न होता तो पृथिवी में स्पर्श भी न होता तथा अग्नि, जल और आकाश न होते तो रूप, रस और पोल भी न देख पड़ते। इससे क्या जाना जाता है कि सबमें सब तत्त्व मिले हैं। सो पृथिवी और जल के परमाणु अधोगामी स्वभाव से हैं। अग्नि ऊर्ध्व गमन और वायु तिरछे गमन करने वाला है। उन सबके परमाणु भी



अधिक वा न्यून मिलने से स्थिरता वा गमन पदार्थों के होते हैं। जैसे कि पृथिवी और जल नीचे जाते हैं और अग्नि तथा वायु ऊपर और अनेकविध बल करते हैं, फिर मिला भया पदार्थ कहीं नहीं जा सकता वा अधिक न्यूनता तत्त्वों के मिलाने से जितनी जिसकी गति परमेश्वर ने रची है उतनी ही होती है, अन्यथा नहीं। और सबसे बलवान् वायु है। वायु के आधार से सब लोगों को हमलोग देखते हैं। जैसे कि इस पृथिवी के चारों ओर वायु अधिक है तथा वायु में अन्य तत्त्व भी मिले हुए देख पड़ते हैं और वह वायु ४९ वा ५० कोस तक अधिक है, उसके ऊपर थोड़ा है। सो ज्योतिष विद्या की गणना से प्रत्यक्ष है। उस वायु का आधार आकाश और आकाशादिक सब पदार्थों का आधार परमेश्वर है। सो जो सर्वव्यापक न होता तो आकाशादिकों का सब जगत् में धारण कैसे करता, इससे परमेश्वर व्यापक है। व्यापक के होने से सबका धारण बनता है, अन्यथा नहीं। और जो साकार एक देशस्थ परमेश्वर को मानेगा, उसके मत में धारण सब जगत् का न होवैगा, इत्यादिक बहुत दोष आवेंगे।

फिर दो प्रकार का व्यवहार हमलोग देखते हैं कि एक तो लघु वेग और गुरुत्वादिक गुण और आकर्षण भी पदार्थों में है, क्योंकि जो हलका पदार्थ होता है सो ऊपर ही चलता है और गुरु नीचे को चलता है जैसे कि जल के पात्र में तैल की धारा जब देते हैं, सो लघु के होने से तैल जल के ऊपर ही आ जाता है, कभी नीचे नहीं रहता। इसका यह कारण है कि जिसमें छिद्र अधिक होगा, उसमें पोल और वायु अधिक होगा, वह लघु होगा और जिसमें पोल और वायु थोड़ा होगा, वह गुरु होगा, जो कि समीप-समीप अत्यन्त जुट जायगा, वही गुरु होगा। और जो मिलेगा, परन्तु उसके भीतर कुछ अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र रहैंगे, जैसे कि लोहा और काठ दोनों का भार तो तुल्य होता है, परन्तु जल में दोनों को डालने से काठ तो ऊपर रहेगा और लोहा नीचे चला जायगा। तथा वस्त्र भीगने से नीचे चला जाता है उसका यह कारण है कि उसके छिद्रों से जल ऊपर चला जाता है सो ऊपर से जल का भार और सूत का अधिक बटना और पृथिवी के आकर्षण से नीचे चला जाता है। तथा कोई काष्ठ भी अत्यन्त

भीगने और त्रसरेण्वादिक के अत्यन्त मिलने से वह नीचे चला जाता है।

और वेग भी पदार्थों में देख पड़ता है, जैसे मनुष्य, घोड़ा, हरिण, वायु, अग्न्यादिक में हैं। तथा अग्नि और सूर्य्य, पदार्थों के अवयवों को भिन्न-भिन्न कर देते हैं और जल तथा पृथिवी ये पदार्थों से मिलने और मिलाने वाले हैं। सो जहां जिसका अधिक बल होगा, वहाँ उसका कार्य्य होगा। जैसे कि वायु सूक्ष्म और लघु होके ऊपर जाता है, तब चारों ओर की पृथिवी जल, त्रसरेणु युक्त जिस स्थान से वायु ऊपर चढ़ा, उस स्थान में चारों ओर से गुरु वायु गिरता है वही अधिक चलने और आंधी का कारण है। और वही वृष्टि का जल के ऊपर आकर्षण के होने से कारण है, क्योंकि सूर्य्य और अग्नि सब रसों का भेद करते हैं फिर ये जलादिक रस सब ऊपर चढ़ते हैं, परन्तु उनमें अग्नि, वायु और पृथिवी के भी परमाणु मिले हैं और जल के परमाणु अधिक हैं। फिर जब अधिक ऊपर जलादिकों के परमाणु चढ़ते हैं, तब गुरु होते हैं अर्थात् अधिक भार होता है फिर वायु धारण उनको नहीं कर सकता। वहाँ का वायु जल के संयोग से शीतल चलता है, उससे जलादिकों के परमाणु मिल के बादल हो जाते हैं। जब वे वायु से परस्पर चलते हैं बीच में वायु बन्द होने से उष्णता होती है फिर वे परस्पर भिड़ते हैं और घिसते हैं। इससे गर्जन और बिजली उत्पन्न होती है फिर उष्णता और बिजली के होने से जल पृथिवी के ऊपर गिरता है तथा वायु के वेग और ठोकर से बिजली नीचे गिरती है।

और अग्नि का ऊपर वेग तथा जल का नीचे होता है, सो जल को पात्र में रख के ऊपर रखने और अग्नि को नीचे रखने से जब उस जल में अग्नि प्रविष्ट होता है तब उसमें वेग और बल होता है। यही रेल आदिक पदार्थों का कारण है तथा बिजली, अङ्क-विद्या और नाना प्रकार के यन्त्रों से तार विद्या भी होती है। ऐसे ही विद्या से अनेक प्रकार की पदार्थ-विद्या बन सकती है। ग्रन्थ अधिक [न] हो जाय इस हेतु हम अधिक नहीं लिखते हैं, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है, सो बुद्धिमान् लोग विचार लेंगे।

जो थोड़ी-थोड़ी विद्या से मनुष्य लोग अनेक प्रकार के पदार्थ रच



लेते हैं, फिर सर्वशक्तिमान् अनन्त विद्यावाला जो ईश्वर अनेक प्रकार के पदार्थों को रचे, इसमें क्या आश्चर्य है। इस प्रकार से जगत् को रचता है। ईश्वर की अपनी नित्य शक्ति और गुण, उनसे आकाश अव्यक्त अव्याकृत प्रकृति और प्रधान ये सब एक ही नाम हैं, इनको रचता है आकाश से वायु आदि के परमाणु बनाता है। उन साठ परमाणु से एक अणु बनता है। दो अणु से एक द्व्यणुक बनता है सो वायु द्व्यणुक है, इससे प्रत्यक्ष रूप नहीं देख पड़ता। वायु से त्रिगुण स्थूल अग्नि रचा है, इससे अग्नि में रूप देख पड़ता है। उससे चतुर्गण जल और जल से पंच गुण पृथिवी रची है। तथा उस परमाणु के मेलन से वृक्ष, घास और वनस्पत्यादिकों के बीज रचे हैं। उनमें परमाणु के संयोग इस प्रकार के रक्खे हैं कि जिन से विलक्षण-विलक्षण स्वाद पुष्प, पत्र, फल और काष्ठादिक होते हैं। सो प्रसिद्ध जगत् के पदार्थों को देखने से हमलोग परमेश्वर की रचना का अनुमान करते हैं। और साधारण सब जगह में व्यापक होने से सब जगत् का धारण करते हैं तथा एक के आधार दूसरा और परस्पर आकर्षण से भी जगत् का धारण होता है परन्तु सब आकर्षणों का आकर्षण और धारण करने वालों का धारण करनेवाला परमेश्वर ही है, अन्य कोई नहीं।

**प्रश्न**—इसी लोक में इस प्रकार की सृष्टि है वा सब लोकों में ऐसी सृष्टि है?

**उत्तर**—सब लोकों में सृष्टि अनेक प्रकार की है जैसी कि इस लोक में, क्योंकि इस लोक में हम लोग पृथिव्यादिक पदार्थ प्रयोजन के हेतु रचे हुए देखते हैं। इनमें एक पदार्थ भी व्यर्थ नहीं देखते। इससे हमलोग अनुमान करते हैं कि कोई लोक परमेश्वर ने व्यर्थ नहीं रचा है, किन्तु सब लोकों में अनेकविध मनुष्यादिक सृष्टि रची है, क्योंकि परमेश्वर का व्यर्थ कार्य कभी नहीं होता।

**प्रश्न**—कितने लोक परमेश्वर ने रचे हैं?

**उत्तर**—सूर्य्य, चन्द्र और जितने तारे देख पड़ते हैं तथा बहुत नहीं भी देख पड़ते। ये सब लोक ही हैं, सो असंख्यात हैं।

**प्रश्न**—ये सब लोक स्थिर हैं वा चलते हैं?

**उत्तर**—सब लोक अपनी-अपनी परिधि और अपने-अपने वेग से चलते हैं, सो अनेक विधगति है। स्थिर तो एक परमेश्वर ही है और कोई नहीं।

**प्रश्न**—जब परमेश्वर ने पहिले सृष्टि रची, तब एक-एक दो-दो मनुष्यादिक जाति में रचे अथवा अनेक रचे थे?

**उत्तर**—एक-एक जाति में परमेश्वर ने अनेक-अनेक रचे हैं। एक-एक वा दो-दो नहीं। क्योंकि चिंवटी आदिक जाति एक द्वीप में एक-एक दो-दो रचते तो द्वीपान्तर में वे कैसे जा सकती इत्यादिक और भी विचार आप लोग कर लेना।

**प्रश्न**—परमेश्वर ने सब पदार्थ शुद्ध-शुद्ध रचे हैं या कोई पदार्थ अशुद्ध भी रचा है?

**उत्तर**—परमेश्वर सब पदार्थ अपने-अपने स्थान में शुद्ध ही रचे हैं अशुद्ध कोई नहीं। परन्तु विरुद्ध गुणवाले परस्पर मिलने वा मिलाने वाले अशुद्ध कहते हैं, अपने-अपने प्रतिकूल के होने से। जैसे कि दूध और नोंन जब मिलते हैं, तब वे दोनों नष्ट गुण हो जाते हैं, क्योंकि दोनों का स्वाद बिगड़ जाता है, परन्तु उन्हीं दोनों को पदार्थ-विद्या की युक्ति से तृतीय पदार्थ कोई रच ले फिर भी वह उत्तम हो सकता है। जैसे सर्प, मक्खी वे भी अपने स्थान में शुद्ध हैं, क्योंकि वैद्यक शास्त्र की युक्ति से इनकी भी बहुत औषधियां बनती हैं, अनुकूल पदार्थों में मिलाने से। परन्तु वे मनुष्य वा किसी को काटैं अथवा भोजन में खा लेने से दोष करने वाले हो जाते हैं। ऐसे ही अन्य पदार्थों का विचार कर लेना।

**प्रश्न**—जब इस जगत् का प्रलय होता है तो किस प्रकार से होता है?

**उत्तर**—जिस प्रकार से सूक्ष्म पदार्थों से रचना स्थूल की होती है। उसी प्रकार से प्रलय भी जगत् का होता है जिससे जो उत्पन्न होता है वह सूक्ष्म होके अपने कारण में मिलता है। जैसे कि पृथिवी के परमाणु और जलादिकों के परमाणु से यह स्थूल पृथिवी बनी है। इनका परमाणु का जब वियोग होता है तब स्थूल पृथिवी नष्ट हो जाती है। वैसे ही सब पदार्थों का प्रलय जानना। आकाश से पृथिवी पञ्च गुणी है। जब एक



गुणीय घटेगी तब जल रूप हो जायगी। जल और पृथिवी जब एक-एक गुण घटेंगे, तब वे अग्नि रूप हो जावेंगे। जब वे तीनों एक-एक गुने घटेंगे तब वायु रूप हो जायेंगे। जब वे भिन्न-भिन्न हो जायेंगे, तब सब परमाणुरूप हो जायेंगे। परमाणु की जब सूक्ष्म अवस्था होगी, तब सब आकाश रूप हो जायेंगे और जब आकाश की भी सूक्ष्म अवस्था होगी, तब प्रकृति रूप हो जायगा। जब प्रकृति लय होती है तब एक परमेश्वर और सब जगत् का कारण जो परमेश्वर का सामर्थ्य और गुण परमेश्वर के अनन्त सत्य सामर्थ्य वाला एक अद्वितीय परमेश्वर ही रहेगा और कोई नहीं। सो यह सब आकाशादिक जगत् परमेश्वर के सामने कैसा है कि जैसा आकाश के सामने एक अणु भी नहीं। इससे किसी प्रकार का दोष उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय से परमेश्वर में नहीं आता। इससे सब सज्जन लोगों को ऐसा ही मानना उचित है।

**प्रश्न**—जन्म और मरणादिक किस प्रकार से होते हैं?

**उत्तर**—लिंग शरीर और स्थूल शरीर का संयोग से प्रकट का जो होना उसका नाम **जन्म** है और लिंग शरीर तथा स्थूल शरीर के वियोग होने से अप्रकट का जो होना उसका नाम **मरण** है। सो इस प्रकार से होता है कि जीव अपने कर्मों के संस्कार में घूमता हुआ जल वा कोई औषधि में अथवा वायु में मिलता है, फिर जैसा जिसके कर्मों का संस्कार अर्थात् सुख वा दुःख जितना जिसको होना अवश्य है, परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वैसे स्थान और वैसे ही शरीर में मिल के गर्भ में प्रविष्ट होता है। फिर जिसमें वह मिला उसके अवयवों का आकर्षण से शरीर बनता है, जैसी की परमेश्वर ने युक्ति रची है। जिसके शरीर का वीर्य्य होगा, उस वीर्य्य में उसके सब अङ्गों से सूक्ष्म अवयव आते हैं, क्योंकि सब शरीर के अवयवों से वीर्य्य की उत्पत्ति होती है। फिर उस वीर्य्य के अवयवों में उस शरीर के अवयव मिलते जाते हैं, उनसे शिर, नेत्र, नासिका, हस्त, पादादिक अवयव बढ़ते चले जाते हैं। जब वह शरीर, नख से शिखापर्यन्त पूर्ण बन जाता है, तब वह जीव शरीर में सब अवयवों से चेष्टा करता भया शरीर सहित प्रकट होता है। फिर भी अन्न पानादिक बाहर के पदार्थों के

भोजन करने से शरीर के अवयवों की वृद्धि होती है। सो छः विकार वाला शरीर है **अस्ति** नाम शरीर है १, **जायते** नाम जन्म का होना २, **वर्द्धते** नाम बढ़ना ३, **विपरिणमते** नाम स्थूल का होना ४, **अपक्षीयते** नाम क्षीण होना ५, **विनश्यते** नाम नष्ट का होना नाम मृत्यु का होना ६, ये छः विकार शरीर के हैं फिर जब मरण होता है तब स्थूल और लिंग शरीर का वियोग होता है। सो स्थूल शरीर से लिंग [शरीर] निकल के बाहर का जो वायु उसमें मिलता है। फिर वायु के साथ जहाँ तहाँ घूमता है। कभी सूर्य्य के किरणों के साथ ऊंचे और चन्द्र की किरणों के साथ नीचे आ जाता है अथवा वायु के साथ नीचे ऊपर और मध्य में रहता है फिर उक्त प्रकार से शरीर धारण कर लेता है।

**प्रश्न**—स्वर्ग और नरक लोक हैं वा नहीं?

**उत्तर**—सब कुछ है, क्योंकि परमेश्वर के रचे असंख्यात लोक हैं। उनमें से जिन लोकों में सुख अधिक है और दु:ख थोड़ा उनको स्वर्ग कहते हैं तथा जिन लोकों में दु:ख अधिक और सुख थोड़ा है, उनको नरक कहते हैं और जिन लोकों में सुख और दु:ख तुल्य हैं, उनको मर्त्य लोक कहते हैं। इस प्रकार के स्वर्ग, मर्त्य और नरक लोक बहुत हैं। उनमें भी अनेक प्रकार के स्थान और पदार्थ हैं कि जिनमें सुख वा दु:ख अधिक वा न्यून है सो इसी हेतु परमेश्वर ने सब प्रकार के स्थान और पदार्थ रचे हैं कि पापी, पुण्यात्मा और मध्यस्थ जीवों को यथावत् फल मिलै, अन्यथा न होय। जैसे कि राजा के उत्तम, मध्यम और नीच स्थान होते हैं। जिनसे उत्तम मध्यम और नीचों की यथावत् व्यवहार की व्यवस्था होती है। परमेश्वर का यथावत् अखण्डित सम्पूर्ण जगत् में राज्य है और यथावत् न्याय से जिसकी व्यवस्था है फिर परमेश्वर के राज्य में स्वर्ग, नरक और मर्त्य लोकादिकों की व्यवस्था कैसे न होगी, किन्तु अवश्य ही होगी।

**प्रश्न**—मरण समय में यमराज के दूत आते हैं, उस जीव को जाल में बांध लेते हैं। बांध के मारते-मारते यमराज के पास ले जाते हैं और यमराज यथावत् न्याय से दण्ड देते हैं। यह बात सत्य है वा मिथ्या है?



**उत्तर**—यह बात मिथ्या है, क्योंकि जीव अत्यन्त सूक्ष्म है। जाल से बांधने में कभी नहीं आता और गरुड़ पुराणादिकों में लिखा है कि पिण्ड देने से जीव का शरीर बन जाता है और वैतरणी नदी के तरने के हेतु गोदानादिक करना चाहिए और यम के दूतों का कज्जल के पर्वत की नांई शरीर लिखा है। वे नगर के मार्ग और घर के दरवाजे भीतर जीव के पास कैसे आ सकेंगे। चिवँटी आदिक सूक्ष्म छिद्र में एक काल में अनेक जीव मरते हैं। वहाँ कैसे जायेंगे तथा वन वा नगरादिकों में अग्नि के लगने और युद्ध से एक पल में बहुत जीवों का मरण होता है। एक-एक जीव को पकड़ने के हेतु बहुत दूत जाते हैं, उतने दूत कहाँ रहते हैं तथा उनका होना कैसे बन सकै। सो यह बात अत्यन्त मिथ्या है। और जो वेदादिक सत्य शास्त्रों में यमराज तथा धर्मराज नाम लिखे हैं वे परमेश्वर के हैं और वायु तथा सूर्य्य के भी हैं। इससे क्या आया कि जैसी व्यवस्था जीने और मरने में परमेश्वर ने रची है वैसी ही होती है। सो वायु और सूर्य्य के आधार से सब जीवों का जाना और आना होता है तथा यही परमेश्वर की आज्ञा है कि जैसा जो कर्म करै वह वैसा फल पावै। ये जो बात लिखी हैं उनमें ये प्रमाण हैं। उत्पत्ति के विषय में तो कुछ श्रुति लिख दी हैं, परन्तु फिर भी लिखते हैं।

**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति**
**यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म॥ १॥**

—यह यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा की श्रुति है।

**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा॥ २॥ जन्माद्यस्य यतः॥ ३॥**

—ये दो व्यासजी [कृत वेदान्त १.२.१-२] के सूत्र हैं।

इनका यह अभिप्राय है कि जिस परमेश्वर से सब भूत अर्थात् सब जगत् उत्पन्न होता है उत्पन्न होके उस परमेश्वर के धारण और सत्ता से सब

जगत् जीता है और प्रलय में उसी परमेश्वर में लीन हो जाता है, वही ब्रह्म है, उस ब्रह्म को जानने की इच्छा हे भृगो! तू कर। यही दोनों सूत्र का भी अर्थ है। **सवितारं प्रथमेऽहनि,** इत्यादिक मन्त्र यजुर्वेद की संहिता में लिखे हैं। इनका यह अभिप्राय है कि जीव जब शरीर छोड़ता है तब सूर्य्य वा वायु में मिलता है फिर जैसा पूर्व लिखा, वैसे ही जाता और आता है सो सब बात वहाँ लिखी है, देखा चाहै सो देख ले।

**अन्नेन सोम्य सुङ्गेनायोमूलमन्विच्छ अद्भिः सोम्य सुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य सुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः।** —इत्यादिक सामवेद की छान्दोग्य की श्रुति हैं।

इनका यह अभिप्राय है कि जैसी आकाशादिक क्रम से उत्पत्ति जगत् की होती है वैसे ही क्रम से प्रलय भी होता है। सुङ्ग नाम कार्य का पृथिवी रूप जो कार्य उस का मूल जल है, सो जब पृथिवी का प्रलय होता है, तब पृथिवी जलरूप कारण में लय होती है, तथा जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में और आकाश परमेश्वर में। सो जिस प्रकार से प्रलय को लिखा उसी प्रकार से होता है। और **हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे** इति यह मन्त्र पहिले लिखा है और इसका अर्थ भी लिख दिया है। सो परमेश्वर ही सब जगत् का धारण करता है, अन्य कोई नहीं। इससे ऐसा सिद्ध भया उत्पत्ति, धारण और प्रलय परमेश्वर ही के आधीन हैं।

यह संक्षेप से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के विषय में लिखा और जो विस्तार से देखा चाहै, सो वेदादिक सत्य शास्त्रों में देख लेवै। इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष के विषय में लिखा जायगा॥

# नवम उपदेश

## [ विद्याऽविद्याबन्धमोक्ष विषय ]



**वेत्ति अनया यथार्थान् पदार्थान् सा विद्या—विद्या** इसका नाम है कि जो जैसा पदार्थ है, उसको वैसा ही जानना। **न वेत्ति अनया यथार्थान् पदार्थान् सा अविद्या**—जैसा पदार्थ है उसको वैसा न जानना, उसका नाम **अविद्या** है। ज्ञान, विवेक और विज्ञान इत्यादिक विद्या के नाम हैं। अज्ञान, भ्रम और अविवेक इत्यादिक सब अविद्या के नाम हैं।

**अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥ १॥**

—यह पतञ्जलि मुनि का योग शास्त्र [ २.५ ] में सूत्र है।

इसका यह अभिप्राय है कि अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा ये जैसे हैं, वैसे न जानना, किन्तु इनमें नित्य, शुचि, सुख और आत्मा की बुद्धि होती है। जैसे कि, **अमरा निर्जरा देवा** इत्यादिक वचनों से नित्य निश्चय का जो करना कि स्वर्गादि लोक और ब्रह्मादिक देव नित्य हैं। ऐसा अज्ञान बहुत मनुष्यों को है, परन्तु वे विचार करके देखैं कि जिनकी उत्पत्ति होती है, वे नित्य कैसे होंगे, कभी नहीं, क्योंकि बहुत पदार्थों के संयोग से जो पदार्थ होता है सो उन पदार्थों के वियोग से वह जो संयोग से बनाया, सो अवश्य नष्ट हो जायगा। ब्रह्मादिकों के शरीर और स्वर्गादिक सब लोक संयोग से बने हैं। उनका वियोग से अवश्य नाश होना ही है, फिर जो इन **अनित्य** पदार्थों में नित्य निश्चय होता और नित्य जो परमेश्वर तथा परमेश्वर के नित्य गुण, धर्म और विद्या उनको नित्य न जानना, कभी उनके जानने में इच्छा भी न होनी, यह **अविद्या का प्रथम भाग** है। और अनित्य पदार्थों को अनित्य जनाना तथा नित्य पदार्थों को नित्य जानना यह **विद्या का प्रथम भाग** है।

**अशुचि** अपवित्र नाम अशुद्ध पदार्थों में शुद्ध का निश्चय होना और शुचि जो पवित्र अर्थात् शुद्ध पदार्थ में अशुद्ध का निश्चय होना। जैसे कि यह शरीर, इससे सब मार्गों से मल ही निकलता है। कान, आंख, नाक, मुख तथा नीचे छिद्र और लोमों के छिद्रों से भी दुर्गन्ध ही निकलता है। परन्तु जिनकी बुद्धि विषयासक्ति होती है, वह शुद्ध बुद्धि ही उसमें करता है तथा स्त्री भी पुरुष के शरीर में शुद्ध बुद्धि करती है। ऊपर के चाम को देख के मोहित हो जाते हैं। फिर अपना बल, बुद्धि, पराक्रम, तेज, विद्या

और धन उसके हेतु नाश कर देते हैं जो उनकी उसमें प्रवृत्त बुद्धि न होती तो ऐसे काम में प्रवृत्त न होते। सो बड़े-बड़े राजा और बड़े-बड़े धनाढ्य और महात्मा लोग तथा मिथ्या विरक्त लोग जो हैं वे इस काम में नष्ट हो जाते हैं। कभी उनके हृदय में इस बात का विचार भी नहीं होता, जैसे अग्नि में पतङ्ग गिर के नष्ट हो जाते हैं वैसे वे भी ऐश्वर्य सहित नष्ट हो जाते हैं और पवित्र जो परमेश्वर, विद्या और धर्म इनमें उनकी बुद्धि कभी नहीं आती, यह **अविद्या का दूसरा भाग** है और जो शुद्ध को शुद्ध जानना और अशुद्ध को यथावत् अशुद्ध जानना यह **विद्या का दूसरा भाग** है।

**दुःख** में सुख बुद्धि का करना और सुख में दुःख बुद्धि का होना जैसे कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक और विषयों की सेवा इनमें जीव को शान्ति कभी नहीं आती। जैसे कि अग्नि में घी डालने से अग्नि बढ़ता जाता है वैसे उनकी भी तृष्णा बढ़ती जाती है। परन्तु उस दुःख में बहुत जीवों की सुख बुद्धि देखने में आती है, क्योंकि उस दुःख में सुख बुद्धि न हो तो वे इसमें फसते नहीं, यह **अविद्या का तीसरा भाग** है और जो पुरुषार्थ, सत्यधर्म का अनुष्ठान, सत्यविद्या का ग्रहण, जितेन्द्रियता का करना तथा सत्संग, सद्विद्या और परमेश्वर की प्राप्ति का उपाय अर्थात् मोक्ष का चाहना, इनमें इनकी बुद्धि लेशमात्र भी नहीं आती। इनके विना जीव को कभी सुख नहीं होता, परन्तु विपरीत बुद्धि के होने से दुःख में फंसे रहते हैं, सुख में कभी नहीं आते, यह **अविद्या का तीसरा भाग** है और सुख में सुखबुद्धि का होना, और दुःख में दुःखबुद्धि का होना, सो **विद्या का तीसरा भाग** है।

तथा **अनात्मा** में आत्म बुद्धि और आत्मा में अनात्मबुद्धि का होना जैसे कि शरीरादिक सब अनात्म पदार्थ हैं। इनमें आत्मा की नांई बहुत मनुष्यों की बुद्धि है। जब देहादिकों में दुःख होता है तब इनकी बुद्धि में यही होता है कि मैं मरा और मैं बड़ा दुःखी हूँ। मैं दुबला हो गया, मैं पुष्ट हूँ। मैं रूपवान् हूँ, मैं कुरूप हूँ इत्यादिक निश्चय लोक में देख पड़ता है और जो आत्मा और परमाण्वादिक जिनसे कि शरीर बना है और परमेश्वर इन नित्य पदार्थों में इनकी बुद्धि कभी नहीं आती। नित्य सुख



जो मोक्ष इसकी इच्छा भी कभी नहीं होती, इससे जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, हर्ष और शोक, इस दुःख सागर से कभी नहीं निकलते, यह **अविद्या का चौथा भाग** है। और आत्मा को आत्मा जानना अनात्मा को अनात्मा जानना यह **विद्या का चौथा भाग** है।

इससे क्या आया कि **अनित्याशुचिदुःखानात्मस्वनित्याशुचि-दुःखानात्मबुद्धिः** तथा **नित्यशुचिसुखात्मसु नित्यशुचिसुखात्म-बुद्धिर्विद्या। अतोऽन्यथा चाविद्येति विज्ञातव्या। अन्यथा** नाम मिथ्या जो ज्ञान कि जैसे को तैसा न जानना, इसका नाम **अविद्या** है। और निर्भ्रम यथार्थ ज्ञान का होना सो **विद्या** कहाती है। अविद्या की उत्पत्ति विषयासक्त्यादि दोषों से होती है। जब यह जीव विद्याहीन होके बाहर के पदार्थों को सुख के हेतु चाहता है, तब मन को बाहर की ओर प्रेरता है। फिर वह मन इन्द्रियों को बाहर के पदार्थों में लगा के प्रवृत्त कर देता है। सो जैसे कोई पुरुष निशाने में तीर वा गोली लगाया चाहता है, तब वह भीतर से बाहर की ओर ध्यान करता है, सो नेत्र को बन्दूक के मुख से लगाके निशाने में लगा देता है। वैसे ही जो-जो व्यवहार जीव किया चाहता है तब उसी प्रकार का व्यवहार जीव में भी होता है। फिर बाहर और भीतर के पदार्थों को यथावत् न जानने से जीव भ्रमयुक्त होके अन्यथा जान लेता है। उससे फिर दृढ़ संस्कार अन्यथा होने से अविद्या कहाती है। सो न अपने स्वरूप का कभी ध्यान करता है, न परमेश्वर का, तथा न विद्या का, किन्तु जैसे वे मिथ्या संस्कार उसके हैं, उसी में गिरा रहता है, क्योंकि जैसा जिसका अभ्यास करेगा वैसा ही उस जीव को भासता रहेगा।

फिर जब तक यह अविद्या जीव में रहैगी तब तक उसको विद्या कभी नहीं होती। परन्तु जब कभी अच्छा संग और सद्विद्या का अभ्यास तथा विचार और धर्म का अनुष्ठान तथा अधर्म का त्याग कभी नहीं वह जीव कर सकता और यथार्थ तत्त्व ज्ञान पदार्थों का उसको कभी नहीं होता। जब तक यह अविद्या जीव को रहती है तब तक विद्या का साधन और विद्या प्राप्त नहीं होती, क्योंकि जब जीव सुविचार करता है, तब

उसको कुछ-कुछ **विवेक** उत्पन्न होता है कि सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानना। फिर अविद्या के गुण और उनके कार्य उनमें **वैराग्य** होता है अर्थात् उनको छोड़ता है और विद्यादिक जो सत्यार्थ उनमें प्रीति करता है। इनमें यह कारण है कि जब तक पदार्थों का दोष नहीं जानता, तब तक उनके त्याग करने की बुद्धि जीव को कभी नहीं होती, क्योंकि त्याग का हेतु दोषों का यथावत् देखना ही है तथा पदार्थों के गुण का जो ज्ञान होना सोई प्रीति का हेतु है। फिर वह जीव धर्माधर्म का यथावत् निश्चय करके अधर्म का त्याग और धर्म का ग्रहण करेगा। फिर उसका मन शान्त होगा कि विद्या, धर्म, सत्सङ्ग, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, जितेन्द्रियता, सत्पुरुषों का आचार, मोक्ष और परमेश्वर इन्हीं में मन प्रीतियुक्त होके स्थिर हो जायगा। इनसे विरुद्ध अविद्या, अधर्म, कुसंग कि कुपुरुषों का संग, विषयों का अत्यन्त अभ्यास, अजितेन्द्रियता, दुष्ट पुरुषों का आचार, जिसमें बन्ध होय और परमेश्वर को छोड़ के उपासना, प्रार्थना और स्तुति का करना, इनसे उसका मन हट जायगा, इसका नाम **शम** है। फिर सब इन्द्रियां स्थिर हो जायंगी, इसका नाम **दम** है। फिर अविद्यादिक जितने दुष्ट व्यवहार उनसे उसका मन पृथक् हो जायगा, अर्थात् उनमें कभी न फसेगा उसका नाम **उपरति** है। फिर शीत-उष्ण, सुख-दु:ख, हर्ष-शोक और क्षुधा-तृषादिक इनका सहन अर्थात् इनमें हर्ष वा शोक न करेगा, इसका नाम **तितिक्षा** है। फिर विद्यादिक उक्त गुणों में अत्यन्त श्रद्धा अर्थात् प्रीति जीव की होती है। अविद्यादिक दोषों में सदा अप्रीति इसका नाम है **श्रद्धा**। फिर मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, इन्द्रिय और प्राण ये सब उसके वशीभूत हो जायेंगे। उनको जहाँ स्थिर करेगा, वहीं सब स्थिर रहैंगे और अविद्यादिक अनर्थ में कभी न जायेंगे, इसका नाम **समाधान** है। ये छ: गुण जीव में उत्पन्न होंगे। फिर जैसे क्षुधातुर पुरुष की इच्छा अन्न में रहती है वैसे उसका मन मुक्ति ही में रहेगा कि मेरी मुक्ति कब होगी। इससे भिन्न व्यवहारों में उसका मन लगेगा ही नहीं, इसका नाम **मुमुक्षुत्व** है।

ये नव विवेकादिक गुण जब जीव में होते हैं तब वह ब्रह्मविद्या का



अधिकारी होता है। फिर वह सब सत्य शास्त्रों का जो सत्य-सत्य पदार्थ विद्यारूप विषय उसको यथावत् जानेगा। फिर शास्त्र जिन पदार्थों के प्रतिपादन करते हैं, उन पदार्थों के साथ शास्त्रों का प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध को वह जीव यथावत् जान लेगा, इसका नाम **सम्बन्ध** है। फिर वह यथावत् विद्याओं का **श्रवण** करेगा। श्रवण करके ज्ञान नेत्र से उनका यथावत् विचार करेगा, इसका नाम **मनन** है। और फिर उन पदार्थों को यथावत् प्रत्यक्ष जानने के हेतु योगाभ्यास अर्थात् पातञ्जल दर्शन की रीति से करेगा, इसका नाम **निदिध्यासन** है। फिर पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों का ज्ञान नेत्र से प्रत्यक्ष ज्ञान करेगा, उसी समय इसका जो प्रयोजन कि सब दु:खों की निवृत्ति और परमानन्द परमेश्वर की जो प्राप्ति इसका नाम **प्रयोजन** है। सो जब यह विद्या होगी, तब अविद्यादिक सब दोष नष्ट हो जायेंगे, जैसे सूर्य्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है। विद्या और अविद्या यह दोनों अन्धकार और प्रकाश की नांई परस्पर विरोधी पदार्थ हैं। इनका फलितार्थ यह है कि जो विद्यावान् होगा सो अधर्मादिक दोषों को कभी न करेगा और जो अविद्यावान् होगा उसकी निश्चित बुद्धि धर्मादिक के अनुष्ठान में कभी न लगेगी।

**प्रश्न**—विद्या का पुस्तक कोई सनातन है वा सब पीछे रचे गये हैं?

**उत्तर**—चार वेदों को छोड़ के सब रचे गये हैं।

**प्रश्न**—जैसे अन्य सब शास्त्र रचे गए हैं वैसे वेद भी रचा गया होगा?

**उत्तर**—ऐसा मत कहो। जो ऐसा कहोगे तो आपके मत में यह अनवस्था दोष आ जायगा क्योंकि कोई पुस्तक सनातन न ठहरने से किसी पदार्थ अथवा पुस्तक का सत्य वा असत्य निश्चय कभी न हो सकेगा। जो कोई पुस्तक रचेगा, उसका प्रमाण कैसे होगा, क्योंकि जो सनातन पुस्तक होता तो उस पुस्तक से औरों का सत्यासत्य जीव लोग जान सकते। फिर उसका खण्डन करके दूसरा कोई ग्रन्थ रच लेगा। ऐसे दूसरे का करके तीसरा, ऐसे ही अनवस्था आ जायगी।

**प्रश्न**—जैसे अन्य पुस्तक का प्रमाण वेद से होता है वैसे वेद का

प्रमाण किस पुस्तक से होगा?

**उत्तर**—ऐसा कहने से भी अनवस्था दोष आ जायगा। क्योंकि वेद के प्रमाण के हेतु कोई अन्य पुस्तक रक्खी जाय तो फिर उस पुस्तक के प्रमाण के हेतु कोई तीसरी भी मानी जायगी। ऐसे ही आगे-आगे अनवस्था आ जायगी। इससे अवश्य एक पुस्तक सनातन मानना चाहिए। जिससे कि अन्य पुस्तकों की व्यवस्था सत्य-सत्य रहै। सो वेद के सनातन होने में पहिले लिख दिया है वही विचार लेना।

**प्रश्न**—छः दर्शनों में बड़े-बड़े विरोध हैं कि पूर्वमीमांसा वाला धर्म धर्मी और कर्म ही पदार्थ हैं, इनसे जगत् की उत्पत्ति मानता है। तथा वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन में परमाणु से जगत् की उत्पत्ति मानी है। और पातंजल दर्शन तथा सांख्य दर्शन में प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति मानी है। और वेदान्त दर्शन में परमेश्वर से सब जगत् की उत्पत्ति मानी है। यह बड़ा परस्पर विरोध है सब शास्त्रों में। इसका क्या उत्तर है?

**उत्तर**—वेदान्त में प्रथम सृष्टि का व्याख्यान है कि उससे पहिले जगत् था ही नहीं और जब अत्यन्त सब का प्रलय होगा तब परमेश्वर ही में लय होगा, अन्य में नहीं। सो यह आदि सृष्टि है क्योंकि पहिले नहीं थी और फिर उत्पन्न भई, इससे इस सृष्टि के आदि होने से सादि कहाती है। और मीमांसादिक शास्त्रों में अनादि सृष्टि का व्याख्यान है क्योंकि प्रकृति परमाणु और धर्म धर्मी इनका नाश प्रलय में भी नहीं होता। इसका नाम महाप्रलय है, इसमें प्रकृति परमाण्वादिकों के मिलने से जितना स्थूल जगत् होता है, वह सब परमाण्वादिकों के वियोग से सब नष्ट हो जाता है, परन्तु प्रकृति और परमाण्वादिक बने रहते हैं। फिर भी जब ईश्वर उनको मिला के जगत् को रचता है, तब यह स्थूल सब हो जाता है। फिर जब नष्ट होता है, तब प्रकृति और परमाणु रूप होता है। फिर उनसे स्थूल जगत् उत्पन्न होता है। ऐसे ही अनेक वार उत्पत्ति और अनेक वार जगत् का प्रलय होता है, परन्तु प्रकृति और परमाणु इस स्थूल का जो कारण सो नष्ट नहीं होता। इससे महाप्रलय में आदि इस जगत् की नहीं देख पड़ती, क्योंकि इसका कारण प्रकृति और परमाणु सदा बने रहते हैं, इससे जगत्



अनादि कहता है। कभी कारण रूप हो जाता है, कभी कारण से स्थूल जगत् उत्पन्न होता है। ऐसे ही प्रवाह रूप उत्पत्ति और प्रलय के होने से अनादि जगत् कहाता है। सो यह जगत् कब उत्पन्न भया, ऐसा कोई नहीं कह सकता। इससे यह आया कि पांच शास्त्रों में महाप्रलय की व्याख्या है। इसमें भी अनेक भेद हैं कि त्रसरेणु तक जब प्रलय होता है तब धर्म और धर्मी कुछ-कुछ प्रसिद्ध रहता है। इस प्रलय की व्याख्या मीमांसा में है। और जब अणु पर्यन्त का नाश होता है तब परमाणु मात्र जगत् रह जाता है सो भी महाप्रलय का भेद है। यह व्याख्या वैशेषिक-दर्शन और न्याय-दर्शन में है। और जब परमाणु की भी सूक्ष्मावस्था होती है, तब अत्यन्त सूक्ष्म जो प्रकृति, सो रह जाती है, और परमाणु का भी लय हो जाता है, क्योंकि शब्दादिक तन्मात्राओं की भी सांख्यशास्त्र में उत्पत्ति लिखी है और प्रकृति की नहीं। इससे यह अनुमान से जाना जाता है कि प्रकृति परमाणु से भी सूक्ष्म है। सो यह व्याख्यान पातंजल-दर्शन और सांख्य-दर्शन में किया है। और वेदान्त में प्रकृत्यादिकों की उत्पत्ति लिखी है और प्रकृति का लय भी परमेश्वर में होता है। इससे उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न पदार्थों के व्याख्यान होने से कुछ विरोध परस्पर इनमें नहीं है।

**प्रश्न**—पूर्वमीमांसा और सांख्य में ईश्वर को नहीं माना है और अन्यशास्त्रों में माना है। इससे विरोध आता है।

**उत्तर**—इसमें भी कुछ विरोध नहीं, क्योंकि मीमांसा में धर्म और धर्मी दो पदार्थ माने हैं, इससे ही ईश्वरधर्मी और ईश्वर के सर्वज्ञादिक धर्म अवश्य मान लिया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। और वेद को जैमिनि जी नित्य मानते हैं, सो वेद शब्द ज्ञान रूप के होने से गुण है सो गुणी के विना गुण किसमें रहेगा। इससे ईश्वर को उसने अवश्य माना है और सांख्य में—

**ईश्वरासिद्धेः॥ १॥** [सांख्य० १.९२]

**प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः॥ २॥** [सांख्य० ५.१०]

**सम्बन्धाभावान्नानुमानम्॥ ३॥** [सांख्य० ५.११]

**उभयथाप्यसत्करत्वम्॥ ४॥** [सांख्य० १.९४]

**मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्य वा॥ ५॥** [सांख्य० १.९५]

ये पांच सांख्य शास्त्र में कपिलजी के किए सूत्र हैं। यही अनीश्वर वाद का कारण है। इनको यथावत् न जान के चार्वाक और बौद्धादिक बहुत अनीश्वरवादी हो गए हैं, इनके अभिप्राय नहीं जानने से। इनका यह अभिप्राय है कि ईश्वर की सिद्धि नहीं होती, किन्तु एक पुरुष और प्रकृति दोनों नित्य हैं। अन्य नहीं॥ १॥ क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण न होने से ईश्वर सिद्ध नहीं होता। प्रत्यक्ष प्रमाण से जो सिद्ध होता तो ईश्वर माना जाता, अन्यथा नहीं॥ २॥ लिङ्ग और लिङ्गी अर्थात् चिह्न और चिह्न वाले का नित्य सम्बन्ध होता है सो लिङ्ग के देखने से लिङ्गी का अनुमान होता है फिर ईश्वर का लिङ्ग नाम चिह्न कोई जगत् में देख नहीं पड़ता। इससे ईश्वर में अनुमान भी नहीं बनता॥ ३॥ ईश्वर जो मोहित होगा तो असमर्थ के होने से जगत् को कभी नहीं रच सकेगा। और जो मुक्त होगा, तो उदासीन के होने से जगत् के रचने में ईश्वर की इच्छा भी नहीं होगी। इससे ईश्वर में शब्द प्रमाण भी नहीं बनता॥ ४॥ फिर वेद में **स ईश्वर** इत्यादिक श्रुति ईश्वर के व्याख्यान में लिखी हैं, उनकी क्या गति होगी? वे सब श्रुति विद्या और योगाभ्यास और धर्म से सिद्ध जो जीव होता है कि अणिमादिक ऐश्वर्य वाला उसकी प्रशंसा और उपासना की वाचक हैं॥ ५॥

इससे ईश्वर की सिद्धि किसी प्रकार से नहीं होती, ऐसे विपरित अर्थ को जान के मनुष्यों की बुद्धि भ्रम युक्त हो गई है। परन्तु कपिल जी का यह अभिप्राय है कि पुरुष ही ईश्वर है और वही चेतन है सर्वज्ञादिक गुण भी पुरुष के हैं। उस पुरुष चेतन से भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। पुरुष का नाम ही ईश्वर है। इससे यह आया कि पुरुष को ही ईश्वर मानना चाहिए, दूसरा कोई नहीं। इससे जो कोई कहता है कि जैमिनि और कपिल जी निरीश्वरवादी थे। यह उसका कहना मिथ्या जानना।

वेदादिक जितने पुस्तक हैं उनका पठन पाठन विद्या का साधन है और विद्या तथा अविद्या की परीक्षा उनके पढ़ने और पढ़ाने के विना कभी नहीं होती। विद्या के पढ़ने वाले तथा नहीं पढ़ने वाले, इनमें से पढ़ने वालों का जो भाषण और ज्ञानादिक व्यवहार अच्छा ही देखने में आता।



इससे ग्रन्थों का जो पढ़ना है सो विद्या की प्राप्ति करने वाला होता है अन्यथा नहीं। परन्तु विद्वान् वही है जो कि सर्वथा अधर्म्म का त्याग करै और धर्म्म का ग्रहण करै, अन्यथा पढ़ना और पढ़ाना व्यर्थ ही है।

**अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।**
**ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬं रताः॥ १॥**
**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयᳬंसह।**
**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ २॥**
**अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया।**
**इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥ ३॥**

—ये यजुर्वेद की संहिता [अ० ४०.९-११] के मन्त्र हैं।

इनका यह अभिप्राय है कि जो पुरुष अविद्या में फंसे हैं वे अत्यन्त अन्धकार अर्थात् जन्म, मरण, हर्ष और शोकादिक दुःख सागर में प्रविष्ट रहते हैं, इससे पृथक् नहीं हो सकते। और विद्या अर्थात् नाना प्रकार के कर्मों से विषय भोगों की चाहना करना तथा योगाभ्यास, तप और संयम से अणिमादिक सिद्धियों में फस के प्रतिष्ठा संसार में और अभिमानादिक दोषों से युक्त होना इसमें जो रत रहते हैं वे उन कर्मी लोगों से भी अत्यन्त अन्धकार में फस जाते हैं, फिर उनका निकलना उससे बहुत कठिन होता है॥ १॥

परन्तु विद्या और अविद्या को एक साथ गिन लेना, क्योंकि बन्ध की करने वाली दोनों हैं, इससे दोनों का नाम अविद्या है। जो कर्म धर्म्म युक्त और योगाभ्यास जो उपासना इनके अनुष्ठान से मृत्यु जो मोह और भ्रमादिक दोष, उनसे पृथक् मन और जीव होके, शुद्ध हो जाते हैं, फिर यथार्थ पदार्थों का ज्ञान और परमेश्वर की जो प्राप्ति, इस विद्या से अमृत जो मोक्ष, उसको प्राप्त होता है, फिर दुःख सागर में कभी नहीं गिरता॥ २॥

इससे विद्या जो निर्भ्रम ज्ञान इसका फल भिन्न है अर्थात् मोक्ष है। और जो पूर्वोक्त अविद्या जो कि भ्रमात्मक ज्ञान, उसका भी फल अन्य है नाम बन्ध है। सो विद्या का और अविद्या का फल भिन्न-भिन्न है, एक नहीं। ऐसा हमने ज्ञानियों के मुख से सुना है जो कि यथार्थ वक्ता उनने

हमारे साह्मने यथावत् व्याख्या कर दी है। इससे हमको इनमें भ्रम नहीं है॥ ३ ॥

सो सब मनुष्यों को यह उचित है कि सब पुरुषार्थ से विद्या की इच्छा करैं और अत्यन्त प्रयत्न से अविद्या को छोड़ैं, क्योंकि इस संसार में विद्या के तुल्य कोई पदार्थ नहीं, तथा विद्या के विना इस लोक वा परलोक में कुछ सुख नहीं होता और अनेक जन्म धारण करता है, उनमें अत्यन्त पीड़ा होती है। कभी परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती। इसकी प्राप्ति के उपाय ब्रह्मचर्यादिक पूर्व सब लिख दिये हैं। उनकी नाम मात्र यहाँ गणना थोड़ी सी करते हैं।

प्रथम सब उपायों का मूल ब्रह्मचर्याश्रम, जब तक पूर्ण विद्या न होय, तब तक जितेन्द्रिय होके यथावत् विद्या ग्रहण करैं और सब व्यवहारों को यथावत् जानैं, फिर विवाह करैं। परन्तु विद्याभ्यास को न छोड़ैं और नित्य गुण ग्रहण की इच्छा रक्खैं। अत्यन्त पुरुषार्थ और नम्रतापूर्वक सब सज्जनों से मिलैं, मिल के उनकी सेवापूर्वक गुण ग्रहण करैं। आप भी जितनी बुद्धि उतना नित्य-नित्य विचार करैं। उसमें पक्षपात रहित होके सत्य को ग्रहण करैं और असत्य को छोड़ैं। एकान्त सेवन से अपनी इन्द्रियां, मन और शरीर सदा धर्मानुष्ठान में निश्चित रक्खैं अधर्म में कभी नहीं।

**यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।**
**तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥**

—यह मनु [२.२१८] का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि जो पुरुष अभिमानादिक दोष रहित और नम्रतादिक गुणयुक्त होके सेवा से दूसरे का चित्त प्रसन्न कर देता है, सोई श्रेष्ठगुणों को प्राप्त होता है, अन्य नहीं। इसमें यह दृष्टान्त है कि जैसे कुदाली से भूमि को खोदता-खोदता नीचे चला जाय फिर वह जल को प्राप्त होता है। वैसी ही श्रुश्रूषु अर्थात् कपटादिक दोष रहित और दूसरे पुरुष की परीक्षा जानता होय कि इसमें गुण हैं वा नहीं। फिर यथावत् गुणों का बुद्धि से निश्चय कर ले कि इसमें ये सत्य गुण हैं। पीछे जिस प्रकार से वे गुण मिलैं, उन सेवादिक प्रकारों से गुणों को अवश्य ग्रहण करके



गुणों को प्रकाश कर दे। और जो कोई उन गुणों को ग्रहण किया चाहै, उसको प्रीति से निष्कपट होके यथावत् गुणों को दे दे, क्योंकि गुणों को गुप्त करना कोई मनुष्य को उचित नहीं। और जो गुणों को गुप्त रखता है, वह बड़ा मुर्ख पुरुष है और धर्म तथा परमेश्वर का अत्यन्त विरोधी है, वह कभी सुख न पावैगा। इत्यादिक **विद्या की प्राप्ति के हेतु** हैं और यही **अविद्या नाश के हेतु** हैं। अन्य भी अनेक प्रकार के हेतु हैं, उनको विचार लेना।

और इसके आगे बन्ध और मुक्ति का व्याख्यान किया जाता है।

**पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।**
**कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥**

—यह कठवल्ली [२.१.१] की श्रुति है।

इसका अभिप्राय है कि **पराञ्चिखानि** अर्थात् बहिर्मुख इन्द्रिय जिसकी होती हैं वह जीव बाहर के पदार्थों ही को देखता रहता है और भीतर के पदार्थों को वा अपने स्वरूप को कभी नहीं विचारता अथवा परम सूक्ष्म जो परमेश्वर उसके विचार में कभी जीव का चित्त नहीं जाता। इससे जीव को पदार्थों का यथार्थ ज्ञान तो नहीं होता, किन्तु अत्यन्त दृढ़ भ्रम होता है। उससे आप से आप ही बद्ध होता है। फिर ऐसा मोह उसको होता है कि जिसका छूटना बहुत कठिन है। उससे फिर मिथ्या ज्ञान होता है कि स्त्री, पुत्र, धन, राज्यादिकों ही में सुख मान लेता है। फिर उनके सुधरने में अत्यन्त हर्षित होता है और बिगड़ने से शोकयुक्त होता है। इस जाल में गिरके अनेक जन्म मरण जीव के होते हैं और अत्यन्त दुःख पाता है।

**प्रश्न**—जन्म एक होता है अथवा अनेक?

**उत्तर**—अनेक जन्म होते हैं।

**प्रश्न**—जो अनेक जन्म होते हैं तो पूर्व जन्मों का हम को स्मरण क्यों नहीं होता?

**उत्तर**—पूर्व जन्मों का स्मरण नहीं हो सकता, क्योंकि पूर्वजन्म ज्ञान के जो निमित्त हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं इससे पूर्वजन्म का स्मरण नहीं हो सकता।

**प्रश्न**—कौन वे निमित्त हैं और निमित्त किस को कहते हैं?

**उत्तर**—निमित्त इसका नाम है कि जो दूसरे के संयोग से उत्पन्न होता है जैसे कि जल शीतल है और अग्नि उष्ण है। जब अग्नि का संयोग जल में होता है, तब जल उष्ण हो जाता है, परन्तु जब अग्नि से जल पृथक् किया जाता है, तब फिर भी वह शीतल हो जाता है, इसका नाम नैमित्तिक गुण है जो कि जब तक उसका निमित्त रहता है, तब तक वह रहता है और जब निमित्त नहीं रहता, तब उसका निमित्त से उत्पन्न भया जो कि गुण सो भी नष्ट हो जाता है। जैसे सूर्य्य और नेत्र से रूप का ग्रहण होता है। जब सूर्य और नेत्र नहीं रहते तब रूप का भी ग्रहण नहीं होता क्योंकि निमित्त के विना नैमित्तिक गुण नहीं होता। इससे क्या आया कि पूर्व जन्म जिस देश, जिस काल में और जो शरीर तथा उस शरीर के सम्बन्धी सब पदार्थ नष्ट अर्थात् उनका वियोग होने से वहाँ का जो उनको ज्ञान था, सो भी नष्ट हो जाता है। और इसी जन्म में जो-जो बाल्यावस्था में व्यवहार किया था, उससे सुख वा दुःख पाया था, उसका भी यथावत् स्मरण वृद्धावस्था में नहीं रहता और जिस समय किसी से किसी की बात होती है, तब उस बात में अनेक अक्षर, पद, वाक्य, सम्बन्ध कहे और सुने जाते हैं, परन्तु उसके उत्तर काल में स्मरण कहना वा सुनना यथावत् नहीं बनता। और कोई बात कण्ठस्थ कर लेता है फिर कालान्तर में उसको भी भूल जाता है। एक बात में जब जीव का चित्त होता, तब दूसरे में नहीं जाता। दूसरे में जब जाता है, तब पहिले को भूल जाता है। जब ऐसी बात है तो जन्मान्तर के स्मरण में शंका जो करते हैं, उनकी शंका व्यर्थ ही है।

**प्रश्न**—जीव और बुद्धि आदिक पदार्थ तो वे ही हैं। फिर पूर्व जन्म का ज्ञान क्यों नहीं होता क्योंकि जो कुछ देखता वा सुनता है, सो बुद्धि ही से ग्रहण करता है, फिर उनका ज्ञान अवश्य होना चाहिए, सो नहीं होता। इससे पूर्वजन्म नहीं है।

**उत्तर**—इसका उत्तर तो पूर्व प्रश्न के उत्तर ही से हो गया क्योंकि इस बाल्यावस्था से लेके वृद्धावस्था तक वही जीव और बुद्ध्यादिक हैं, फिर कहे वा सुने व्यवहारों में अक्षर, पद, और उनके अर्थादिकों का यथावत्



स्मरण क्यों नहीं होता। इस व्यवहार को हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं कि जब हम लोग परस्पर बात कहते और सुनते हैं, तब कुछ काल के पीछे बहुत-बहुत बातों के सुनने वा कहने में आनुपूर्वी से यथावत् स्मरण नहीं रहता। फिर जन्मान्तर के स्मरण में शंका करनी व्यर्थ ही है। और देखना चाहिए कि जागरितावस्था में वे ही जीव और बुद्ध्यादिक व्यवहार करते हैं। यह मेरा घर, द्वार, पिता, पुत्र, स्त्री, बन्धु, शत्रु और मित्रादिक हैं। ऐसा उस जीव को यथावत् स्मरण है और फिर जब स्वप्नावस्था होती है तब इनका उसी समय विस्मरण हो जाता है। फिर जब सुषुप्ति होती है, तब दोनों का व्यवहार विस्मृत हो जाता है। वे ही जीव और बुद्ध्यादिक हैं, परन्तु किञ्चित्-किञ्चित् देश और काल के भेद होने से पूर्व का व्यवहार विस्मृत हो जाता है। फिर पूर्व जन्म, देश, काल और शरीरादिक पदार्थ सब छूट जाते हैं। फिर उनके स्मरण की शंका जो करते हैं सो विचारवान् नहीं हैं।

**प्रश्न**—यह जन्म जो होता है सो एक वार ही होता है, दूसरी वार नहीं, क्योंकि यह दूसरा जीव है सो नया-नया उत्पन्न हो जाता है और शरीर धारण करता है जो कि पहिले शरीर धारण किया था, सो जीव फिर नहीं आता?

**उत्तर**—यह बात मिथ्या है, क्योंकि जो दूसरा जीव होता तो उसको पूर्व के संस्कार नहीं देख पड़ते। जैसेकि जिस पदार्थ का साक्षात् अनुभव बुद्धि में अवश्य आता है, फिर संस्कार से स्मृति उत्पन्न होती है और स्मृति से प्रवृत्ति वा निवृत्ति होती है। जैसे कि कोई संस्कृत को पढ़े और कोई अंगरेजी को। जो जिसको पढ़ता है, उसको उसके अक्षरादि क्रम से बुद्धि में सब संस्कार होते हैं साक्षात् देखने और सुनने से, अन्य का नहीं। फिर कालान्तर में कोई व्यवहार अथवा पुस्तक को देखता है, सो पूर्व दृष्ट वा श्रुत के संस्कार से स्मृति होती है कि यह पकार वा यकार है और इसका यह अर्थ है, क्योंकि मैंने पूर्व इसका अर्थ ऐसा पढ़ा वा सुना था। विना संस्कार के स्मृति कभी नहीं होती और विना स्मृति से यह ऐसा ही है वा नहीं, ऐसी प्रवृत्ति वा निवृत्ति कभी नहीं होती। सो एक ही जन्म होता, तो

जन्म समय से लेके बालकों के अनेक प्रकार के व्यवहार देखने में आते हैं। जैसे क्षुधा का ज्ञान और दुग्धादिकों से क्षुधा की निवृत्ति के हेतु इच्छा, फिर दुग्ध पीने की युक्ति और तृप्ति होने से दूध पीने की निवृत्ति तथा मल मूत्रादिकों के त्याग की युक्ति और कोई उसको कुछ मारै अथवा डरावै फिर उससे रोदनादिक की प्रवृत्ति, और प्रीति वाला, उनसे हास और प्रसन्नता की प्रवृत्ति इत्यादिक प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप व्यवहार विना पूर्व जन्म के संस्कार से कभी नहीं हो सकता। इससे पूर्व जन्म अवश्य मानना चाहिए।

**प्रश्न**—ये सब व्यवहार स्वभाव से होते हैं। जैसे कि अग्नि ऊपर चलता है और जल नीचे को। वैसे ही वे सब जीव को ज्ञान स्वरूप के होने से होते हैं।

**उत्तर**—जो स्वभाव से मानोंगे तो पूर्व कहे अनुभव, संस्कार और स्मृति तथा प्रवृत्ति वा निवृत्ति इनको छोड़ देओ। और जो छोड़ोगे तो कोई व्यवहार आप लोगों का सिद्ध न होगा। फिर पढ़ना पढ़ाना, बुरी बातों के छोड़ने का उपदेश तथा अच्छी बातों का उपदेश क्यों करते और कराते हो। और जो स्वभाव से मानोगे तो उसकी निवृत्ति कभी नहीं होगी। जैसै कि अग्नि और जल के स्वभाव की निवृत्ति नहीं होती। वैसे प्रवृत्ति को स्वभाव से मानोगे तो निवृत्ति कभी नहीं होगी। जो निवृत्ति को स्वभाव से मानोगे तो प्रवृत्ति कभी नहीं होगी और जो दोनों को मानोगे तो क्षण भंग और अनवस्था होगी। फिर आप लोगों में उन्मत्तता दोष आ जायगा। क्योंकि अग्नि की नीचे चलने में प्रवृत्ति कभी नहीं होती तथा जल की स्थूल के होने से ऊपर को प्रवृत्ति कभी नहीं होती। वैसे ही स्वभाव सब जानो।

**प्रश्न**—ईश्वर ने जैसा जिसका स्वभाव रचा है वैसा ही होता है।

**उत्तर**—यह बात भी ठीक नहीं। जो ईश्वर कारण होता है इन व्यवहारों में, तो ईश्वर के दयालु होने से सब ओषधियों का ज्ञान और परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का बोध तथा धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निवृत्ति ईश्वर ने सब जीवों में स्वभाव से क्यों नहीं रक्खी। और ईश्वर अन्यायकारी



भी हो जायगा क्योंकि किसी को राजा और धनाढ्य के घर में जन्म और किसी को असमर्थ और दरिद्र के घर में जन्म। तथा एक की बुद्धि बहुत अच्छी और दूसरे की जड़बुद्धि देता है। तथा एक रूपवान् और एक कुरूप तथा एक बलवान् और दूसरा निर्बल, एक पण्डित और दूसरा मूर्ख होता है। सो विना अच्छे कर्मों से उत्तम पदार्थों का देना और विना अपराध से भ्रष्ट पदार्थों का देना, इससे ईश्वर में पक्षपात आवेगा। पक्षपात के आने से ईश्वर अन्यायकारी हो जायगा और—

**कृतहानिरकृताभ्यागमश्च।**

ये दो दोष आ जायेंगे, क्योंकि अब जो कुछ किया जाता है उसकी हानि हो जायगी फिर जन्म के नहीं होने से। शरीर, इन्द्रियां, प्राण, और मन के नहीं होने से पाप पुण्यों का फल कभी नहीं भोग सकता। और जो पूर्व जन्म न मानेंगे तो विना किए सुख और दुःख की प्राप्ति कैसे होगी। वैषम्य और नैर्घृण्य, ये दो दोष ईश्वर में आ जायेंगे कि विना कारण से किसी को सुख दे दे और किसी को दुःख। यह विषमता ईश्वर में आवेगी। और जीवों को दुःखी देख के जिसको **घृणा** नाम दया नहीं आती इससे ईश्वर का दया जो गुण सो नष्ट हो जायगा और जो पूर्व तथा उत्तर जन्म होगा तो ईश्वर में कोई दोष नहीं आवेगा। क्योंकि जैसा जिसका पुण्य वा पाप, वैसा उसको सुख वा दुःख होगा। इससे ईश्वर न्यायकारी और दयालु भी यथावत् रहेगा। इससे पूर्व और पर जन्म अवश्य मानना चाहिए। सो पूर्व जन्मों की संख्या नहीं हैं क्योंकि जब से सृष्टि उत्पन्न भई हैं, तब से अनेक जन्म धारण करते-करते चले जाते हैं और जब तक मुक्ति नहीं होगी, तब तक स्थूल शरीर अवश्य धारण करेंगे।

**प्रश्न**—सुख वा दुःख राजा और दरिद्र को तुल्य ही देख पड़ता है क्योंकि जो राजा को सुख वा दुःख हैं, वे दरिद्रों को भी हैं। विचार करके देखें तो सुख वा दुःख सबको तुल्य ही देख पड़ता है।

**उत्तर**—ऐसा कहना योग्य नहीं, क्योंकि इच्छा के अनुकूल पदार्थों की प्राप्ति का होना सुख कहाता है और इच्छा के प्रतिकूल पदार्थों की प्राप्ति का होना दुःख कहाता है, सो हर्ष और प्रसन्नता सुख के पर्याय हैं

और शोक तथा अप्रसन्नता दु:ख के पर्याय हैं। जब राजादिक धनाढ्यों के गर्भवास में जीव आता है, उसी दिन से अनुकूल पदार्थों का सेवन होता है। फिर जन्म जब होता है तब अनेक ओषधादिक व्यवहारों की प्राप्ति होती है और विना इच्छा के भी अनेक पदार्थ अनुकूल प्राप्त होते हैं। वह जब दूध पीने की इच्छा करता है, तब विना इच्छा से भी मिश्री और सुगन्धादिक से युक्त दूध यथेष्ट मिलता है। और जब वह कुछ अप्रसन्न वा रोने लगता है, तब अनेक सेवक परिचारक लोग मधुर वचन और खिलौने से प्रसन्न शीघ्री ही कर देते हैं और फिर जब वह बड़ा होता है तब जिसके ऊपर दृष्टि करता है, वह हाथ जोड़ के अनुकूल वचन तथा अनुकूल व्यवहार करता है। सदा प्रसन्न उसको सब लोग रखते हैं, और वह रहता है। फिर जब कभी दु:खी भी होता है, तब अनुकूल वचन और ओषधादिकों से उसको प्रसन्न कर देते हैं। और जो विद्यावानों के गर्भवास में आता है, उसको भी अधिक सुख होता है। परन्तु कोई कभी उनमें से नष्ट बुद्धि के होने से दु:खी हो जाता है सो पूर्व जन्म के पापों से और इस जन्म के दुष्ट व्यवहारों से पीड़ित होता है।

और जो मूर्ख वा दरिद्र के गर्भवास में जीव आता है, उसी समय से उसको दु:ख होने लगते हैं। जब वह स्त्री घास वा लकड़ी को काटने लगती है, तब गर्भ में प्रहार के होने से जीव पीड़ित होता है। और कभी क्षुधातुर रहती है, कभी बहुत कुत्सित अन्न को खा लेती है, उससे भी उस जीव को अत्यन्त पीड़ा होती है। फिर जब जन्म होता है तब कोई प्रकार का औषध वा सुनियम तथा कोई परिचारक उस समय नहीं रहता, किन्तु मार्ग, वन वा खेत में प्राय: पाषाण की नांई गर्भ से बालक गिर पड़ता है। फिर वह स्त्री उसको पोंछ-पांछ के वस्त्र में बांध के पीठ में बांध लेती है। फिर कभी उस स्त्री को घास वा लकड़ी बेचने की शीघ्रता होती है, उस समय बालक दूध पीने के हेतु रोता है, सो दूध तो उसको नहीं मिलता, परन्तु वह स्त्री उस बालक को थपेड़ा मारती है। फिर अधिक-अधिक जब रोता है तब अधिक-अधिक मारती है। फिर रोता रहता है परन्तु दूध नहीं पिलाती। फिर वह जब कुछ बड़ा होता है, तब उसको यथावत् खाने



को भी समय के ऊपर नहीं रहता। फिर वह मंजूरी करता है, तो भी उसको यथावत् इच्छा के अनुकूल नहीं मिलता और सदा उस को सुख की तथा उत्तम पदार्थों के प्राप्ति की इच्छा होती है, परन्तु प्राप्ति के नहीं होने से सदा दु:खी रहता है। जो ऐसा कहता है कि सुख वा दु:ख सबको तुल्य है, सो पुरुष विचारवान् नहीं है, क्योंकि सुख वा दु:ख प्रत्यक्ष ही अधिक वा न्यून देख पड़ते हैं।

**प्रश्न**—जब पहिले-पहिले ही सृष्टि भई थी, तब उससे पूर्व जन्म तो किसी का नहीं था। फिर उस समय अधिक वा न्यून राजा अथवा दरिद्रादिक क्यों भए थे। इससे जाना जाता है कि जैसे पहिले जन्म में भये थे। इससे आज काल पहिला ही जन्म है सो अधिक न्यून बन जाओ। परन्तु एक-एक जन्म ही विचार में आता है, बहुत जन्म नहीं।

**उत्तर**—आदि सृष्टि में सब मनुष्य उत्पन्न भए थे, न कोई राजा, न कोई प्रजा, न मूर्ख, न पण्डित इत्यादिक भेद नहीं थे। इससे आदि सृष्टि में दोष नहीं आया।

**प्रश्न**—जैसे आदि सृष्टि में दुग्ध पानादिक व्यवहार सुख और दु:ख आदिक प्रवृत्ति वा निवृत्ति भई थी, वैसे आज काल भी होती है। फिर वह जो आपने कहा कि अनुभवादिकों से विना प्रवृत्ति वा निवृत्ति नहीं होती, सो बात विरुद्ध हो गई।

**उत्तर**—विरुद्ध नहीं होती, क्योंकि आदि सृष्टि में गर्भवास से उत्पत्ति नहीं भई थी और किसी की बाल्यावस्था भी न थी। किन्तु सब स्त्री और पुरुषों की युवावस्था ही ईश्वर ने रची थी। फिर वे उस समय अच्छा वा बुरा कुछ नहीं जानते थे। जहाँ जिसका नेत्र था अथवा बुद्ध्यादिक जिस बाह्य पदार्थ में युक्त भए उसको टक-टक देखते थे। परन्तु यह अच्छी वा बुरी, ऐसा नहीं जानते थे। परन्तु प्राण, शरीर अथवा इन्द्रिय इनमें चेष्टा गुण था। ऐसा नहीं जानते थे कि ऐसे चेष्टा करनी वा न करनी। फिर चेष्टा होने लगी। बाह्य पदार्थों के साथ स्पर्शादिक व्यवहार होने लगे। उनमें से किसी ने कुछ पत्ता वा फूल वा घास स्पर्श किया वा जीभ के ऊपर रक्खा तथा दातों से चबाने लगे, उसमें से कुछ भीतर चला गया कुछ बाहर गिर पड़ा।

उसको देखके दूसरा भी ऐसा करने लगा। फिर करते-करते व्यवहार बढ़ता चला तथा संस्कार भी होते चले। होते-होते मैथुनादिक व्यवहार भी होने लगे। सो पांच वर्ष तक उस समय किसी को पाप वा पुण्य नहीं लगता था। वैसा ही आजकाल भी पांच वर्ष तक बालकों को पाप पुण्य नहीं लगता। फिर व्यवहार करते-करते अच्छा बुरा भी कुछ-कुछ जानने लगे। फिर परस्पर उपदेश भी करने लगे कि यह अच्छा है यह बुरा है। और परमेश्वर ने भी उक्त पुरुषों के द्वारा वेद विद्या का प्रकाश किया। वे वेद द्वारा मनुष्यों को उपदेश भी करने लगे। उनके उपदेश को किसी ने सुना और किसी ने न सुना। सुनके भी किसी ने विचारा और किसी ने न विचारा। परन्तु बहुत मनुष्य कुछ-कुछ अच्छा बुरा जानने लगे। फिर आगे-आगे मैथुनी सृष्टि होने लगी। फिर उन बालकों को भी उपदेश और संस्कार होने लगे सो आज तक अनेक प्रकार के पाप पुण्यों से व्यवहार भिन्न-भिन्न होते आए हैं। सो हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। इससे आगे के संस्कारों का अनुमान कर लेते हैं और पीछे जो-जो संस्कारों से व्यवहार होंगे उनका भी अनुमान हम लोग करते हैं, इस मध्यस्थ व्यवहार को प्रत्यक्ष देखने से।

**प्रश्न**—परमेश्वर में विषमता दोष तो आता है, क्योंकि आदि सृष्टि में बहुत जीवों को मनुष्य शरीर दिए, बहुतों को पश्वादिक के शरीर दिए। सो मनुष्यों का शरीर तो उत्तम है और पश्वादिकों का नीच। और आदि सृष्टि में मनुष्यों ने एक कर्म क्यों नहीं किया? भिन्न-भिन्न कर्म करने से भी यह जाना जाता है कि जैसे प्रथम शरीरों के देने और कर्मों के करने में विषमता भई थी, वैसे आजकाल भी होती है। इससे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता और ईश्वर के ऊपर कोई नहीं है। इससे जैसी उसकी इच्छा वैसा करता है। और जो वह करता है सो अच्छा ही करता है, परन्तु हमारी बुद्धि छोटी है, इससे समझने में नहीं आता?

**उत्तर**—अपने-अपने स्थान में सब शरीर अच्छे हैं। कोई पदार्थ परमेश्वर ने बुरा नहीं रचा। परन्तु उनके परस्पर मिलने से कहीं गुण हो जाता है, कहीं दोष होता है। सो जिस समय आदि सृष्टि भई थी, उस समय मनुष्यों और पश्वादिकों में कुछ विशेष नहीं था। विशेष तो पीछे



से भया है। सो जितने शरीर रचे हैं, वे सब जीवों के कर्म भोग करने के हेतु रचे हैं। सो ईश्वर नहीं रचता तो वे शरीर कैसे होते। इससे प्रथम ही ईश्वर ने सब व्यवस्था कर रक्खी है कि जैसा जो कर्म करै सो वैसा ही जन्म सुख वा दुःख को प्राप्त होवै। और एक-एक वार विना संस्कारों से भी मनुष्य का शरीर मिलेगा, क्योंकि सब शरीरों से मनुष्य का शरीर उत्तम है। और मनुष्य ही के शरीर में पाप और पुण्य लगता है, अन्य शरीर में नहीं। और जो यह मनुष्य का शरीर है, सब जीवों के लिए है, क्योंकि सबको प्राप्त होता है, वैसे ही सब कीट पतंगादिकों के शरीर भी हैं। जब मनुष्य शरीर में जीव अधिक पाप करता है और पुण्य थोड़ा, तब नरकादिक लोक और पश्वादिकों के शरीरों को प्राप्त होता है। जब उसका पाप और पुण्य तुल्य होते हैं, तब मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है। और जब पुण्य अधिक करता है और पाप थोड़ा, तब देवलोक और देवादिकों का शरीर उस जीव को मिलता है। उसमें जितना अधिक पुण्य उसका फल जो सुख उसको भोग के जब पाप पुण्य तुल्य रह जाते हैं, तब फिर मनुष्य का शरीर धारण करता है। इन कर्मों में तीन भेद हैं। एक मन से, दूसरा वाणी से और तीसरा शरीर से कर्म करता है। इन तीनों में से एक-एक के तीन-तीन भेद हैं सत्व, रज और तमोगुण के भेद से। सो जब मन से सत्त्व गुण कि शान्त्यादिक गुणों से युक्त होके उत्तम कर्म करता है, तब देव मनुष्य और पश्वादिकों में वह जीव रहता है, परन्तु मन में प्रसन्नता ही उसको रहती है। और रजोगुण से युक्त होके मन से जब पुण्य वा पाप करता है तब देव मनुष्य पश्वादिकों में मध्यम ही वह होता है, उत्तम नहीं। किन्तु उत्तम तो सत्व गुणवाला होता है क्योंकि रजोगुण के कार्य लोभ द्वेषादिक होते हैं। तमोगुण प्रधान जिस पुरुष को होता है उसको मोह, आलस्य, प्रमाद, क्रोध और विषादादिक दोष होते हैं। वह प्रायः पाप वा पुण्य अधम ही करेगा। इससे देव मनुष्य और पश्वादिकों में नीच शरीर में प्राप्त होगा और जो वचन से पाप करेगा तो मृगादिक योनि को प्राप्त हो जायगा। फिर सदा वह शब्दों से त्रासित ही रहेगा। क्योंकि जो जिससे पाप करता है वह उसी से भोग करता है। जब शरीर से जीव पाप करते हैं वे

वृक्षादिक स्थावर शरीर को प्राप्त होते हैं। इसमें मनु भगवान् के श्लोक लिखते हैं सो जान लेना।

**मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।**
**वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्॥ १॥**

—मनु० [१२.८]

यह जीव मन, वाणी और शरीर से शुभ नाम पुण्य, अशुभ नाम पाप करता है, सो जिससे करता है, उसी से भोग भी करता है॥ १॥

**शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतान्नरः।**
**वाचिकैःपक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥ २॥**

—मनु० [१२.९]

जब शरीर से पाप करता है, तब वृक्षादिक स्थावर शरीर को प्राप्त होता है। वचन से किए पापों से पक्षी और मृगादिक योनि को प्राप्त होता है, और मन से किए पापों से नीच चाण्डालादिक योनि को प्राप्त होता है॥ २॥

**यो यदैषां गुणो देहे साकल्ये नातिरिच्यते।**
**स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्॥ ३॥**

—मनु० [१२.२५]

जो गुण जिसके शरीर में प्रधान होता है, उससे युक्त होके जीव उस गुण के योग्य कर्म को करता है और गुण भी उसको कराता है॥ ३॥

**सत्त्वं ज्ञानं तमो ज्ञानं रागद्वेषौजःस्मृतम्।**
**एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः॥ ४॥**

—मनु० [१२.२६]

सत्त्वगुण का कार्य ज्ञान है, तमोगुण का कार्य अज्ञान और रजो गुण का कार्य राग और द्वेष है। ये तीन गुण और इनके तीन कार्य सब भूतों में व्याप्त हैं, क्योंकि इसी का नाम प्रकृति और कारण शरीर है॥ ४॥

**तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्।**
**प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्॥ ५॥**

—मनु० [१२.२७]



जिस पुरुष का चित्त जब प्रसन्नता युक्त रहै तथा प्रशान्त की नांई और शुद्ध की नांई, तब उसको सत्वगुण और सत्व प्रधान पुरुष को जानना॥ ५॥

**यत्तुदुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।**
**तद्रजः प्रतिघं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्॥ ६॥**

—मनु० [१२.२८]

जिसका चित्त दुःख युक्त रहै, हृदय में प्रसन्नता भी न होवै, सदा चित्त चंचल होय, विषयों की ओर दौड़ने लगे और वशीभूत न हो, वह रजोगुण प्रधान पुरुष होता है॥ ६॥

**यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।**
**अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्॥ ७॥**

—मनु० [१२.२९]

जो चित्त मोह संयुक्त रहै, हृदय में कुछ विचार भी सत्यासत्य न होय, विषय की सेवा में फंसा रहै, ऊहापोह जिसमें न होय और जैसा अन्धकार में पदार्थ वैसा, कुछ जानने में भी न आवै, उस जीव को तमोगुण प्रधान और तमोगुण जानना॥ ७॥

**त्रयाणामपि चैतैषां गुणानां यः फलोदयः।**
**अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥ ८॥**

—मनु० [१२.३०]

इन तीन गुणों का उत्तम, मध्यम और नीच जो फलोदय उसको आगे कहते हैं, यथावत्॥ ८॥

**वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुणलक्षणम्॥ ९॥**

—मनु० [१२.३१]

वेदाभ्यास, तप नाम योगाभ्यास, ज्ञान=सत्यासत्य विचार [बाहर-भीतर की पवित्रता], जितेन्द्रियता, धर्म का अनुष्ठान, आत्मा का विचार तथा परमेश्वर का भी, ये जिसमें गुण होवैं। उसको उत्तम सात्विक पुरुष और सत्व गुण का लक्षण है॥ ९॥

**आरम्भरुचिताधैर्य्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।**

**विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्॥ १०॥**

—मनु० [१२.३२]

कार्यों के आरम्भ में अत्यन्त रुचि, अधैर्य, असत्कार्यो का स्वीकार और निरन्तर विषय सेवा में फसा रहै, यह रजोगुण अधिक पुरुष वाले का लक्षण है॥ १०॥

**लोभः स्वप्नो धृतिः क्रौर्यन्नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।**
**याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्॥ ११॥**

—मनु० [१२.३३]

अत्यन्त लोभ, अत्यन्त निद्रा, धैर्य का लेश नहीं, क्रूरता नाम दया रहित, नास्तिक्य नाम विद्या, धर्म और ईश्वर को नहीं मानना, भिन्नवृत्तिता नाम छिन्न भिन्न जिसकी बुद्धि, नित्य दान-दक्षिणा और भिक्षा ग्रहण में प्रीति और प्रमाद नाम नाना प्रकार का उपद्रव करना, यह तमोगुण और तमोगुण पुरुष वाले का लक्षण है॥ ११॥

और संक्षेप से आगे तीनों गुणों के लक्षण कहे जाते हैं।

**यत्कर्मकृत्वा कुर्वंश्च करिष्यँश्चैव लज्जति।**
**तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम्॥ १२॥**

—मनु० [१२.३५]

जिस कर्म को करके, करता भया और करने की इच्छा में लज्जा और भय होता है, वह पुरुष और कर्म तमोगुणी हैं क्योंकि पाप में ही रहेगा॥ १२॥

**येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्।**
**न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयन्तु राजसम्॥ १३॥**

—मनु० [१२.३६]

लोक में कीर्ति के हेतु इच्छा से भाट आदिक पुरुषों को पदार्थ देना और ऐसा काम मैं करूँ जिससे कि मेरी इस लोक में प्रशंसा होय सो मिथ्या प्रशंसा का चाहना अन्याय से और उसमें धन तथा पदार्थ के नाश होने में कुछ सोच विचार न करना यह, रजोगुणी पुरुष है। यह घोर दुःख में सदा पड़ा रहता है॥ १३॥



**यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।**
**येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्वगुणलक्षणम्॥ १४॥**

—मनु० [१२.३७]

जो पुरुष सब प्रकारों से और उत्तम पुरुषों से जानने को चाहता है तथा धर्म के आचरण में कोई हानि वा निन्दा होय तो भी जिसको लज्जा वा भय न होय और जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न होय अर्थात् धर्माचरण से, उसको कभी न छोड़ै। यह सात्विक पुरुष का लक्षण है॥ १४॥

**तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।**
**सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्॥ १५॥**

—मनु० [१२.३८]

जो काम में फसा रहता है, वह तमोगुणी पुरुष है तथा धनादिक अर्थ ही को परम पदार्थ मानता है, वह वह रजोगुणी है और जो धार्मिक अर्थात् धर्म ही में जिसकी निष्ठा है, वह सत्त्वगुणी पुरुष है। तमोगुणी से रजोगुणी, रजोगुणी से सत्वगुणवाला पुरुष श्रेष्ठ है।

इनमें से सत्वगुणवाला धार्मिक होके पुण्य ही करेगा, रजोगुणवाला पाप पुण्य दोनों करेगा तथा तमोगुणवाला पाप ही करेगा। इनको जैसे-जैसे जन्म और सुख वा दुःख होते हैं सो लिखा जाता है॥ १५॥

**देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।**
**तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥ १६॥**

—मनु० [१२.४०]

जो सात्विक पुरुष होते हैं वे देव भाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् विद्वान् धार्मिक और बुद्धिमान् होते हैं तथा उत्तम पदार्थ और उत्तम लोकों को भी प्राप्त होते हैं। तथा जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम लोक मनुष्यत्व तथा बुद्ध्यादिक पदार्थों को प्राप्त होके मध्यम रहते हैं, उत्तम नहीं। और जो तमोगुणी होते हैं वे नीचता, पश्वादिक शरीर तथा बुद्ध्यादिक में भी नीच भाव रहता है। इन तीनों के तीन गुणों से उत्तम, मध्यम और नीचता से एक-एक गुण के तीन-तीन भेद होते हैं और वैसे ही उनको फल मिलते हैं। सो आगे-आगे लिखा जाता है॥ १६॥

**स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः।**
**पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः॥ १७॥**

—मनु० [१२.४२]

स्थावर वृक्षादिक, कृमि, कीट, मत्स्य, तथा कच्छपादिक जलजन्तु, गाय आदिक पशु तथा मृगादिक वन के पशु, जिसको अत्यन्त तमोगुण होता है, वह ऐसे शरीरों को प्राप्त होता है॥ १७॥

**हस्तिनश्च तुरंगाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः।**
**सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः॥ १८॥**

—मनु० [१२.४३]

हाथी, घोड़े, शूद्र जो मूर्ख, म्लेच्छ नाम कसाई आदिक, गर्हित नाम जो निन्दित कर्म करनेवाले, उनसे कुछ जो नीच होते हैं, वे सिंह, व्याघ्र, वराह नाम सूवर, जो पुरुष मध्य तमोगुणवाला होता है वह ऐसे जन्मों को पाता है॥ १८॥

**चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः।**
**रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः॥ १९॥**

—मनु० [१२.४४]

चारण नाम दूत दूती और गानेवाले जो कि वेश्याओं के पास गण रहते हैं। सुपर्ण जो हंसादिक अच्छे उत्तम पक्षी, दाम्भिक पुरुष अर्थात् सम्प्रदाय वाले, मिथ्या उपदेश करनेवाले तथा अहंकार अभिमानादिक गुणयुक्त, राक्षस नाम छल, कपट करनेवाले, पिशाच नाम सदा मलिन रहैं, ऐसे जन्मों को प्राप्त होते हैं जिनमें कि थोड़ा तमोगुण रहता है॥ १९॥

**झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः।**
**द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः॥ २०॥**

—मनु० [१२.४५]

झल्ला नाम तड़ाग, कूप आदिक खोदने वाले, मल्ला नाम मल्लाह और कुश्ती करने वाले, शस्त्रवृत्ति-पुरुष जो कि शस्त्रों को बनाने और सुधारने वाले, जुआरी लोग और भांग, गांजा, अफीम तथा मद्य पीने में जो फसे रहते हैं, जिनको अत्यन्त रजोगुण है, वे इस प्रकार के होते



हैं॥ २०॥

**राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः।**
**वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः॥ २१॥**

—मनु० [१२.४६]

जिन पुरुषों में मध्यरजोगुण होता है वे राजा होते हैं तथा क्षत्रिय होते हैं अर्थात् शूरवीरादिक गुणवाले होते हैं, राजाओं के पुरोहित, वाद में प्रधान जो कि नाना प्रकार वाद विवाद करते हैं, वकील आदिक, युद्ध में प्रधान जो कि सिपाही होते हैं, यह रजोगुणियों की मध्यम गति है॥ २१॥

**गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये।**
**तथैवाप्सरसःसर्वा राजसीषूतमा गतिः॥ २२॥**

—मनु० [१२.४७]

गन्धर्व जो कि गानविद्या में कुशल, गुह्यक जो कि शिल्प और वादित्रों को बजाने में चतुर, यक्ष नाम बड़े धनाढ्य तथा विबुध नाम उक्त देवों के गण अर्थात् सेवक और अप्सरा अर्थात् रूपादिक गुण और चतुर स्त्री, जिनमें बहुत थोड़ा रजोगुण होता है उनको ऐसे जन्म मिलते हैं॥ २२॥

**तापसा यतयो विप्रा ये वैमानिका गणाः।**
**नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः॥ २३॥**

—मनु० [१२.४८]

तापस नाम कपट छलादिक दोषों के विना कृच्छ्रचान्द्रायणादिक व्रत और योगाभ्यास करने वाले, यति नाम यत्न और विचार करने में प्रवीण, विप्र नाम वेद का पाठ अर्थ और तदुक्त कर्मों के जानने और करने वाले, वैमानिक गण जो कि आकाश में यानों को चलाने वाले और रचने वाले, नक्षत्र जो कि गणित विद्या के जानने वाले और नक्षत्र लोक में रहने वाले और दैत्य जो कि विद्या, शान्ति और शूरवीरादिक गुण युक्त, जो थोड़े सात्विक गुणयुक्त होवैं, उनमें ऐसे गुण होते हैं॥ २३॥

**यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः।**
**पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः॥ २४॥**

—मनु० [१२.४९]

यज्ञ करने में जिनकी अत्यन्त प्रीति, ऋषि नाम यथार्थ मन्त्रों के अभिप्राय जानने वाले, देव नाम महादेव और इन्द्रादिक दिव्यगुणवाले, चारों वेद, ज्योतिष शास्त्र और चन्द्रादिक ज्योति लोक, वत्सर, काल और सूर्य्य लोक, पितर जो पिता की नांई सब मनुष्यों के हित करने वाले और पितृलोक में रहनेवाले, साध्य जो अभिमान हठादिक दोष रहित होके धर्म और विद्यादिक गुणों को सिद्ध करने वाले तथा नारायण और विष्णु आदिक देव जो वैकुण्ठादिक में रहते थे, जो मध्य सत्वगुण से ऐसे कर्म करते हैं उनकी ऐसी गति होती है॥ २४॥

**ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च।**
**उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः॥ २५॥**

—मनु० [१२.५०]

ब्रह्मा ब्रह्मज्ञानपर्यन्त विद्या का जानने वाला अथवा ब्रह्मलोक का अधिष्ठाता और उस लोक को प्राप्त होने वाले प्रजापति और विश्वसृज जो कि धर्म और विद्या से सबके पालन करने वाले वा सिद्ध जो कि परमाणु के संयोग वा वियोग करने वाले और उस विद्या वाले अथवा प्रजापति लोक के अधिष्ठाता वा उनको प्राप्त होने वाले, धर्म, महान् बुद्धि, अव्यक्त नाम प्रकृति यह सत्वगुण की उत्तम गति है॥ २५॥

यहाँ से आगे कर्म और उपासना का कोई फल भोग नहीं है सिवाय परमेश्वर के।

**इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च।**
**पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः॥ २६॥**

—मनु० [१२.५२]

इन्द्रियों का प्रसंग अर्थात् अत्यन्त विषय सेवा में फसने और धर्म के त्याग से जो जीव अधम और विद्याहीन हैं अत्यन्त दुःखों को पाते हैं। दुष्ट-दुष्ट शरीरों को प्राप्त होते भये इन प्रकारों से दुष्ट वा श्रेष्ठ कर्मों के करने से दुःख वा सुख जीवों को होते हैं।

यही ईश्वर की आज्ञा है कि जो जैसा कर्म करै वह वैसा भोगै। इससे ईश्वर में कुछ पक्षपात दोष नहीं आता क्योंकि जैसा जो कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है और ईश्वर न्यायकारी है सो सदा न्याय ही करता है अन्याय कभी नहीं। इससे जैसा चाहै ऐसा करना नहीं आता ईश्वर में। क्योंकि वह सत्य संकल्प है और निर्भ्रम उसका ज्ञान है। इससे जैसी व्यवस्था न्याय से करनी उचित थी वैसे ही किया है अन्यथा नहीं। ये दोष सब जीवों में हैं कि पहिले कुछ और व्यवस्था करैं पीछे और, क्योंकि जीवों में भ्रमादिक दोष होते हैं और कोई व्यवहार में निर्भ्रम भी होते हैं सर्वत्र नहीं। और सर्वत्र निर्भ्रम तब जीव होता है कि जब परब्रह्म का साक्षात् विज्ञान होता है और उसी का नित्य योग अन्यथा नहीं। सर्वत्र निर्भ्रम तो सनातन एक ईश्वर ही है। इससे क्या आया कि एक जीव अनेक जन्म धारण करता है यह सिद्ध भया।



**प्रश्न**—ईश्वर एक जीव को अनेक जन्म की व्यवस्था क्यों करता है क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है नित्य नए-नए जीवों को उत्पन्न क्या नहीं कर सकता?

**उत्तर**—ईश्वर अवश्य सर्वशक्तिमान् है परन्तु अन्याय कभी नहीं करता। जो जीव दूसरा शरीर धारण नहीं करेगा तो एक जन्म में किए पाप वा पुण्य इन का भोग नहीं हो सकेगा। फिर उस का न्याय भी नहीं होगा कि पाप करने वाले को दुःख और पुण्य करने वाले को सुख होना चाहिए। सो विना शरीर से भोग ही नहीं हो सकता। इससे अनेक जन्म अवश्य मानना चाहिए।

**प्रश्न**—पाप वा पुण्य का भोग विना शरीर से भी हो सकता है पश्चात्ताप करने से, सो जीव मन से जितने पाप किए होंगे, उनका भोग मन से शोक करके भोग कर लेगा।

**उत्तर**—ऐसा न कहना चाहिए क्योंकि पश्चात्ताप जो होता है सो भविष्यत्पापों का निवर्तक होता है किये भए पापों का नहीं। जैसे कोई पुरुष नित्य कूप को दौड़-दौड़ के डांक जाय, फिर कभी कूप के पार के किनारे पर नहीं पहुँचे, किन्तु कूप में गिर जाय, उसमें उसका हाथ वा गोड़ टूट जाय, फिर उसको कोई बाहर निकाल ले, फिर वह बहुत शोच करै कि मैं ऐसा काम न करता तो मेरी यह बुरी दशा क्यों होती, सो मैं बड़ा

मूर्ख हूँ। इससे क्या आता है कि आगे को वह ऐसा कर्म न करेगा, परन्तु जो कर चुका, उसकी निवृत्ति कभी नहीं होगी। सो पश्चात्ताप जो होता है सो कृत पाप का निवर्त्तक नहीं होता। और जैसे कोई मनुष्य आंख से अन्धा और कान से बहिरा होय उसके पास सर्प वा व्याघ्र आ जाय अथवा कोई गाली दे वा उसकी निन्दा करै तो भी उसको कुछ दु:ख नहीं होता, ऐसे ही विना शरीर धारण से जीव सुख वा दु:ख नहीं भोग सकता, क्योंकि जब मूर्त्तिमान् पदार्थ होता है तब वह शीत उष्णादिक व्यवहारों को भोग कर सकता है अन्यथा नहीं। इससे क्या आया कि पश्चात्ताप से कृत पापों की निवृत्ति नहीं हो सकती।

**प्रश्न**—जीव जिन कर्मों से सुख होवै वैसा कर्म क्यों नहीं करता?

**उत्तर**—विना विद्यादिक गुणों से कुछ नहीं यथावत् जान सकता। विद्यादिक गुण विना परिश्रम से नहीं होते।

एक व्यवहार ऐसा है कि जिसमें प्रथम सुख होय और पीछे दु:ख, सो विषयों में फस के जीव दु:खित होता है क्योंकि अत्यन्त विषय सेवा से बल-बुद्धि और धनादिक नष्ट होते हैं और ज्वरादिक अनेक रोगों से युक्त होके फिर दु:ख ही पाता है।

दूसरा ऐसा व्यवहार है कि प्रथम तो दु:ख होय और पीछे सुख, सो व्यवहार यह है कि जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्याश्रम, विद्या की प्राप्ति, सत्पुरुषों का संग और धर्म का अनुष्ठान इत्यादिक जान लेना। इनकी प्राप्ति के साधनों में प्रथम दु:ख होता है, और जब ये प्राप्त हो जाते हैं, तब अत्यन्त उसको सुख होता है।

तीसरा व्यवहार ऐसा होता है कि जिसमें सदा दु:ख ही रहै, सो मोह है जो धन, पुत्र और स्त्री आदिक अनित्य पदार्थों में फस के विद्यादिक श्रेष्ठ गुणों का त्याग करता है, वह सदा दु:खी रहता है।

चौथा यह व्यवहार है कि जिसमें सदा सुख ही रहता है, दु:ख कभी नहीं, सो मुक्ति है।

विद्यादिक गुणों के नहीं होने से सुख के कर्मों को जानता ही नहीं फिर कैसे कर सकेगा, कभी न कर सकेगा। और ईश्वर का करना सब



अच्छा ही है क्योंकि ईश्वर न्यायकारित्वादिगुण युक्त रहता है। यह हमको दृढ़ निश्चय है कि ईश्वर अन्याय कभी नहीं करता। इतना हमलोग बुद्धि से यथावत् जानते हैं ईश्वर जैसा चाहै वैसा नहीं करता, जो करता है सो न्याय युक्त ही करता है, अन्यथा नहीं। सो इससे यह सिद्ध भया कि अनेक जन्म होते हैं। सो जीव अविद्यादिक दोषों से युक्त होके विषय में फसा रहता है। इससे जीव को विवेकादिक गुण नहीं होने से बन्धन भी इसका नष्ट नहीं होता। जब यथावत् परमेश्वर पर्यन्त पदार्थ विद्या होती है, तब यह सब दु:खों से छूट के मुक्ति को प्राप्त होता है।

**प्रश्न**—प्रथम आप कह चुके हैं कि विना शरीर से सुख वा दु:ख भोग नहीं हो सकता, सो मुक्ति में भी जीव का शरीर रहता होगा और जो कहें कि नहीं रहता तो मुक्ति का भोग कैसे कर सकेगा और जो कर सकता है तो हमने कहा था कि मन में पश्चात्ताप से पाप का फल भोग लेता है। यह बात मेरी सत्य होयगी।

**उत्तर**—जीव ही मुक्ति में रहता है और शरीर नहीं, क्योंकि पहिले जो लिंग शरीर कहा था वही जीव के साथ रहता है सो अत्यन्त सूक्ष्म है और सब पदार्थों से उत्तम और निर्मल है। जैसे अग्नि से लोहा तप्त होता है, उसमें अग्नि से भी अधिक दाह होता है। वैसा ही एक अद्वितीय चेतन परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है। उसकी सत्ता से युक्त जीव चेतन सदा रहता है, क्योंकि व्यापक से व्याप्य का वियोग कभी नहीं होता। जैसे आकाश में से सब स्थूल पदार्थों का वियोग कभी नहीं, मनुष्य और वायु आदिक जहाँ-जहाँ चलते-फिरते हैं, वहाँ-वहाँ आकाश का संयोग पूर्ण ही है। वैसे आकाशादिक पदार्थ भी परमेश्वर में व्याप्य हैं और परमेश्वर सबमें व्यापक है। परमाणु और प्रकृति जो कि सूक्ष्म पदार्थों की अवधि है, इनसे सूक्ष्म आगे संसार के पदार्थ कोई नहीं हैं, परन्तु परमेश्वर उनसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और अनन्त है। जैसे आकाश किसी पदार्थ के साथ चलता फिरता नहीं, वैसे परमेश्वर भी पूर्ण के होने से जीवों के साथ चलता फिरता नहीं, किन्तु जीव सब अपने-अपने कर्मानुसार चलते फिरते हैं। परमेश्वर की सत्ता से धारित चेतन है॥

**दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।** —यह गौतम मुनि [कृतन्याय १.१.२] का सूत्र है।

मिथ्या ज्ञान जो कि मोह से अनेक प्रकार का होता है। यथावत् विद्या के होने से जब नष्ट हो जाता है तब—

**अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः॥**

—यह पतञ्जलि मुनि [कृतयोग २.३] का सूत्र है।

इसका यह अभिप्राय है कि अविद्या तो पहिले प्रतिपादन कर दी है, सोई सब दोषों का मूल है। द्रष्टा जो जीव, दर्शन जो बुद्धि, इन दोनों की एक स्वरूपता होनी कि मैं बुद्धि हूँ, ऐसा अभिमान का होना सो अस्मिता दोष कहाता है।

**सुखानुशयी रागः॥ ३॥**

—[यह पतञ्जलि मुनि [कृतयोग २.७] का सूत्र है]

जिस सुख का पहिले अनुभव साक्षात् किया होय, उसमें अत्यन्त सतृष्णा नाम लोभ कि यह मुझको अवश्य मिलना चाहिए। यह **[ राग ]** दूसरा दोष है। क्योंकि अनित्य पदार्थों में अत्यन्त प्रीति के होने से नित्य पदार्थ में जीव की इच्छा कभी नहीं होती।

**दुःखानुशयी द्वेषः॥ ४॥**

—[यह पतञ्जलि मुनि [कृतयोग २.८] का सूत्र है]

जिस दुःख का पहिले अनुभव किया होय, उसकी स्मृति के होने से उसके हनन की इच्छा और उससे जो क्रोध वह **द्वेष** कहाता है। यह तीसरा दोष है।

**स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः॥ ५॥**

—[यह पतञ्जलि मुनि [कृतयोग २.९] का सूत्र है]

सब प्राणियों को यह आशा नित्य बनी रहती है कि मैं सदा रहूँ और मेरे ये पदार्थ सदा बने रहैं, नाश कभी न होवै, सो कृमि से ले के सब प्राणियों को और विद्वानों को भी यह आशा नित्य बनी रहती है। यह चौथा **अभिनिवेश** दोष कहता है।

और अविद्या तो प्रथम दोष है।



ये पाँच दोष और इनसे उत्पन्न भए असंख्यात दोष जीवों में रहते हैं। इससे जीवों की मुक्ति भी नहीं हो सकती, परन्तु विवेकादि गुणों से जब मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है। तब अविद्यादिक दोष भी नष्ट हो जाते हैं।

**प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ इति॥ ६॥** —गोतम वचन।

बुद्धि और शरीर इन्हीं से जीव आरम्भ करता है सो प्रवृत्ति कहाती है, परन्तु जिसके अविद्यादिक दोष नष्ट हो जाते हैं, वह उनमें प्रवृत्त ही नहीं होता, किन्तु विद्यादिक गुणों में प्रवृत्त होता है। इससे उसको मिथ्या प्रवृत्ति कि परमेश्वर से भिन्न पदार्थ की जो इच्छा सो नष्ट हो जाती है। फिर वह योगाभ्यास, विचार और पुरुषार्थ से युक्त अत्यन्त होता है। उससे अनेक परमाणु पर्यन्त सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञाननेत्र से यथावत् साक्षात्कार होता है। फिर अत्यन्त जब विचार और योगाभ्यास करता है, तब परमानन्द सर्वव्यापक सर्वाधार जो परमेश्वर उसको अपने ही में व्याप्त देखता है। फिर उसको स्थूल शरीर धारण करने का आवश्यक नहीं, किञ्च एक परमाणु को भी शरीर बना के रह सकता है। तब इसका जन्म मरणादिक कारण जो अविद्यादिक दोष उनसे किये गये थे, जो कर्म के भोग सब नष्ट हो जाते हैं। और आगे जो कर्म किए जाते हैं, ये सब ज्ञान ही के वास्ते करता है। सो अधर्म कभी नहीं करता, किन्तु धर्म ही करता है। उससे ज्ञान फल ही वह चाहता है, अन्य नहीं। फिर उसके जन्म मरण का जो मूल अविद्या सो ज्ञान से नष्ट हो जाती है, फिर वह जन्म धारण नहीं करता। और उसकी बुद्धि, मन, चित्त, अहङ्कार, प्राण, और इन्द्रिय ये सब दिव्य शुद्ध पदार्थ जीव के सामर्थ्य रूप रह जाते हैं। और दिव्य ज्ञानादिक गुण नित्य उसमें रहते हैं और आप दिव्य शुद्ध निर्विकार रह जाता है।

**बाधनालक्षणं दुःखम्॥ ७॥** —गोतम० [न्याय० १.१.२१]

जितनी बाधना अर्थात् इच्छाभिघात वह सब दुःख कहाता है॥ ७॥

**तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः॥ ८॥** —गोतम० [न्याय० १.१.२२]

दुःखों की अत्यन्त जो निवृत्ति उसको मोक्ष कहते हैं कि सब दुःखों से छूट जाना और सदा आनन्द परमेश्वर को प्राप्त होके रहना, फिर

लेशमात्र भी दुःख का सम्बन्ध कभी नहीं होता।

सो केवल एक परमेश्वर के आधार में वह जीव रहता है और किसी का सम्बन्ध उसको नहीं। सो परमेश्वर के योग से उस जीव में सर्वज्ञ त्रिकाल ज्ञान सब पदार्थों का गुण और दोष इनका सत्य-सत्य बोध भी सदा रहता है। इससे जिस दुःख सागर संसार से बड़े भाग्य से छूटके परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त भया है, सो यथावत् जानता है कि परमेश्वर के योग से अन्यत्र दुःख ही है, सुख कभी नहीं। फिर वह इस दुःख में कभी नहीं गिरता।

जैसे चिंवटी अत्यन्त चञ्चल होती है, फिर वह नाना प्रकार के कणों को ले-ले के अपने बिल में संचय करती जाती है। उसको स्थिरता वा सन्तोष कभी नहीं होता। वह कभी भाग्य और पुरुषार्थ से मिश्री के ढेले को प्राप्त होय, उसका स्वाद लेके आनन्दित हो जाती है। फिर वह अपने घर और संचय को छोड़ के उसी में निवास करती है। उसको खींचने का सामर्थ्य नहीं, सदा उसको छोड़ भी नहीं सकती उत्तम पदार्थ के होने से। वैसे जीव भी परमेश्वर से भिन्न पदार्थों में सदा भ्रमण करता है तृष्णा के बस होके। परन्तु जब परमेश्वर का उसको योग होता है तब सब तृष्णादिक दोष उसके नष्ट हो जाते हैं। फिर पूर्ण काम और स्थिर होके परमेश्वर ही में रहता है। सो मुक्ति में परमेश्वर का आधार उसको होने से सदा परमानन्द मुक्ति के सुख को भोगता है और निराधार से विषय सुख वा दुःख और मुक्ति का आनन्द भी नहीं भोग सकता। इससे क्या आया कि विना स्थूल शरीर धारण से पाप वा पुण्य संसार में फल कभी नहीं भोग सकता और परमेश्वर के आधार के विना मुक्ति सुख भी नहीं भोग सकता। सो जो कहता है कि मन ही से पाप वा पुण्य भोगता है वा एक ही जन्म होता है, यह बात उसकी मिथ्या जाननी।

**प्रश्न**—वह मुक्तिप्राप्त जीव सदा बना रहता है वा कभी वह भी नष्ट हो जाता है?

**उत्तर**—इसका यह विचार है कि परमेश्वर ने जब सृष्टि रची है कि जब संसार का अत्यन्त प्रलय न होगा, तब भी वे मुक्त जीव आनन्द में



रहेंगे। और जब अत्यन्त प्रलय होगा, तब कोई नहीं रहेगा, ब्रह्म का सामर्थ्य रूप और एक परमेश्वर के विना। सो अत्यन्त प्रलय तब होगा कि जब सब जीव मुक्त हो जायेंगे, बीच में नहीं। सो अत्यन्त प्रलय बहुत दूर है, सम्भव मात्र होता है कि अत्यन्त प्रलय भी होगा। बीच में अनेक बार महाप्रलय होगा और उत्पत्ति भी होगी। इससे सब सज्जनों को अत्यन्त मुक्ति की इच्छा करनी चाहिए, क्योंकि अन्यथा कुछ सुख नहीं होगा। जब तक मुक्ति जीव को नहीं होती, तब तक जन्म मरणादिक दुःख सागर में डूबा ही रहेगा। और जो जल्दी मुक्ति कर लेगा सो अतुल आनन्द को पावेगा।

**प्रश्न**—मुक्ति एक जन्म में होती है वा अनेक जन्म में?

**उत्तर**—इसका नियम नहीं, क्योंकि जब मुक्ति होने का कर्म करता है तभी उसकी मुक्ति होती है अन्यथा नहीं। प्रथम सृष्टि में भी कोई जीव पहिले ही जन्म में मुक्त हो गया होय। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। उसके पीछे जो कोई मुक्त भया होगा वा होता है और होवैगा, सो बहुत जन्म ही में होगा मुक्त भी। सो मोक्ष अत्यन्त पुरुषार्थ से होता है, अन्यथा नहीं।

**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।**
**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥**

—यह मुण्डक [२.२.८] की श्रुति है।

इसका यह अभिप्राय है कि हृदय ग्रन्थि नाम अविद्यादिक दोष जब जिस जीव के नष्ट हो जाते हैं, तब विज्ञान के होने से सब संशय नष्ट हो जाते हैं। और जब संशय नष्ट हो जाते हैं, तब कर्म भी जीव के नष्ट हो जाते हैं कि जीव को फिर कर्तव्य कुछ नहीं रहता मुक्ति होने के पीछे। सो कर्म तीन प्रकार का होता है—एक क्रियमाण जो कि नित्य किया जाता है। दूसरा सञ्चित जो कि बुद्धि में संस्कार रूप सूक्ष्म रहता है। तीसरा प्रारब्ध जो नित्य भोग किया जाता है। इसके तीन भेद हैं—

**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥ ८॥**

—[पातञ्जलसूत्र २.१३]

इसका यह अभिप्राय है कि कर्मों के फल तीन होते हैं—जन्म, आयु

और भोग। परन्तु जब तक कर्मों का मूल अविद्यादिक रहते हैं, तब तक कर्मफल भोग भी रहता है। सो भी जैसा कर्म, वैसा जन्म, आयु और भोग उसके अनुसार होते हैं। जब जीव पुरुषार्थ से विद्या, धर्म और पातञ्जलशास्त्र की रीति से योगाभ्यास करता है, तब उसको यथोक्त विज्ञान होता है, तब मूल सहित कर्म छूट जाता है, क्योंकि उसने मुक्ति के वास्ते सब कर्म किए थे। जब मुक्ति होती है। तब उसको फिर कर्तव्य कुछ नहीं रहता।

**प्रश्न**—मुक्ति समय में जीव परमेश्वर में मिल जाता है, जैसे जल में जल वा नहीं?

**उत्तर**—जो जीव मिल जाता तो उसको मुक्ति का सुख कुछ नहीं



होता और मुक्ति के वास्ते जितने साधन किये जाते हैं, वे सब निष्फल हो जायेंगे। और मुक्ति क्या भई, किन्तु उसका नाश ही हो गया। इससे यह बात मिथ्या है कि जीव ब्रह्म में मिल जाता है। वह ब्रह्म अर्थात् सबसे जो परे है अवर कि जो अपने स्वरूप में व्याप्त है, जितना उसको यथावत् साक्षात् जानने से सब दु:खों से छूट जाता है। जो भावी, प्रारब्ध और दैव के भरोसे रहता है और आलस्य से कुछ कर्म अच्छा नहीं करता, वही जीव नष्ट है। और जो अत्यन्त पुरुषार्थ के ऊपर निश्चय करके उद्यम करता है, सोई जीव भाग्यशाली है, क्योंकि पुरुषार्थ ही से मुक्ति होती है। और यथावत् विवेक के होने से हानि वा लाभ में शोक वा हर्ष रहित होता है, वह पुरुषार्थी सर्वत्र सुखी रहता है, क्योंकि वह विद्या से सब पदार्थों को यथावत् जानता है।

सो सब सज्जनों को यही उचित है कि सदा पुरुषार्थ ही करना आलस्य कभी नहीं। पुरुषार्थ इसका नाम है कि जितेन्द्रियता, धर्मयुक्त व्यवहार, विद्या और मुक्ति जिससे होय और अन्य पुरुषार्थ नहीं, क्योंकि पुरुष के अर्थ जो करना है सोई **पुरुषार्थ** कहाता है। और जो अन्याय युक्त व्यवहार करते हैं, उसका नाम पुरुषार्थ नहीं। और परमेश्वर अत्यन्त दयालु है, जो जीव उसको प्राप्ति के हेतु तन, मन और धन से श्रद्धापूर्वक पुरुषार्थ करता है, उसको शीघ्र ही प्राप्त होता है कृपा से। विद्यादिक पदार्थों का उसके पुरुषार्थ के अनुसार प्रकाश होता है। फिर सदा आनन्दित मुक्ति में रहते हैं। सो सब पुरुषार्थों का फल मुक्ति है। इससे मुक्ति की चाहना उक्त प्रकार से अवश्य सबको करनी चाहिए।

यह विद्या, अविद्या, बन्ध और मुक्ति के विषय में संक्षेप से लिखा और जो विस्तार से देखा चाहै, सो वेदादिक सत्य शास्त्रों में देख लेवै।

इसके आगे आचार, अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य के विषय में लिखा जायगा॥

# दशम उपदेश

## [ आचार, अनाचार, भक्ष्य, अभक्ष्य विषय ]

**श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् निबद्धं स्वेषु कर्मसु।**
**धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः॥ १॥**

—मनु० [४.१५५]

श्रुति जो वेद, स्मृति जो छः शास्त्रादिक सत्यशास्त्र और मनुस्मृति उनमें जो सदाचार उसको सदा सेवन करैं और जितना अपना आचार सो सब युक्ति पूर्वक करै। सत्पुरुषों के आचरण से विरुद्ध नहीं। सो सत्य भाषणादिक आचार धर्म का मूल है। इसको सदाचार प्रमाणों से निश्चय करके सेवन करै। सब पदार्थ शुद्ध रक्खैं अशुद्ध एक भी नहीं। जितने श्रेष्ठ गुण उनके ग्रहण का सदा आचार रक्खैं। सत्पुरुषों के संग में सदा प्रीति, उनसे विनयादिक व्यवहारों को ग्रहण करै। जितेन्द्रियता सदा रक्खैं। इनसे विपरीत जो अनाचार उसको छोड़ दे। जिससे ज्ञान वा धर्म तथा विद्या प्राप्त होय, उसको सदा मानैं। उक्त प्रकार से उसको प्रसन्न रक्खैं और अधर्मी, पाखण्डी उनको कभी न मानैं और जितनी सत्क्रिया उनको यथावत् करैं। सब प्रयत्नों से ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या ग्रहण करे। बाल्यावस्था में विवाह कभी न करै और नाना प्रकार के यन्त्र और पदार्थ गुणों से रसायन विद्या, द्वीपद्वीपान्तर में भ्रमण, उन मनुष्यों के अच्छे बुरे आचरणों की परीक्षा और अच्छे आचरणों का ग्रहण करैं और बुरे का नहीं।

**प्रश्न**—आर्यावर्त वासी लोग इस देश को छोड़ के अन्य देश में जाने से पाप गिनते हैं और कहते हैं कि पतित हो जाते हैं।

**उत्तर**—यह बात मिथ्या ही है क्योंकि मनुस्मृति में जहाँ जिसके ऊपर राजा का कर लिखा है सो जो समुद्र पार द्वीप-द्वीपान्तर में न जाते होते तो क्यों लिखते।

**समुद्रे नास्ति लक्षणम्।** —इत्यादिक वचन मनुस्मृति में लिखे हैं।

सो महासमुद्र में जब जहाज जाय, तब कुछ कर का नियम नहीं। किन्तु द्वीप-द्वीपान्तर में जाके व्यापार करके पदार्थों को बेच के और वहाँ



से पदार्थों को लेके इस देश में आके बेचे, फिर उनको जितना लाभ होवे, उसमें से ५०वां हिस्सा राजा ले और राजा भी तीन प्रकार के मार्ग की शुद्धि करै। एक स्थल, जल और वन। उसमें जल के मार्ग के व्याख्यान में जहाजों के ऊपर चढ़ के द्वीप-द्वीपान्तर में जावैं और समुद्र ही में जहाजों पर बैठ के युद्ध करैं, यह क्यों लिखा। और महाभारत में लिखा है कि श्री कृष्ण और अर्जुन जहाज में बैठ के समुद्र में चले गए। वहाँ उद्दालक ऋषि मिले, ऋषि को यज्ञ में ले आए। और राजसूय तथा अश्वमेध में सब द्वीप-द्वीपान्तर के राजाओं को यज्ञ में ले आए थे सो विना जहाज से द्वीप-द्वीपान्तर में कैसे जा सकते। और सगर राजा सब ठिकाने भ्रमण करता था विना जहाजों से समुद्र पार कैसे जा सकता। तथा अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और कर्ण सब द्वीप-द्वीपान्तर में भ्रमण करते थे। विना जहाजों से कैसे कर सकते। तथा इक्ष्वाकु से ले दशरथ पर्यन्त द्वीप-द्वीपान्तर में भ्रमण करते थे, सो जहाजों में ही करते थे। और राम भी समुद्र के पार लंका में गए थे, सो भी तो एक द्वीप है। इत्यादिक मनुस्मृति और महाभारतादिक इतिहासों में लिखा है।

और युक्ति से विचार करके देखैं तो यही आता है कि देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाना अच्छा है, क्योंकि अनेक प्रकार के पदार्थ प्राप्त होंगे, अनेक प्रकार के मनुष्यों से समागम होगा। उनका व्यवहार, भाषा, गुण और दोष विदित होते हैं और उत्तम-उत्तम पदार्थों को उस देश में ले जाने और ले आने से बहुत लाभ होता है तथा निर्भय और शूरवीर पुरुष होने लगते हैं। यह तो बड़ा एक अच्छा आचार है। और जो अपने ही देश रहते हैं, और देश में जाने से उनका स्पर्श करने में छूत मानते हैं वे विचार रहित पुरुष हैं। देखना चाहिए कि मुसलमान वा अंगरेज से छूने में दोष मानते हैं और मुसलमानी वा अंगरेज के देश की स्त्री से संग करते हैं, और अपने पास घर में रख लेते हैं, उससे कुछ भेद नहीं रहता। यह बड़े अन्धकार की बात है कि मुसलमान और अंगरेज जो भले आदमी उनसे तो छूत गिनना और वेश्यादिकों में नहीं छूत मानना, यह केवल युक्ति शून्य बात है। और जो उनसे छूत ही मानते हैं कि इनसे शरीर न लगे, न

वस्त्र स्पर्श होय, इसी बात से तो आर्यावर्त्त देश का नाश भया है क्योंकि ये तो आर्यावर्त वासी उनके छूत के डर से दूर-दूर भागते रहते हैं और वे सुख से राज्य सब ले लेते हैं, और हृदय से सदा द्वेष होने से अन्यथा बुद्धि रखते हैं। इससे परस्पर सब दु:ख पाते हैं। यह सब अनाचार है।

आचार इसका नाम है कि राग, द्वेषादिक दोषों को हृदय से छोड़ देना और सज्जनता प्रीत्यादिकों को धारण कर लेना। यही आचार पहिले मनुष्यों का था कि अमरिका की कन्या अर्जुन से विवाही गई थी जो कि नाग कन्या करके लिखी है। फिर ऐसी बात जो कहते हैं कि द्वीप-द्वीपान्तर में जाने से जाति पतित और नष्ट धर्म हो जाय यह बात मिथ्या है, क्योंकि छूत और देश देशान्तर में न जाना यह बात आर्यावर्त में जैनों के राज्य से चली है, पहिले न थी, क्योंकि जैन बड़े भीरु होते हैं और छोटे-छोटे जीवों के ऊपर दया रखते हैं, इसी से मुख के ऊपर कपड़ा बांध लेते हैं सो चलने फिरने में भी दोष गिनते हैं। फिर जहाजों में बैठ के द्वीप-द्वीपान्तर में जाना इसमें हिंसा क्यों नहीं गिनेंगे।

और ब्राह्मण तथा सम्प्रदायी लोग इन्होंने अपने मतलब के हेतु सब जाल फैला रक्खे हैं क्योंकि अपना चेला वा यजमान द्वीप-द्वीपान्तर में जाने से कोई बुद्धिमान् का अवश्य समागम होगा। उससे सत्य-असत्य का उसको बोध भी होगा। फिर उसके सामने हमारा जाल नहीं चलेगा। और नित्य शनैश्चरादि ग्रह के नाम से तथा भूत प्रेतादिक नाम से तथा मन्दिरादिकों में आने जाने से शिवनारायण दुर्गादि के नाम सुनाने से उनको डराके लाखहां रुपए छल, कपट से नित्य लिया करते हैं, सो वह द्वीप-द्वीपान्तर में चला जायगा, बहुत काल में आना होगा, तब तक उनकी आजीविका बन्द हो जाती है, क्योंकि वह उनके सामने ही नहीं रहेगा, फिर उससे कोई क्या लेगा। फिर भी एक प्रायश्चित्त का डर लगा दिया है जो कोई जाके आवै उसके ऊपर बड़े बखेड़े लगा देते हैं। क्योंकि उसकी दुर्दशा देख के कोई जाने की इच्छा करता होय, वह भी डर के न जाय इस हेतु कि हमारी आजीविका सदा बनी रहै, यह केवल उनकी मूर्खता है, क्योंकि वह धनाढ्य वा राजा ही दरिद्र बन जायगा। ऐसे धीरे-धीरे सब



दरिद्र और मूर्ख बन जायेंगे, फिर उनसे आजीविका भी किसी की न होगी। परन्तु वे ऐसा विचार नहीं करते क्योंकि अपने मतलब में फसे हैं और विद्या भी नहीं, इससे कुछ नहीं जान सकते। परन्तु सज्जन लोग इस बात को मिथ्या ही जानैं और कभी देश देशान्तर वा द्वीप-द्वीपान्तर के जाने में भ्रम न करैं, क्योंकि जब मनुष्य मिथ्या भाषणादिक अनाचार करेगा तब सर्वत्र अनाचारी होगा और जो सत्यभाषणादिक आचार करेगा, वह कभी किसी देश में अनाचारी नहीं होता। और जो ऐसा जानते हैं कि बहुत नहाना और हाथों को मलना आचार है, यह भी बात अयुक्त है, क्योंकि उतना ही शौच करना उचित है कि जितने से हस्त, पाद, शरीर और वस्त्र दुर्गन्धयुक्त न रहै। इससे अधिक करना सो अनाचार है, किन्तु जिससे सब पदार्थ, गृह, पात्र और अन्नादिक शुद्ध रहैं, उतना शौच करना सबको उचित है, अधिक नहीं। अधिक आचार सद्गुण ग्रहण में सदा रक्खैं और विद्या के प्रचार का आचार सदा रक्खैं। इसका नाम **आचार** है, सोई मनुस्मृत्यादिकों में लिखा है।

और भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। एक तो वैद्यक शास्त्र की रीति से और दूसरा धर्मशास्त्र की रीति से। सो वैद्यक शास्त्र की रीति से देश, काल, वस्तु और अपने शरीर की प्रकृति, उनसे अनुकूल विचार करके भक्षण करना चाहिए, अन्यथा नहीं। जिससे बल, बुद्धि, पराक्रम और शरीर में नैरोग्य बढ़े, वैसा पदार्थभक्ष्य है। सोई उक्त वैद्यक सुश्रुतशास्त्र में लिखा है और—

**अभक्ष्यो ग्राम्यशूकरोऽभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटः।**

इत्यादिक धर्मशास्त्र से अभक्ष्य का निर्णय करना। क्योंकि सूवर गांव का और मुर्गा प्राय: मल ही खाता है, उसी का परिणाम मांस होगा। उसके खाने से दुर्गन्ध शरीर में होगा। उससे रोगोत्पत्ति का संभव है और चित्त भी अप्रसन्न हो जायगा। वैसा ही धर्मशास्त्र की रीति से मद्य अभक्ष्य तथा जितने मनुष्यों के उपकारक पशु उनका मांस अभक्ष्य तथा विना होम से अन्न भी अभक्ष्य है। एक जीव को मार के अग्नि में जलाना और फिर खाना यह कुछ अच्छी बात नहीं और जीव को पीड़ा देना किसी को

अच्छा नहीं।

**प्रश्न**—इसमें क्या कुछ पाप होता है?

**उत्तर**—पाप ही होता है, क्योंकि जीवों को पीड़ा देके अपना पेट भरना यह धर्मात्माओं की रीति नहीं।

और सर्वथा जीव हत्या से बचना भी असम्भव है। एक जीव को मारने में पीड़ा होती है, तो क्या सब व्यवहारों को छोड़ देना चाहिए? क्योंकि नेत्र की चेष्टा से भी सूक्ष्म देह वाले जीवों को पीड़ा अवश्य होती है। और तुम्हारे घर में कोई मनुष्य चोरी करै, तो तुम लोग भी अवश्य उसको पीड़ा देओगे। और मक्खी आदिक भोजन के ऊपर से उड़ा देते हो, इसमें भी उसको पीड़ा होती है। और जो कुछ तुम खाते पीते चलते फिरते और बैठते हो, इस व्यवहार से भी बहुत जीवों को पीड़ा होती है। इससे तुम्हारा कहना व्यर्थ है कि किसी जीव को पीड़ा न देना।

**प्रश्न**—जिसमें प्रत्यक्ष पीड़ा होती है हम लोग उसमें पाप गिनते हैं। अप्रत्यक्ष में कभी नहीं क्योंकि अप्रत्यक्ष में पाप गिनैं तो हमारा व्यवहार न बनैं।

**उत्तर**—ऐसे ही आप लोग जानैं कि जहाँ अपना नाम मतलब होय, वहाँ तो पाप नहीं गिनते हो, यह बात युक्ति से विरुद्ध है। मनुष्य लोगों को यह चाहिए कि गाय, बैल, भैंसी, छेड़ी, भेड़ और ऊंट आदिक पशुओं को कभी न मारैं क्योंकि इन्हीं से सब मनुष्यों की आजीविका चलती है। जितने दुग्धादिक पदार्थ होते हैं, वे सब उत्तम होते हैं और एक पशु से बहुत आजीविका मनुष्यों की होती है। मारने से जहाँ सौ मनुष्य तृप्त होते हैं, उस गाय आदिक पशुओं के बीच में से एक गाय की रक्षा से दस हजार मनुष्यों की रक्षा हो सकती है। इससे इन पशुओं को कभी न मारना चाहिए।

**प्रश्न**—इन पशुओं के नहीं मारने से इनके बहुत होने से सब पृथिवी भर जायगी फिर भी तो मनुष्यों की हानि होने लगैगी?

**उत्तर**—ऐसा न कहना चाहिए, क्योंकि व्याघ्रादिक जीव उनको मारेंगे और कितने रोगों से भी मरेंगे। इससे अत्यन्त नहीं होने पावैंगे। और



मनुष्यों द्वारा मारने से घृतादिक पदार्थ और पशुओं की उत्पत्ति भी नष्ट हो जाती है। बैल आदि से भी मनुष्यों का बहुत उपकार होता है। इससे इनकी भी रक्षा करनी चाहिए। इससे यह आया कि कभी इनका मांस न खाय, किन्तु घृत दुग्धादिकों से निर्वाह करे। क्योंकि घृत दुग्धादिकों से बहुत पुष्टि होती है। सो जो घृतादिकों से निर्वाह करें वे भी सब अग्नि में होम के विना न खांय।

**प्रश्न**—सखरी निखरी अर्थात् कच्चा पक्का अन्न और इसके हाथ का भोजन करना इसके हाथ का खाना और इसके हाथ का न खाना यह बात कैसी है?

**उत्तर**—इसका यह विचार है, भ्रष्टाचार से बनावै, अग्न्यादिकों का यथावत् संस्कार न जानै तथा विधि न जाने, उसका भक्षण न करना चाहिए, क्योंकि उससे रोग होते हैं और बुद्धि भी मलिन हो जाती है। सखरा और निखरा यह मनुष्यों की मिथ्या कल्पना है क्योंकि जो अग्नि से पकाया जाता है। वह सब पक्का ही गिना जाता है। और शूद्र ही पाक करने वाला होना चाहिए, परन्तु वह शूद्र अपने जिस द्विज के घर में रहे, उसी के घर के अन्न और उसी के घर के पात्रों से, पवित्र होके बनावे, उस के हाथ से बने हुए को सब खायं तो भी कुछ दोष नहीं।

**नित्यं शुद्धः कारुहस्तः॥** —[मनु० ५.१२९]

**स सेवार्थमुत्पन्नः॥ एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥** —[मनु० १.९१]

इत्यादिक मनुस्मृति में लिखा है सेवा में बड़ी सेवा रसोई का बनाना है क्योंकि रसोई के बनाने में बड़ा परिश्रम होता है और काल भी बहुत जाता है। इससे रसोई आदिक सेवा का शूद्र ही को अधिकार है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं, वे तो विद्यादिक प्रचार, प्रजा का धर्म से रक्षण, व्यापार और नाना प्रकार के शिल्प, इनकी उन्नति ही में पुरुषार्थ करैं, क्योंकि जो बुद्धि और विद्या युक्त हैं, उनको सेवा करना उचित नहीं। रसोई आदिक जो सेवा, सो मूर्ख पुरुष जो शूद्र, उसी का अधिकार है, क्योंकि अग्नि के सामने बैठना, लेपना, मांजना, अन्न की शुद्धि करना,

नाना प्रकार के पदार्थ बनाना इसमें बड़ा परिश्रम और काल जाता है। इस काम के करने से विद्वान् की विद्या नष्ट हो जाय। इससे यह काम शूद्र ही का है।

सो महाभारत में लिखा है कि जब राजसूय और अश्वमेध युधिष्ठिरादिक राजा लोगों के यज्ञ भए थे, उनमें सब द्वीप-द्वीपान्तर और देश-देशान्तरों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, राजा और प्रजा आए थे। उनकी एक ही पंक्ति होती थी और सूद नाम शूद्र ही पाक करने वाले और परोसने वाले थे। एक पंक्ति में सबके साथ सब भोजन करते थे। तथा कुरुक्षेत्र के युद्ध में जूते, वस्त्र, शस्त्र और रथ के ऊपर बैठे भए भोजन करते थे और युद्ध भी करते जाते थे। कुछ शंका उनको न थी, तभी उनका विजय होता था और आनन्द से राज्य करते थे। और जो भोजन में बड़े बखेड़े करते हैं, वे भूख के मारे मर जांयगे, युद्ध क्या कर सकेंगे। अब भी जयपुरादिकों के क्षत्रिय लोग नापितादिकों के हाथ का भोजन करते हैं, सो बात सनातन है और बहुत अच्छी है। तथा सारस्वत और खत्री लोगों का एक ही भोजन है सो अच्छी बात है। और गौड़ तथा अगरवाले बनियों का भी एक भोजन प्रायः है, सो भी अच्छी बात है। और गुजराती, महाराष्ट्र, तैलगु, द्राविड़ तथा करनाटक इनमें भोजन के बड़े बखेड़े हैं। इन पांचों में से गुजराती लोगों के भोजन का बड़ा पाखण्ड है, क्योंकि महाराष्ट्रादिक चारों द्रविड़ों का तो एक भोजन है और गुजराती लोगों का आपस में बड़ा भेद है। सबसे भोजन में पाखण्ड कान्याकुब्ज का अधिक है क्योंकि वे जल भी पीते हैं तो जूते उतार के, हाथ-पैर धोके पीते हैं। तब चौका देके चना चबाते हैं, सो बड़े दुःख पाते हैं। और चौका बरतन ही हाथ में रह गए और कुछ नहीं। और सर्जूपारी में भी बहुत भोजन में पाखण्ड है। यह केवल मिथ्या पाखण्ड बाहर से रच लाते हैं। और सबसे पाखण्ड भोजन चक्रांकितादिक वैरागिओं का अत्यन्त है, ऐसा कोई का नहीं, क्योंकि जब जगन्नाथ के दर्शन को जाते हैं तब चाण्डालादिकों का जूठ खा लेते हैं। फिर अपनी पंक्ति में मिल जाते हैं उनका मिथ्या पाखण्ड भी नहीं रहा और हलवाई के दुकान का दूध, दही और मिष्टान्नादिक खाते हैं, वह



सबका उच्छिष्ट जानो। और मलिन क्रिया से भी होते हैं तथा घोसी लोग मुसल्मान और अभीरादिक होते हैं, वे अपने घड़े का जूठा जल मिलाते हैं फिर उसको सब खाते पीते हैं और जानते भी हैं। सो सत्य बात ही का निर्वाह होता है, झूंठ का कभी नहीं। राजादिक धनाढ्य वेश्यादिकों को घर में रख लेते हैं, उनसे कुछ भेद नहीं रहता। उनको कोई नहीं कहता, क्योंकि कहें तब जब कि वे निर्दोष होंय। सो परस्पर दोषों को छिपाते जाते हैं और गुणों को छोड़ते जाते हैं। यह सब अनाचार है। और सत्यभाषणादिकों का आचरण करना उसी का नाम है आचार।

युधिष्ठिर के साथ बहुत ऋषि, मुनि, ब्राह्मण लोग थे। सूद नाम शूद्र पाक करते थे और द्रौपद्यादिक परोसते थे, वे सब खाते थे। सो खाने-पीने से किसी का धर्म भ्रष्ट नहीं होता है और न कोई पतित होता है क्योंकि खाना-पीना और धर्म का कुछ सम्बन्ध नहीं। धर्म जो अहिंसादिक लक्षण सो बुद्धिस्थ है। खाना पीना व्यवहार सब बाह्य है। परन्तु शुद्ध पदार्थ का खाना पीना चाहिए कि जिससे शरीर में रोगादिक न होंय और जगत् का अनुपकार भी न होय।

मद्य, भांग, गांजा, अफीम और जितने नशे हैं, वे सब अभक्ष्य हैं, क्योंकि जितने नशे हैं वे सब बुद्ध्यादिकों के नाश करने वाले हैं। इससे इनका ग्रहण कभी न करना चाहिए, क्योंकि जितने नशे होते हैं, वे विना गर्मी से नहीं होते। फिर गर्मी से सब धातु और प्राण तप्त हो जाते हैं और विषम, उनके संग से बुद्धि तप्त और विषम हो जाती है, इससे नशा का करना सबको वर्जित है। परन्तु औषध के हेतु कि रोग निवृत्ति होती होय तो चौगुण जल और एक गुण मद्य ग्रहण लिखा है, सुश्रुतादिक वैद्यक शास्त्र में। क्योंकि रोग निवृत्ति के हेतु अभक्ष्य भी भक्ष्य हो जाता है और जिन पशुओं के बछड़े को दूध नहीं देते और सब अपने ही दुह लेते हैं, यह भी अनाचार है, क्योंकि पशु पुष्ट कभी नहीं होते। फिर पुष्टि के विना दुग्धादिक थोड़े होते हैं और पशु भी बलहीन होते हैं। सो एक मास भर जितना वह पीए, उतना देना चाहिए। फिर एक स्तन का दूध दुहले और सब बछड़ा पीए। फिर दो मास के पीछे जब वह बछिया घास, पात खाने

लगे तब आधा दूध सब दिन छोड़ दे और आधा दुहले तो पशु भी पुष्ट होंवैं और दुग्धादिक भी बहुत होवैं। फिर उन दुग्धादिकों से मनुष्यादिकों की पुष्टि भी हुआ करै। इससे खाने और पीने में धर्म मानते हैं वा धर्म का नाश, वे बुद्धिहीन मनुष्य हैं। ऐसा तो है कि सत्य धर्म व्यवहार से पदार्थों की प्राप्त होय, उनसे खाना पीना करै, तो पुण्य है। और चोरी तथा छल, कपट, व्यवहार से खाना पीना करै तो अवश्य पाप होता है। सो खाने पीने में जितने भेद हैं वे विरोध, दु:ख और मूर्खता के कारण हैं। इन बखेड़ों से आर्यावर्त में पुरुष और स्त्री लोग विद्या, बल, पराक्रम हीन हो गए हैं।

प्रथम देश-देशान्तरों में सब वर्णों में विवाह शादी होती थी पूर्वोक्त वर्णानुक्रम से। फिर भोजन में कैसे भेद हो गया?

यह भेद थोड़े दिन से चला है कि जब से नाना प्रकार के मत-मतान्तर चले और मनुष्य की बुद्धि में परस्पर विरोध होने से प्रीति नष्ट हो गई, वैर हो गया। इससे कोई किसी के उपकार में चित्त नहीं देता और अपने देश के मनुष्यों के उपकार के हेतु कोई प्रवृत्त नहीं होता किन्तु अपने-अपने मतलब में रहते हैं सो सबका नाश होता जाता है। यह बड़ा अनाचार है। और तथा विचार से शुद्ध पदार्थ के खाने से किसी का परलोक वा धर्म बिगड़ता नहीं, परन्तु विद्या और विचार के नहीं होने से इस बखेड़े में मनुष्य लोग पड़ के सदा दु:खी रहते हैं और जो परस्पर गुण ग्रहण करैं तो सुखी हो जायं। और देखना चाहिए कि समय के ऊपर भोजन नहीं प्राप्त होता है। भोजन के पात्रों को उठा के लादे फिरते हैं, बैलों की नाईं दरिद्र लोग। और धनाढ्य लोग बहुत रसोईदार आदिक



साथ में रखते हैं। उससे मिथ्या धन बहुत खर्च हो जाता है। इत्यादिक सब व्यवहार बुद्धिमान् लोग विचार लें। युक्त-युक्त व्यवहार करैं, अयुक्त कभी नहीं।

ये दश समुल्लास शिक्षा के विषय में लिखे। इसके आगे आर्यावर्त वासी मनुष्य, जैन, मुसलमान और अंगरेजों के आचार अनाचार, सत्यासत्य, मतमतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखेंगे। इनमें से प्रथम समुल्लास में आर्यावर्त्त वासी मनुष्यों के मत मतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा। दूसरे समुल्लास में जैन मत के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जाएगा। तीसरे में मुसलमानों के मत के विषय में खण्डन और मण्डन लिखेगें और चौथे में अंगरेजों के मत में खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा सो जो देखना चाहै, खण्डन और मण्डन की युक्ति, उन चारों समुल्लासों में देख ले। दस समुल्लास तक खण्डन वा मण्डन नहीं लिखा, क्योंकि जब तक बुद्धि मनुष्यों की सत्यासत्य विवेक युक्त नहीं होती, तब तक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग करने में समर्थ नहीं होते। इस हेतु ग्रन्थ के पूर्व भाग में सत्य-सत्य मनुष्यों के हित के हेतु शिक्षा लिखी। और इस ग्रन्थ के उत्तर भाग में सत्यमत का मण्डन और असत्य मत का खण्डन लिखेंगे। संस्कृत में रचना करते तो सब मनुष्यों के समझ में नहीं आता। इस हेतु भाषा में किया गया। इस ग्रन्थ को दुराग्रह हठ और ईर्ष्या को छोड़ के यथावत् विचारेगा, उसको सत्य-सत्य पदार्थों के प्रकाश से अत्यन्त आनन्द होगा, और अन्यथा इस ग्रन्थ का अभिप्राय भी मालूम नहीं होगा। इस हेतु सज्जन लोगों को यह उचित है कि इस का यथावत् अभिप्राय विचार के भूषण वा दूषण करैं, अन्यथा नहीं। और मूर्ख तथा दुराग्रही पुरुष के कहे दूषण मानने के योग्य नहीं॥

# एकादश उपदेश

## [ आर्यावर्तवासियों के मत का खण्डन-मण्डन विषय ]

**सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।**
**तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते॥ १ ॥**

—मनु० [२.१७]

सरस्वती जो कि गुजरात और पंजाब के पश्चिम भाग में नदी है, उससे लेके नैपाल के पूर्वभाग की नदी से लेके समुद्र तक इन दोनों के बीच में जो देश है, सो आर्यावर्त्त देश है और वे देवनदी कहाती हैं। अर्थात् दिव्य देश के प्रान्त भाग में होने से देव नदी इनका नाम है। सो देश देव निर्मित है अर्थात् दिव्य गुणों से रचित है, क्योंकि भूगोल के बीच में ऐसा श्रेष्ठ देश कोई नहीं है, जिस देश में सब श्रेष्ठ पदार्थ होते हैं और छः ऋतु यथावत् वर्तमान होते हैं और केवल सुवर्ण रत्न पैदा होते हैं। इस देश में जिसका राज्य होता है, वह दरिद्र होय तो भी धन से पूर्ण हो जाता है। इसी हेतु इसका नाम आर्यावर्त्त है आर्य्य नाम श्रेष्ठ मनुष्य और श्रेष्ठ पदार्थ इनसे युक्त अर्थात् आवर्त्त है। इस हेतु इस देश का नाम आर्यावर्त कहते हैं॥ १ ॥

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ २ ॥**

—मनु० [२.२०]

इस देश में अग्रजन्मा नाम सब श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न जो पुरुष उत्पन्न होवै, उससे सब भूगोल की पृथिवी के मनुष्य शिक्षा अर्थात् विद्या तथा संसार के सब व्यवहारों का यथावत् विज्ञान करै। इससे क्या जाना जाता है कि प्रथम इस में मनुष्यों की सृष्टि भई थी। पीछे सब द्वीप-द्वीपान्तर में सब मनुष्य फैल गए, क्योंकि पृथिवी में जितने मनुष्य हैं, वे इस देश वालों से विद्यादिक शिक्षा ग्रहण करैं और सब देश भाषाओं का मूल जो संस्कृत सो आर्यावर्त्त ही में सदा से चला आता है। आज काल भी कुछ-कुछ देखने में आता है, परन्तु फिर भी सब देशों से संस्कृत का प्रचार अधिक है। जर्मनी और विलायत आदिक देशों में संस्कृत के पुस्तक इतने नहीं मिलते जितने कि आर्यावर्त देश में मिलते हैं और जो किसी देश में



संस्कृत के बहुत पुस्तक होंगे सो आर्यावर्त्त ही से लिए होंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। सो इस देश से मिश्र देश वालों ने पहिले विद्या ग्रहण की थी। उससे यूनान देश, उससे रूम, फिर रूम से फिरंग स्थान आदि में विद्या फैली है। परन्तु संस्कृत के बिगड़ने से गिरीश [ग्रीस], लाटीन, अंगरेज और अरब देश वालों की भाषा बन गईं हैं। सो इनमें अधिक लिखना कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि इतिहासों के पढ़ने वाले सब जानते हैं और पता भी ऐसा ही मिलता है एक गोल्ड्सटकर साहेब ने पहिले ऐसा ही निश्चय किया है कि जितनी विद्या वा मत फैले हैं, भूगोल में, वे सब आर्यावर्त्त ही से लिए हैं। और काशी में वालेण्टेन् साहेब ने यही निश्चय किया है कि संस्कृत सब भाषाओं की माता है। तथा दाराशिकोह बादशाह ने भी यह निश्चय किया है कि जो विद्या है सो संस्कृत ही है क्योंकि मैंने सब देशों की भाषाओं का पुस्तक देखा तो भी मुझको बहुत सन्देह रह गए, परन्तु जब मैंने संस्कृत देखा तब मेरे सब सन्देह निवृत्त हो गए और अत्यन्त प्रसन्नता मुझको भई। और काशी में मान मन्दिर जो रचा है, उसमें महाराज सवाई मानसिंह जी ने खगोल के कला और यन्त्र ऐसे रचे थे कि जिस में खगोल का सब हाल देख पड़ता था। परन्तु आजकाल उसकी मरम्मत न होने से बहुत कला यन्त्र बिगड़ गए हैं तो भी कुछ-कुछ देख पड़ता है। फिर आजकाल महाराज सवाई रामसिंह जी ने कुछ मरम्मत स्थान की कराई है जो उस यन्त्र की भी करावेंगे तो कुछ रोज बना रहेगा, अन्यथा नहीं।

जबसे महाभारत युद्ध भया उस दिन से आर्यावर्त्त को बुरी दशा आई है सो नित्य-नित्य बुरी ही दशा होती जाती है। क्योंकि उस युद्ध में अच्छे-अच्छे विद्यावान् राजा और ब्राह्मण लोग प्रायः मारे गए। फिर कोई राजा पूर्ण विद्या वाला इस देश में नहीं भया। जब राजा, विद्वान् और धर्मात्मा नहीं भया, तब विद्या का प्रचार भी नष्ट होता चला। फिर कुछ दिन के पीछे आपस में लड़ने लगे, क्योंकि जब विद्या नहीं होती तब ऐसे ही बहुत प्रमाद होते हैं। जो कोई प्रबल भया, उसने निर्बल का राज छीन के उसको मारा। फिर प्रजा में भी गदर होने लगा कि जहां जिसने जितना पाया,

उसका वह राजा वा जमींदार बन बैठा। फिर ब्राह्मण लोगों ने भी विद्या का परिश्रम छोड़ दिया। पढ़ना पढ़ाना भी नष्ट होता चला। जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन होते चले, तब क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी विद्याहीन होते चले, केवल दम्भ, कपट और छल ही से व्यवहार करने लगे। फिर जितने अच्छे काम होते थे वे सब बन्ध होते चले। वेदादिक विद्या का प्रचार भी बहुत थोड़ा होता चला।

फिर ब्राह्मण लोगों ने विचार किया कि आजीविका की रीति निकालनी चाहिए, सो सम्मति करके यही विचार किया कि ब्राह्मण वर्ण में जो उत्पन्न होता है सोई देव है, सबका पूज्य है, क्योंकि पूर्ण विद्या से ब्राह्मण वर्ण होता है। यह वर्णाश्रम की सनातनी रीति है, सोई ऋषि मुनियों के पुस्तकों में भी लिखी है। सो विद्यादिक गुणों से तो वर्ण व्यवस्था नहीं रक्खी, किन्तु कुल में जन्म होने से वर्ण व्यवस्था प्रसिद्ध कर दी है। फिर जन्म ही से ब्राह्मणादिक वर्णों का अभिमान करने लगे। फिर विद्यादिक गुणों में पुरुषार्थ सबका छूटा, उसके छूटने से प्राय: राजा और प्रजा में मूर्खता अधिक-अधिक होने लगी। फिर उन्हीं से ब्राह्मण लोग अपने चरण और शरीर की पूजा कराने लगे। जब पूजा होने लगी तब अत्यन्त अभिमान उनमें होने लगा। उन विद्याहीन राजाओं को और प्रजास्थ पुरुषों को वशीभूत ब्राह्मणों ने कर लिए। यहाँ तक कि सोना, उठना और कोस दो कोस तक जाना, वह भी ब्राह्मणों की आज्ञा के विना नहीं करना और जो कोई करेगा सो पापी हो जायगा। फिर शनैश्चरादिक ग्रह और नाना प्रकार के भूत प्रेतादिकों का जाल उनके ऊपर फैलाने लगे और वे मूर्खता के होने से मानने भी लगे। फिर राजा लोगों को ऐसा निश्चय सब लोगों ने मिल के कराया कि ब्राह्मण लोग कुछ भी करैं, परन्तु इनको दण्ड देना न चाहिए। जब दण्ड नहीं होने लगा, तब ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रमाद करने लगे और क्षत्रियादिक भी। फिर बड़े-बड़े ऋषि मुनि और ब्रह्मादिक के नामों से श्लोक और ग्रन्थ रचने लगे उनमें प्राय: यही बात लिखी कि ब्राह्मण सब का पूज्य और सदा अदण्ड्य है। फिर अत्यन्त प्रमाद और विषयासक्ति से विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम और शूरवीरता



नष्ट हो गई और परस्पर ईर्ष्या अत्यन्त हो गई। किसी को कोई देख न सकै और कोई कोई के सहायकारी न रहे, परस्पर लड़ने लगे। यह बात चीन आदिक देशों में रहने वाले जैनों ने सुनी और व्यापारादिक करने के हेतु इस देश में आते थे सो प्रत्यक्ष भी देखी। फिर जैनों ने विचार किया कि इस समय आर्यावर्त्त देश में राज्य सुगमता से हो सकता है फिर वे आए और राज्य भी आर्यावर्त्त में करने लगे। फिर धीरे-धीरे बोधगया में राज्य जमाके और देश-देशान्तर में फैलाने लगे। सो वेदादिक संस्कृत पुस्तकों की निन्दा करने लगे और अपने पुस्तकों के पठन पाठन का प्रचार तथा अपने मत का उपदेश भी करने लगे। सो इस देश में विद्या के नहीं होने से बहुत मनुष्यों ने उनके मत को स्वीकार कर लिया। परन्तु कनौज, काशी, पर्वत, दक्षिण और पश्चिम देश के पुरुषों ने स्वीकार नहीं किया था, परन्तु वे बहुत थोड़े ही थे। वे ही वेदादिक पुस्तकों का पठन और पाठन करते और कराते थे। फिर इनों ने वर्णाश्रम व्यवस्था और वेदोक्त कर्मों को मिथ्या-मिथ्या दोष लगाके अश्रद्धा और अप्रवृत्ति बहुत करा दी। फिर यज्ञोपवीतादिक कर्म भी प्राय: नष्ट हो गया और जो-जो वेदादिकों का पुस्तक पाया और पूर्व के इतिहासों का, उनका प्राय: नाश कर दिया। जिससे कि इनको पूर्व अवस्था का स्मरण भी न रहै। फिर जैनों का राज्य इस देश में अत्यन्त जम गया। तब जैन भी बड़े अभिमान में हो गए और कुकर्म, अन्याय भी करने लगे, क्योंकि सब राजा और प्रजा उनके मत में ही हो गए, फिर उनको डर वा शंका किसी की न रही। अपने मतवालों को अच्छे-अच्छे अधिकार और प्रतिष्ठा करने लगे और वेदादिकों को पढ़ैं तथा उनमें कहे कर्मों को करैं, उनकी अप्रतिष्ठा करने लगे। अन्याय से भी उनके ऊपर जाल स्थापन करने लगे। अपने मत का पण्डित वा साधु उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे, सो आज तक भी ऐसा करते हैं। और बहुत स्थान-स्थान में बड़े-बड़े मन्दिर रच लिए और उनमें अपने आचार्यों की मूर्ति स्थापन कर दी तथा उनकी पूजा भी अत्यन्त करने लगे। सो जैनों के राज्य ही से मूर्त्ति पूजन चला, इसके आगे न था। क्योंकि जितने ऋषि मुनियों के किए प्राचीन ग्रन्थ हैं, महाभारत युद्ध के

पहिले जो कि रचे गए हैं, उनमें मूर्त्तिपूजन का लेशमात्र भी कथन नहीं है। इससे दृढ़ निश्चय से जाना जाता है कि इस आर्यावर्त्त देश में मूर्त्तिपूजन नहीं था, किन्तु जैनों के राज्य से ही चला है।

एक द्रविड़ देश के ब्राह्मण काशी में आके, एक गौड़पाद पण्डित थे, उनके पास व्याकरण पूर्वक वेद पर्यन्त विद्या पढ़ी थी जिसका नाम शङ्कराचार्य था। वे बड़े पण्डित भए थे, उनने विचार किया कि यह बड़ा अनर्थ भया नास्तिकों का मत आर्यावर्त्त देश में फैल गया है और वेदादिक संस्कृत विद्या का प्राय: नाश ही हो गया है, सो नास्तिक मत का खण्डन और वेदादिक सत्य संस्कृत विद्या का [मण्डन होना चाहिए] वे अपने मन से ऐसा विचार करके सुधन्वा नाम राजा था, उसके पास चले गए, क्योंकि विना राजाओं के सहाय से यह बात नहीं हो सकेगी। सो सुधन्वा राजा भी संस्कृत में पण्डित था और जैनों के भी संस्कृत सब ग्रन्थ पढ़ा था। सुधन्वा जैन के मत का था, परन्तु बुद्धि और विद्या के होने से अत्यन्त विश्वास नहीं था, क्योंकि वह संस्कृत भी पढ़ा था और उसके पास जैन मत के पण्डित भी बहुत थे। फिर शंकराचार्य ने राजा से कहा कि आप सभा करावैं और उनसे मेरा शास्त्रार्थ होय और आप सुनैं। फिर जो सत्य होय उसको मानना चाहिए। उसने स्वीकार किया और सभा भी कराई। उसमें अपने पास जैन मत के पण्डित थे और भी दूर-दूर से पण्डित जैन मत के बुलाए, फिर सभा भई। उसमें यह प्रतिज्ञा हो गई कि हम वेद और वेद मत का स्थापन करेंगे और आपके मत का खण्डन तथा उन पण्डितों ने ऐसी प्रतिज्ञा की कि वेद और वेदमत का हम खण्डन करेंगे और अपने मत का मण्डन। सो उनका परस्पर शास्त्रार्थ होने लगा। उस शास्त्रार्थ में शङ्कराचार्य का विजय भया और जैन मत वाले पण्डितों का पराजय हो गया। फिर कोई युक्ति जैनों की नहीं चली, किन्तु शङ्कराचार्य ने कहा कि जैनों का आजकाल बड़ा बल है और वेद मत का बल नहीं है। इससे शास्त्रार्थ तो हम करने को तैयार हैं, परन्तु कोई उपाधि करै अथवा शास्त्रार्थ ही न करैं, तो हमारा कुछ बल नहीं। इसमें आप लोग प्रवृत्त होंय कि कोई अन्याय करै उसको आप लोग शिक्षा करैं। सो राजा ने उस बात



को स्वीकार किया कि वह हम करैंगे, परन्तु हमारे छ: राजा सम्बन्धी हैं उनके पास हम चिट्ठी लिखते हैं और आपको भी भेजेंगे शास्त्रार्थ करने के हेतु। फिर वे भी जो मिल जांय तो बहुत अच्छी बात है। फिर शंकराचार्य उन राजाओं के पास गए और सभा भई, फिर जैन मत के पण्डितों का पराजय हो गया। फिर वे छ: भी सुधन्वा से मिले और सबकी सम्मति से संस्कार भी भया तथा वेदोक्त कर्म भी करने लगे।

तब तो आर्यावर्त्त में सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि एक शङ्कराचार्य नामक संन्यासी वेदादिक शास्त्रों के पढ़ने वाले बड़े पण्डित हैं जिससे बहुत जैन लोगों के पण्डित परास्त हो गए। फिर उन सात राजाओं ने शङ्कराचार्य की रक्षा के हेतु बहुत भृत्य तथा सेवक और सवारी भी रख दी और सबने कहा कि आप सर्वत्र आर्यावर्त्त में भ्रमण करैं और जैनों का खण्डन करैं। इसमें कोई जबर्दस्ती करेगा अन्याय से, उसको हम लोग समझा लेवेंगे। फिर शंकराचार्य जी ने जहाँ-जहाँ जैनों के पण्डित और अत्यन्त प्रचार था, वहाँ-वहाँ भ्रमण किया और उनसे सर्वत्र शास्त्रार्थ किया। परन्तु जैन लोगों का सर्वत्र पराजय ही होता गया, क्योंकि दो तीन दोष उनके बड़े भारी थे। एक तो ईश्वर को नहीं मानना, दूसरा वेदादिक सत्य शास्त्रों का खण्डन करना और तीसरा जगत् स्वभाव ही से होता है, इसका रचने वाला कोई नहीं, इत्यादिक अन्य भी बहुत दोष हैं, वे जैन मत के खण्डन मण्डन में विस्तार से लिखेंगे। फिर जितनी जैनों के मन्दिर में मूर्त्ति थीं, उनको सुधन्वादिक राजाओं ने तोड़वा डाली और कूवाँ वा पृथिवी में गाड़ दी, सो आज तक वे टूटी और विना टूटी मूर्त्ति जैनों की पृथिवी खोदने से निकलती हैं। परन्तु मन्दिर नहीं तोड़े गए, क्योंकि शंकराचार्य और राजा लोगों ने विचार किया मन्दिरों को तोड़ना उचित नहीं। इनमें वेदादिक शास्त्रों के पढ़ने के हेतु पाठशाला करेंगे, क्योंकि लाखहां करोड़हां रुपैए की इमारत है, इसको तोड़ना उचित नहीं। और कुछ-कुछ गुप्त जैन लोग जहाँ-तहाँ रह गए थे सो आजतक देखने में आर्यावर्त्त देश में आते हैं। इसके पीछे सर्वत्र वेदादिकों के पढ़ने और पढ़ाने की इच्छा बहुत मनुष्यों को भई। शंकराचार्य और सुधन्वादिक राजा

तथा और आर्यावर्त्त वासी श्रेष्ठ लोगों ने विचार किया कि विद्या का प्रचार अवश्य करना चाहिए। वे विचार ही करते रहे। इतने में ३२ वा ३३ बरस की उमर में शंकराचार्य का शरीर छूट गया। उनके मरने से सब लोग का उत्साह भङ्ग हो गया। यह भी आर्यावर्त्त देशवालों के बड़े अभाग्य कि शंकराचार्य दश वा बारह बरस भी जीते तो विद्या का प्रचार यथावत् हो जाता। फिर आर्यावर्त्त की ऐसी दुर्दशा कभी नहीं होती, क्योंकि जैनों का खण्डन तो हो गया, परन्तु विद्या प्रचार यथावत् नहीं भया। इससे मनुष्यों को यथावत् कर्तव्य और अकर्तव्य का निश्चय नहीं होने से मन में सन्देह ही रहा। कुछ तो जैनों के मत का संस्कार हृदय में रहा और कुछ वेदादिक शास्त्रों का भी। यह बात एकईस वा बाइस सै बरस की है। इसके पीछे २०० वा ३०० बरस तक साधारण पढ़ना और पढ़ाना रहा।

फिर उज्जयन में विक्रमादित्य राजा कुछ अच्छा भया। उसने राजधर्म कुछ-कुछ प्रकाश किया और बहुत कार्य न्याय से होने लगे थे। उसके राज्य में प्रजा को सुख भी भया था, क्योंकि विक्रमादित्य तेजस्वी बुद्धिमान् और शूरवीर तथा धर्मात्मा था, इससे कोई और अन्याय नहीं करने पाता था। परन्तु वेदादिक विद्या का प्रचार उसके राज्य में भी यथावत् नहीं भया था। उसके पीछे ऐसा राजा नहीं भया, किन्तु साधारण होते गए। फिर विक्रमादित्य से ५०० वर्ष के पीछे राजा भोज भए उसने संस्कृत का प्रचार किया, सो नवीन ग्रन्थों का रचन और प्रचार किया था वेदादिकों का नहीं। परन्तु कुछ-कुछ संस्कृत का प्रचार भोज राजा ने ऐसा कराया था कि चाण्डल और हल जोतने वाले भी कुछ-कुछ लिखना पढ़ना और संस्कृत बोलते भी थे। देखना चाहिए कि कालिदास गड़रिया था, परन्तु श्लोकादिक रच लेता था और राजा भोज भी नये-नये श्लोक रचने में कुशल था। कोई एक श्लोक भी रच के ले जाता था उनके पास, उसका प्रसन्नता से सत्कार करता था और जो कोई ग्रन्थ बनाता था तो उसका बड़ा भारी सत्कार करता था। फिर लोभ से बहुत संसार में मनुष्य लोग नए ग्रन्थ रचने लगे, उससे वेदादिक सनातन पुस्तकों की अप्रवृत्ति प्रायः हो गई। और **संजीवनी** नाम राजा भोज ने इतिहास ग्रन्थ बनाया है,



उसमें बहुत पण्डितों की सम्मति है और यह बात उसमें लिखी है कि तीन ब्राह्मण पण्डितों ने ब्रह्मवैवर्त्तादिक तीन पुराण रचे थे। उनसे राजा भोज ने कहा कि और के नाम से तुमको ग्रन्थ रचना उचित नहीं था। और महाभारत की बात लिखी है कि कितने हजार श्लोक २० बरस के बीच में व्यास जी का नाम करके लोगों ने मिला दिए हैं। ऐसे ही पुस्तक बढ़ेगा तो एक ऊंट का भार हो जायगा। और ऐसे ही लोग दूसरे के नाम से ग्रन्थ रचेंगे तो बहुत भ्रम लोगों को हो जायगा। सो उस संजीवनी ग्रन्थ में राजा भोज ने अनेक प्रकार की बातें पुस्तकों के विषय और देश के वर्त्तमान के विषय में इतिहास लिखे हैं। सो वह संजीवनी ग्रन्थ **बटेश्वर** के पास **होलीपुरा** एक गांव है उसमें चौबे लोग रहते हैं वे जानते हैं जिसके पास वह ग्रन्थ है, परन्तु लिखने वा देखने को वह पण्डित किसी को नहीं देता, क्योंकि उसमें सत्य-सत्य बात लिखी है। उसके प्रसिद्ध होने से पण्डितों की आजीविका नष्ट हो जाती है। इस भय से वह उस ग्रन्थ को प्रसिद्ध नहीं करता। ऐसे ही आर्यावर्त्त वासी मनुष्यों की बुद्धि क्षुद्र हो गई है कि अच्छा पुस्तक वा कोई इतिहास, उसको छिपाते चले जाते हैं। यह इनकी बड़ी मूर्खता है क्योंकि अच्छी बात जो लोगों के उपकार की उसको कभी न छिपाना चाहिए।

फिर राजा भोज के पीछे कोई अच्छा राजा नहीं भया। उस समय में जैन लोगों ने जहाँ-तहाँ मूर्त्ति मन्दिरों में प्रसिद्ध किई और वे कुछ-कुछ प्रसिद्ध भी होने लगे, तब ब्राह्मणों ने विचार किया कि इनके मन्दिरों में नहीं जाना चाहिए किन्तु ऐसी युक्ति रचैं कि हम लोगों की आजीविका जिससे होय। फिर उनने ऐसा प्रपञ्च रचा कि हमको स्वप्न आया है, उसमें महादेव, नारायण, पार्वती, लक्ष्मी, गणेश, हनुमान्, राम, कृष्ण, नृसिंह इन्होंने स्वप्न में कहा है कि हमारी मूर्त्ति स्थापन करके पूजा करैं तो पुत्र, धन, नैरोग्यादिक पदार्थों की प्राप्ति होगी। जिस-जिस पदार्थ की इच्छा करेगा, उस-उस पदार्थ की प्राप्ति उसको होगी। फिर बहुत मूर्खों ने मान लिया और मूर्त्ति स्थापन करने को कोई-कोई लगा। फिर पूजा और आजीविका भी उनकी होने लगी। एक की आजीविका देखके दूसरा भी

ऐसा करने लगा। और कोई महाधूर्त्त ने ऐसा किया कि मूर्त्ति को जमीन में गाड़ के प्रात: काल उठके कहा मुझको स्वप्न भया है। फिर उनसे बहुत लोग पूछने लगे कि कैसा स्वप्न भया है, तब उनसे उसने कहा कि देव कहता है मैं जमीन में गड़ा हूँ और दु:ख पाता हूँ, मुझको निकाल के मन्दिर में स्थापन करै और तूं ही पुजारी हो तो मैं सब काम सब मनुष्यों का सिद्ध करूँगा। फिर वे विद्याहीन मनुष्य उससे पूछते भए कि वह मूर्त्ति कहाँ है जो तुम्हारा सत्य स्वप्न होगा तो तुम दिखलाओ। तब जहां उसने मूर्त्ति गाड़ी थी वहाँ सबको ले जाके खोद के उसको निकाली। सबने देखके बड़ा आश्चर्य किया और सबने उससे कहा कि तूं बड़ा भाग्यवान् है और तुझ पर देवता की बड़ी कृपा है। सो हमलोग धन देते हैं इससे मन्दिर बनाओ। इस मूर्त्ति का उसमें स्थापन करो। तुम इसके पुजारी बनो और हमलोग नित्य दर्शन करेंगे। तब तो उसने प्रसन्न होके वैसा ही किया और उसकी आजीविका भी अत्यन्त होने लगी। उसकी आजीविका को देख के अन्य पुरुष भी ऐसी धूर्तता करने लगे और विद्याहीन पुरुष उसकी मानता करने लगे। फिर प्राय: मूर्त्ति पूजन आर्यावर्त्त में फैला।

एक महमूद गजनवी इस देश में आया और बहुत सी मूर्त्तियां सोने और चांदी की लूट ली। बहुत पुजारी और पण्डितों को पकड़ लिये और रात को पिसान पिसावै और दिन में जाजरूर आदि को सफा करावै। और जहाँ कोई पुस्तक पाया उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। ऐसे वह आर्यावर्त्त में बारह बेर आया और बहुत लूट मार अत्यन्त अन्याय उसने किया। इस देश की बड़ी दुर्दशा उसने की। यहाँ तक कि शिरच्छेदन बहुतों का कर दिया। विना अपराधों के स्त्री, कन्या और बालकों को भी पकड़ के दु:ख दिया और बहुतों को मार डाला, ऐसा उनने बड़ा अन्याय किया।

सो जिस देश में ईश्वर की उपासना को छोड़ के काष्ठ, पाषाण, वृक्ष, घास, कुत्ते, गधे और मिट्टी आदि की पूजा से ऐसा ही फल होगा उत्तम कहाँ से होगा। फिर चार ब्राह्मणों ने एक लोहे की पोली मूर्त्ति रचवाई और उसको गुप्त कहीं रख दिया। फिर चारों ने कहा—हमको महादेव ने स्वप्न दिया है कि हमारा आप लोग मन्दिर रचैं तो कैलाश को छोड़ के



आर्यावर्त्त देश में मैं वास करूँ और सबको दर्शन देऊँ। ऐसा सब देशों में प्रसिद्ध कर दिया। फिर मन्दिर सब लोगों ने मिल के रचवाया। उसमें नीचे ऊपर और चारों ओर भींत में चुम्बक पत्थर रक्खे। जब मन्दिर पूरा भया, तब सब देशों में प्रसिद्ध कर दिया कि उस दिन मध्य रात्रि में कैलाश से महादेव मन्दिर में आवेंगे जो दर्शन करेगा उसका बड़ा भाग्य और मरने के पीछे कैलाश को वह चला जायगा। फिर उस समय में राजा, बाबू, स्त्री, पुरुष और लड़के बाले उस स्थान में जुटे फिर उन चारों धूर्त्तों ने मूर्त्ति मन्दिर में कहीं गुप्त रख दी थी और मेला में ऐसा प्रसिद्ध कर दिया कि महादेव देव है सो भूमि को पग से स्पर्श न करेंगे, किन्तु आकाश में ही खड़े रहेंगे। ऐसा हमको स्वप्न में कहा है सो जब उस दिन पहर रात्रि गई तब सब को मन्दिर के बाहर निकाल दिए और किवाड़ बन्द करके वे चारों भीतर रहे। फिर उस मूर्त्ति को उठाके मन्दिर में ले गए और बीच में चुम्बक पाषाण के आकर्षणों से अधर आकाश में वह मूर्त्ति खड़ी रही और उन्होंने खूब मन्दिर में दीप जोड़ दिए फिर घण्टा, झल्लरी, शंख, रणसिंघा और नगारा बजाए। तब तो बड़ा मेला में उत्साह भया और उनने दरवाजे खोल दिए। फिर मनुष्यों के ऊपर मनुष्य गिरे और मूर्त्ति को आकाश में अधर खड़ी देख के बड़े आश्चर्य युक्त भए और लाखहां रुपैयों की पूजा चढ़ी। अनेक पदार्थ पूजा में आए। फिर वे चारों धूर्त्त ब्राह्मण बड़े मस्त हो गए और महन्त हो गए। फिर नित्य मेला होने लगा करोड़हां रुपैयों का माल हो गया। सो वह मन्दिर द्वारका के पास प्रभा क्षेत्र स्थान में था और उस मूर्त्ति का नाम सोमनाथ रक्खा था। फिर महमूद गजनवी ने सुना कि उस मन्दिर में बड़ा माल है ऐसा सुनके अपने देश से सेना लेके चढ़ा। सो जब पंजाब में आया, तब हल्ला हो गया और सोमनाथ की ओर चला तब लोगों ने जाना कि सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ेगा और लूटेगा। ऐसा सुन के बहुत राजा, पण्डित और पुजारी सेना ले-ले के सोमनाथ की रक्षा के हेतु इकट्ठे भए। सोमनाथ के पास जब वह डेंढ़ सै दो सै कोस दूर रहा, तब पण्डितों से राजाओं ने पूछा कि मुहूर्त्त देखना चाहिए। हम लोग आगे जाके उनसे लड़ैं। फिर पण्डित लोगों ने इकट्ठे होके मुहूर्त्त देखा,

परन्तु मुहूर्त बना नहीं। फिर नित्य मुहूर्त्त ही देखते रहे, परन्तु कोई दिन चन्द्र, कोई दिन और ग्रह नहीं बने, कोई दिन दिक् शूल सन्मुख आया, कोई दिन योगिनी और कोई दिन काल नहीं बना। सो पण्डितों की बुद्धि को कालादिकों के भ्रमों ने खा लिया और राजा लोग विना पण्डितों की आज्ञा से कुछ करते नहीं थे। सो प्राय: पण्डित और राजा लोग मूर्ख ही थे। जो मूर्ख न होते तो पाषाणादिक मूर्त्ति क्यों पूजते और मूहूर्त्तादिकों के भ्रमों से नष्ट क्यों होते। ऐसे वे विचार करते ही रहे, उसकी सेना दूसरी मंजिल पर पहुँची, तब राजा लोगों ने पण्डितों से कहा कि अब तो जल्दी मुहूर्त्त देखो। तब पण्डितों ने कहा कि आज मुहूर्त्त अच्छा नहीं है। जो यात्रा करोगे तो तुमारा पराजय ही हो जायगा। तब वे ब्राह्मणों से डर के बैठे रहे। तब महमूद गजनवी धीरे-धीरे पांच छ: कोश के ऊपर आके ठहरा और दूतों से सब खबर मंगवाई कि वे क्या करते हैं। दूतों ने कहा कि वे आपस में मुहूर्त्त विचारा करते हैं। महमूद गजनवी के पास ३० हजार पुरुषों की सेना थी, अधिक नहीं। और उनके पास दो, तीन लाख फौज थी। फिर उसके दूसरे दिन प्रात:काल राजा पण्डित पुजारी मिल के मुहूर्त्त विचारने लगे। सो सब पण्डितों ने कहा कि आज का चन्द्रमा अच्छा नहीं और भी ग्रह क्रूर हैं। पुजारी लोग और पण्डित मूर्त्ति के आगे जा के गिर पड़े और अत्यन्त रोदन किया कि हे महाराज! इस दुष्ट को खा लेओ और अपने सेवकों का सहाय करो। परन्तु वह लोहा क्या कर सकता है। और सब से कहने लगे कि आप लोग कुछ चिन्ता मत करो महादेव उस दुष्ट को ऐसे ही मार डालेंगे वा वह महादेव के भय से वहां ही से भाग जायगा, उसका क्या सामर्थ्य है कि साक्षात् महादेव के पास आ सके और सन्मुख दृष्टि कर सके। ऐसे सब परस्पर बक रहे थे। फिर कुछ लड़ाई भई और मुसल्मान भी डरे कि विजय होगा वा पराजय? उस समय में और पुस्तक फैला-फैला के बहुत से मन्त्रों का जप और पाठ करते थे और कहते थे कि अब देवता और मन्त्र हमारा पाठ सिद्ध होता है सो वह वहाँ ही अन्धा हो जायगा। सो बड़ी मण्डली की मण्डली जप, पाठ और पूजा कर रही थी और मूर्त्ति के सामने औंधे गिर के पुकारते थे। एक सभा लग रही थी



राजा और पण्डित विचारते थे मुहूर्त्त को।

उस समय में उसके निकट एक पर्वत था और महमूद गजनवी ने एक तोप लगा दी और सभा के बीच में गोला मारा। उस समय कोई दन्तधावन करता था, कोई सोता था और कोई स्नान करता था, इत्यादिक व्यवहारों से निश्चिन्त थे। सो उस गोले से सब पण्डित लोग पोथी पत्रा छोड़ के भागे और राजा लोग भी भाग उठे तथा सेना भी अपने-अपने स्थानों से भाग उठी और वह महमूद गजनवी सेना सहित धावा करके उस स्थान पर झट पहुँचा। उसको देख के सब भाग उठे। भागे भये पण्डित, पुजारी, सिपाही तथा राजाओं को उनने पकड़ लिया और बांध लिया और बहुत-सी मार पड़ी उनके ऊपर तथा मार भी डाला किसी को और बहुत-से भाग गए। क्योंकि उन पण्डितों के उपदेश से सोलह पहर के बैठे थे और कथा सुनी थी कि मुसलमानों का स्पर्श नहीं करना और उनके दर्शन से धर्म जाता है, ऐसी मिथ्या बातें सुनके भाग उठे। फिर मन्दिर के चारों ओर महमूद गजनवी की सेना हो गई और आप मन्दिर के पास पहुँचा, तब मन्दिर के महन्त और पुजारी हाथ जोड़ के खड़े भये। उनसे पुजारियों ने कहा कि आप जितना चाहैं उतना धन ले लीजिए परन्तु मन्दिर और मूर्त्ति को न तोड़िए, क्योंकि इससे हम लोगों की बड़ी आजीविका है। ऐसा सुनके महमूद गजनवी बोला कि हम बुत बेचने (पूजने) वाले नहीं किन्तु उनको तोड़ने वाले हैं। तब तो वे डरे और कहा कि एक करोड़ रुपैया आप ले लीजिए परन्तु इसको मत तोड़िए। ऐसे कहते सुनते तीन करोड़ तक कहा, परन्तु महमूद गजनवी ने नहीं माना और उनकी मुसक चढ़ा ली फिर उनको लेके मन्दिर में गया और उनसे पूछा कि खजाना कहाँ है सो कुछ तो उनने बतला दिया। फिर भी उसको लोभ आया कि और भी कुछ होगा। फिर उनको मारा पीटा तब उनने सब खजाना बतला दिया। फिर मन्दिर में आके सब लीला देखी। फिर महन्त और पुजारियों से कहा कि तुमने दुनिया को ऐसी धूर्त्तता कर के ठग लिया। क्योंकि लोहे की तो मूर्त्ति बनाई है। इसके चारों ओर चुम्बक पाषाण रखने से आकाश में अधर खड़ी है। इसका नाम रख दिया है

महादेव। यह तुमने बड़ी धूर्त्तता की है। फिर उस मन्दिर का शिखर उनने तोड़वा दिया। जब वह चुम्बक पाषाण अलग हो गया, तब मूर्त्ति जमीन में चुम्बक पाषाण में लग गई। फिर सब भीतें तोड़वा डाली। सब चुम्बक के निकलने से मूर्त्ति जमीन में गिर पड़ी। फिर उस मूर्त्ति को महमूद गजनवी ने अपने हाथ से लोहे के घन को पकड़ के मूर्त्ति के पेट में मारा उससे मूर्त्ति फट गई। उससे बहुत जवाहिरात निकला क्योंकि हीरा आदिक अच्छे-अच्छे रत्न वे पाते थे, तब मूर्त्ति में ही रख देते थे। फिर उन महंत और पुजारियों को खूब तंग किया और फुसलाया भी। फिर उनने भय से सब बतला दिया। उनसे कहा कि जो तुम सब सच-सच बतला देओगे तो तुमको हम छोड़ देंगे, तब उनने सोना, चांदी के पात्रों को भी बतला दिए जो कुछ था और उसने सब ले लिया। सो अठारह करोड़ का माल उस मन्दिर से उसने पाया। फिर बहुत सी गाड़ी, ऊंट और मजूर उसके पास थे और भी वहाँ से पकड़ लिए। उनके ऊपर सब माल को लाद के अपने देश की ओर चला। सो थोड़े से थोड़े पण्डित, महंत और पुजारी तथा क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण और शूद्र तथा स्त्री, बालक दश हजार तक पकड़ के संग में ले लिए थे। उनका यज्ञोपवीत तोड़ डाला, मुख में थूक दिया और थोड़े-थोड़े सूखे चने नित्य खाने को देता था और जाजरूर सफा करवावै, पिसवावै, घास छिलवावै और घोड़ों की लीद उठवावै और मुसलमानों के जूठें बरतन मजवावै और सब प्रकार की नीच सेवा उनसे ले। ऐसे कराता-कराता जब मक्का के पास पहुँचा, तब अन्य मुसलमानों ने कहा कि इन काफरों का यहां रखना उचित नहीं। फिर उनको बुरी दशा से मार डाला, क्योंकि उनके कुरान में लिखा है कि काफरों को लूट ले, उनकी स्त्री छीन ले, झूठ-फरेब से इनका सब माल ले ले और उनको मार डालैं तो भी कुछ दोष नहीं, किन्तु उस मुसलमान को बिहिस्त अर्थात् उसको स्वर्गवास मिलता है। वह खुदा के घर में बड़ा मान्य होता है। फिर काफर वह कहाता है जो कि मुहम्मद के कलमा को न पढ़ै और कुरान के ऊपर विश्वास न ले आवै। उसके बिगाड़ने और मारने में कुछ दोष नहीं। ऐसा मुसल्मानों के मत में लिखा है। इससे उनको



अन्याय करने में कुछ भय नहीं होता और जो कुछ पाप होता है सो तोबा शब्द से छूट जाता है। इससे वे पाप करने में भय क्यों करेंगे। ऐसे ही बारह दफे वह आया है और दो तीन वार मथुरा की भी दुर्दशा ऐसी की थी। और जहां-जहां वह गया था, वहां-वहां ऐसी ही उस देश की दुर्दशा की थी और डांकू की नांई वह आता था, मार के जो कुछ पाता था, सो अपने देश में ले जाता था। उस दिन से मुसलमान लोग दरिद्र से धनाढ्य हो गए हैं। सो आर्यावर्त्त के प्रताप से आज तक भी धन चला आता है और आर्यावर्त्त देश अपने ही दोषों से नष्ट होता जाता है।

सो हमको बड़ा अफसोच है कि ऐसा जो देश और इस प्रकार का धन जिस देश में है सो देश बाल्यावस्था में विवाह, विद्या का त्याग, मूर्त्ति पूजनादिक पाखण्डों की प्रवृत्ति, नाना प्रकार के मिथ्या मजहबों का प्रचार, विषयासक्ति और वेद विद्या का लोप जब तक ये दोष रहेंगे, तब तक आर्यावर्त देशवालों की अधिक-अधिक दुर्दशा ही होगी। और जो सत्य विद्याभ्यास तथा सुनियम, धर्म और एक परमेश्वर की उपासना इत्यादिक गुणों को ग्रहण करैं तो सब दु:ख नष्ट हो जायं और अत्यन्त आनन्द में रहैं।

फिर चार ब्राह्मणों ने अच्छा विचार किया कि कोई क्षत्रिय राजा इस देश में अच्छा नहीं है, इसका कुछ उपाय करना चाहिए। वे ब्राह्मण चारों अच्छे थे, क्योंकि सब मनुष्यों के ऊपर कृपा करके अच्छी बात विचारी। यह अच्छे पुरुषों का काम है नीच का नहीं। फिर उनने क्षत्रियों के बालकों में से चार अच्छे बालक छांट लिए और उन क्षत्रियों से कहा कि तुम लोग खाने पीने का प्रबन्ध बालकों का रखना। उनने स्वीकार किया और सेवक भी साथ रख दिए। वे सब आबू राजपर्वत के ऊपर जाके रहे और उन बालकों को अक्षराभ्यास और श्रेष्ठ व्यवहारों की शिक्षा करने लगे फिर उनका यथाविधि संस्कार भी उनने किया। सन्ध्योपासन और अग्निहोत्रादिक वेदोक्तकर्मों की शिक्षा उनने की फिर व्याकरण, छ: दर्शन, काव्यालङ्कार सूत्र और सनातन कोश, यथावत् पदार्थ विद्या उनको पढ़ाई। फिर वैद्यक शास्त्र तथा गान विद्या, शिल्प विद्या और धनुर्विद्या

अर्थात् युद्ध विद्या भी उनको अच्छी प्रकार से पढ़ाई। फिर राजधर्म जैसा कि प्रजा से वर्तमान करना और न्याय करना, दुष्टों को दण्ड देना। श्रेष्ठों का पालन करना यह भी सब पढ़ाया। ऐसे २५ वा २६ बरस की उमर उनकी भई।

और उन पण्डितों के स्त्रियों ने ऐसे ही चार कन्या रूप गुण सम्पन्न उनको अपने पास रखके व्याकरण, धर्मशास्त्र, वैद्यक, गान विद्या तथा नाना प्रकार के शिल्प कर्म उनको पढ़ाए और व्यवहार की शिक्षा भी की तथा युद्ध विद्या की शिक्षा, गर्भ में बालकों का पालन और पतिसेवा का उपदेश भी यथावत् किया। फिर उन पुरुषों को परस्पर चारों का युद्ध करना और कराने का यथावत् अभ्यास कराया। ऐसे चालीस-चालीस वर्ष के वे पुरुष भए। बीस-बीस वर्ष की वे कन्या भईं। तब उनकी प्रसन्नता से और गुण परीक्षा से एक से एक का विवाह कराया। जब तक विवाह नहीं भया था, तब तक उन पुरुषों की और कन्याओं की यथावत् रक्षा की गई थी। इससे उनको विद्या बल, बुद्धि तथा पराक्रमादिक गुण भी उनके शरीर में यथावत् भये थे।

फिर उनसे ब्राह्मणों ने कहा कि तुम लोग हमारी आज्ञा करो। तब उन सबों ने कहा कि जो आपकी आज्ञा होगी, सोई हम करेंगे। तब उनने उनसे कहा कि हमने तुम्हारे ऊपर परिश्रम किया है सो केवल जगत् के उपकार के हेतु किया है। सो आप लोग देखो कि आर्यावर्त्त में गदर मच रहा है सो मुसलमान लोग इस देश में आके बड़ी दुर्दशा करते हैं और धनादिक लूट के ले जाते हैं। सो इस देश की नित्य दुर्दशा होती जाती है। सो आप लोग यथावत् राजधर्म से पालन करो और दुष्टों को यथावत् दण्ड देओ। परन्तु एक उपदेश सदा हृदय में रखना कि जब तक वीर्य की रक्षा और जितेन्द्रिय रहोगे, तब तक तुह्मारा सब कार्य सिद्ध होता जायगा और हमने तुह्मारा विवाह अब जो कराया है सो केवल परस्पर रक्षा के हेतु किया है कि तुम और तुम्हारी स्त्रियां संग-संग रहोगे तो बिगड़ोगे नहीं और केवल सन्तानोत्पत्ति मात्र विवाह का प्रयोजन जानना और मन से भी पर-पुरुष वा पर-स्त्री का चिन्तन भी नहीं करना। और विद्या तथा



परमेश्वर की उपासना और सत्यधर्म में सदा उपस्थित रहना। जब तक तुह्मारा राज्य न जमैं, तब तक स्त्री पुरुष दोनों ब्रह्मचर्याश्रम में रहो क्योंकि जो क्रीड़ासक्त होगे तो बलादिक तुम्हारे शरीर से न्यून हो जायेंगे तो युद्धादिकों में उत्साह भी न्यून हो जायगा और हम भी एक-एक के साथ एक-एक रहेंगे। सो हम और आप लोग चलैं और चल के यथावत् राज्य का प्रबन्ध करैं। फिर वे वहाँ से चले। वे चार इन नामों से प्रख्यात थे, चौहान, पँवार, सोलंकी इत्यादिक। उनने दिल्ली आदिक में राज्य किया था। कुछ-कुछ प्रबन्ध भी भया था। जब राज्य करने लगे।

कुछ काल के पीछे सहाबुद्दीन गोरी एक मुसलमान था, सो भी उसी प्रकार इस देश में आया था कनोज आदिक में। उस समय कनोज का बड़ा भारी राज था सो इसके भय के मारे अपने ही जाके उनको मिला और युद्ध कुछ भी नहीं किया। क्योंकि उस वक्त राजाओं के शरीर स्त्री के शरीर से भी कोमल थे, इससे वे क्या युद्ध कर सकेंगे। फिर अन्यत्र वह युद्ध जहाँ-तहाँ किया सो उसका विजय भया और आर्यावर्त्त वालों का पराजय भया। फिर दिल्ली वालों से कोई वक्त उसका युद्ध भया। उस युद्ध में पृथ्वीराज मारा गया और उसने अपना सेनाध्याक्ष दिल्ली में रक्षा के हेतु रख दिया। उसका नाम कुतुबद्दीन था। वह जब वहाँ रहा तब कुछ दिन के पीछे उन राजाओं को निकाल के आप राजा भया। उस दिन से मुसल्मान लोग यहाँ राज्य करने लगे और सबने कुछ-कुछ जुलुम किया। परन्तु उनके बीच में से अकबर बादशाह कुछ अच्छा भया और न्याय भी संसार में होने लगा। सो अपनी बहादुरी से और बुद्धि से सब गदर मिटा दिया। उस समय राजा और प्रजा सब सुखी थे।

परन्तु आर्यावर्त्त के राजा और धनाढ्य लोग विक्रमादित्य के पीछे सब विषय सुख में फस रहे थे। उससे उनके शरीर में बल, बुद्धि, पराक्रम और शूरवीरता प्राय: नष्ट हो गई थी, क्योंकि सदा स्त्रियों का संग, गाना, बजाना, नृत्य देखना, सोना, अच्छे-अच्छे कपड़े और आभूषण को धारण करना, नाना प्रकार के अतर और अञ्जन नेत्र में लगाना। इससे उनके शरीर बड़े कोमल हो गए थे कि थोड़े से ताप वा शीत अथवा वायु का

सहन नहीं हो सकता था। फिर वे युद्ध क्या कर सकेंगे, क्योंकि जो नित्य स्त्रियों का संग करेंगे और विषय भोग, उनका भी शरीर प्राय: स्त्रियों की नांई हो जाता है। वे कभी युद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि जिनके शरीर दृढ़, रोग रहित, बल, बुद्धि और पराक्रम तथा वीर्य की रक्षा [करना] और विषय भोग में नहीं फसना, नाना प्रकार की विद्या का पढ़ना इत्यादिक के होने से सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

फिर दिल्ली में औरंगजेब एक बादशाह भया था। उनने मथुरा, काशी, अयोध्या और अन्य स्थान में भी जा-जा के मन्दिर और मूर्त्तियों को तोड़ डाला और जहाँ-जहाँ बड़े-बड़े मन्दिर थे, उस-उस स्थान पर अपनी मस्जिद बना दी। जब वह काशी में मन्दिर तोड़ने को आया तब विश्वनाथ कुंए में गिर पड़े और माधव एक ब्राह्मण के घर में भाग गए ऐसा बहुत मनुष्य कहते हैं, परन्तु हमको यह बात झूठ मालूम पड़ती है, क्योंकि वह पाषाण वा धातु जड़ पदार्थ कैसे भाग सकता है, कभी नहीं। सो ऐसा भया है कि जब औरंगजेब आया तब पुजारियों ने भय से मूर्त्ति को उठाके और कूँए में डाल दिया और माधव की मूर्त्ति उठा के दूसरे घर में छिपा दी कि वह न तोड़ सके। सो आज तक उस कूंए का बड़ा दुर्गन्ध जल, उसको पीते हैं और उसी ब्राह्मण के घर से माधव की मूर्त्ति की आज तक पूजा करते हैं।

देखना चाहिए कि पहिले तो सोना चांदी की मूर्त्तियां बनाते थे तथा हीरा और माणिक की आंख बनाते थे। सो मुसलमानों के भय से और दरिद्रता से पाषाण, मिट्टी, पीतल, लोहा और काष्ठादिकों की मूर्त्तियां बनाते हैं। सो अब तक भी इस सत्यानाश करने वाले कर्म को नहीं छोड़ देते, क्योंकि छोड़ें तो तब जो इनकी अच्छी दशा आवै। इनकी तो इन कर्मों से दुर्दशा ही होने वाली है, जब तक कि इनको नहीं छोड़ते।

और महाभारत युद्ध के पहिले आर्यावर्त्त देश में अच्छे-अच्छे राजा होते थे उनकी विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम तथा धर्म निष्ठा और शूरवीरतादिक गुण अच्छे-अच्छे थे। इससे उनका राज्य यथावत् होता था। सो इक्ष्वाकु, सगर, रघु, दिलीप आदिक चक्रवर्त्ती हुए थे और किसी प्रकार पाखण्ड



उनमें नहीं था। सदा विद्या की उन्नति और अच्छे-अच्छे कर्म आप करते थे तथा प्रजा से कराते थे। और कभी उनका पराजय नहीं होता था। तथा अधर्म से कभी नहीं युद्ध करते थे और युद्ध से निवृत्त कभी नहीं होते थे। उस समय से लेके जैन राज्य के पहिले तक इसी देश के राजा होते थे, अन्य देश के नहीं। सो जैनों ने और मुसलमानों ने इस देश को बहुत बिगाड़ा है। सो आज तक बिगड़ता ही जाता है। सो आजकाल अंगरेज के राज्य होने से उन राजाओं के राज्य से कुछ सुख भया है, क्योंकि अंगरेज लोग मत-मतान्तर की बात में हाथ नहीं डालते और जो पुस्तक अच्छा पाते हैं, उसकी अच्छी प्रकार रक्षा करते हैं। और जिस पुस्तक के सौ रुपैये लगते थे, उस पुस्तक का छापा होने से पांच रुपैयों से मिलता है। परन्तु अङ्गरेजों से भी एक काम अच्छा नहीं हुआ जो कि चित्रकूट पर्वत पर महाराज अमृतराय जी के पुस्तकालय को जला दिया। उसमें करोड़हाँ रुपैये के लाखहाँ अच्छे-अच्छे पुस्तक नष्ट कर दिये।

जो आर्यावर्त्त वासी लोग इस समय सुधर जायं तो सुधर सकते हैं और जो पाखण्ड ही में रहेंगे तो अधिक-अधिक ही नाश होगा इनका, इसमें कुछ सन्देह नहीं। क्योंकि बड़े-बड़े आर्यावर्त्त देश के राजा और धनाढ्य लोग ब्रह्मचर्याश्रम, विद्या का प्रचार, धर्म से सब व्यवहारों का करना और वेश्या तथा पर-स्त्री-गमनादिकों का त्याग करैं तो देश के सुख की उन्नति हो सकती है। परन्तु जब तक पाषाणादिक मूर्त्तिपूजन, वैरागी, पुरोहित, भट्टाचार्य और कथा कहने वालों के जालों से छूटें, तब उनका अच्छा हो सकता है, अन्यथा नहीं।

**प्रश्न**—मूर्त्ति पूजनादिक सनातन से चले आए हैं उनका खण्डन क्यों करते हो?

**उत्तर**—यह मूर्त्तिपूजन सनातन से नहीं किन्तु जैनों के राज्य से ही आर्यावर्त्त में चला है। जैनों ने परशनाथ, महावीर, जैनेन्द्र, ऋषभदेव, गोतम, कपिल आदिक मूर्त्तियों के नाम रक्खे थे। उनके बहुत-बहुत चेले भये थे और उनमें उनकी अत्यन्त प्रीति भी थी। इससे उन चेलों ने अपने गुरुओं की मूर्त्ति बना के पूजने लगे मन्दिर बनाके। फिर जब उनका

शंकराचार्य ने पराजय कर दिया, इसके पीछे उक्त प्रकार से ब्राह्मणों ने मूर्त्तियां रची और उनका नाम महादेव आदिक रख दिए। उन मूर्त्तियों से कुछ विलक्षण बनाने लग गये और पुजारी लोग जैन तथा मुसलमानों के मन्दिरों की निन्दा करने लगे।

**न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।**
**हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥ १ ॥**

इत्यादिक श्लोक बनाए हैं कि मुसलमानों की भाषा बोलनी और सुननी भी नहीं चाहिए और मत्त अर्थात् पागल हस्ती पीछे मारने को दौड़े, सो जैन के मन्दिर में जाने से बच सकता भी होय तो भी जैन के मन्दिर में न जायं किन्तु हाथी के सन्मुख मर जाना उससे अच्छा। ऐसे निन्दा के श्लोक बनाए हैं। सो पुजारी, पण्डित और सम्प्रदायी लोगों ने चाहा कि इनके खण्डन के विना हमारी आजिविका न बनेगी। यह केवल उनका मिथ्याचार है। मुसल्मान की भाषा पढ़ने में अथवा कोई देश की भाषा पढ़ने में कुछ दोष नहीं होता, किन्तु कुछ गुण ही होता है।

**अपशब्दज्ञानपूर्वके शब्दज्ञाने धर्मः।**

—यह व्याकरण महाभाष्य का वचन है।

इसका यह अभिप्राय है कि अपशब्द ज्ञान अवश्य करना चाहिए, अर्थात् सब देश देशान्तर की भाषा को पढ़ना चाहिए, क्योंकि उनके पढ़ने से बहुत व्यवहारों का उपकार होता है और संस्कृत शब्द के ज्ञान का भी उनको यथावत् बोध होता है। जितनी देशों की भाषा जानैं, उतना ही पुरुष को अधिक ज्ञान होता है, क्योंकि संस्कृत के शब्द बिगड़ के देश भाषा सब होती है, इससे इनके ज्ञानों से परस्पर संस्कृत और भाषा के ज्ञान में उपकार ही होता है। इसी हेतु महाभाष्य में लिखा कि अपशब्द-ज्ञानपूर्वक शब्दज्ञान में धर्म होता है अन्यथा नहीं। क्योंकि जिस पदार्थ का संस्कृत शब्द जानेगा और उसके भाषा शब्द को न जानेगा तो उसको यथावत् पदार्थ का बोध और व्यवहार भी नहीं चल सकेगा। तथा महाभारत में लिखा है कि युधिष्ठिर और विदुरादिक अरबी आदिक देशभाषा को जानते थे, सोई जब युधिष्ठिरादिक लाक्षागृह की ओर चले, तब विदुरजी



ने युधिष्ठिरजी को अरबी भाषा में समझाया और युधिष्ठिर जी ने अरबी भाषा से प्रत्युत्तर दिया, यथावत् उसको समझ लिया। तथा राजसूय और अश्वमेध यज्ञ में देश-देशान्तर तथा द्वीप-द्वीपान्तर के राजा और प्रजास्थ पुरुष आए थे। उनका परस्पर देशभाषाओं में व्यवहार होता था तथा द्वीप-द्वीपान्तर में यहाँ के जन जाते थे और वे इस देश में आते थे फिर जो देश-देशान्तर की भाषा न जानते तो उनका व्यवहार सिद्ध कैसे होता। इससे क्या आया कि देश-देशान्तर की भाषा के पढ़ने और जानने में कुछ दोष नहीं, किन्तु बड़ा उपकार ही होता है।

और जितने पाषाण मूर्त्ति के मन्दिर हैं वे सब जैनों ही के हैं, सो किसी मन्दिर में किसी को जाना उचित नहीं, क्योंकि सब में एक ही लीला है। जैसी जैन मन्दिरों में पाषाणादिक मूर्त्तियां है, वैसी आर्यावर्त्तवासियों के मन्दिरों में भी जड़ मूर्त्तियां हैं। कुछ नाम विलक्षण-विलक्षण इन लोगों ने रख लिये हैं और कुछ विशेष नहीं। केवल पक्षपात ही से ऐसा कहते हैं कि जैन मन्दिरों में न जाना और अपने मन्दिरों में जाना। यह सब लोगों ने अपना-अपना मतबलसिंधु बना लिया है आजीविका के हेतु।

**प्रश्न**—वेद शास्त्र में मूर्त्ति पूजन लिखा है और वेद मन्त्रों से प्राण प्रतिष्ठा होती है उसमें देव की शक्ति भी आ जाती है फिर आप खण्डन क्यों करते हैं?

**उत्तर**—वेद शास्त्र में मूर्त्ति पूजन कहीं नहीं लिखा और न प्राण प्रतिष्ठा और न कुछ उसमें शक्ति आती है।

**प्रश्न—सहस्त्रशीर्षा पुरुषः, उद्बुध्यस्वाग्ने, प्राणदा अपानदा॥** इत्यादिक मन्त्रों से षोडशोपचार पूजा और प्राण प्रतिष्ठा भी होती है तथा प्रतिष्ठा मयूखग्रन्थ और तन्त्र ग्रन्थों में **आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥ प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इन्द्रियाणि इहागच्छन्तु सुखं चिरन्तिष्ठन्तु स्वाहा, अन्तःकरणमिहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वहा॥** इत्यादिक लिखे हैं फिर कैसे खण्डन हो सकता है?

**उत्तर**—इन मन्त्रों के अर्थ नहीं जानने से आप लोगों को भ्रम होता है क्योंकि पुरुष नाम पूर्ण ईश्वर का है। **सहस्त्रशीर्षा** इत्यादिक पुरुष के

विशेषण हैं। सो पुरुष के निराकार होने से शिरादिक अवयव कभी नहीं हो सकते और जो साकार बनता तो व्यापक नहीं बन सकता। तथा हि **पूर्णत्वात्पुरुषः।** इत्यादिक निरुक्त में अर्थ किया है सो उसका **सहस्रशीर्षा** इत्यादिक विशेषण है। उसका अर्थ इस प्रकार का होता है—

**सहस्राणि शिरांसि सहस्राण्यक्षीणि तथा सहस्राणि पादा असंख्याता यस्मिन् पूर्णे पुरुषे सः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषः॥**

जितने शिर, जितनी आंख और जितने पग, असंख्यात वे सब पूर्ण जो परमेश्वर उसी में ही वास करते हैं क्योंकि सब जगत् का अधिकरण परमेश्वर ही है और बहुव्रीहि समास ही अन्य पदार्थ के [प्रधान] होने से होता है तथा सहस्रपात् शब्द के होने से बहुव्रीहि निश्चित होता है व्याकरण की रीति से। सोई अर्थ मन्त्र के उत्तरार्द्ध में स्पष्ट है।

**स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।**
**पुरुष एवेदꣳ सर्वं०, वेदाहमेतम्पुरुषम्०।**

इत्यादिक उत्तर मन्त्रों से यही अर्थ निश्चित होता है। और सब जगत् की उत्पत्ति भी पुरुष से लिखी है। विना परमेश्वर के किसी में नहीं घट सकती। इससे जो कोई कहे कि इन मन्त्रों से षोडशोपचार पूजा होती है, उसकी बात मिथ्या जाननी।

और प्राणप्रतिष्ठा शब्द का यह अर्थ है कि प्राण की स्थिति और स्थापन का होना। जो मूर्त्ति में प्राण आते तो मूर्त्ति चेतन ही हो जाती। सो जैसी पहिले जड़ थी, वैसी ही सदा रहती है। क्योंकि चलना, फिरना, खाना, पीना, बैठना, देखना और सुनना इत्यादिक व्यवहार वह मूर्त्ति नहीं करती। इससे जो कोई कहे कि प्राण प्रतिष्ठा होती है, यह बात उसकी मिथ्या जाननी। और मूर्त्ति ठस होती है, उसमें प्राण के जाने आने का छिद्र अवकाश ही नहीं, फिर प्राण उसमें कैसे घुस सकेगा। और जो कहैं कि हम प्राण प्रतिष्ठा करते हैं, उनसे कहना चाहिए कि आप लोग मुरदे के शरीर में क्यों नहीं प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। किसी राजा, बाबू और सब जगत् के मनुष्यों को मुरदे में प्राण प्रतिष्ठा करके जिला दिया करो फिर तुमलोगों



को बहुत धन मिलेगा और बड़ी प्रतिष्ठा होगी, फिर क्यों नहीं ऐसी बात करते हो। जो वे कहें कि जैसा परमेश्वर ने नियम कर दिया है वैसा ही मरने जीने का होता है, उसको मरे पीछे कोई नहीं जिला सकता तो उनसे हमलोग पूछते हैं कि जिन पदार्थों को परमेश्वर ने प्राण और चेतनता रहित जड़ बनाए हैं, उनको तुम चेतन और प्राण सहित कैसे बना सकोगे, कभी नहीं। और जो कहैं कि देव और सिद्ध पुरुष मृतक को भी जिला देते हैं, उनसे पूछा जाता है कि वे देव और सिद्ध क्यों मर जाते हैं? इससे प्राण प्रतिष्ठा की सब बात झूठी है।

**प्राणदा अपानदा** इनका अर्थ पूर्वार्द्ध में कर दिया है, वहीं देख लेना। और **उद्बुध्यस्वाग्ने,** इसका भी अभिप्राय वहीं देख लेना।

**आत्मेहागच्छतु चिरं तिष्ठतु स्वाहा,** इत्यादि संस्कृत मिथ्या ही लोगों ने रच लिया है। किसी सत्य शास्त्र में नहीं है। देखना चाहिए कि **शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ १॥ अग्निर्मूर्द्धा०, उद्बुध्यस्वाग्ने०** इत्यादिक मन्त्रों में कहीं शनैश्चर, मङ्गल और बुधादिक ग्रहों का नाम भी नहीं है परन्तु विद्या के हीन होने से आजीविका के लोभ से ब्राह्मणों ने जाल रच रक्खा है कि ये ग्रह की कांडी हैं सो किसी ने ऐसा विचारा कि ग्रहों का मन्त्र पृथक् निकालना चाहिए। सो मन्त्रों का अर्थ तो नहीं जानता था किन्तु अटकल से उसने युक्ति रची कि शनैश्चर शब्द के आदि में तालव्य शकार है, और **शन्नो देवी** इस मन्त्र के आदि में भी तालव्य शकार है, इससे यही शनैश्चर का मन्त्र है। तथा **पृथिव्या अयम्,** इससे परमेश्वर का ग्रहण होता है इस शब्द से मङ्गल को लिया। और **उद्बुध्यस्व** क्रिया से बुध को लिया। देखना चाहिए कि **शं** है सुख का नाम, **उद्बुध्यस्व बुध अवगमने** धातु की क्रिया है, इससे बुध को लिया, इत्यादिक भ्रम से ग्रहों को ग्रहण किया है। सो यह कथा केवल लालभुझक्कड़ की नांई है।

जैसे कि किसी गांव में एक मूर्ख पुरुष रहता था उसका नाम लालभुझक्कड़ था। जब कभी किसी राजा का हाथी उस गांव के पास से चला गया था और किसी ने देखा नहीं था। फिर जब प्रात:काल लोग

उठके बाहर चले तब खेत और मार्ग में हाथी के पग के चिह्न देख के बड़े आश्चर्य भये और लालभुझक्कड़ को बुलाके पूछा कि यह क्या है? तब वह बड़ा रोने लगा, फिर रोके हँसा। तब सबने उससे पूंछा कि तुम रो के क्यों हँसे? तब उसने उनसे कहा कि जब मैं मर जाऊँगा, तब ऐसी-ऐसी बातों का उत्तर कौन देगा, इस हेतु मैं रोया। और हँसा इस हेतु कि इसका उत्तर बड़ा सुगम है तो भी तुमने नहीं जाना, इस हेतु मैं हँसा। तब उनने पूछा कि इसका तो उत्तर दे। तब वह बोला कि —

**लालभुझक्कड़ बूझिया और न बूझा कोई।**
**पग में चक्की बांध के हिरणा कूदा होई॥**

हिरना अपने पग में चक्की के पाट बांध के कूदता-कुदता चला गया है, उसके पग के ये चिह्न हैं। तब तो वे सुन के बड़े प्रसन्न भए और सबने कहा कि लालभुझक्कड़ बड़े पण्डित और बुद्धिमान् हैं। वैसे ही पाषाण मूर्त्ति के पूजन विषय और वेद मन्त्रों के विषय में इन पण्डित लोगों ने मिथ्या कोलाहल कर रक्खा है। इससे वेद की निन्दा और अप्रतिष्ठा कर रक्खी है। वेदों में ऐसी-ऐसी झूठ बात होती तो वेद ही सच्चे न हो सकते। इससे यही निश्चय करना कि अपने-अपने मतलब के हेतु मिथ्या-मिथ्या कल्पना लोगों ने कर दी है और वेद में तो सच बात ही है, इन बातों का लेश भी नहीं है।

**प्रश्न**—वेद अनन्त हैं क्योंकि यजुर्वेद की शाखा १०१, सामवेद की १०००, ऋग्वेद की २१ और अथर्ववेद की ९ शाखा हैं। सो बहुत शाखा गुप्त हो गई हैं। उनमें पाषाण पूजनादिक लिखा होगा तुम क्या जानते हो। **अनन्ता: वै वेदाः** यह ब्राह्मण की श्रुति है। इसका यह अभिप्राय है कि वेद अनन्त हैं अर्थात् अनन्त शाखा हैं।

**उत्तर**—शाखा जो होती है सो स्वजातीय होती है। क्योंकि जिस वृक्ष की शाखा होती है, उस वृक्ष के तुल्य पत्र, पुष्प, फल, मूल और स्वाद तथा रूप होता है। जो-जो प्रसिद्ध शाखें हैं, उन-उन शाखाओं की लुप्त शाखा भी अवश्य ऐसी ही होंगी कि जैसा इन में सत्य-सत्य अर्थ प्रतिपादित है, वैसा उनमें भी होगा। इससे जाना जाता है कि इन प्रसिद्ध



शाखाओं में मूर्त्ति पूजन का लेश नहीं है, तो लुप्त शाखाओं में भी नहीं होगा। ऐसा जो कोई कहै कि आपने क्या वे शाखा देखीं हैं तो हम लोग कहते हैं कि आप लोगों ने भी नहीं देखी हैं, फिर आप लोग क्यों कहते हो कि उन लुप्त शाखाओं में लिखा होगा। और आप लोग अनुमान भी नहीं कर सकते, क्योंकि इन शाखाओं में थोड़ा सा भी प्रतिपादन होता तो उन शाखाओं में भी अनुमान हो सकता, अन्यथा नहीं। और जो हठ से मिथ्या कल्पना करते हो तो हम भी कर सकते हैं कि उन शाखाओं में चोरी, मिथ्या भाषण, विश्वासघात, कन्या, माता, भगिनी इनसे समागम करना, वेश्या गमन, परस्त्री गमन उनमें लिखा होगा और वर्णाश्रम व्यवस्था उनमें न होगी, इत्यादिक अनुमान मिथ्या कर सकते हैं। और फिर तुमने भी वे शाखा देखी नहीं वा कोई नहीं देख सकता, फिर कैसे निश्चय होगा, कभी न होगा, क्योंकि कभी भ्रम की निवृत्ति न होगी। न जाने उन शाखाओं में ब्राह्मण का नाम चांडाल होय और चाण्डाल का नाम ब्राह्मण होय। इससे ऐसा आप लोग मिथ्या अनुमान न करैं। और इन शाखाओं का मूल भी तो कोई होगा और जो मूल न होगा तो शाखा कैसी। इससे जो वेद पुस्तक हैं वे ही सब शाखाओं के मूल हैं और शाखा व्याख्यानों की नांई ब्रह्मादिक ऋषिमुनियों ने की हैं। जैसे, **मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य**। ऐसा पाठ शुक्ल यजुर्वेद में हैं। और तैत्तिरीय शाखा में **मनोज्योतिर्जुषता-माज्यस्य**, ऐसा पाठ है। जूति जो मन का विशेषण था सो ज्योतिः शब्द से स्पष्टार्थ हो गया। सो सर्वत्र विशेषण का यथायोग्य भेद है। जो विशेष्य का भेद होगा तो परस्पर विरोध के होने से मिथ्यात्व वेदों में आ जायगा। इससे विशेष्य का भेद कभी नहीं होता। विशेष्य भेद से पूर्वापर विरोध हो जायगा, फिर किसको सत्य मानैं, और किसको मिथ्या। इससे वेदों में ऐसा दोष कहीं नहीं, इससे ऐसा भ्रम कभी नहीं करना चाहिए। और जो वेद अनन्त होंगे तो कोई पुरुष सबको पढ़ना वा देखना भी न कर सकेगा और पूर्ण विद्वान् भी कोई न हो सकेगा। फिर भी भ्रम ही रहेगा, भ्रम के रहने से किसी पदार्थ का दृढ़ निश्चय न होगा और उत्साह भङ्ग भी हो जायगा कि वेद का अन्त तो है नहीं, हम लोग

कैसे पढ़ सकेंगे। इससे सब लोगों को भ्रम ही बना रहेगा। इससे **वेद** शब्द का यह अर्थ है कि जिससे जाना जाय पदार्थ उसका नाम है वेद। और **वेत्ति सोऽयं वेदः**, जो जानने वाला है उसका नाम भी **वेद** है। सो अनन्त नाम असंख्यात जीव हैं, वे ही जानने वाले के होने से उनका नाम **वेद** है। और **विदन्ति यैस्ते वेदाः**। जिनसे पदार्थ जाना जाय उनका नाम है **वेद**। सो सर्वशक्तिमत्त्व और सब जगत् का रचनादिक परमेश्वर के अनन्त गुण हैं। वे परमेश्वर को जनानेवाले हैं, इससे उनका नाम **वेद** है। इससे **अनन्ता वै वेदाः** ऐसा ब्राह्मण श्रुति में अभिप्राय ज्ञापन किया है।

**प्रश्न**—पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन वेदादिकों में नहीं ही है फिर कैसे यह परम्परा चली आई और इतनी बड़ी प्रवृत्ति भई आज तक किसी ने नहीं खण्डन किया, जैसे कि आप खण्डन करते हैं?

**उत्तर**—आप लोग सर्वज्ञ नहीं हैं, वा त्रिकालदर्शी, जो कि परम्परा का ठीक-ठीक निश्चय कर सकें। देखना चाहिए कि सत्यनारायण, शीघ्र बोध, कौमुद्यादिक नए-नए स्तोत्र नवीन-नवीन तीर्थ तथा मन्दिर आदिक होते ही चले आते हैं और इनको परम्परा मान लेते हैं और वे अब के बने हैं सब। और अपना पिता जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसका पुत्र परम्परा मान लेता है। फिर कोई चौर्यादिक अन्याय में प्रवृत्त हो जाता है और कोई कुछ अन्याय से डरता भी है। सो लोक की परम्परा आप लोग मानेंगे तो बहुत दोष आ जायेंगे और कभी न हो सकेगी, क्योंकि किसी का पिता दरिद्र होवै और उसके कुल में पुत्रादिक धनाढ्य होते हैं फिर परम्परा से जो दरिद्रता उसको क्यों छोड़ते हैं? किसी का पिता अन्धा होय उसका पुत्र आँख को क्यों नहीं निकाल डालता है। और जिसका पिता मूर्ख होता है वा पण्डित उसका पुत्र मूर्ख वा पण्डित नियम से क्यों नहीं होता। किसी का पिता चोरी करता होय और जहल्खाने [कारागार] को जाय, उसका पुत्र चोरी वा जहल्खाने को क्यों नहीं जाय। जिस दिन उसका पिता मरे उसी दिन अपने भी क्यों नहीं मर जाय। प्रथम अंगरेजी इस देश में पढ़ाई नहीं जाती थी अब क्यों पढ़ी जाती है। रेल पर पहिले चढ़ना नहीं होता था और तार पर खबर नहीं जाती आती थी, फिर रेल पर चढ़ते और तार



पर खबर भेजते-भेजाते क्यों हैं। इत्यादिक बहुत दोष आते हैं ऐसा मानने में। और परम्परा का निश्चय तो प्रत्यक्षादिक प्रमाण और वेदादि सत्यशास्त्रों से ही होता है, अन्यथा कभी नहीं। यह पाषाणादिक पूजन की मिथ्या प्रवृत्ति बड़ी भई है, सो केवल विद्या, धर्म, विचार, ब्रह्मचर्याश्रम, सत्सङ्ग और श्रेष्ठ राजाओं के नहीं होने से भई है। क्योंकि सत्य विद्या जब मनुष्यों में नहीं होती, तब अनेक भ्रमों से बुद्धि नष्ट होती है। तब बहुत मूर्ख, अधर्मी, पाखण्डी तथा मतवालों के उपदेश लोग मानने लगते हैं। फिर बड़े भ्रम जाल में पड़ के, वे धूर्त्त लोग जैसा उपदेश करते हैं, वैसा ही मान लेते हैं, और लोगों की बुद्धि विपरीत हो जाती है। फिर बड़ा अन्धकार हो जाता है। उनको बुद्धि से कुछ नहीं सूझता।

**गतानुगतिका लोका न लोकाः पारमार्थिकाः।**
**बालुकापिण्डदानेन गतं मे ताम्रभाजनम्॥**

इसमें यह दृष्टान्त है कि एक कोई पण्डित ताम्बे का अर्घा लेके तर्पण और स्नान के हेतु गया। उस घाट में अन्य पुरुष भी बहुत जाते और आते थे। उस पण्डित को शौच की इच्छा भई। तब तांबे का अर्घा बालू में गाड़ दिया और उसके ऊपर गीली बालू का पिण्ड धरके निशान के हेतु, शौच को फिर चला गया। अन्य स्नान करनेवालों ने यह चरित्र देखा। देख के पण्डित से तो किसी ने नहीं पूछा किन्तु जैसा पण्डित ने पिण्ड बना के रक्खा था, वैसा पिण्ड सैकड़ों आदमी ने बना के रख दिया उसके पास-पास। उनके हृदय में ऐसा विचार आया कि पण्डित ने जो यह काम किया है सो पुण्य के वास्ते ही किया होगा। इस हेतु हम भी ऐसा ही करैं। तब तक पण्डित भी शौच होके आया और उनने देखा कि बहुत पिण्ड वैसे ही धरे हैं और बहुत मनुष्य पिण्ड बना-बना के रखते भी जाते थे। सो पण्डित ने उनसे पूछा कि आप यह काम क्यों करते हैं? तब उनने पण्डित से कहा कि आप का देखके हम लोग भी करते हैं। तब पण्डित ने पूछा कि इसके करने का क्या प्रयोजन है? तब उनने कहा कि जो आपका प्रयोजन होगा, सो हमारा भी है। पण्डित ने विचारा कि मेरा तो पात्र ही नष्ट हो गया। तब पण्डित ने कहा कि अपना-अपना पिण्ड सब बिगाड़

डारो नहीं तो तुमको बड़ा पाप होगा। तब उनने पण्डित से कहा कि आपको भी पिण्ड बनाने से पाप भया होगा। तब पण्डित ने कहा कि तुम अपना-अपना पिण्ड बिगाड़ डारो, तब मैं भी अपना बिगाड़ डालूँगा। तब तो अपने-अपने सब पिण्ड तोड़ डाले। जब पण्डित का पिण्ड रह गया, फिर पण्डित ने जाके पिण्ड तोड़ा और नीचे से अर्घा निकाल लिया और उनसे कहा कि मैंने इस हेतु निशान धरा था। तुमने पूछा भी नहीं और पिण्ड धरने लग गए। तब उनने कहा कि आप का काम देखके हम भी करने लग गये। वैसे ही पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन एक का देख के दूसरे भी करने लगे। ऐसे भेड़ों के प्रवाह की नांई लोग गतानुगतिक होते हैं। जैसे एक भेड़ आगे चले, उसके पीछे सब भेड़ चलने लगती हैं और जैसे एक सियार वा एक कुत्ता बोलने वा भूसने लगे, उसका शब्द सुनके अन्य सियार वा कुत्ते बहुत बोलने वा भूसने लग जाते हैं। वैसी ही विद्याहीन मनुष्यों की अन्ध परम्परा चलती है। उसमें बड़े-बड़े आग्रह करके नष्ट होते चले जाते हैं और परमार्थ विचार सत्य-सत्य कोई नहीं करता। इससे हम लोग भी इस मिथ्या व्यवहार का खण्डन करते हैं पक्षपात छोड़ के। क्योंकि प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से और वेदादिक सत्यशास्त्रों से दृढ़ निश्चय करके जाना गया है कि मुक्ति के हेतु वा सब व्यवहार सुख के हेतु परमेश्वर की ही दृढ़ उपासना करनी योग्य है पाषाणादिक जड़ मूर्त्तियों की कभी नहीं।

**प्रश्न**—आज तक बहुत पण्डित पहिले भये और बहुत पण्डित हैं भी, फिर खण्डन नहीं कोई करता और मूर्त्तियों का पूजन ही करते हैं। सो आप एक बड़े पण्डित आये जो खण्डन करते हैं, सो आपका कहना कौन मानता है ?

**उत्तर**—प्रथम मैं आपसे पूछता हूँ कि पण्डित कौन होता है। जो आप कहैं कि पञ्चाङ्ग, शीघ्र-बोध, मुहूर्त्त चिन्तामणि आदिक, सारस्वत चन्द्रिका, कौमुद्यादिक, तर्कसंग्रह, मुक्तावल्यादिक, भागवतादिक पुराण, मन्त्रमहोदध्यादिक तन्त्रग्रन्थ और तुलसीकृत रामायणादिक भाषा पढ़ने से [पण्डित होता है, तो मैं आपसे कहता हूँ कि इन ग्रन्थों के पढ़ने से]



पण्डित [नहीं] होता है किन्तु अविवेकी ही बन जाता है क्योंकि—

**सदसद्विवेककर्त्री बुद्धिः पण्डा संजाता अस्येति स पण्डितः॥**

जो बुद्धि सदसद्विवेक करनेवाली होय उसका नाम **पण्डा** है और वही पण्डा नाम विवेक युक्त बुद्धि जिसको होय, वही **पण्डित** होता है। सो आप लोग विचारके देखैं कि यथावत् धर्म और अधर्म तथा सत्य और असत्य का विवेक इन पण्डितों को है वा नहीं, जिनको आप पण्डित कहते हो। और जो मूर्ख हैं वे तो आजकाल कोई-कोई अधर्म से डरते भी हैं, किन्तु पण्डित लोग प्रायः नहीं डरते। किन्तु कोई पण्डित सैकड़ों में एक अच्छा भी है। परन्तु उस एक की वे धूर्त्त लोग बात ही नहीं चलने देते और वह सच जानता भी है तो मन में ही सत्य बात रखता है क्योंकि वह सत्य कहै तो सब मिल के उसकी दुर्दशा कर देते हैं। इस भय का मारा वह भी मौन कर लेता है। परन्तु उन सत्य पण्डितों को मौन वा भय करना उचित नहीं, क्योंकि मौन और भय के करने से देश का अकल्याण, धर्म का नाश, अधर्म की वृद्धि और उन धूर्त्तों की बन पड़ेगी। इससे कभी मौन वा भय सत्य करने वा कहने में नहीं करना चाहिए, क्योंकि जो अच्छे पण्डित और बुद्धिमान् भय वा मौन करेंगे तो उसके देश का नाश ही हो जायगा। और वेद विद्यादिक नहीं पढ़ने से बहुतों को सत्य-सत्य निश्चय भी नहीं है, इससे वे खण्डन नहीं करते हैं लोक के भय के मारे कि हमारी आजीविका नष्ट हो जायगी। जो हम खण्डन करेंगे तो हमारी निन्दा होगी और आजीविका भी नष्ट हो जायगी, इससे ऐसा कहना वा करना न चाहिए, जिससे कि संसार में विरोध हो जाय।

परन्तु मैं कहता हूँ कि भय तो श्रेष्ठ पुरुषों को एक परमेश्वर तथा अधर्म के आचरण से ही करना चाहिए अनय कोई से नहीं। और जो मैं खण्डन करता हूँ सो प्रत्यक्षादिक प्रमाण और वेदादिक सत्यशास्त्रों से ही करता हूँ। सो आज तक किसी ने वेदोक्त प्रमाण वा ठीक-ठीक युक्ति नहीं दी, क्योंकि प्रमाण और युक्ति तो सत्य बात में हो सकती है, असत्य में कभी नहीं। और इस में प्रमाण वा युक्ति कोई दे भी नहीं सकेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

**प्रश्न**—अनेक संन्यासी, उदासी, वैरागी और गोसांई आदिक क्यों खण्डन नहीं करते हैं और पूजा करते हैं?

**उत्तर**—वे भी वैसे ही संसार की निन्दा और आजीविका से डरते हैं। इससे वे खण्डन नहीं करते वा पूजा नहीं छोड़ते।

**प्रश्न**—उनको क्या आजीविका का भय है और संसार का, जिससे कि वे डरते हैं क्योंकि उनको विवाह, मरने में द्वादशाह करना ही नहीं जिस में धन की चाहना हो और माता, पिता, स्त्री, पुत्रादिक, कुटुम्ब, और घर को छोड़ के स्वतन्त्र हैं। इससे उनको भय है नहीं। परन्तु वे भी खण्डन नहीं करते और पूजा करते हैं फिर आप ही बड़े विरक्त आ गये कि इन बातों का खण्डन करते हैं।

**उत्तर**—यह बात तो सत्य है कि उनको भी सत्य भाषणादिक का छोड़ना और पाषाणादिक मूर्त्ति का पूजन करना उचित नहीं। परन्तु वे भी सैकड़ों में कोई एक धर्मात्मा और पण्डित हैं। अन्य जैसे गृहाश्रम में थे, वैसे ही बने रहते हैं और कितने गृहस्थों से भी नीच कर्म करते हैं क्योंकि उनने केवल खाने पीने और विषय भोग के हेतु विरक्त का वेष धारण कर लिया है परन्तु विरक्तता उनमें कुछ नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि धर्म की रक्षा और मुक्ति करने के लिए वे विरक्त नहीं होते हैं, किन्तु अपने शरीर और इन्द्रियभोग के लिये विरक्तों के नांई बन गये हैं। कोई धर्मात्मा राजा होय और इनकी यथावत् परीक्षा करैं तो हजारों में एक विरक्तता के योग्य निकलेगा। बहुत मजूरी और हल ग्रहण करने के योग्य निकलेंगे, क्योंकि जब पूर्ण विद्या, जितेन्द्रियता, छलकपटादिक दोष रहित होवैं, सत्य-सत्य उपदेश तथा सबके ऊपर कृपा करके वैराग्य, ज्ञान और परमेश्वर का ध्यान करैं तथा काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक दोषों को छोड़ैं और सत्य धर्म, सत्य विद्या, सत्य उपदेश की सदा निष्ठा होने से विरक्त होता है, अन्यथा नहीं।

देखना चाहिए कि गोकुलस्थ गोसांई आदिक कैसे धूर्त्तता से धन हरण करके धनाढ्य बन गए हैं। बहुत से चेले और चेलियाँ बना लेते हैं, उनको समर्पण करा लेते हैं, कि तन नाम शरीर, धन और मन गोसांई जी



के अर्पण करो। सो बड़े-बड़े मन्दिर उनोंने बनाये हैं और नाना प्रकार की मूर्त्तियां रख ली हैं और नाना प्रकार के कलाबत्तू, सच्चे झूठे आभूषणों से ऐसा जाल रचा है कि देखते ही मोहित होके उसमें फस जाते हैं। प्रायः स्त्री लोग उस मन्दिर में बहुत जाती हैं। जितनी व्यभिचारिणी स्त्री और व्यभिचारी पुरुष बहुधा मन्दिरों में जाते हैं, क्योंकि वहाँ परस्पर स्त्री पुरुषों का दर्शन होता है और जिससे जो चाहे उससे समागम विना परिश्रम से कर ले। उसमें शयन आर्ती और मङ्गलार्ती बहुधा व्यभिचार के मूल हैं। क्योंकि उस समय प्रायः रात्री ही रहती है, इससे आनन्द पूर्वक निर्भय होके क्रीड़ा करते हैं परस्पर मिलके। और उसमें पाप भी नहीं गिनते क्योंकि एक श्लोक बना रक्खा है—

**अहं कृष्णस्त्वं राधा ह्यावयोरस्तु संगमः॥**

पर-स्त्री और पर-पुरुष जब परस्पर गमन करना चाहै तो इसको पढ़ले। इससे पर-स्त्री गमन वा पर-पुरुष गमन में कुछ पाप नहीं होता है। जब वे परस्पर सन्मुख होवैं तब पुरुष कहे कि मैं कृष्ण हूँ तूं राधा है। तब स्त्री बोले कि मैं राधा हूँ आप कृष्ण हैं। ऐसा कहके कुकर्म करने को लग जाते हैं उनके दो मन्त्र हैं—

**श्रीकृष्णः शरणं मम।**

यह उनोंने मिथ्या संस्कृत बना लिया है। इसका यह अभिप्राय है कि जो श्रीकृष्ण सोई मेरा शरण अर्थात् इष्ट है। फिर भागवत की कथा में रास मण्डल की लीला सुनके ऐसा निश्चय करते हैं कि हम लोगों के इष्ट ने जैसी लीला की है वैसी हम भी करैं, कुछ दोष नहीं। और इसका ऐसा भी अर्थ बन सकता है कि जो श्रीकृष्ण है सो मेरी शरण को प्राप्त होय अर्थात् मेरा सेवक श्रीकृष्ण बन जाय। ऐसा अनर्थ भी भ्रष्ट संस्कृत से हो सकता है। सो यह मन्त्र गोसांई लोग दरिद्र, कङ्गाल और साधारण पुरुषों को देते हैं और जो बड़ा आदमी है उसके हेतु दूसरा मन्त्र बनाया है। वही समर्पण का मन्त्र है—

**क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥**

इस मन्त्र को उसको देते हैं कि जो शरीर, मन, और धन गोसांई जी

के अर्पण कर दे। और गोसांई लोग अपने को कृष्ण मानते हैं और अपनी चेलियां वा जगत् की सब स्त्रियां राधा हैं। सो जिस स्त्री से चाहें, उस स्त्री से समागम कर लें उनको पाप नहीं लगता और उनके समर्पणी जो चेले होते हैं, वे अपनी प्रसन्नता से गोसांईजी की प्रसादी करा लेते हैं अर्थात् स्त्री, वा पुत्र की स्त्री तथा कन्या उनको गोसांईजी की खास सेवा में एकान्त में भेजते हैं। जब गोसांई जी एक वार अपनी सेवा में प्रथम रख लेते हैं, तब वह स्त्री पवित्र हो जाती है और वह स्त्री अपने को धन्य मानती हैं तथा उनके सेवक भी अपने को धन्य मानते हैं। जिनका गुरु इस प्रकार का व्यभिचारी होगा, उनका शिष्य वर्ग व्यभिचारी क्यों नहीं होगा। सो बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं अब के सम्प्रदाय में, सो कहने योग्य नहीं। वे पान बीड़ा खाके पात्र में पीक डाल देते हैं, सो उसको उनके चेले बड़ी प्रसन्नता से खा लेते हैं और अपने को बड़ा धन्य मानते हैं कि हमको गोसांईजी महाराज की प्रसादी मिल गई। जब कोई धनाढ्य उनको अपने घर में ले जाता है उसका नाम पधरावनी कहते हैं। जब वे वहाँ जाते हैं तब बड़ा एक पात्र ताम्बे वा लोहे का रख लेते हैं। उसके बीच में स्नान के हेतु एक चौकी रख देते हैं फिर गोसांईजी एक धोती सहित उस पात्र के बीच में चौकी पै बैठ जाते हैं। फिर अनेक सुगन्ध केशरादिक पदार्थों से उनके शरीर को स्त्री और पुरुष मलते हैं। फिर अच्छे-अच्छे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ जल से उनको स्नान कराते हैं, फिर जब स्नान हो जाता है तब सूखा पीताम्बर को धार लेते हैं और गीली धोती उस कड़ाही के जल में छोड़ देते हैं फिर गोसांई जी निकल आते हैं। तब उनके सेवक लोग उस जल को पीते हैं और अपने को धन्य मानते हैं।

फिर गोसांई जी, बहु जी, बेटी जी, लाल जी, ठाकुर जी, पुजारी जी, गवैया जी, इन सात जालों से उस गृहस्थ का बहुत धन हर लेते हैं। इससे उनके पास खूब धन हो गया है। उससे रात दिन विषयसेवा और प्रमाद में रहते हैं। उनके चेले जानते हैं कि हम मुक्ति को प्राप्त होंगे। परन्तु इन कर्मों से मुक्ति तो नहीं होनी किन्तु नरक ही होना, क्योंकि इन प्रमादों में जिनका धन जाता है, उनका भला कभी नहीं होगा और उन गुरुओं का



भी।

और उनने एक कथा रच रक्खी है कि लक्ष्मण भट्ट एक ब्राह्मण तैलंग था। उसने काशी में आके संन्यास लेने को चाहा, तब उससे पूछा कि आपके माता पिता वा विवाहित स्त्री तो घर में नहीं है। तब उनने मिथ्या कहा कि मेरे घर में कोई नहीं है मुझको संन्यास दे दीजिए। फिर उनने संन्यास दे दिया। कुछ दिन के पीछे उसकी स्त्री काशी में खोजती-खोजती आई और वह कहीं मार्ग में मिला सो उसके पीछे-पीछे चली गई। वह अपने गुरु के पास जाके बैठा, स्त्री भी बैठी और उसके गुरु से स्त्री ने कहा कि महाराज मुझको भी आप संन्यास दे दीजिए क्योंकि मेरे पति को तो आपने संन्यास दे दिया अब मैं क्या करूँगी। तब तो उस संन्यासी ने बहुत क्रोध करके उसका दण्ड और काषाय वस्त्र ले लिया और उससे कहा कि तूं झूठ क्यों बोला, तैने बड़ा अनर्थ किया। अब तुम यज्ञोपवीत पहर लेओ और अपनी स्त्री के साथ रहो। और उनके गुरु ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा पुत्र बड़ा श्रेष्ठ होगा। सो उनके भाषा ग्रन्थ में ऐसी बात लिखी है।

सो मुझको अनुमान से ऐसा मालूम पड़ता है कि जब उसने काशी में संन्यास लिया, फिर खूब खाने पीने को लगा, तब कामातुर होके किसी स्त्री से फस गया। फिर जब काशी में निन्दा होने लगी, तब काशी छोड़ के दक्षिण देश में चला गया, परन्तु कोई उसके स्वजाति ब्राह्मण ने पंक्ति में नहीं लिया। सो आज तक तैलंग ब्राह्मणों की और गोकुलस्थों की एक पंक्ति वा एक विवाह नहीं होता। जो कोई तैलंग ब्राह्मण गोसांई जी को कन्या देता है, वह भी जाति बाह्य हो जाता है।

फिर वे दोनों जहाँ तहाँ घूमने लगे और उनका एक पुत्र भया उसका नाम वल्लभ रक्खा। इस विषय में वे लोग ऐसा कहते हैं कि जन्म समय में ही उस बालक को वन में छोड़ के चले गए। सो उस बालक की चारों ओर अग्नि जलता रहता था। इससे उस बालक को कोई जानवर नहीं मार सका। जब वे पांच वर्ष के भये तब दिग्विजय करने लगे और सब पृथिवी के पंडितों को उनने जीत लिया पांच बरस की उमर में।

सो यह बात हमको झूठ मालूम देती है क्योंकि वे वन में बालक को कभी नहीं छोड़ेंगे तथा अग्नि रक्षा भी न करेगा और पांच वर्ष की उमर में विद्या कभी नहीं हो सकती फिर वे क्या पराजय करेंगे। यह बात अपने सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा के हेतु मिथ्या रच ली है क्योंकि **सुबोधिनी** तथा **विद्वन्मंडन** संस्कृत में ग्रन्थ उसके बनाये देखने में आते हैं। उनमें उसका साधारण पाण्डित्य ही देखने में आता है। इससे वह वल्लभ जी के मतवाला क्या पण्डितों का पराजय कर सकेगा। फिर वे ऐसा कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने वल्लभजी से कहा कि हमारे जितने दैवी जीव हैं उनका तुम उद्धार करो। फिर वल्लभजी फिरते घूमते मथुरा में आके रहे और वहाँ सम्प्रदाय का जाल फैलाया। कितनेक पुरुष उनके चेले भये और उनने विवाह किया उससे सात पुत्र भये, सो आज तक गोकुलस्थों की सात गद्दी बजती हैं। फिर ऐसी-ऐसी कथा प्रसिद्ध करने लगे कि जो कोई गोसांई जो का चेला होगा, वही वैष्णव और दैवी जीव है, और जो कोई उनका चेला नहीं होता, वह आसुर नाम दैत्य और राक्षस संज्ञक जीव है। ऐसी प्रसिद्ध होने से बहुत लोग चेले हो गये और बहुत व्यभिचार तथा विषय भोग के हेतु चेले होते हैं।

यहाँ तक उनने मिथ्या कथा रची है कि जब मथुरा में रहते थे तब वल्लभजी ने एक चेले से कहा कि तू दही मेरे लिये बाजार से लेआ। वह चेला दही लेने के हेतु बाजार में गया। वहाँ एक दही लेके बुड्ढी स्त्री बैठी थी, उससे उसने कहा कि इस दही का क्या तूं मूल्य लेगी। तब बुढ़िया ने जाना कि यह वल्लभजी का चेला है। उससे बोली कि मैं इस दही के बदले मुक्ति लेऊँगी। तब उसने दही ले लिया और बुढ़िया से कहा कि तुझको मैंने मुक्ति दे दी। सो उस बुढ़िया की मुक्ति ही हो गई।

और वल्लभजी का नाम रक्खा है महाप्रभु। सो ऐसी-ऐसी झूठ कथा बना के जगत् को ठग लेते हैं। एक घास की कण्ठी दे देते हैं, उसका नाम रक्खा है पवित्रा। और रोरी की दो रेखा शृङ्ग के तुल्य ललाट में बनवा देते हैं। फिर कहते हैं कि तुम गोसांई जी के समर्पण हो जाओ, इससे तुह्मारा पाप सब छूट जायगा। तुम लोग दैवी जीव और वैष्णव कहाओगे।



इस लोक में आनन्द से भोग करो और मरने के पीछे तुम लोग गोलोक स्वर्ग में जाओगे। जहाँ राधादिक सखी और श्रीकृष्ण नित्य रासमण्डल और आनन्द भोग करते हैं, वैसे तुम भी अनेक स्त्रियों के साथ आनन्द भोग करोगे। ऐसी कथा को सुनके स्त्री और पुरुष मोहित होके चेले हो जाते हैं।

फिर एक ऐसी मिथ्या कथा रची है कि विट्ठल साक्षात् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है और हम लोग साक्षात् कृष्ण के स्वरूप हैं। सो बहुत-बहुत धन दे-दे के धनाढ्य की स्त्रियां एक रात्रि गोसांई जी की सेवा में रह आती हैं। तब उनके चेले और चेलियां उस स्त्री से कहती हैं कि तूं बड़ी सौभाग्यवती है कि गोसांई जी ने तुझको अंग से लगा लिया, क्योंकि समर्पण का यही प्रयोजन है कि गोसांई जी शरीर, धन और उनके मन को चाहें सो करैं। उन चेले और चेलियों का जब मरण होता है तब उनका धन सब गोसांई जी ले लेते हैं, क्योंकि पहिले ही समर्पण किया गया था। बड़े आनन्द का सम्प्रदाय उन का है कि चेले चेली, नोकर चाकर सब विषय भोग आनन्द के समुद्र में डूब के मग्न हो जाते हैं और गोसांई लोग खूब शृङ्गार से बने ठने सदा रहते हैं। जिसे देख के स्त्री लोग मोहित हो जायं, सो रात दिन स्त्री लोग घेर के रहती हैं। और स्त्रियों के अर्थात् चेलियों के झुण्ड के झुण्ड में क्रीड़ा करते रहते हैं क्योंकि गोसांई लोग अपने को कृष्ण मानते हैं और उनकी चेलियां अपने को राधा रूप सखी मानती हैं। खूब स्त्री लोग धन देती हैं और अपनी इच्छापूर्वक क्रीडा करती हैं। केवल वे बड़े पामर हो जाते हैं। इससे पशु की नांई अर्थात् लाल मुख के बांदर जैसे क्रीड़ा करते हैं, वैसे वे भी पशु हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं। जितने मन्दिर धारी वैरागी हैं, उनका भी प्रायः ऐसा ही व्यवहार है।

एक चक्रांकित लोग जो कि आचारी कहाते हैं उनका ऐसा मत है कि—

**तापःपुण्ड्रं तथा नाम मालामन्त्रस्तथैव च।**
**अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥**

—यह उनका श्लोक है।

शंख, चक्र, गदा और पद्म लोहे, चांदी वा सोने के चार चिह्न बना रखते हैं। जो कोई उनका चेला वा चेली होती है, जब वे स्नान करके आते हैं तब बरोबर पंक्ति उनकी बैठ जाती है और उन चिह्नों को अग्नि में तपाके उनके हाथ के मूल में तप्त-तप्त लगा देते हैं। उस समय जिस अग्नि में तपाया जाता है, उसका नाम वेदी रक्खा है, जब उनके हाथ में तप्त-तप्त वे लगाते हैं, तब बड़ा दुःख उनको होता है, क्योंकि चमड़ी, लोम और मांस के जलने से उनको बड़ी पीड़ा होती है और दुर्गन्ध भी उठता है। फिर उनके हाथ में लगाके चमड़ा, मांस, उसमें कुछ-कुछ लगा रहता है, और एक पात्र में जल वा दूध रख देते हैं, उसमें उन चिह्नों को बुझा देते हैं। फिर कोई-कोई उस जल वा दूध को पी लेते हैं।

देखना चाहिए यह बात कौन धर्म और किस युक्ति की होगी, केवल मिथ्या ही जानना, क्योंकि जीते शरीर को जलाने से एक प्रथम संस्कार मानते हैं और जितने सम्प्रदाय वाले हैं वे ऊर्ध्व पुण्ड्र वा त्रिपुण्ड्र का संस्कार सब मानते हैं। उनसे ही शैव, वैष्णवादिक अपने हृदय में अभिमान करते हैं। ऊर्ध्व पुण्ड्र वाले नारायण के पग की आकृति तिलक को मानते हैं तथा शैव शाक्तादिक महादेव के ललाट में जो चन्द्र है उसकी आकृति मानते हैं। फिर चक्रांकितादिक बीच में रेखा करते हैं, उसका नाम श्री रख दिया है।

इसमें विचारना चाहिए कि जिनके ललाट में हरि के पग का चिह्न, लक्ष्मी और चन्द्रमा का चिह्न होवै तो वे दरिद्र, दुःखी और ज्वरादिक रोग उनको क्यों होवैं। फिर वे कहते हैं कि विना तिलक से चाण्डाल के तुल्य वह मनुष्य होता है। उनसे पूंछना चाहिए कि चाण्डाल जो तुह्मारा तिलक लगा ले तो तुह्मारे तुल्य हो सकता है वा नहीं। जो वे कहैं कि हो सकता है तो गधा वा कुत्ते के ललाट में तिलक लगाने से वह मनुष्य भी हो जाता है वा नहीं। सो तिलक का ऐसा सामर्थ्य नहीं देख पड़ता है कि और का और हो जाय। और लक्ष्मी और चन्द्र इनके ललाट में विराजमान है तो भी उदर का पालन होना कठिन देख पड़ता है। इससे ऐसा निश्चय होता है कि यह लक्ष्मी और चन्द्रमा नहीं है। किन्तु दरिद्रा और उष्णता जाननी



चाहिए।

फिर वे तिलक के विषय में एक दृष्टान्त कहते हैं कि कोई मनुष्य एक वृक्ष के नीचे सोता था बड़ा रोगी, सो मरण समय उसका आ गया। वृक्ष के ऊपर एक कौआ बैठा था, उसने विष्ठा करी सो गिरी उसके ललाट के ऊपर, सो तिलक की नांई चिह्न हो गया। फिर यमराज के दूत उसको लेने को आये। तब तक नारायण ने अपने भी दूत भेज दिये। यमराज के दूतों ने कहा कि यह बड़ा पापी है सो अपने स्वामी की आज्ञा से हम इसको नरक में डालेंगे। तब नारायण के दूत बोले कि हमारे स्वामी की आज्ञा है कि इसको वैकुण्ठ में ले आओ। देखो! तुम अन्धे हो गये, इसके ललाट में तिलक है तुम कैसे ले जा सकोगे। सो यमराज के दूतों की बात नहीं चली और उसको वैकुण्ठ में ले गए। नारायण ने बड़ी प्रीति से प्रतिष्ठा करी और उससे कहा कि तूं आनन्द कर बैकुण्ठ में। ऐसे-ऐसे प्रमाणों से तिलक को सिद्ध करते हैं और लोग मानते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है, क्योंकि ऐसी मिथ्या कथा को लोग मान लेते हैं।

गोकुलस्थ लोग केवल हरि पदाकृति को ही तिलक मानते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के एक काला बिन्दु, तिलक के बीच में दे देते हैं। उसको जैसे मन्दिर में श्रीकृष्ण बैठा होय ऐसा मानते हैं। तथा माधवार्क सम्प्रदाय वाले एक काली रेखा खड़ी ललाट में करते हैं, उसको भी ऐसा मानते हैं। तथा चैतन्य सम्प्रदाय में जो हैं, वे कटार के ऐसे चिह्न को हरि पदाकृति मानते हैं। और राधा वल्लभी बिन्दु को राधावत् मानते हैं। कबीर के सम्प्रदाय वाले दीप की शिखावत् तिलक को मानते हैं। और पण्डित लोग पिप्पल के पत्ते की नांई कोई-कोई तिलक करते हैं। सो केवल मिथ्या कल्पना लोगों ने बनाई है। जो तिलक के विना चाण्डाल होता हो तो वे भी चाण्डाल हो जायं, क्योंकि जब स्नान और मुख प्रक्षालन करते हैं, तब तो उनके भी ललाट में तिलक नहीं रहता, फिर वे चाण्डाल क्यों न बन जायं और जो फिर तिलक के करने से उत्तम बन जायं तो चाण्डाल के उत्तम बनने में क्या देर है। परन्तु चक्रांकितों के ग्रन्थ मन्त्रार्थ दिव्य सूर्य्य, रत्नप्रभा और नाभा की बनाई भक्त-मालादिकों में यह प्रसिद्ध

लिखा है कि जो चक्रांकितों का मूल आचार्य शठकोपजी सो कंजर और हाबूडा के कुल में उत्पन्न भया था। सोई उन ग्रन्थों में लिखा है कि **विक्रीर्य शूर्पं विचार योगी।** यह वचन है। इसका यह अभिप्राय है कि सूप को बेच के योगी शठकोप सो विचरता भया। इससे क्या आया कि वह सूप बनाने वाले के कुल में उत्पन्न भया था। उसने ही चक्रांकित सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया। इससे उसका टोप चक्रांकित आज तक पूजते हैं।

उसके पीछे दूसरा उनका आचार्य मुनिवाहन भया। उसकी ऐसी कथा उन ग्रंथों में है कि दक्षिण में एक तोता दरी और रङ्गजी दो स्थान हैं, उनमें बहुत से उनके सम्प्रदाय के साधु आज तक रहते हैं। वहाँ एक चांडाल था। उसकी ऐसी इच्छा थी कि मैं भी कुछ ठाकुर जी की परिच्चर्या करूं, परन्तु मन्दिर में झाड़ू बहारू देने के लिये पुजारी लोग उसको नहीं आने देते थे। सो जब प्रात:काल कुछ रात्रि रहै तब पुजारी लोग स्नान को दरवाजा खोल के चलें जायं तब वह चांडाल छिप के मन्दिर में झाड़ू देके निकल जाय। कोई उसको देखे नहीं। परन्तु पुजारियों ने विचार किया कि झाड़ू कौन दे जाता है। रात में छिप के दो चार पुजारी बैठे रहे कि उसको पकड़ना चाहिए। जब प्रात:काल और पुजारी स्नान को चले गये, तब वह चांडाल मन्दिर से घुस के झाड़ू देने लगा। जब उनने देखा तब पकड़ के ऐसा मारा कि मूर्च्छित हो गया। तब वैरागियों ने पकड़ के मंदिर के बाहर उसको डाल दिया। जब वे स्नान करके पुजारी लोग आके ठाकुर का किवाड़ खोलने लगे, सो न खुला, क्योंकि ठाकुर जी ने उसको मारने से बड़ा क्रोध किया। तब बड़े आश्चर्य भये सब कि किवाड़ क्यों नहीं खोलते हैं। फिर एक वैरागी को ठाकुर जी ने स्वप्न दिया कि किवाड़ी तब खुलेगी, आप सब लोग उस चांडाल को पालकी में बैठा के अपने कन्धे पर पालकी उठाके सब नगर में उसको फिराओ और पालकी सहित मंदिर की परिक्रमा करो, फिर उस को मंदिर में ले आओ, वही मेरी पूजा करै और इस मंदिर का अधिष्ठाता और सबका गुरु बनै। जब वह किवाड़ को आके स्पर्श करेगा तब किवाड़ खुलेगा, अन्यथा नहीं। ऐसा



ही उनने किया और सब बात हो गई। उसका नाम उस दिन से मुनिवाहन रक्खा गया, क्योंकि मुनि जो वैरागी उनने वाहन नाम पालकी उठाई। इससे उसका नाम मुनिवाहन पड़ा। उसका चेला एक मुसलमान भया। उसका नाम यावनाचार्य इसको अब चक्रांकित लोगों ने यामुनाचार्य्य नाम रक्खा है। उनके चेले रामानुज भये। वह ब्राह्मण थे। रामानुज के विषय में ये लोग कहते हैं कि शेष जी का अवतार है, शंकराचार्य शिव का, निम्बार्क, माधव, रामानन्द और नित्यानन्द ये चारों सनकादिक के अवतार हैं। नानक जनक जी का अवतार है। कबीर ब्रह्म का। यह बात सब उनकी मिथ्या है, क्योंकि अपने-अपने सम्प्रदाय के लिये मिथ्या कथा लोगों ने रच ली हैं।

तीसरा संस्कार माला धारण करना। उसमें रुद्राक्ष, तुलसी, घास, कमलगट्टे इत्यादिक जान लेना। इस विषय में सम्प्रदायी लोग कहते हैं कि विना माला, कण्ठी और रुद्राक्ष के धारण से जल पीये और भोजन करै सो मद्यपान और गोमांस के तुल्य है। इनसे पूछना चाहिये कि नशा क्यों नहीं होता, मद्य और मांस का स्वाद क्यों नहीं आता। इससे यह बात केवल मिथ्या आजीविका के लिये लोगों ने रच ली है। इनमें श्लोक भी बना रक्खे हैं—

**यस्यांगे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः।**
**तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितं यदि॥ १॥**

इत्यादिक श्लोक शिव पुराण और देवी भागवतादिक ग्रन्थों में शैव और शाक्तों ने अपने सम्प्रदायों के बढ़ने के हेतु लिखे हैं और वैष्णवादिकों के खण्डन के हेतु व्यासादिकों के नाम से बहुत श्लोक रच रक्खे हैं।

**काष्ठमालाधरश्चैव सद्यश्चांडाल उच्यते।**
**ऊर्द्ध्वपुण्ड्रधरश्चैव विनाशं व्रजति ध्रुवम्॥**

इनके विरुद्ध इत्यादिक वैष्णवों ने बनाये हैं—

**रुद्राक्षधारणेनैव नरकं प्राप्नुयाद्ध्रुवम्।**
**शालग्रामसहस्त्राणां शिवलिंगशतस्य च।**
**द्वादशकोटिविप्राणां तत्फलं श्वपचवैष्णवे॥**

**विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविंदनाभपादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्। अभाग्यं तस्य देशस्य तुलसी यत्र नास्ति वै॥**

**अभाग्यं तच्छरीरस्य तुलसी यत्र नास्ति हि॥**

दोनों के विरोधी वाममार्गी आये।

**प्रवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।**
**निवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥**
**मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।**
**एते पंचमकाराश्च मोक्षदा हि युगे युगे।**
**पीत्वा पीत्वा पुनःपीत्वा यावत्पतति भूतले।**
**उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।**
**सहस्रभगदर्शनान् मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा।**
**मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु॥**
**काश्यां हि मरणान्मुक्तिर्नात्रकार्याविचारणा।**
**काश्यां मरणान्मुक्तिः ॥**

—यह श्रुति शैवों ने बना ली है।

**सहस्रभगदर्शनान्मुक्तिः॥** यह शाक्तों ने श्रुति बना ली है—

**गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।**
**मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥**
**अश्वमेधसहस्राणां वाजपेयशतस्य च।**
**कन्याकोटिसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः॥**

यह एकादश्यादिक व्रतों का माहात्म्य बना लिया है।

ऐसे ही शालिग्राम, नर्मदा, लिंग आदि का माहात्म्य बना लिया है। सो इस प्रकार के मिथ्या-मिथ्या जाल अपने मतलब के लिये लोगों ने बना लिये हैं, और परस्पर एक को एक देख के जलता है। तथा अत्यन्त विरोध, युद्ध और परस्पर निन्दा होती है। क्योंकि जो मिथ्या-मिथ्या कल्पना हैं, उनकी एकता कभी नहीं होती। जो सत्य बात है सो सबके बीच में एक ही है।

चक्रांकितादिकों के अपने सम्प्रदाय के मन्त्र बना लिए हैं—



**ओं नमो नारायणाय। ओम्श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः॥** —ये दोनों चक्रांतिकों के मन्त्र हैं।

**ओम् नमो भगवते वासुदेवाय। ओम् कृष्णाय नमः। ओम् राधाकृष्णाभ्यां नमः। ओम् गोविन्दाय नमः। ओम् राधावल्लभाय नमः।** —ये निम्बार्कादिकों के मन्त्र हैं।

**ओम् रामाय नमः। ओम् सीतारामाभ्यां नमः। ओम् रंरामाय नमः।** —ये रामोपासकों के मन्त्र हैं।

**ओम् नृसिंहाय नमः। ओम् हनुमते नमः।** —ये खाखी आदिकों के मन्त्र हैं।

**ओम् नमः शिवाय।** —यह शैवों का मन्त्र है।

**ऐँ ह्रीँ क्रीँ चामुण्डायै विच्चे। ओम् ह्लाँ ह्लीँ ह्लूँ ह्लैँ ह्लौँ ह्लः बगलामुख्यै फट् स्वाहा।** —इत्यादिक वाममार्गियों के मन्त्र हैं।

**सत्यनाम जप।** —यही कबीर सम्प्रदाय का मन्त्र है।

**दादूराम।** —यह दादू सम्प्रदाय का मन्त्र है।

**राम-राम।** —यह रामस्नेही सम्प्रदाय का मन्त्र है।

**वाह गुरु। एक ओंकार सत्य नाम कर्त्ता पुरुषनिर्भयनिर्वैर अकालमूर्त्त अयोनी सह भंग गुरुप्रसाद जप॥**

—यह नानक सम्प्रदाय का मन्त्र है।

इत्यादिक कहाँ तक हम जाल गिनावैं कि लाखहां प्रकार की मिथ्या कल्पना लोगों ने कर ली हैं। ये सब, गायत्री जो परमेश्वर का मन्त्र, इसके छोड़ाने के वास्ते धूर्त्तता लोगों ने सब रची है। और जैसे गड़रिया अपने भेड़ और छेरियों को चराता है, उनसे जब चाहे तब दूध दुह लेता है, अपना मतलब सिद्ध कर लेता है, दूह के। उनमें से एक भेड़ वा छेरी कोई लेले अथवा भाग जाय, तब उस गड़रिये को बड़ा दुःख होता है। सो दिवस भर चराके एक स्थान में उन भेड़ों को इकट्ठा कर देता है। वह चाहता है इस झुंड में से एक भी पृथक् न हो जाय, किन्तु अन्य भेड़ वा छेरी मिलाके बढ़ाया चाहता है, क्योंकि उनसे ही उसकी आजीविका चलती है। वैसे ही आजकाल मूर्ख मनुष्यों को धूर्त्त गुरुलोग जाल में बांध

के अत्यन्त धनादिक लूट लेते हैं और बड़े-बड़े अनर्थ करते हैं। क्योंकि चेले मूर्ख हैं, इससे जैसा वे कह देते हैं वैसा ही मान लेते हैं। जो उन गुरुओं को विद्या और बुद्धि होती तो ऐसी अपने वास्ते नरक की सामग्री क्यों करते तथा चेले लोगों को विद्या और बुद्धि होती तो इन धूर्तों के जाल में फसके क्यों नष्ट होते।

देखना चाहिये कि **नानक जी, कबीर जी** और **दादू जी** इनके सम्प्रदाय में पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन तो नहीं है, परन्तु वे भी संसार का धनादिक हरने के वास्ते ग्रन्थ साहब की उससे भी अधिक पूजा करते हैं। यह भी एक मूर्त्ति पूजन ही है। पुस्तक भी जड़ होता है, क्योंकि जैसी पाषाणादिकों की पूजा, वैसी पुस्तकों की भी पूजा जाननी, इसमें कुछ भेद नहीं। यह केवल पर पदार्थ हरने के वास्ते ही लोगों ने युक्ति रच ली है। अपने-अपने सम्प्रदाय में ऐसा आग्रह है उनको कि वेदादिक सत्य पुस्तकों की ऐसी पूजा वा उनमें प्रीति कभी नहीं करते जैसी कि अपने भाषा पुस्तकों में प्रीति करते हैं।

और संन्यासियों ने एक **शंकरदिग्विजय** रच लिया है, उसमें बहुत-बहुत मिथ्या कथा रक्खी है। उसमें दण्डी लोग और गिरी, पुरी आदिक गोसांई लोग अत्यन्त प्रीति करते हैं अर्थात् **रामानुजदिग्विजय, निम्बार्क दिग्विजय, माधवार्क दिग्विजय, वल्लभदिग्विजय, कबीरदिग्विजय** और **नानकदिग्विजयादिक** अपनी-अपनी बड़ाई के वास्ते लोगों ने मिथ्या-मिथ्या जाल रच लिये हैं।

शंकराचार्य कोई सम्प्रदाय के पुरुष नहीं थे, किन्तु वेदोक्त चार आश्रमों के बीच संन्यासाश्रम में थे। परन्तु उनके विषय में लोगों ने सम्प्रदाय की नांई व्यवहार कर रक्खा है। **दश नाम** लोगों ने पीछे से कल्पित कर लिये हैं। जैसे कि किसी का नाम देवदत्त होय, इसके अन्त में दश प्रकार के शब्द रखते हैं कि देवदत्ताश्रम १, देवदत्ततीर्थ २, देवदत्तानन्द सरस्वती और इसी का भेद दूसरा कि देवदत्तेन्द्र सरस्वती ३, देवदत्तगिरी ४, देवदत्तपुरी ५, देवदत्तपर्वत ६, देवदत्त सागर ७, देवदत्तारण्य ८, देवदत्तवन ९, देवदत्त भारती १०—ये दश नाम रच लिये हैं। फिर इनमें



श्रृंगेरी, शारदा, भूगोवर्द्धन और ज्योतिमठ ये चार प्रकार के मठ मानते हैं।

और **दण्डियों** ने दामोदर, नृसिंह, नारायण इत्यादिक दण्डों के नाम रख लिये हैं, उसमें यज्ञोपवीत बांधते हैं, उसका नाम शंख मुद्रादिक रक्खा है। ऐसी-ऐसी बहुत कल्पना दण्डियों ने भी की है।

किन्तु **जो बाल्यावस्था में नाम रहता था सोई सब आश्रमों में रहता था।** जैसे कि जैगीषव्य, आसुरि, पंचशिखा और बोध्य ऐसे-ऐसे नाम संन्यासियों के महाभारत में लिखे हैं। इससे जाना जाता है कि यह पीछे से मिथ्या कल्पना दण्डी लोगों ने कर ली है, परन्तु दण्डी लोग सनातन संन्यासाश्रमी हैं, क्योंकि मनुस्मृत्यादिक में इनका व्याख्यान देखने में आता है।

और गोसांई लोगों ने भी दुर्गानाथ इत्यादिक मढी शब्द कल्पित कर लिया है। जैसे कि वैरागी आदिकों ने नारायणदास। इससे बड़ा भारी बिगाड भया कि नीच और उत्तम की परीक्षा ही नहीं होती, क्योंकि सब का एक सा ही नाम देख पड़ता है।

तापः, पुण्ड्र, नाम, माला और मन्त्र ये **पंच संस्कार** चक्रांकितादिक मानते हैं और मोक्ष होना भी इनसे मानते हैं, परन्तु इसमें विचार करना चाहिए कि संस्कार नाम है पवित्रता का, सो पवित्रता दो प्रकार की होती है। एक मन की दूसरी बाह्य पदार्थों की। इनमें से मन की पवित्रता होने से बाह्य पवित्रता भी होती है, जिनका मन अधर्म करने में रत है, उनकी बाह्य पवित्रता सब व्यर्थ है। सो उन संस्कारों से मन की पवित्रता कुछ नहीं हो सकती।

देखना चाहिए कि गोकुलस्थों के मन्दिरों में रोटी और दाल तक लोग बेचते हैं और बाहर से प्रसिद्धि रखते हैं कि ठाकुर को इतना बड़ा भोग लगता है। सो जितने नोकर-चाकर मन्दिरों में रहते हैं, उनको मासिक धन नहीं देते, किन्तु इसके बदले पक्वान्न रोटी दाल तक देते हैं। उनके हाथ गोसांई जी अन्न बेचते हैं और वे प्रजा के हाथ बेचते हैं, जैसे हलवाई की दुकान में बेचा जाता है। और प्रसाद भी उनके यहाँ भेजते हैं, सब मन्दिरधारी कि जिससे कुछ प्राप्ति होती हो। मन्दिरों में जब दर्शन के

हेतु जाते हैं, तब जो उनके स्त्री वा पुरुष, सेवक तथा धन देने वाले उनका बड़ा सत्कार करते हैं, अन्य का नहीं। इन मिथ्या व्यवहारों के होने से देश का बड़ा अनुपकार होता है क्योंकि बाहर से तो महात्मा की नांई बने रहते हैं। और हृदय में छल, कपट, काम, क्रोध, लोभादिक दोष बढ़ते चले जाते हैं।

देखना चाहिए कि बड़े-बड़े मन्दिर, मठ, गांव, राज्य दुकानदारी करते हैं और नाम रखते हैं वैष्णव, आचारी, उदासी, निर्मले, गोसांई। जटाजूट बने रहते हैं, तिलक, छाप, माला ऊपर से धार रखते हैं और उनका हृदय वा व्यवहार हम लोग देखते हैं, विद्या का लेश नहीं। बात भी यथावत् कहना वा सुनना नहीं जानैं। इससे सब मनुष्यों को एक सत्य, धर्म, विद्यादिक गुण ग्रहण करना चाहिए और इन नष्ट व्यवहारों को छोड़ना चाहिए तभी सब मनुष्यों का परस्पर उपकार हो सकता है, अन्यथा नहीं।

**वाममार्गी** लोग एक भैरवीचक्र रचते हैं। उसमें एक नङ्गी स्त्री करके उसके हाथ में छुरी वा तलवार दे देते हैं और बीच में एक आसन के ऊपर बैठा देते हैं। फिर उस स्त्री की पूजा करते हैं। यहाँ तक कि गुप्त इन्द्रिय की भी। फिर उस जल को सब लोग पीते हैं। और उस स्त्री को मानते हैं कि यह साक्षात् देवी है। और ब्राह्मण से लेके और चमार तक उस स्थान में सब बैठते हैं। फिर एक पात्र में मद्य की पूजा करके मद्य रखते हैं। उसी एक पात्र से वह स्त्री पीती है। फिर उसी जूठे पात्र से सब लोग मद्य पीते हैं और मांस भी खाते जाते हैं। रोटी और बड़े खाते जाते हैं। फिर जब मद्य पीके मस्त हो जाते हैं, तब उसी स्त्री से भोग करते हैं जिसको कि पहिले देवी मानी थी और नमस्कार किया था। और मनुष्य का बलिदान भी करते हैं, कोई-कोई उसका भी मांस खाते हैं। मुरदे के ऊपर बैठ के जप करते हैं और स्त्री के समागम के समय जप करते हैं।

**योन्यां लिगं समास्थाप्य जपेन् मन्त्रमतन्द्रितः।**

और यह भी उनका मन्त्र है कि एक माता को छोड़ के कोई स्त्री अगम्य नहीं। फिर उनमें से एक मातङ्गी विद्या वाला है वह ऐसा कहता



है कि **मातरमपि न त्यजेत्** माता को भी नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि मातङ्ग हस्ती का नाम है सो माता को भी नहीं छोड़ता, वैसे वे भी मानते हैं। ऐसी दश महाविद्या उनलोगों ने बना रक्खी हैं।

उनमें से एक **चोली मार्ग** है। उसका ऐसा मत है कि स्त्री और पुरुष सब एक स्थान में रात्रि को इकट्ठे होते हैं। एक बड़ा भारी मृत्तिका का घड़ा वहाँ रखते हैं। उसमें सब स्त्री लोग अपने हृदय का वस्त्र अर्थात् जिसका नाम चोली है उसको उस घड़े में डाल देती हैं, फिर उन वस्त्रों को घड़े के बीच में मिला देते हैं। फिर खूब मद्य पीते हैं और मांस खाते हैं। जब वे बड़े उन्मत हो जाते हैं फिर उस घड़े में हाथ डालते हैं, जिसके हाथ में जिसका वस्त्र आवै, वह उसकी स्त्री हो जाती है, वह माता, कन्या, भगिनी वा पुत्र की भी स्त्री होय। ऐसे-ऐसे मिथ्या व्यवहार करते हैं और मानते हैं कि मुक्ति होय, यह बड़ा आश्चर्य है। ऐसे कर्मों से कभी नहीं मुक्ति होती, परन्तु विद्याहीन जो पुरुष हैं वे ऐसे-ऐसे जालों में फस जाते हैं। और इन लोगों ने अपने-अपने मत के पुष्टि के लिये अनेक पाराशर्यादिक स्मृति, ब्रह्मवैवर्त्तादिक पुराण, ब्रह्मामलयादिक तन्त्र, उपपुराण परस्पर विरुद्ध ऋषि और मुनियों के नामों से रच लिए हैं। एक का दूसरा अपमान करता है अपनी-अपनी पुष्टि के हेतु। क्योंकि असत्य बात और भ्रम जो होता है सो परस्पर विरुद्ध से ही होता है। और जो सत्य बात है, सो सब के बीच में एक ही है। जो सज्जन होते हैं, वे सदा श्रेष्ट कर्म ही करते हैं, क्योंकि वे सत्यासत्य विचार से असत्य को छोड़ते हैं और सत्य को ग्रहण करते हैं। और किसी के जाल में विचारवान् पुरुष नहीं फसता। सबके उपकार में ही उसका चित्त रहता है। ऐसे जो मनुष्य हैं वे धन्य हैं। इससे क्या आया कि श्रेष्ट गृहस्थ वा विरक्त जो हैं वे सदा श्रेष्ठ कर्म ही करते हैं, अश्रेष्ठ नहीं। इस वास्ते वे विरक्त लोग अपने मतलब में फस के सत्यासत्य नहीं जान सकते हैं, क्योंकि उनको भ्रम अंधकार से कुछ नहीं सूझता।

**प्रश्न**—जगन्नाथादिक में बहुत चमत्कार देख पड़ते हैं तथा नाना प्रकार के तीर्थ जो गंगादिक वे पाप नाशक और मुक्तिप्रद हैं वा नहीं?

**उत्तर**—नहीं, क्योंकि जगन्नाथ की मूर्त्ति चंदन वा निंब काष्ट की

बनाते हैं। उसकी नाभि में पोल रखते हैं, उसमें सोने के संपुट में एक शालग्राम रख के धर देते हैं, उसको ब्रह्म तेज मानते हैं। फिर आभूषण, वस्त्र पहिरा देते हैं। उसमें कुछ चमत्कार नहीं है, किन्तु पुजारियों ने आजिविका के वास्ते बात और माहात्मय का पुस्तक बना लिया है।

वे **एक** तो यह **चमत्कार** कहते हैं कि छत्तीस वर्ष में चोला बदलता है। सो बात हमको झूठ मालूम देती है, क्योंकि छत्तीस (३६) वर्ष में मूर्त्ति पुरानी हो जाती है फिर दूसरी बना के रख देते हैं। और कृष्ण तथा बलदेव की मूर्त्ति के बीच में सुभद्रा की मूर्त्ति बना रखी है, इसमें विचारना चाहिये कि एक के वामभाग, दूसरे के दाहिने भाग में मूर्त्ति रखना धर्मशास्त्र और युक्ति से विरुद्ध है।

और **दूसरा चमत्कार** यह कहते हैं कि एक राजा, बढ़ई और पण्डा ये तीनों उसी समय मर जाते हैं। यह बात उनकी मिथ्या है, क्योंकि अकस्मात् कोई उस दिन मर गया होगा अथवा शत्रु लोगों ने विष दान देके कभी मार डाले होंगे, सो माहात्म्य की ऐसी बात लोगों ने मिथ्या बना ली है।

**तीसरा चमत्कार** यह कहते हैं कि आपसे आप ही रथ चलता है। यह भी उनकी बात मिथ्या है, क्योंकि हजारहां मनुष्य मिलके रथ को खींचते हैं और कारीगर लोगों ने उस रथ में कला बना ली हैं। उनके उलटे घुमाने से वह रथ खड़ा हो जाता होगा और सूध घुमाने से कुछ चलता होगा, जैसे कि घड़ी आदिक के यन्त्र घूमते हैं। ऐसे बहुत पदार्थ-विद्या से होता है।

**चौथा चमत्कार** यह कहते हैं कि एक चूल्हे के ऊपर-ऊपर सात पात्र धर देते हैं। उनमें से ऊपर-ऊपर के पात्रों के चावल पहिले चुर जाते हैं। यह भी उनकी बात मिथ्या है क्योंकि उन पात्रों में चावल पहिले चुरा लेते हैं फिर उसके पेंदे को मांज देते हैं। फिर ऊपर-ऊपर पात्र रख देते हैं और नीच के चूल्हे में थोड़ी सी आंच लगा देते हैं। फिर दरवाजा खोल देते हैं और अच्छे-अच्छे धनाढ्य तथा राजा लोगों को दूर से करछुल से निकाल के देखा देते हैं और कहते हैं कि देखिए महाराज! कैसा चमत्कार



है कि नीचे के अब तक चावल कच्चे हैं। क्योंकि उस पात्र में चावल अग्नि पर पीछे धरे हैं। उसको देख के विचार रहित पुरुष मोहित होके बड़ा आश्चर्य गिनते हैं और हजारहां रुपैये दे देते हैं। यह केवल उन मनुष्यों की धूर्त्तता है और चमत्कार कुछ नहीं है।

**पांचवां चमत्कार** यह कहते हैं कि जो पापी होय उसको उस मूर्त्ति का दर्शन नहीं होता। यह भी उनकी बात मिथ्या है, क्योंकि किसी के नेत्र में दोष होने से आंख के सामने तिमिर आ जाते हैं और वे पुजारी लोग ऐसी युक्ति रचते हैं कि वस्त्र के अन्यथा रूप करके परदे बना रक्खे हैं। उनके दोनों ओर पुजारी लोग खड़े रहते हैं और फिरते भी रहते हैं, सो किसी प्रकार से उस मूर्त्ति की आड़ कर देते हैं, फिर नहीं देख पड़ती। उस वक्त ऐसा वे कहते हैं कि तुम लोग पापी हो, जब तुम्हारा पाप बट जायगा, तब तुमको दर्शन होगा। तब वे बुद्धिहीन पुरुष झट-झट रुपैये धर देते हैं फिर उनको दर्शन करा देते हैं। यह सब मनुष्यों की धूर्त्तता है, चमत्कार कुछ नहीं है।

**छठवां** यह **चमत्कार** कहते हैं कि अन्धा वा कुष्ठी हो जाता है जो कि वहाँ का प्रसाद नहीं खाता। यह भी उनकी बात मिथ्या है क्योंकि इस बात से कभी कोई कुष्ठी वा अन्धा नहीं हो सकता है, विना रोग से। और अनेक दिन का सड़ा सड़ाया अन्न तथा पत्रावली और हंडियों के खपरे जिन को कौवे, कुत्ते, चमार और चांडालदिक स्पर्श करते हैं और धूली भी लग जाती है, सबका उच्छिष्ट खाने से कुछ रोग भी हो सकता है और परस्पर सबका जूठ सब खाते भी हैं। और फिर अन्यत्र जाके किसी का अन्न वा जल नहीं खाते। यह देखना चाहिए इनका आश्चर्य व्यवहार कि सबका सब जूठ खाते भी हैं, फिर कहते हैं कि हम किसी का नहीं खाते। यह केवल इनका अविचार ही है। सो जिनकी वहाँ आजीविका है वे ऐसी-ऐसी मिथ्या बात सदा रचते रहते हैं।

कलिकत्ता में एक मृत्तिका की मूर्त्ति बना रक्खी है, उसका नाम रक्खा है **काली।** वहाँ भी ऐसी-ऐसी मिथ्या-मिथ्या लीला रच रक्खी है कि काली मद्य पीती है और मांस खाती है। सो वह जड़ मूर्त्ति क्या पीयेगी

और क्या खावेगी। परन्तु उन पुजारियों को खूब मद्य पीने और मांस खाने में आता है। वे लोग स्वाद के लिये और धन हरने के लिये नाना प्रकार की झूठ-झूठ बात बना लेते हैं।

वहाँ एक मन्दिर में पाषाण का लिंग स्थापन कर रक्खा है उसका नाम **तारकेश्वर** रक्खा है। इस विषय में उनोंने बात बना रक्खी है कि रोगियों को स्वप्नावस्था में महादेव औषध बता जाते हैं। उस औषध से उनका रोग छूट जाता है। यह बात उनकी मिथ्या है, क्योंकि उनका जो पुजारी है वही वैद्य और डाक्तरों की औषधी किया करता है और ऐसी औषधि क्यों नहीं स्वप्नावस्था में महादेव कह देता है कि जिसके खाने से किसी को कभी रोग ही न हो। इससे यह बात झूठ है। वह पाषाण क्या कह वा सुन सकता है, कभी नहीं।

**सेतुबन्ध** रामेश्वर के विषय में ऐसा लोग कहते हैं कि जब गंगाजल चढ़ाते हैं तब वह लिंग बढ़ जाता है। यह बात मिथ्या है, क्योंकि उस मन्दिर में दिवस को भी अन्धकार रहता है सो चार कोण में चार दीप सदा जलते रहते हैं। उस मन्दिर में किसी को घुसने देते नहीं उनके हाथ से गंगाजल लेके उस मूर्त्ति के ऊपर जल चढ़ाता है। जब वह पुजारी नीचे से ऊपर हाथ करता है तब मूर्त्ति से लेकर हाथ तक गंगा जल की एक धारा बन जाती है। उस धारा में चारों दीप के प्रकाश के पड़ने से जल बिजली की नांई चमकता है। तब उन यात्रियों को पुजारी लोग कहते हैं कि तुम लोगों के ऊपर महादेव की बड़ी कृपा है। देखो! महादेव का लिंग बढ़ गया सो तुम रुपैये चढ़ाओ। ऐसे बहका-बहका के खूब धन हरण करते हैं। और कहते हैं कि राम ने यह मूर्त्ति स्थापन की है। सो यह बात मिथ्या ही है, क्योंकि वाल्मीकीय रामायण में उसका नाम भी नहीं है। केवल तुलसीदास के झूठ लिखने से लोग कहते हैं।

क्योंकि तुलसीदास की मिथ्या-मिथ्या बात विचारना चाहिये। नारी नाम स्त्री का रूप देखके स्त्री मोहित नहीं होती, फिर सीता के स्वयंवर में लिखा है कि जब स्वयंवर में सीता जी आईं, तब नर और नारी सब मोहित हो गये, सीता जी को देखके। यह बात उसकी पूर्वापर विरुद्ध है।



और अपने ग्रन्थ में उनने लिखा है कि अठारह पद्म यूथप वानर थे, सो एक-एक का चार-चार कोस का शरीर लिखा। तथा कुम्भकर्ण की मोंछ चार-चार कोस की लम्बी लिखी है। १६ सोलह कोस की नाक, ६४ कोस का हाथ लम्बा, ९६ कोस का उदर, ऐसा जो कुम्भकर्ण होता तो लंका में एक भी नहीं समाता। और अठारह पद्म वानर पृथिवी भर में नहीं समाते तथा बांदर मनुष्य की भाषा नहीं बोल सकते, फिर सुग्रीवादिक राम से कैसे बोल सकेंगे। राज्य का करना और विवाह पशुओं में कभी नहीं हो सकता। ऐसी-ऐसी बहुत तुलसीकृत रामायण में झूठ बात लिखीं है सो इसके कहने का क्या प्रमाण। पाषाण के ऊपर राम नाम लिख दिये, उससे पाषाण समुद्र के ऊपर तरें हैं, यह बात उसकी मिथ्या है, क्योंकि ऐसा होता तो हम लोग भी पाषाण के ऊपर राम नाम लिखके उसका तरना देखते, सो नहीं देखने में आता। इससे झूठ बात को मानना न चाहिये। जैसी यह बात झूंठ है उसकी, वैसी रामेश्वर की लिखी भी झूठ है। किसी दक्षिण के धनाढ्य ने मंदिर बनाया है उसका नाम है रामेश्वर। उसको चार ४०० बरस भये होंगे।

और एक दक्षिण में कालियाकंत का मंदिर है। इस विषय में लोगों ने ऐसी बात बना ली है कि वह मूर्त्ति हुक्का पीती है, सो झूठ है, क्योंकि पाषाण की मूर्त्ति हुक्का कैसे पीयेगी। इसमें लोगों ने मूर्त्ति के मुख में छिद्र बना रक्खा है, उस छिद्र में नाली लगा के कोई मनुष्य छिप के धूंआ खींचता है। फिर वे पुजारी कहते हैं, देखो साक्षात् मूर्त्ति हुक्का पीती है। ऐसा बहका के धन हर लेते हैं।

ऐसे ही जयपुर के राज्य में एक जीन देवी बजती है, वह मद्य पीती है। सो भी बात झूंठ है, क्योंकि वह मूर्त्ति पोली बना रक्खी है, उसके मुख में छिद्र है। मद्य के पात्र को मुख से लगा के ढरका देते हैं। वह मद्य अन्य स्थान में चला जाता है, फिर उसी को लेके बेचते हैं।

तथा द्वारिका के विषय में लोग कहते हैं कि द्वारिका सोने की बनी है। उसमें एक पीपा भक्त समुद्र में डूब के चला गया था। उसको श्री कृष्ण जी मिले, उनसे बात चीत भई। पीपा ने कहा कि मैं तो आपके पास यहाँ

रहूँगा। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि मर्त्यलोक का आदमी यहाँ नहीं रह सकता। सो तुम हमारा शंख, चक्र, गदा, पद्म के चिह्न द्वारका में ले जाओ और सबसे कह देओ कि इन चिह्नों का दाग तप्त करके जो लगवा लेगा, सो वैकुण्ठ में चला आवेगा। ऐसे ही चक्रांकित लोग भी कहते हैं। सो सब बात मिथ्या है, क्योंकि जीते शरीर को जलाने से कोई वैकुण्ठ में नहीं जा सकता है। और जो जा सकता तो मरे भये शरीर को भस्म कर देते हैं। इससे वैकुण्ठ के आगे भी जायगा। फिर जीते शरीर को जो जलाना यह बात केवल मिथ्या है।

एक पंजाब में ज्वालाजी का मंदिर है उस में अग्नि निकलता रहता है। इसको कहते हैं कि साक्षात् भगवती है। इनसे पूछना चाहिये कि तुम्हारे घर में जब रसोई करते हैं तब चूल्हे में भी ज्वाला निकलती रहती है, वह क्यों भगवती नहीं?

**प्रश्न**—चूल्हे में तो लकड़ी लगाने से निकलती है और वहाँ आपसे आप ही निकलती रहती है।

**उत्तर**—ऐसे ही अनेक स्थानों में अग्नि निकलती है सो पृथिवी में अथवा पर्वत में गंधकादिक धातु हैं उनमें से किसी प्रकार से अग्नि उत्पन्न होके लग जाता है, सो पृथिवी को फोड़ के ऊपर निकल आता है। जब तक वे गन्धादिक धातु रहती हैं, तब तक अग्नि जलता ही रहता है। यही पृथिवी के हिलने का कारण है क्योंकि जब भीतर से बाहर पर्वत में अग्नि निकलता है, तभी पृथिवी में कम्प हो जाता है। सो वह बात केवल मनुष्यों ने अपनी आजीविका के वास्ते मिथ्या बना ली है।

एक उत्तराखण्ड में केदार और बद्री नारायण ये दो स्थान प्रसिद्ध हैं। इस विषय में लोग ऐसा कहते हैं कि बद्री नारायण की मूर्त्ति पारस पत्थर की है और शङ्कराचार्य ने स्थापित की है। सो यह बात मिथ्या है क्योंकि जो वह पारस पत्थर की रहती तो पुजारी लोग दरिद्र क्यों रहते? और यह बात झूठ मालूम देती है कि पारस पत्थर से लोहा छुआने से सोना बन जाता है, इसको किसी ने देखा तो है नहीं, सुनते सुनाते चले आते हैं, इस बात का क्या प्रमाण। और शङ्कराचार्य तो मूर्त्तियों के तोड़ने वाले थे, वे



स्थापन क्यों करते।

केदार के विषय में ऐसी बात लोग कहते हैं कि जब पाण्डव लोग हिमालय में गलने को गये, तब महादेव का दर्शन करा चाहते थे। सो महादेव ने दर्शन नहीं दिया, क्योंकि वे गोत्र नाम अपने कुटुम्ब के पुरुषों को युद्ध में मार के आये थे। सो महादेव, पार्वती और सब उनके गणों ने भैंसे का रूप धारण कर लिया था। सो नारद जी ने कहा कि महादेवादिकों ने भैंसा का रूप धारण कर लिया है तुमको बहकाने के वास्ते, इसकी यह परीक्षा है कि महादेव किसी की टांग के नीचे से नहीं निकलते। सो भीम ने, तीन कोस के छेंके दो पर्वत थे उनके ऊपर एक-एक टांग रख दी। फिर सब भैंसे तो उनके नीचे से निकल गये, परन्तु एक भैंसा नहीं निकला। तब भीम ने निश्चय कर लिया कि यही भैंसा है। उसको पकड़ने को भीम दौड़ा, तब वह भैंसा पृथिवी में गुप्त हो गया। उसका **सिर** नैपाल में निकला, जिसका नाम पशुपति रक्खा है। तथा उसका **पग** काश्मीर में निकला, उसका नाम अमरनाथ रक्खा है। और **चूतड़** वहीं निकला जिसका नाम केदार है। और **जंघा** जहाँ निकली उसका नाम तुंगनाथादिक रक्खा है। ऐसे पंच केदार लोगों ने रच लिये हैं। इसमें विचार करना चाहिये कि नैपाल में भैंसे का शृंग, नाक, कान कुछ नहीं देख पड़ता है। तथा काश्मीर में खुर भी नहीं देख पड़ते। ऐसे अन्यत्र कुछ भी नहीं भैंसे का चिह्न देख पड़ता, किन्तु सर्वत्र पाषाण ही देख पड़ता है। परन्तु ऐसी-ऐसी मिथ्या बात को मनुष्य लोग मान लेते हैं, यह केवल अविद्या और मूर्खता का गुण है। क्योंकि भीम इतना लम्बा चौड़ा होता तो उसका घर कितना लम्बा चौड़ा होता और नगर में वा मार्ग में कैसे चल सकता तथा द्रौपद्यादिक उनकी स्त्री कैसे बन सकती। और महादेव को क्या डर पड़ा था कि भैंसा हो जाय। फिर इतना लम्बा चौड़ा क्यों बन जाता और क्या अपराध वा पाप महादेव ने किया था कि चेतन से जड़ [मनुष्य से पशु] बन जाय। इससे यह बात सब मिथ्या है।

एक कामाक्षा स्थान रच रक्खा है। उसमें एक कुण्ड बना रक्खा है। उसका नाम योनि रक्खा है और वह रजस्वला होती है। यह सब बात उन

पुजारियों ने आजीविका के लिए मिथ्या बना ली है।

एक बौद्ध गया स्थान है, उसमें बौद्ध की मूर्ति बना रक्खी है, उसकी पूजा और दर्शन आज तक करते हैं। वह मूर्ति केवल जैनों की ही है। सो ऐसा जानना चाहिए कि जितना पाषाण पूजन है और जो जड़ पदार्थों का पूजन सो सब जैनों का ही है।

एक गया स्थान बना रक्खा है, उसमें बड़ा संसार का धन लूटा जाता है। गया के पण्डाओं को मुफ्त का बहुत धन मिलता है, तो वेश्यागमन, मद्यपान और मांसाहार में ही जाता है। केवल प्रमाद में, अच्छे काम में कुछ नहीं। फिर यजमान लोग मानते हैं कि गया के श्राद्ध से ही पितरों का उद्धार हो जाता है। सो ऐसे कर्मों से उद्धार तो किसी का होना नहीं, परन्तु नरक होने का सम्भव होता है। फिर इस विषय में ऐसा कहते हैं कि रामचन्द्र ने गया में श्राद्ध किया था, सो साक्षात् दशरथ जी उनके पिता, उनने हाथ निकाल के गया में पिण्ड ले लिया था। उस दिन से गया का माहात्म्य चला है, और वह स्थान गयासुर का था। सो यह बात सब मिथ्या है, क्योंकि वे लोग आजकाल भी हाथ निकाल के क्यों नहीं पिण्ड ले लेते। किसी समय कोई पुरुष फलगू नदी में भूमि में गुहा बना के भीतर बैठ रहा होगा और उनोंने संकेत बना रक्खा था। ऐसे ही उसने भूमि में से हाथ निकाल के पिण्ड ले लिया होगा फिर झूठ बात प्रसिद्ध कर दी कि साक्षात् पितृ लोग हाथ निकाल के पिण्ड ले लेते हैं। उस स्थान का पण्डितों ने माहात्म्य मिथ्या बना लिया है। फिर प्रसिद्धि हो गई और सब मानने लगे। सो गया नाम जिस स्थान में श्राद्ध करे और अपने पुत्र, पौत्र तथा राज्य जिस देश में अपने रहता होय उनका नाम अथना प्रजा का नाम **गया** है। वेद के निघण्टु में लिखा है उसका अर्थ अभिप्राय तो जाना नहीं, फिर यह पाखण्ड रच लिया।

[काशी] काशिराज ने बसाई है यह महाभारत में लिखा है। इससे उसका नाम काशी पड़ा। और वरुणा तथा असी नाला के बीच में होने से वाराणसी नाम रक्खा गया। इसका ऐसा झूठ माहात्म्य बना लिया है कि साक्षात् महादेव की पुरी है। और महादेव ने मुक्ति का सदावर्त्त बांध रक्खा



है तथा ऊसर भूमि है, इससे पाप पुण्य लगता ही नहीं। सब देवता पन्द्रह-पन्द्रह कला से काशी में रहते हैं और एक-एक कला से अपने-अपने स्थान में रहते हैं।

एक मणिकर्णिका कुण्ड रच रक्खा है कि यहाँ पार्वती के कान का मणि गिर पड़ा था। तथा काल भैरव यहाँ का कोटपाल है सो सबको दण्ड देता है पाप पुण्य की व्यवस्था से। इस काशी का महाप्रलय में भी प्रलय नहीं होता क्योंकि काल भैरव त्रिशूल के ऊपर काशी को रख लेता है और भूचाल में हिलती भी नहीं। पंच क्रोशी के बीच में जो कोई कीट पतंग तक भी मरै तो उसको महादेव मुक्ति दे देते हैं। अन्नपूर्णा सबको अन्न देती है। अन्तर्गृही और पंचक्रोशी के करने से सब पाप छूट जाते हैं इत्यादिक मिथ्या-मिथ्या जाल रच के **काशीरहस्य** और **काशीखण्डादिक** ग्रन्थ बना लिये हैं। और कहते हैं कि बारह ज्योतिर्लिंग होते हैं, उनमें से एक यह विश्वनाथ है। उनसे पूछना चाहिए कि ज्योतिर्लिंग होते तो मन्दिर में कभी अन्धकार न होता। और वह पाषाण मुक्ति वा बन्ध कभी नहीं कर सकता क्योंकि उसी को कारीगरों ने मन्दिर के बीच में गढ़े में चिपका के बन्ध कर रक्खा है, फिर अपने ही बन्धन से नहीं छूट सकता, फिर अन्य की मुक्ति क्या कर सकेगा। सो यह केवल पण्डितों ने बात बना ली है कि काशी में मरने से मुक्ति होती है, क्योंकि इस बात को सुन के सब लोग काशी में मरने के लिये आवेंगे उनसे हमारी आजीविका सदा हुआ करेगी। इससे ऐसे-ऐसे जाल रचा करते हैं।

प्रयाग में गंगा यमुना के संगम में एक तीसरी झूठ सरस्वती मान लेते हैं कि तीसरी सरस्वती भी यहां है और इस स्थान में मुंडाने से सिद्ध हो जाता है। सो ऐसा अनुमान किया जाता है कि पहिले कोई नापित था, उसने अपने कुल की आजीविका कर ली। और संगम में स्नान करने से मुक्ति हो जाती है, यह केवल आजीविका के वास्ते झूठ-झूठ बात और झूठ-झूठ पुस्तक लोगों ने बना लिए हैं कि प्रयाग तीर्थराज है।

ऐसे ही अयोध्या में हनुमान् जी को रामजी गद्दी दे गये हैं और अयोध्या में निवास से भी मुक्ति होती है, यह भी उनकी बात मिथ्या ही

है।

तथा मथुरा और वृन्दावन में बड़ी-बड़ी मिथ्या बात बना ली हैं कि यम द्वितीया के स्नान से यम के बन्धन से जीव छूट जाता है, क्योंकि यमुना यमराज की बहिन है। और वृन्दावन के विषय में लिखा है कि मुक्ति भी रोती है कि मेरी मुक्ति कैसे होय, सो मुक्ति के वास्ते वृन्दावन की गलियों में झाड़ू देती है। और मन्दिरों में नाना प्रकार के प्रमादों से व्यभिचारादिक करते हैं तथा अनेक प्रकार के जालों से लोगों का धन हरण कर लेते हैं।

एक चक्रांकितों ने मंदिर रचवाया है। उसके दरवाजों का नाम वैकुण्ठ द्वार इत्यादिक रक्खे हैं। और सकल पुंगव सब मनुष्य मिल के इकट्ठे खाते हैं। सकल पुंगव उसका नाम है कि कच्चे पक्के सब प्रकार के पक्वान्न बनते हैं। फिर ब्राह्मण से लेके अन्त्यज पर्यन्त उनके जितने शिष्य हैं उनकी पंक्ति लग जाती है उनके हाथ के बीच में थोड़ा-थोड़ा सब पदार्थ सबको दे देते हैं और वे खा लेते हैं। उनमें से कोई जल से हाथ धो डालता है और कोई वस्त्र से पोंछ लेता है। और ठाकुर जी को जुलाब दे देते हैं उसमें भी बड़े-बड़े अनर्थ सुनने में आते हैं। और एक रात्र वेश्या के घर ठाकुर जी जाते हैं, फिर उनको प्रायश्चित्त कराते हैं और यमुना जी में डुबा के स्नान कराते हैं। यह केवल उनका मिथ्या प्रपंच है, पर धन हरने के वास्ते, और मूर्खों को बहकाने के वास्ते। फिर उस मंदिर में बहुत लोगों को शंख चक्रादिक तपा के दाग दे देते हैं। ऐसे-ऐसे मिथ्या छल प्रपंच से अपनी आजीविका करते हैं। इनमें कुछ सत्य वा चमत्कार नहीं। तथा गंगादिक तीर्थों के विषय में सब पाप का छूटना, वैकुण्ठ से आना, मुक्ति का होना, ब्रह्मद्रव तथा साक्षात् भगवती का मानना यह बात मिथ्या है, क्योंकि **हिमवतः प्रभवति गंगा** यह व्याकरण महाभाष्य का वचन है।

इसका यह अभिप्राय है कि हिमालय से गंगा उत्पन्न होती है तथा हि यमुनादिक नदियाँ बहुत हिमालय से उत्पन्न भई हैं। और विन्ध्याचल से तथा तडागों से भी बहुत नदियां उत्पन्न होती हैं। केवल जल सबमें है, उस जल में उत्तम, मध्यम और नीचता भूमि के संयोग गुण से है इससे अधिक



कुछ नहीं। सो जल होता है वह जड़ क्या पाप को छोड़ा सकेगा और मुक्ति को भी दे सकेगा, कुछ भी नहीं। जैसा जिस जल में गुण है शीत, उष्ण, मिष्ट, निर्मलता वैसा ही उसमें होता है इनसे अधिक गुण नहीं। वे क्षारमिष्टादिक गुण सब भूमि के संयोग से हैं अन्यथा नहीं।

**गंगे त्वद्दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम्।**

इत्यादिक नारदादिकों के नामों से मिथ्या-मिथ्या श्लोक लोगों ने बना लिए हैं। जो दर्शन से मुक्ति होती तो सब संसार की ही मुक्ति हो जाती और मुक्ति से कोई अधिक फल नहीं है कि संसार में स्नान से कुछ अधिक होवै। यह केवल मिथ्या कल्पना उनकी है कि—

**काश्याम्मरणान्मुक्तिः गंगे, त्वद्दर्शनान्मुक्तिः,**
**सहस्रभगदर्शनान्मुक्तिः, हरिस्मरणान्मुक्तिः॥**

इत्यादिक मिथ्या श्रुति लोगों ने बना ली हैं। किन्तु—

**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।**

यह सत्य श्रुति है कि विना ज्ञान से किसी की मुक्ति नहीं होती क्योंकि सत्यासत्य विवेक के विना असत्य के दोषों का ज्ञान नहीं होता, दोष ज्ञान के विना मिथ्या व्यवहार और मिथ्या पदार्थों से कभी नहीं जीव छूटता। इससे मुक्ति के वास्ते सत्यासत्य विवेक, परमेश्वर में प्रीति, धर्म का अनुष्ठान, अधर्म का त्याग, सत्सङ्ग, सद्विद्या, जितेन्द्रियतादिक गुण इनमें अत्यन्त पुरुषार्थ से मुक्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

और जिसको इस बात का निश्चय करना होवै वह इस बात को करै कि जितने तीर्थों के पुरोहित और मंदिर स्थान के पुरोहित उनके प्राचीन पुस्तकों के देखने में सत्य-सत्य निश्चय होता है क्योंकि वह यजमान देश, गांव, जाति, दिन, मास और संवत्सर इनका यथावत् बहीपुस्तक जो बहीखाता उसमें लिख रखते हैं। उनके देखने से ठीक-ठीक दिन, मास और संवत्सर का निश्चय होता है कि इस तीर्थ वा इस मन्दिर का प्रारम्भ इस संवत्सर में भया है क्योंकि जब जिसका प्रारम्भ होता है, तब उसके पण्डे और पुजारी तथा पुरोहित उसी समय बन जाते हैं।

देखना चाहिये कि विन्ध्याचल मूर्त्ति के विषय में लोग कहते हैं कि

एक दिन में देवी तीन रूप धारण करती है, अर्थात् प्रातः काल में कन्या मध्याह्न में जवान और संध्याकाल में बुड्ढी बन जाती है। इनसे पूछना चाहिये कि रात में उस मूर्त्ति की कौन अवस्था होती है। सो केवल पुजारी लोगों की धूर्त्तता है, क्योंकि जैसा वस्त्र आभूषण धारण कराते हैं, वैसा ही स्वरूप देख पड़ता है। और कहते हैं कि इस मन्दिर में मक्खी नहीं होती, परन्तु वहाँ असंख्यात मक्खी होती हैं। सो केवल झूठ बका करते हैं आजीविका के वास्ते।

तथा बैजनाथ के विषय में कहते हैं कि कैलास से रावण ले आया है, यह सब मिथ्या कल्पना लोगों की है, क्योंकि आजतक नये-नये मन्दिर, नये-नये मूर्त्तियों के नाम धरते हैं और सम्प्रदायी लोगों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के पुष्टि के वास्ते बना लिये हैं, उनका नाम रख दिया पुराण। और ऐसा भी वे कहते हैं कि—

**अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः।**

इसका यह अभिप्राय है कि अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी हैं जो कि सत्यवती के पुत्र हैं। यह बात मिथ्या है, क्योंकि व्यास जी बड़े पण्डित थे और सत्यवादी, सब पदार्थ विद्या यथावत् जानते थे। उनका कथन यथावत् प्रमाण युक्त ही होता है, क्योंकि उनके बनाये शारीरक सूत्र हैं और महाभारत में जो-जो श्लोक हैं, वे भी यथावत् सत्य ही हैं।

**प्रश्न**—महाभारत में अन्य भी श्लोक हैं अथवा सब व्यास जी के बनाये हैं?

**उत्तर**—कई हजार श्लोक सम्प्रदायी लोगों ने महाभारत में मिला दिये हैं, अपने-अपने सम्प्रदाय के प्रमाण के वास्ते, क्योंकि शान्तिपर्व में विष्णु की बड़ाई लिखी है और सबकी न्यूनता और उसी में सहस्र नाम लिखे हैं। इससे विरुद्ध उसी पर्व में शिव सहस्र नाम जहाँ लिखे हैं, वहाँ विष्णु को तुच्छ कर दिया है तथा जहाँ विष्णु की बड़ाई है वहाँ महादेव को तुच्छ कर दिया है। और जहाँ गणेश और कार्तिक स्वामी की स्तुति की है, वहाँ अन्य सबको तुच्छ बना दिये हैं। तथा भीष्म पर्व और विराट् पर्व में जहाँ देवी की कथा लिखी है, वहाँ अन्य सबको तुच्छ गिने हैं। एक



भीम और धृतराष्ट्र की कथा लिखी है कि धृतराष्ट्र के शरीर में ६००० हाथी का बल था तथा भीम के शरीर में दस हजार हाथी का बल था। और एक गरुड़ पक्षी का बल ऐसा वर्णन किया कि जिसका तोलन नहीं हो सकता। उस गरुड़ का बल विष्णु के आगे तुच्छ गिना तथा उस विष्णु का बल वीरभद्र के आगे तुच्छ कर दिया है। वीरभद्र का रुद्र के आगे और रुद्र का विष्णु के, विष्णु का वीरभद्र के आगे, ऐसी परस्पर मिथ्या कथा व्यास जी की बनाई महाभारत में नहीं बन सकती।

और भी ऐसी-ऐसी कथा लिखी हैं कि भीम को दुर्योधन ने विष दान दिया जब वह मूर्च्छित हो गया तब उसको बांध के गंगा जी में गिरा दिया, सो वह पाताल को चला गया। वहाँ सर्पों ने बहुत काटा, फिर जब उसका विष उतर गया, तब सर्पों को मारने लगा। उससे सर्प भाग गये वासुकी राजा से जाके फिर कहा कि एक मनुष्य का लड़का आया है सो बड़ा पराक्रमी है। तब वासुकी भीम के पास आया और पूछा कि तू कौन है कहाँ से आया है? तब भीम ने कहा कि मैं पाण्डु का पुत्र हूँ और युधिष्ठिर का भाई। तब तो वासुकी बड़े प्रसन्न भये और भीम से कहा कि जितना तुझसे इन कुण्डों में से जल पीया जाय उतना जल पी, क्योंकि ये नव कुण्ड अमृत से भरे हैं। ऐसा सुन के उठा और नव कुण्डों का सब जल पी गया। सो नव हजार हाथी का बल बढ़ गया।

इसमें विचारना चाहिये कि विष के देने से वह भीम मर क्यों न गया और जल में एक घड़ी भर नहीं जी सकता और पाताल का मार्ग वहाँ कहाँ हो सकता है और जो हो सकता है, तो गंगा का जल सब पाताल में चला जाता। ऐसी-ऐसी मिथ्या कथा व्यासजी की कभी नहीं हो सकती। और जितनी सत्य कथा हैं, वे सब महाभारत में व्यास जी की ही कही हैं।

और जितने पुराण हैं उनमें व्यास जी का किया एक श्लोक भी नहीं, क्योंकि शिव पुराणादिक सब शैव लोगों के बनाये हैं। उनमें केवल शिव को ही ईश्वर वर्णन किया है और नारायणादिक शिव के दास हैं। फिर रुद्राक्ष, भस्म, नर्मदा का लिंग और मृत्तिका का लिंग बनाके पूजने से विना किसी की मुक्ति कभी नहीं होती, यह केवल शैवों की मिथ्या कल्पना

है और इन बातों से कभी नहीं मुक्ति होती विना धर्मानुष्ठान, विद्या और ज्ञान से। फिर वही शिव जिसको कि ईश्वर वर्णन किया था, पार्वती के मरने में सर्वत्र रोता फिरा। ऐसी कथा श्रेष्ठ पुरुषों की कही नहीं होती। किन्तु यह केवल शैव सम्प्रदाय वालों की बनाई है।

तथा शाक्त लोगों ने देवी भागवत तथा मार्कण्डेय पुराणादिक और सब तन्त्र ग्रन्थ बनाए हैं। उनमें ऐसी-ऐसी कथा झूठ लिखी है कि श्रीपुर में एक भगवती परब्रह्म रूप थी। उसने संसार रचने की इच्छा की। तब प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न किया और कहा कि तूं मेरे से भोग कर। तब ब्रह्मा ने कहा कि तूं मेरी माता है, तुझसे मैं समागम नहीं कर सकता। तब कोप से भगवती ने ब्रह्मा को भस्म कर दिया और दूसरा पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम विष्णु है। उससे भी वैसा ही कहा। फिर विष्णु ने भी समागम नहीं किया। इससे उसको भी भस्म कर दिया। फिर तीसरा पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम शिव है, उससे भी कहा कि तूं मुझसे समागम कर। तब महादेव ने कहा कि तूं तो मेरी माता है तेरे से मैं समागम नहीं कर सकता। परन्तु तूं अपने अंग से एक स्त्री को पैदाकर, उससे मैं समागम करूंगा। फिर उसने पैदा किई और दोनों का विवाह भी किया। फिर महादेव ने देखा कि ये दो भस्म क्या पड़ी है। तब देवी ने कहा कि तेरे भाई हैं। इन दोनों ने मेरी आज्ञा नहीं मानी, इससे इनको मैंने भस्म कर दिया। फिर महादेव ने कहा कि मेरे भाई हैं, इनको जिला देओ। तब भगवती ने जिला दिये। और फिर कहा कि और दो कन्या उत्पन्न करो कि मेरे भाई का भी विवाह हो जाय। भगवती ने उत्पन्न किई, विवाह हो गया। एक का नाम उमा, दूसरी का नाम लक्ष्मी, तीसरी सावित्री। इनके विषय में ब्रह्मा नारायण की नाभि से उत्पन्न भया। कहीं लिखा कि ब्रह्मा से रुद्र और नारायण उत्पन्न भये। कहीं लिखा कि उमा दक्ष की कन्या, कहीं लिखा हिमालय की कन्या है। लक्ष्मी समुद्र की कन्या है, कहीं लिखा कि वरुण की कन्या। कहीं लिखा कि सावित्री सूर्य की कन्या है। कहीं लिखा कि ब्रह्मा से जगत् उत्पन्न भया, कहीं नारायण से, कहीं महादेव से, कहीं गणेश से, कहीं स्कन्द से। ऐसी-ऐसी झूठ कथा पुराणों



में बना रक्खी हैं।

**प्रश्न**—इसमें विरोध नहीं, क्योंकि ये सब कथा कल्प कल्पान्तर की हैं?

**उत्तर**—यह बात मिथ्या है, क्योंकि—

**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।**

जैसी सूर्यादिक सृष्टि पूर्वकल्प में भई थीं, वैसी ही सब कल्प में होती है। और फिर ऐसा जो कहोगे तो किसी कल्प में पग से भी खाते होंगे और मुख से चलते होंगे, नेत्र से बोलते होंगे, जीभ से सुनते होंगे इत्यादिक सब जान लेना। लोगों ने मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत जो दुर्गास्तोत्र है जिसका नाम रक्खा है सप्तशती। उसमें ऐसी-ऐसी झूठ कथा लिखी है कि—

**रुधिरौघमहानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः।**

रक्तबीज और देवी के युद्ध में रुधिर की बड़ी-बड़ी नदियाँ चली। इनसे पूछना चाहिए कि रुधिर वायु के स्पर्श से जम जाता है। उसकी नदी कभी नहीं चल सकती। रक्तबीज इतने बढ़े कि सब जगत् पूर्ण हो गया उनके शरीर से। उनसे पूछना चाहिए कि वृक्ष, नगर, गांव, पर्वत, भगवती का सिंह कहाँ खड़े थे—

**यस्याः प्रभावमतुलं भगवानन्तो,**
**ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च।**
**सा चंडिकाखिलजगत्परिपालनाय,**
**नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥**

इस श्लोक में ब्रह्मा विष्णु और महादेव को तो मूर्ख बताया, क्योंकि चांडिका का अतुल प्रभाव और बल को वे नहीं जानते हैं। अर्थात् मूर्ख ही भये। **चडि कोपे**—इस धातु से चण्डिका शब्द सिद्ध होता है जो कोप रूप है वह अधर्म का स्वरूप ही है।

**विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।**
**कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥**

ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इनको तैंने ही शरीर धारण वाले किये हैं।

फिर तेरी स्तुति करने को समर्थ कौन हो सकता है। ऐसा कहके **त्वं स्वाहा, त्वं स्वधा, त्वं हि** इत्यादिक स्तुति करने भी लग गये। यह बड़ी भारी प्रमाद की बात है कि जिसका निषेध करै उसी को अपने करने लग जाय।

**सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।**
**मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥**

देखना चाहिये कि उस भगवती की प्रतिज्ञा है कि जो मेरा इस स्तोत्र का पाठ और मेरी भक्ति करेगा, वह सब दु:खों से छूट जायगा और धन-धान्य, पुत्रों से युक्त होता है सो यह प्रतिज्ञा न जाने कहाँ गई कि इसके पाठ करने और करानेवाले अनेक दु:खों से पीड़ित हुवे देखने में आते हैं। धन-धान्य पुत्रों को इच्छा भी अत्यन्त होती है और मिलता कुछ नहीं। यहाँ तक कि पेट भी नहीं भरता। ऐसी-ऐसी मिथ्या कथाओं में विद्याहीन पुरुषों को विश्वास हो जाता है। यह बड़ा एक आश्चर्य है।

ऐसे ही विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराणादिकों में अनेक-अनेक झूठ कथा लिखी हैं। तथा भागवत में बहुत मिथ्या कथा लिखी हैं कि शुकाचार्य व्यास जी का पुत्र, परीक्षित के जन्म से सौ (१००) बरस पहिले मर गया था। परीक्षित का जन्म पीछे भया है सो मोक्षधर्म में महाभारत में लिखा है। फिर जो मनुष्य कहते हैं कि शुकाचार्य ने सप्ताह सुनाया, सो केवल मिथ्या बात है, क्योंकि उस वक्त शुकाचार्य का शरीर ही नहीं था और ऋषि का शाप था कि यमलोक को परीक्षित जाय। फिर भागवत में लिखा कि परीक्षित परमधाम को गया, यह उनकी बात पूर्वापर विरुद्ध और मिथ्या है। और चतु:श्लोकी सब भागवत का मूल मानते हैं सो नारायण ने ब्रह्मा से कहा, ब्रह्मा ने नारद से, नारद ने व्यास जी से, व्यास जी ने शुक से, शुक ने परीक्षित से, फिर भागवत संसार में चल निकसा, सो यह बड़ा जाल रच लिया है, क्योंकि—

**ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।**
**सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया॥**

इत्यादिक चार श्लोक बना लिये हैं। क्योंकि परम और गुह्य ये दोनों



ज्ञान के विशेषण होने से वही विज्ञान हो जाता है। फिर **यद्विज्ञानसमन्वितम्** यह जो उसका कहना सो मिथ्या हो जाता है। और गुह्य विशेषण से सरहस्य मिथ्या होता है, क्योंकि रहस्य नाम एकान्त और गुह्य का ही है। परमज्ञान के कहने से तदङ्ग अर्थात् मुक्ति का अङ्ग है यह उसका कहना मिथ्या ही है क्योंकि परमज्ञान जो होता है सो मुक्ति का अङ्ग ही होता है। जैसा यह श्लोक मिथ्या है, वैसा सब भागवत भी मिथ्या है। क्योंकि जय विजय की कथा भागवत में लिखी है। सनकादिक चार वैकुण्ठ को गये थे, उस समय नारायण लक्ष्मी जी के पास थे। जय और विजय ये दोनों वैकुण्ठ के द्वारपालों ने उनको रोक दिया। तब उनको क्रोध भया और शाप जय विजय को दिया कि तुम जाओ और भूमि में गिर पड़ो। तब तो उनको बड़ा भय भया और उनकी प्रार्थना किई कि महाराज मेरे शाप का उद्धार कैसे होगा। तब सनकादिकों ने कहा कि जो तुम प्रीति से नारायण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म तुमारा उद्धार होगा और जो वैर से भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म तुमारा उद्धार होगा।

इसमें विचारना चाहिये कि सनकादिक सिद्ध थे, वे वायुवत् आकाशमार्ग से जहाँ चाहे वहाँ जाते थे, उनका निरोध कैसे हो सकता है। तथा जय और विजय ने बालक रूप थे, चारों उनको क्यों रोका क्योंकि वे क्या दोनों मूर्ख थे। और वे साक्षात् ब्रह्मज्ञानी थे, उनको क्रोध क्यों होता। और कोई किसी की प्रीति से सेवा करै और दूसरा उसको दण्डे से मारै उनमें से किसके ऊपर वह प्रसन्न होगा, जो कि सेवा करता है। और जो दण्डा मारता है उसके ऊपर कभी किसी की प्रसन्नता नहीं हो सकती। फिर वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु दोनों भये। एक को वराह ने मारा और दूसरे को नृसिंह ने। उसका पुत्र था प्रह्लाद। उसके विषय में बहुत झूठ कथा भागवत में लिखी है कि उसको कूंए में गिराया और पर्वत से गिराया, परन्तु वह न मरा। फिर लोहे का खम्ब अग्नि से तपाया और प्रह्लाद से कहा कि तूं इसको पकड़, नहीं तो तेरा सिर मैं काट डारूंगा। फिर प्रह्लाद खम्ब के सामने चला और चित्त में डरा भी कुछ कि मैं जल न जाऊँ, सो नारायण ने चींटी उसके ऊपर चलाई। उनको देख के प्रह्लाद

निडर होके खम्बे को पकड़ा, तब खम्बा फट गया और बीच में से नृसिंह निकले। सो उसके पिता को पकड़ के पेट चीर डाला। और नृसिंह को बड़ा क्रोध आया। सो ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी तथा इन्द्रादिक देवों से नृसिंह के कोप की शान्ति ही नहीं भई। फिर प्रह्लाद से सबने कहा कि तूं ही शान्ति कर, सो प्रह्लाद नृसिंह के पास गया और नृसिंह शान्त हो गया। सो प्रह्लाद को जीभ से चाटने लगा और कहा कि वर मांग। तब प्रह्लाद ने कहा कि मेरे पिता का मोक्ष होय। तब नृसिंह बोले कि मेरे वर से २१ पुरुषों का मोक्ष हो गया तेरे पितादिकों का।

इनसे पूछना चाहिये कि नारायण ने शूकर और पशु का शरीर क्यों धारण किया और वे कैसे धारण कर सकते। हिरण्याक्ष पृथिवी को चटाई की नांई सिराने धरके सो गया। सो किसके ऊपर सोया और पृथिवी को उठाई सो किसके ऊपर खड़ा होके। और पृथिवी को कोई उठा भी सकता है? और कोई नारायण के भक्त को पर्वत से गिरा दे, वा कूँए में डाल दे, वह मर जायगा अथवा हाथ गोड़ टूट जायगा, रक्षा कोई नहीं करेगा। खम्बे में से नृसिंह का निकलना यह बात बड़ी मिथ्या है। और नृसिंह जो नारायण का अवतार और सर्वज्ञ होता तो पहिली बात को क्यों भूल जाता जो सनकादिकों ने सात वा तीन जन्म में सद्गति कही थी। उनने पहिले ही जन्म में सद्गति क्यों दे दिई। और प्रथम ही उनका जन्म था। उसकी २१ पीढ़ी नहीं बन सकती। और जो कश्यप, मरीचि, ब्रह्मा तक विचारैं तो भी चार पीढ़ी हो सकती हैं, २१ तक कभी नहीं। फिर उसने लिखा कि हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यपु ही रावण, कुम्भकर्ण, शिशुपाल और दन्तवक्र होते भये। फिर सद्गति किनकी भई। यह बड़ी मिथ्या कथा है।

अजामेल की कथा में लिखा है कि अपने पुत्र को मरण समय में बोलाया, उसका भी नाम नारायण था। सो नारायण ने इतना जाना भी नहीं कि मेरे को पुकारता है वा अपने पुत्र को? और वह बड़ा पापी था, परन्तु एक समय नारायण के नाम से उसको वैकुण्ठ का वास दे दिया। सो बड़ा भारी अन्याय कि पाप करै और दण्ड न होय। ऐसी कथा सुनके लोगों



की भ्रष्ट बुद्धि हो जाती है। क्योंकि एक वार नारायण के नाम से सब पाप छूट जाते हैं फिर कोई पाप करने से भय कभी नहीं करेगा।

व्यास जी ने सब वेद-वेदांग विद्याओं को पढ़ लिया और परमेश्वर पर्यन्त यथावत् पदार्थों का साक्षात्कार किया था तथा अणिमादिक सिद्धि भी भई थी, फिर भी सरस्वती नदी के तट में एक वृक्ष के नीचे शोकातुर होके जैसे रोता होवै ऐसे बैठे थे। उस समय में वहाँ नारद आये और व्यास जी से पूछा कि आप ऐसी व्यवस्था में क्यों बैठे हैं? तब व्यास जी बोले कि मैंने सब विद्या पढ़ी और सब प्रकार का ज्ञान भी मुझको भया, परन्तु मेरे चित्त की शान्ति नहीं भई। तब नारद जी बोले कि तुमने भगवत कथा नहीं किई और ऐसा ग्रन्थ भी कोई नहीं बनाया, जिसमें भगवत कथा होवै, सो आप भागवत बनावें कृष्ण जी के गुणयुक्त। तब आपका चित्त शान्त होगा।

इसमें विचारना चाहिए कि व्यास जी जो नारायण का अवतार होते तो उनको अज्ञान, शोक और मोह क्यों होते? और जो उनको अज्ञानादिक थे तो आज्ञानी का बनाया जो भागवत, उसका प्रमाण नहीं हो सकता। फिर इस कथा में वेदादिकों की केवल निन्दा आती है क्योंकि वेदादिकों के पढ़ने से व्यासजी को ज्ञान नहीं भया, तो हम लोगों को कैसे होगा। फिर भी **निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्** इत्यादिक श्लोकों से केवल वेदों की निन्दा ही किई है क्योंकि वेदादिक सत्यशास्त्रों की यह निन्दा न करता तो इस महा मिथ्या जाल रूप जो भागवत ग्रन्थ उसकी प्रवृत्ति ही नहीं होती।

फिर उसने नृगराज की कथा लिखी कि—

**यावत्यः सिकता भूमौ यावन्तो दिवि तारकाः।**
**यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः॥**

नृगराजा ने इतनी गाय दिई कि जितनी भूमि में कणिका हैं। इससे पूछना चाहिए कि इनती गाय कहाँ खड़ी रहती थीं? क्योंकि एक गाय तीन वा चार हाथ जगह में खड़ी रहती है, उस भूमि के कणों को सब भूमि के मनुष्य करोड़हां लाखहां वर्ष तक गिनें तो भी पारावार नहीं होवै। फिर

भी उस मिथ्यावादी को सन्तोष नहीं भया मिथ्या कहने से, कि जितने आकाश में तारे और जितने वृष्टि के बिन्दु, उतने गोदान नृगराज ने किये, फिर भी वह दुर्गति को प्राप्त भया। क्योंकि एक गाय एक ब्राह्मण को पहिले दिई थी, फिर भूल के दूसरे को दे दिई, फिर दोनों ब्राह्मण लड़ने लग गये। एक कहे कि यह मेरी गाय है दूसरा कहे कि मेरी। तब नृगराज ने कहा कि दोनों तुम समझ के एक तो इस गाय को ले लेओ। दूसरा एक के बदले में सौ, हजार, लाख, करोड़ और सब राज्य ले लेओ, परन्तु लड़ो मत। वे दोनों ऐसे मूर्ख कि लड़ते ही रहे किन्तु शान्त न भये। और फिर राजा को शाप दे दिया कि तू दुर्गति को जा।

इसमें विचारना चाहिये कि एक तो इसने कर्मकाण्ड की निन्दा किई कि थोड़ी-सी भी भूल पड़ जाय तो दुर्गति को जाय, इससे कर्मकाण्ड में कुछ फल नहीं, ऐसी उसकी मिथ्या बुद्धि थी कि इस प्रकार की मिथ्या कथा उसने लिखी। और ब्राह्मणों की निन्दा लिखी कि सदा हठी होते हैं। और राजा ने उनको दण्ड भी नहीं दिया। ऐसे पुरुषों को दण्ड देना चाहिये राजा को। फिर कभी हठ दुराग्रह न करैं। और राजा का अपराध क्या भया था कि उसको शाप लगा। एक गोदान के व्यतिक्रम से दुर्गति को वह गया और असंख्यात गोदान का पुण्य उसका कहाँ गया। यह अन्धकार की बात उनकी कि इतने उसने गोदान किये, परन्तु सब उसके नष्ट हो गये। बहुत गोदानों के पुण्य ने कुछ सहाय नहीं किया।

फिर उसने एक कथा लिखी कि—

**रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति।**

जब कंस ने अक्रूर जी को श्रीकृष्ण के लेने के वास्ते भेजा तब मथुरा से सूर्योदय समय में वायुवेग रथ के ऊपर बैठ के चले। दो कोस दूर गोकुल था, सो चार प्रहर में अर्थात् सूर्यास्त समय में गोकुल को आ पहुँचे। इससे पूछना चाहिये कि रथ का वायु वेग कहाँ नष्ट हो गया? जो कोई कहे कि अक्रूर जी को प्रेम हुआ, सो देर से पहुँचे। परन्तु घोड़े को और सहीस को प्रेम कहाँ से आया। और उसका वायु वेग उसने क्यों मिथ्या लिखा।



फिर पूतना को श्रीकृष्ण ने मार के गोकुल मथुरा के बीच में उसका शरीर डाल दिया। सो छः कोस तक उस शरीर की स्थूलता लिखी। फिर कंस को मालूम भी नहीं भया कि पूतना मारी गई वा नहीं। जो छः कोस की स्थूलता होती तो दो कोस के बीच में कैसे समाता, किन्तु गोकुल मथुरा—ये दोनों चूर्ण हो जाते और गोकुल मथुरा के पार कोस-कोस तक शरीर गिरता। सो ऐसी-ऐसी झूठ कथा लिखी है। परन्तु कथा करने और कराने वाले सब भांग पान करके मस्त हो गये हैं कि ऐसे झूठ को भी नहीं जान सकते।

ब्रह्माजी को नारायण जी ने वर दिया कि—

**भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।**

जब तक सृष्टि रहे इसका नाम है कल्प और जब तक प्रलय बना रहे उसका नाम है विकल्प। सो नारायण ने ब्रह्मा जी से कहा कि तुम को कभी मोह न होगा। फिर वत्सहरण कथा में लिखा कि ब्रह्मा मोहित हो गये और बछड़े को हर लिया। और उनी ब्रह्मा ने तो कहा था कि आप वसुदेव और देवकी के घर में जन्म लीजिये। फिर कैसी गाढ़ी भांग पी लिई कि झट भूल गये कि यह गोप है किंवा विष्णु का अवतार है। और भागवत बनाने वाले ने ऐसा नशा किया है। बड़ा अंधकार इसके हृदय में है कि ऐसा बड़ा पूर्वापर विरुद्ध लिखता है और जानता नहीं।

प्रियव्रत की कथा उसने लिखी कि सात दिन तक सूर्योदय नहीं भया। तब प्रियव्रत रथ पै बैठ के सूर्य की नांई प्रकाशित होके घूमने लगा। सो उसके रथ के पहिये के लीक से, सात दिन तक घूमने से, सात समुद्र सप्त द्वीप बन गये। इससे पूछना चाहिये कि रथ के चक्र की इतनी बड़ी स्थूल लीक भई तो उस रथ के चक्र का क्या प्रमाण? रथ, अश्व और प्रियव्रत के शरीर का क्या प्रमाण होगा। इस कथा से [सिद्ध है कि] एक रथ इतना स्थूल होगा कि पृथ्वी के ऊपर अवकाश नहीं हो सकता। और सूर्य आकाश में भ्रमण करता है। प्रियव्रत ने पृथ्वी के ऊपर भ्रमण किया। फिर जितना सूर्य का प्रकाश, उतना उससे कभी नहीं हो सकता और सूर्य लोक के इतना स्थूल भी कभी नहीं हो सकता। भूगोल के विषय में जैसा

उनने लिखा है वैसा उन्मत्त भी न लिखेगा। तथा सुमेरुपर्वत के विषय में जैसा लिखा है वैसा बालक भी नहीं लिखेगा। सो ऐसी असंभव और मिथ्या कथा भागवत का करने वाला लिखता है।

श्रीकृष्ण विद्वान् धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे। ऐसा महाभारत की कथा से यथावत् निश्चय होता है। सो श्रीकृष्ण की जैसी निन्दा इसने कराई ऐसी किसी की न होगी। क्योंकि उसने रास मंडल की कथा लिखी। उसमें ऐसी-ऐसी बात लिखी है, जिससे यथावत् श्रीकृष्ण की निन्दा होय। जैसे कि वृन्दावन से महावन छः कोस है। वृन्दावन में बंसी बजाई उसका शब्द निकट-निकट गाँव और मथुरा में किसी ने नहीं सुना, किन्तु जैसा बांदर उड़ के जाय वैसा शब्द उड़ के महावन में कैसे गया होगा? फिर उस शब्द को सुन के महावन की स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। फिर उनके पतियों ने निरोध भी किया, तो भी किसी ने न माना। फिर उल्टा आभूषण और वस्त्र धारके वहाँ से चली। सो छः कोस वृन्दावन में न जाने पक्षी की नांई उड़ गई होंगी। पग का आभूषण नाक में, नाक का आभूषण पग में कैसे धार लेगी। फिर श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा कि तुमने बड़ा बुरा काम किया इससे तुम अपने-अपने घर को चली जाओ और अपने-अपने पति की सेवा करो। पतियों की आज्ञा भंग मत करो फिर गोपियां बोलीं कि ये झूठ पति हैं। सत्य पति तो आप ही हैं। हम उनके पास क्यों जांय आपको छोड़ के। तब तो श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हो गये और हाथ से हाथ पकड़ के झट क्रीड़ा करने लगे। सो छः मास की रात्रि कर दिई क्योंकि स्त्रियां बहुत थीं और कामातुर थी। फिर श्रीकृष्ण ने भी विचारा कि इनसे थोड़े काल में तृप्ति न होगी। इससे छः मास का क्रीड़ा के वास्ते काल बनाया। फिर क्रीड़ा करते-करते अन्तर्धान हो गए। फिर गोपियां बहुत व्याकुल होने लगीं और रोने लगीं। तब श्रीकृष्ण फिर प्रसिद्ध हो गये तब फिर गोपी प्रसन्न हो गईं। फिर भी सब मिलके क्रीड़ा करने लगे। फिर एक वार एक गोपी को श्रीकृष्ण कंधे पर लेके वन में भाग गए। उस स्त्री का वीर्यस्राव हो गया।

इसमें विचारना चाहिए कि श्रीकृष्ण कभी ऐसी बात न करेंगे। इससे



बहुत जगत् का अनुपकार होता है क्योंकि स्त्री लोग गोपियों का दृष्टान्त सुनके व्यभिचारिणी हो जांयगी तथा पुरुष भी श्रीकृष्ण का दृष्टान्त सुनके व्यभिचारी हो जायेंगे। ऐसी कथा से बहुत जगत् का अनुपकार होता है।

फिर वहाँ परीक्षित ने प्रश्न किया कि यह धर्म का उल्लंघन श्रीकृष्ण ने क्यों किया। उसका शुक ने उत्तर दिया—

**धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।**
**तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥**

इसका यह अभिप्राय है कि जो ईश्वर होता है सो धर्म का उल्लंघन करता ही है। किन्तु जैसा चाहै वैसा करें पर-स्त्री-गमन करले, वा चोरी भी करले, उनको दोष नहीं। जैसे तेजस्वी पुरुष जो चाहे सो करले। जैसे अग्नि सबको जला देता है और दोष नहीं लगता। वैसे कृष्णादिक समर्थ थे, उनको भी दोष नहीं लगता।

इसमें विचारना चाहिये कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा थे, ऐसा काम कभी नहीं करेंगे। और जो श्री कृष्ण ऐसा करते तो कुंभी पाक से कभी न निकलते। इससे श्रीकृष्ण ने कभी ऐसा काम नहीं किया था क्योंकि वे बड़े धर्मात्मा थे।

**ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्॥**

इसका यह अभिप्राय है कि ईश्वर का वचन कहीं-कहीं जैसे सत्य होता है वैसे आचरण भी सत्य कहीं-कहीं होता है। सर्वथा ईश्वर असत्य बोलता है और अधर्म को ही करता है, किन्तु कदाचित् सत्य वचन बोलता है ईश्वर और सत्य आचरण।

इनसे पूछना चाहिये कि यह ईश्वर की बात है वा उन्मत्त की? वे कहते हैं कि फिर जिसके कण्ठ में रुद्राक्ष वा तुलसी की माला न होय वा ललाट में तिलक, उनके मुख देखने से पाप होता है। उनसे कहो कि उनकी पीठ देखने से तो पुण्य होता होगा। और वे कहें कि उनके हाथ से जल लेने में पाप होता है तो उनसे कहो कि वह पग से जल दे दे, फिर तो कुछ पाप नहीं होगा। ऐसी-ऐसी बातें लोगों ने मिथ्या बना लिई हैं।

और भागवत के विषय में हमने थोड़े-से दोष देखाये हैं, परन्तु

भागवत सब दोष रूप ही है। वैसे ही अठारह पुराण, अठारह उप-पुराण और सब तन्त्र ग्रन्थ वे नष्ट ही हैं। इससे कुछ जगत् का उपकार नहीं होता सिवाय अनुपकार के।

**प्रश्न**—ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिक देव उनका निवास स्थान कहाँ है?

**उत्तर**—महाभारत की रीति से और युक्ति से भी यह निश्चय होता है कि ब्रह्मादिक सब हिमालय में रहते थे क्योंकि इस भूमि में उनके चिह्न पाये जाते हैं। खाण्डव वन इन्द्र का बाग था। पुष्कर में ब्रह्मा ने यज्ञ किया। कुरुक्षेत्र में देवों ने यज्ञ किया। अर्जुन और श्रीकृष्ण से इन्द्रादिकों का युद्ध होना तथा पाण्डवों से गान्धर्वों का युद्ध होना। दमयन्ती के स्वयंवर में इन्द्रादिकों का आना। अर्जुन का महादेव से पाशुपतास्त्र का सीखना तथा देवलोक में जाके विद्या का पढ़ना। भीम का कुबेरपुरी में जाना। तथा दशरथ और कैकेयी का रथ के ऊपर चढ़ के देवासुर संग्राम में जाना। सर्वत्र युद्ध देखने के वास्ते विमानों पर चढ़के देवों का आना। इस देशवासियों का अनेक वार समागम का होना। महोदधि और गंगा का वैकुण्ठ से निकलना। मन्दाकिनी और सुवर्ण गङ्गा का ब्रह्मलोक से आना। स्वर्गारोहिणी का कैलास से निकलना। अलकनन्दा का कुबेरपुरी से आना। वसुधारा का वसुपुरी से गिरना। नर और नारायण का बदरिकाश्रम में तप का करना। युधिष्ठिर का शरीर सहित स्वर्ग में जाना। नारद का देवलोक से इस लोक में आना। यज्ञों में देवों को निमन्त्रण देना और उनों का यज्ञों में आना। नहुष के इन्द्र का होना। युधिष्ठिर और यमराज का समागम का होना। इस वक्त तक ब्रह्मलोक, कैलास, वैकुण्ठ, इन्द्र, वरुण, कुबेर, वसु, अग्न्यादिक आठ वसुपुरियों का इन सबके आज तक उत्तराखण्ड में प्रसिद्ध विद्यमानों का होना। महाभारत और केदारखण्डादिकों में सबके जो-जो चिह्न लिखे हैं उनके प्रत्यक्ष का होना। हिमालय की कन्या पार्वती से महादेव का विवाह होना। वरुण की कन्या से नारायण का विवाह होना इत्यादिक हेतुओं से हिमालय में ही देवलोक निश्चित था। इसमें कुछ संदेह नहीं, सो प्रथम जब सृष्टि भई थी।



इससे क्या आया कि प्रथम सृष्टि मनुष्यों की हिमालय में भई थी, फिर धीरे-धीरे बढ़ते चले, वैसे-वैसे सब भूगोल में मनुष्य वास करते चले और फैलते भी चले। सो जितने पुरुष हैं मनुष्य सृष्टि में वे सब हिमालय उत्तराखण्ड से ही बढ़े हैं। सो उत्तराखण्ड में ३३ करोड़ मनुष्य प्रथम थे सब पर्वतों में मिल के। फिर जब बहुत बढ़े तब चारों ओर मनुष्य फैल गए। उनमें से विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रमादिक गुणों से जो युक्त थे वे ब्रह्मादिक देव कहाते रहते थे। और उनकी गद्दी पर जो बैठता था, उनका नाम ब्रह्मा पड़ता था। वैसे ही महादेव, विष्णु, इन्द्र, कुबेर और वरुणादिक नाम पड़ते थे। जैसे मिथिलापुरी में जो गद्दी पर बैठता था उसका नाम जनक पड़ता था। तथा जो कोई राज्याभिषेक होके राज पर बैठे हैं, उसका नाम पदवी के योग्य अब तक पड़ता जाता है। जैसे अमात्यों का दीवान, लाट, जज, कलक्टर इत्यादिक नाम प्रत्यक्ष पड़ते ही हैं, परन्तु वे हिमालयवासी देव पदार्थविद्या को हस्तक्रिया सहित अच्छी प्रकार से जानते थे। उनमें से विश्वकर्मा बड़े पदार्थ विद्यायुक्त थे। अनेक प्रकार के यन्त्र अग्नि, जल, वायु इत्यादिक के योग से विमानादिक रच लेते थे। धर्मात्मा तथा जितेन्द्रियादिक श्रेष्ठ गुणवाले होते थे और बड़े शूरवीर थे। नाना प्रकार के आकाश, पृथिवी और जल में फिरने के वास्ते बना लेते थे। आकाश में जो यान रचते थे उसका नाम विमान रखते थे।

सो उन मनुष्यों में से बहुत दुष्ट कर्म करने वाले थे, उनको हिमालय से निकाल दिए थे। सो हिमालय से दक्षिण देश में आके रहते थे। फिर बड़े कुकर्म करने को लग गए थे उनका नाम राक्षस पड़ा था। और कुछ उन डाकुओं में से अच्छे थे उनका नाम दैत्य पड़ गया था। इन दैत्य और राक्षसों से हिमालयवासी देवों का वैर बन गया था। जब उन देवों का बल होता था, तब इनको मारते थे और उनका राज्य छीन लेते थे। जब दैत्यादिकों का बल होता था, तब देवों का राज्य छीन लेते थे और मारते भी थे।

एक शुक्राचार्य दैत्यों का गुरु था और बृहस्पति देवों का। वे दोनों अपने-अपने चेलों को विद्या पढ़ाते थे। जब जिसका बल, बुद्धि, पराक्रम

बढ़ता था, उनका विजय होता था। परन्तु देव विद्याओं में सदा श्रेष्ठ होते थे। और हिमालय में देवों के राज्य स्थान थे, इससे दैत्यों का अधिक बल नहीं चलता था। सो अब उस हिमालय देवलोक में कोई नहीं है, किन्तु वे ही सब जो पर्वतवासी हैं, वही देवों का परिवार है। आर्यावर्त्तादिक देशों में जितने उत्तम आचार वाले मनुष्य हैं, वे देवों के परिवार हैं और जितने हव्सी आदिक आजतक भी जो मनुष्य के मांस को खा लेते हैं वे राक्षस और दैत्य के कुल के हैं। सो महाभारतादिक इतिहासों से स्पष्ट निश्चय होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

एक जयपुर में नाभा डूम जाति का था जिसका गुरु अग्रदास था। सो उनने उसको चेला कर लिया था, उसका नाम नाभादास रक्खा। सो वैरागियों का जूठ खाता था और जहाँ वैरागी लोग मुँह हाथ धोते थे उसका जल पीता था। सो वैरागियों के जूंठ अन्न और जूंठ जल खाने पीने से सिद्ध हो गया। इस प्रमाण से आज तक वैरागी लोग परस्पर जूंठ खाते हैं क्योंकि जैसे नाभा सिद्ध हो गया वैसे हमलोग भी सिद्ध हो जायेंगे। परन्तु आजतक कोई जूंठ के खाने और पीने से सिद्ध नहीं भया। इससे यह भी निश्चित भया कि नाभा भी सिद्ध नहीं था। उनने एक ग्रन्थ बनाया है उसका नाम **भक्तमाल** रक्खा है। उसमें वैरागियों का नाम सन्त रक्खा है। सो पीपा की कथा उसने लिखी है। उसकी स्त्री का नाम सीता था। सो उनके पास वैरागी दस पांच आए। उनके खाने पीने के वास्ते पीपा के पास कुछ नहीं था। सो उसकी स्त्री के पास कहा कि इन साधुओं के खाने के वास्ते कुछ ले आना चाहिये। क्योंकि उसको कोई उधार वा मांगने से नहीं देता था। और उसकी स्त्री सीता रूपवती थी सो एक दुकानदार के पास गई और कहा कि हमको अन्न और घी तुम देओ। तब वैश्य ने उसको देख के कहा तूं एक रात भर मेरे पास रहे तो तुझको मैं देऊं। तब सीता ने कहा कि कुछ चिन्ता नहीं। साधुओं की सेवा के वास्ते मेरा शरीर है। तब वैश्य ने अन्नादिक दिये और उन वैरागियों को भोजन उनने कराया। फिर जब पहर रात्रि गई, तब पीपा से कहा कि ऐसी बात कहके मैं पदार्थ ले आई हूँ। तब तो पीपा ने धन्यवाद दिया कि तूं बड़ी साधुओं की सेवक है।



परन्तु उस वक्त कुछ-कुछ वृष्टि होती थी, सो सीता को कंधे पर ले जाके उस बनिये के पास पहुँचा दिया। तब बनिये ने कहा कि वृष्टि होती है वृष्टि में तेरा पग भी नहीं भीजा, फिर तूं कैसे आई। तब सीता ने कहा कि तुझको इस बात का क्या प्रयोजन है। तुझको जो करना होय सो कर। तब वैश्य ने कहा कि तू सच बोल। सीता ने कहा कि मेरा पति कंधे पर चढ़ा के तेरे दुकान पै पहुँचा दिया। तब तो वह वैश्य सीता के चरण में गिर पड़ा और कहा कि तूं और तेरा पति धन्य है क्योंकि तुमने संतों के वास्ते अपना शरीर भी बेच डाला।

यह सब बात उनकी अधर्मयुक्त और झूंठ है, क्योंकि यह श्रेष्ठ पुरुषों का काम नहीं जो कि वेश्या और भड़ुओं का काम करै।

ऐसे ही धन्ना भगत का विना बीज से खेत जम गया। नामदेव की पाषाण की मूर्त्ति ने दूध पी लिया। मीरा बाई पाषाण की मूर्त्ति में समा गई। और कोई भगत के पास से नारायण कुत्ता बनके रोटी उठा के भागे। और मीरा विष के पीने से भी नहीं मरी। इत्यादिक **भगतमाल** की बात झूंठ है।

और एक परिकाल उन साधुओं की सेवा करता था जो कि चक्रांतित थे। वह भी चक्रांकित था, परन्तु वह परिकाल डांकूपने से धनहरण करके साधुओं को देता था। सो एक दिन चोरी से वा डांकूपन से धन नहीं पाया। फिर बड़ा व्याकुल भया और घोड़े पर चढ़के जहाँ तहाँ घूमता था। सो नारायण एक धनाढ्य के वेष से रथ पै बैठ के परिकाल को मिले। सो झट परिकाल ने उनको घेरे लिया और कहा कि तुमको मार डालूंगा, नहीं तो तुम सब कुछ रख देओ। परन्तु उनके रखने में कुछ देर भई, सो झट उतर के नारायण की अंगुली में सोने की अंगूठियाँ थीं, सो अंगूठी सहित अंगुली को काट ली। तब नारायण बड़े प्रसन्न भये और दर्शन दिया कि तूं बड़ा भक्त है।

देखना चाहिये कि नारायण भी कैसे अन्यायकारी हैं। डाकुओं के ऊपर कृपा कर देते हैं अर्थात् डांकू और चोरों के संगी हैं। फिर वे चक्रांकित लोग नित्य उपदेश सब करते हैं कि चोरी करके भी पदार्थ ले

आवे और नारायण तथा वैष्णवों की सेवा में लगावै तो भी वह बड़ा भक्त होता है और वैकुण्ठ को जाता है।

फिर वह परिकाल किसी बनिये के जहाज पर बैठके समुद्र के पार बनियों के साथ चला गया। वहाँ बनियों ने जहाज में सुपारी भरी, सो एक सुपारी का आधा खण्ड परिकाल ने जहाज में धर दिया और वैश्यों से कह दिया कि मैं आधी सुपारी पार जाके ले लेऊंगा। तब वैश्यों ने कहा कि एक का दश तुम ले लेना। तब परिकाल ने कहा कि नहीं मैं तो आधी ही लेऊंगा। फिर जहाज पार को आ गया। जब सुपारी जहाज से उतारने लगे, तब परिकाल ने कहा कि आधी सुपारी हमको दे देओ। तब वैश्य लोग सुपारी का आधा खण्ड देने लगे, सो परिकाल बड़ा क्रोध करके सबसे कहने लगा कि ये वैश्य मिथ्यावादी हैं। क्योंकि देखो इस पत्र में आधी सुपारी मेरी लिखी है, सो ये देते नहीं। सो अत्यन्त धूर्त्तता करने लगा और लड़ने को तैयार भया। फिर जालसाजी करके आधी सुपारी नांव में से बटवा लिई। उन वैरागियों की सेवा में सब धन लगा दिया। सो ऐसे परिकाल की चक्रांकित के संप्रदाय में बड़ी प्रतिष्ठा है। सो चक्रांकित के **मन्त्रार्थ ग्रन्थ** में ऐसी बात लिखी है। सो जितने सम्प्रदायी हैं, वे अपने चेले को ऐसे-ऐसे उपदेश करके और ऐसे ग्रन्थों को सुना के पापों में लगा देते हैं।

फिर भगतमाल में एक कथा लिखी है कि एक साधु एक ब्राह्मण के घर में ठहरा था और ब्राह्मण उसकी सेवा करता था। उसकी एक कुमारी कन्या थी, उससे वह साधु मोहित हो गया। सो उस कन्या को लेके रात्रि में कुकर्म किया और खटिया के ऊपर दोनों नंगे सो गए थे। सो जब उस कन्या का पिता प्रात:काल उठा तब दोनों को नंगे देखके अपनी चादर दोनों पर ओढ़ा दिई और सिपाहियों से कहा कि यह साधु भाग न जाय। फिर वह बाहर चला गया। तब वे दोनों उठे उठके देखा कि वस्त्र किनने डाला। सो कन्या ने पहिचान लिया कि यह वस्त्र मेरे पिता का है। फिर वह कन्या डर के भाग गई। भाग के छिप गई। और साधु भी वहाँ से निकले के जाने लगा तब सिपाहियों ने उसको रोक लिया, तब तो साधु



बहुत डरा। तब तक कन्या का पिता बाहर से आया। सो साधु के पास आके साष्टांग नमस्कार किया कि मेरा धन्य भाग्य है जो कि आपने मेरी कन्या का ग्रहण किया। इससे मेरा भी उद्धार हो जायगा। सो आप आनन्द से मेरे घर में रहिये और कन्या को भी मैंने आपको समर्पण कर दिया। तब साधु बड़ा प्रसन्न होके रहा और विषय भोग करने लगा।

इसको विचारना चाहिये कि बड़े अनर्थ की बात है क्योंकि ऐसी कथा को सुन के साधु और गृहस्थ लोग भ्रष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

फिर भक्तमाल में एक कथा लिखी है कि एक भक्त था। उसके घर में साधु पाहुने आये। फिर उनकी सेवा के वास्ते पिता पुत्र दोनों चोरी करने के वास्ते गये। सो एक बनिये की दुकान की भींत में सुरंग देके पुत्र भीतर घुसा और पिता बाहर खड़ा रहा। सो भीतर से घी, चीनी, अन्न, निकाल के देता था और वह लेता था। जब भीतर से बाहर निकलने लगा तब तक दुकान वाले जाग उठे। सो उसके पग तो भीतर थे और सिर बाहर निकला था। तब तक उसके पग उनों ने पकड़ लिये और सिर पकड़ लिया पिता ने। दोनों तरफ खींचने लगे, सो उसके पिता ने विचार किया कि हम पकड़ जायेंगे तो साधुओं की सेवा में हरकत होगी सो पुत्र का सिर काट के और घृतादिक पदार्थों को लेके भाग गया। तब तक राजपुरुष आये और उसका शरीर राजघर में ले गये और खोज होने लगा कि यह किसका है।

फिर वह अपने घर में चला गया और साधुओं के वास्ते भोजन बनाया और उन की पंक्ति भई। उस समय में साधुओं ने कहा कि तुमारा लड़का कहाँ है उसको जल्दी बोलाओ। तब उसके माता और पिता जो चोर उन्नेने कहा कि कहीं चला गया होगा आ जायगा। आप तब तक भोजन कीजिये। तब साधुओं ने कहा कि वह जब आवेगा तब हम लोग भोजन करेंगे, अन्यथा नहीं। तब उसकी माता ने रो के कहा कि वह तो मारा गया। तब साधुओं ने पूंछा कैसे मारा गया? हमारे घर में आपके सत्कार के हेतु पदार्थ नहीं था। इससे वे दोनों चोरी करने को गये थे वहाँ

वह मारा गया। तब साधुओं ने कहा कि उसका शरीर कहाँ है ? तब उन्ने कहा कि सिर हमारे घर में है और शरीर राजघर में है। वे साधु लोग राजघर में जाके शरीर ले आये। शरीर और सिर का सन्धान करके बीच में रख दिया। फिर वे साधु नाचने-कूदने और गाने लगे। फिर वह जी उठा और साधुओं ने आनन्द से भोजन किया। और उनसे कहा साधुओं ने कि तुम बड़े भक्त हो और स्वर्ग में तुह्मारा वास होगा।

इसमें विचारना चाहिये कि साधुओं की आज्ञा होना और चोरी का करना, फिर नरक में न जाना, किन्तु स्वर्ग में जाना। यह बड़ी मिथ्या कथा है। ऐसी कथा को सुन के लोग सब भ्रष्ट बुद्धि हो जाते हैं। ऐसी-ऐसी सब कथा भ्रष्ट, भक्तमाल में लिखी हैं। फिर भी लोगों की ऐसी मूर्खता है कि सुनते हैं और करते हैं।

शिवपुराण में त्रयोदशी प्रदोषव्रत जो कोई न करैं वे नरक में जायंगे। तन्त्र और देवीभागवतादिकों में लिखा है नवरात्र का व्रत न करैं वे नरक में जायंगे। तथा पद्म पुराणादिक में लिखा है कि दशमी दिग्पालों का, एकादशी विष्णु का, द्वादशी वामन का, चतुर्दशी नृसिंह और अनन्त का अमावस्या पितृओं का, पौर्णमासी चन्द्र का, सो मत-मतान्तरों से और पुराण तथा उप-पुराणों से यह आया कि किसी तिथि में भोजन न करना और जल भी न पीना और जो कोई खाये वा पीये वह नरक को जायगा। इसमें वे कहते हैं कि **जिसका विवाह उसका गीत।**

इससे ऐसी कथा में विरोध नहीं आता।

उनसे पूछना चाहिये कि जिसका विवाह होता है उस के गीत गाये जाते हैं। परन्तु पहिले जिनके विवाह भये थे और जिनके होने वाले हैं, उनका खण्डन तो नहीं होता कि यही उत्तम है वा पहिले। इससे जिनके विवाह भये और जिनके होंगे उनको नीच तो नहीं बनाते। इससे ऐसे-ऐसे मूर्खता के दृष्टान्त से कुछ नहीं होता।

ऐसे-ऐसे श्लोक लोगों ने बना लिये हैं कि—

**शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नमः॥**



एक विस्फोट रोग है उसका नाम शीतला रक्खा।

**यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः॥**

शीतला अष्टमी को गधे की पूजा करते हैं और हनुमान् का रूप मान के वानर की पूजा करते हैं। भैरव का वाहन कुत्ता को मान के पूजा करते हैं। तथा पाषाण, पिप्पलादिक वृक्ष, तुलस्यादिक औषधि, दूब और कुशादिक घास, पित्तलादिक धातु, चन्दनादिक काष्ठ, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, जूता, और विष्ठा तक आर्यावर्त्त देश वाले पूजा करते हैं। इनको सुख वा कल्याण कभी नहीं हो सकता। जब तक इन पाखण्डों को आर्यावर्त्तवासी लोग न छोड़ेंगे, तब तक इनका अच्छा कुछ नहीं हो सकता।

फिर एक शालिग्राम पाषाण और तुलसीघास दोनों का विवाह करते हैं। तथा तडाग, बाग, कूपादिकों का विवाह करने लगे हैं और नाना प्रकार की मूर्त्तियाँ बना के मन्दिर में रखते हैं। उनके नाम शिव और पार्वती, नारायण और लक्ष्मी, दुर्गा, काली, भैरव, बटुक, ऋषि, मुनि, राधा और कृष्ण, सीता और राम, जगन्नाथ, विश्वनाथ, गणेश और ऋद्धि, सिद्धि इत्यादिक रख लिये हैं। फिर इनके पुजारी बहुत दरिद्र देखने में आते हैं। और सब संसार से धन लेने के लिये उपदेश करते हैं कि आओ यजमान धन चढ़ाओ देवताओं को, नहीं तो तुमको दर्शन का फल न होगा। आमनिया ले आओ, ठाकुर जी के लिये बाल भोग ले आओ तथा राज भोग के वास्ते देओ और गहना चढ़ाओ तथा वस्त्र। और नारायण तथा महादेव के वास्ते मन्दिर बनवाओ और खूब आजीविका लगवाओ।

हम कहते हैं कि ऐसे दरिद्र देवता और महंत तथा पुजारी लोग आर्यावर्त्त के नाश के वास्ते कहाँ से आ गये और कौन-सा इस देश का अभाग्य और पाप था कि ऐसे-ऐसे पाखण्ड इस देश में चल गये। फिर इनको लज्जा भी नहीं आती कि अपने पुरुषों का उपहास करते हैं कि यह सीताराम हैं इत्यादिक नाम ले लेके दर्शन कराते हैं। इसमें बड़ा उपहास है, परन्तु समझते नहीं।

देखना चाहिये कि कृष्ण तो धर्मात्मा थे। उनके ऊपर झूठ जाल

भागवत में लिखा है। फिर उसी लीला को रासमण्डल बनाके करते हैं। उसमें किसी लड़के को कृष्ण बनाते हैं किसी को राधा और गोपियाँ बना लेते हैं तथा सीताराम और रावणादिक लड़कों को बना के लीला करते हैं। सो केवल बड़े लोगों का उपहास इसमें होता है और कुछ नहीं। क्योंकि श्रीकृष्ण और रामादिकों के जो सत्यभाषणादिक व्यवहार तथा राजनीति का यथावत् पालना और जितेन्द्रियादिक, सब विद्याओं का पढ़ना, इन सत्य व्यवहारों का आचरण तो कुछ नहीं करते किन्तु केवल उपहास की बातों तथा पापों को प्रसिद्ध करते हैं अपनी कुगति के वास्ते।

**दश सूनासमं चक्रं दश चक्रसमो ध्वजः।**
**दशध्वजसमो वेषो दश वेषसमो नृपः॥**

—यह मनु का श्लोक है।

इसका यह अभिप्राय है कि सूना नाम हत्या, सो दश हत्या के तुल्य जीवों को पीड़ा और हनन चक्र से होता है सो तेली वा कुह्मार के व्यवहार में जीवों को दश गुण पीड़ा वा हनन होता है। इससे दशगुण धोबी वा मद्य के निकालने वाले के व्यवहार में सौगुण हत्या होती है तथा इससे दशगुण हत्या वेष में होती है अर्थात् वेष किसको कहते हैं कि किसी का स्वरूप बनाना और नकल करना अर्थात् मूर्त्ति पूजन, रामलीला और रासमण्डलादिक जितने व्यवहार हैं वे सब वेष में ही गिने जाते हैं क्योंकि उनका वेष धारण ही किया जाता है। इससे वेष में हजार हत्या का अपराध है। तथा जो राजा न्याय से पालन नहीं करता और अन्याय करता है, वह दस हजार हत्या का स्वरूप है। इससे वेष बनाना वा बनवाना तथा देखना भी सज्जनों को न चाहिये और इन सब व्यवहारों को छोड़ना चाहिये और अच्छे व्यवहारों को करना चाहिये।

ऐसी इस देश में नष्ट प्रवृत्ति भई है कि कोई ऐसा कहता है मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण और विद्वेषणादिक मैं जानता हूँ। इनसे पूछना चाहिये कि तूं जीवन मरे भये का भी करा सकता है वा नहीं? सो कोई दैवयोग से मर जाता है वा कपट छल से विषादिक दे के मार डालते हैं। फिर कहते हैं कि मेरा पुरश्चरण सिद्ध हो गया। यह बात सब झूठ है। कोई



रोगी होता है उसको बतलाता है कि भूत चढ़ गया है। फिर दूसरा बतलाता है कि इसके ऊपर शनैश्चरादिक ग्रह चढ़े हैं। तीसरा कहता है किसी देवता की खोर है। चौथा कहता है कि किसी का शाप लगा है। ये सब बात मिथ्या हैं।

कोई कहता है कि मैं रसायन बनाता हूँ। और दूसरा कहता है कि मैं पारे की भस्म बनाता हूँ, उसको खा ले तो बुड्ढे का जवान हो जाता है, यह भी मिथ्या ही जानना। और बहुत से पाखण्डी लोग बहुत पुरुष और स्त्रियों से कहते हैं कि जाओ तुमको पुत्र हो जायगा। सो सब तो बन्ध्या होती ही नहीं हैं। जो किसी को पुत्र हो जाता है तब वह पाखण्डी कहता है कि देख! मेरे वर से पुत्र हो गया। औरों से भी कहता है कि मेरे वर से पुत्र हो गया। वह स्त्री और उसका पति भी बकते रहते हैं कि बाबाजी के वर से मुझको पुत्र भया। उनकी बातें सुनके बहुत मूर्ख लोग मोहित होके बाबा जी की पूजा में लग जाते हैं। फिर वह पाखण्डी धन पा के बड़े-बड़े अनर्थ करता है। यह सब बात झूंठ है।

मुद्दाले और मुद्दई इन दोनों से धूर्त्त लोग कह देते हैं कि तुह्मारा विजय होगा सो दोनों का पराजय तो होता नहीं। जिसका विजय होता है, उससे खूब धन लेते हैं कि हमारे पुरश्चरण और वर से तेरा विजय भया है, अन्यथा कभी न होता। फिर बहुत बुद्धिहीन पुरुष इस बात में भी धन नाश करते हैं। कोई कहता है कि जो कुछ होता है सो ईश्वर की इच्छा से ही होता है जैसा चाहता है वैसा करा लेता है और किसी के कुछ करने से होता नहीं। **सबको नचावै राम गोसांई,** ऐसे-ऐसे झूंठ वचन बना लिये हैं।

इनसे पूंछना चाहिये कि जो वह मिथ्याभाषण, चोरी, पर-स्त्री-गमनादिक कराता है तो वह बहुत बुरा है। वह कभी ईश्वर वा श्रेष्ठ नहीं हो सकता। कोई कहता है कि जो कुछ होता है सो प्रारब्ध से ही होता है। इनसे पूंछना चाहिये कि तुम व्यवहार चेष्टा क्यों करते हो? सो पुरुषार्थ में ही सदा चित्त देना चाहिये, अन्यत्र नहीं। बहुत ऐसे-ऐसे बालकों को और स्त्रियों को बहकाते हैं कि वे जन्म तक नहीं सुधर सकते। ऐसा कहते

हैं कि वह माता-पिता तो झूंठे हैं तुम आ जाओ नारायण के शरण। और एक-एक साधु हजार-हजार को मूड़ लेता है और बहका के पतित कर देते हैं। उनका मरण तक कुछ सुकर्म नहीं होता, क्योंकि सुधरे तो तब, जो कुछ विद्या पढ़े और बुद्धि हो। फिर एक घर को छोड़ देते हैं और माता पिता की सेवा भी छोड़ देते हैं। फिर कुटी, मठ और मंदिरों को बनाके हजारहां प्रकार के जाल में फस जाते हैं। उनसे पूंछना चाहिये कि तुमलोगों ने घर और माता पितादिक क्यों छोड़े थे? तब वे कहते हैं कि ऐसा सुख घर में नहीं है। ठीक है कि घर में छप्पर के नीचे रहना पड़ता था। मजूरी मेहनत से चना और जव का आटा भी पेट भर नहीं मिलता था। सो आर्यावर्त्त में अन्धकार पूर्ण है। नित्य मोहनभोग मिलता है और नित्य नये भोग। ऐसा सुख स्त्री का भी गृहाश्रम में नहीं होता। इससे गृहाश्रम में कुछ है नहीं। देखिये कि एक रुपैया कोई मन्दिर में चढ़ाता है, उसको एक आने का प्रसाद देते हैं कभी नहीं देते हैं। परन्तु हम लोगों ने इसको विचार लिया है कि सोलह, पचास, सौ और हजार गुना तक भी इस मन्दिर के दुकानदारी में तथा तीर्थ में होता है। अन्यत्र कैसी ही दुकानदारी करो तो भी ऐसा लाभ नहीं होता। क्योंकि खाना, नित्य नयी स्त्रियाँ और नित्य नाना प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति अन्यत्र कहीं नहीं होती सिवाय मन्दिर, पुराणादिकों की कथा और चेलों के मूड़ने से। इससे आप हजार कहो हमलोग इस आनन्द को छोड़ने वाले हैं नहीं। अच्छा! हमने भी जान लिया है कि जब तक यजमान विद्या और बुद्धियुक्त नहीं होंगे तब तक तुम लोग कभी न छोड़ोगे। परन्तु कभी दैवयोग से विद्या और बुद्धि आर्यावर्त्त में होगी, फिर तुम को और तुह्मारे पाखण्डों को वे सेवक और यजमान ही छोड़ेंगे। तब पीछे झक मार के तुम लोग भी छोड़ देओगे।

ऐसे-ऐसे मिथ्या मत चल गये हैं कि कान को फाड़ के मुद्रा को पहिरने से योगी और मुक्ति होती है। सो इनके मत में मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ दो आचार्य भये हैं। उनने यह मत चलाया। उनको शिव का अवतार और सिद्ध मानते हैं। **नमः शिवाय** उनका मन्त्र है और अपने मत



का **दिग्विजय** भी बना लिया है। और **जलंधर पुराण, हठप्रदीपिका, गोरक्षशतकादिक** बना लिये हैं। फिर कहते हैं ये ग्रन्थ महादेव ने बनाये हैं। उनका अनाचार वाममार्गियों की नांई है क्योंकि जैसे वाममार्गी लोग श्मशान में पुरश्चरण करते हैं तथा मनुष्य का कपाल खाने पीने के वास्ते रखते हैं तथा रजस्वला स्त्री का वस्त्र शिखा वा बाहु में बांध रखते हैं इससे अपने को धन्य मानते हैं और ऐसे-ऐसे प्रमाण मान लेते हैं—

**रजस्वलास्ति पुष्करं चाण्डाली तु स्वयं काशी व्यभिचारिणी तु गङ्गास्यात् पुंश्चली तु कुरुक्षेत्रं यमुना चर्मकारिणी॥**

इत्यादिक वचनों में वे ऐसा मानते हैं कि इन स्त्रियों के साथ समागम करने से इन तीर्थों का फल प्राप्त होता है। फिर वे ऐसे-ऐसे श्लोक कहते हैं कि—

**हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु।**
**दीक्षित** नाम रक्खा है मद्य बेचने वाले का। उसके घर में जो पुरुष निर्भय और निर्लज्ज होके मद्य पीता है फिर वेश्या के घर में जाके उससे समागम करै और वहीं सो जाय उसका नाम **सिद्ध** और **महावीर** रखते हैं। और लज्जादिक आठ पाशों को छोड़ दे तब वह शिव होता है। इसमें ऐसा प्रमाण कहते हैं—

**पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः॥**

अर्थात् जितने व्यभिचारादिक पापकर्म हैं उनके करने में लज्जादिक जब तक करता है तब तक वह **जीव** है। जब निर्लज्जादिक दोषों से युक्त होता है तब सदा **शिव** हो जाता है। देखना चाहिये कि यह कैसी मिथ्या बात उनकी है।

फिर उनने मद्य का नाम **तीर्थ** रक्खा है। मांस का नाम **शुद्धि।** मत्स्य का नाम **तृतीया।** रोटी का नाम **चतुर्थी** और मैथुन का नाम **पंचमी।** जब वे आपस में बात करते हैं कि ले आओ तीर्थ और पीयो। इस वास्ते इनने ऐसे नाम रख लिये हैं कि कोई और न जाने। और जितने वाममार्गी हैं, उनके **कौल, वीर, भैरव, आर्द्र** और **गण**—ये पाँच नाम रख लिये हैं। स्त्रियों के नाम **भगवती, देवी, दुर्गा, काली** इत्यादिक रख लिये हैं।

और जो उनके मत में नहीं हैं, उनका नाम **पशु, कण्टक, शुष्क** और **विमुखादिक** रख लिये हैं। सो केवल मिथ्या जाल उनका है। इसको सज्जन लोग कभी न मानैं। वैसे ही कान फटे नाथों का व्यवहार है क्योंकि वे भी श्मशान में रहते हैं, मनुष्यों का कपाल रखते हैं, वाममार्गियों से वे मिलते हैं इत्यादिक बहुत नष्ट व्यवहार आर्यावर्त्त में चल जाने से देश का श्रेष्ठ व्यवहार नष्ट हो गया और सब देश खराब हो गया।

परन्तु आजकाल अंगरेज के राज्य से कुछ-कुछ सुधरना और सुख भया है। जो अब अच्छे-अच्छे ब्रह्मचर्याश्रमादिक व्यवहार, वेदादिक विद्या और पाखण्ड, पाषाण पूजनादिकों का त्याग करैं तो इनको बहुत सुख हो जाय, क्योंकि राज्य का आजकाल बहुत सुख है धर्म विषय में। जो जैसा चाहै वैसा करै और नाना प्रकार के पुस्तक भी यन्त्रालयों के स्थापने से सुगमता से मिलते हैं। अच्छे-अच्छे मार्ग शुद्ध बन गये हैं। तथा राजा और दरिद्र की भी बात राजघर में सुनी जाती है। कोई किसी कदर जबरदस्ती से पदार्थ नहीं छीन सकता। अनेक प्रकार की पाठशाला विद्या पढ़ने के वास्ते राज प्रेरणा से बनती हैं और बनी भी हैं। उनमें बालकों को यथावत् शिक्षा होती है और पढ़ने से आजीविका भी राजघर में पढ़नेवाले की होती है। किसी का बन्धन वा दण्ड राजघर में नहीं होता। जिसमें जिसकी खुशी होय उसको वह करै अपनी प्रसन्नता से। अत्यन्त देश में मनुष्यों की वृद्धि भई है और पृथिवी भी खेत आदिकों से बहुत हो गई है। वनादिक नहीं रहे हैं लड़ाई बखेड़ा गदर कुछ इस वक्त नहीं होते हैं और व्यवस्था राज प्रबन्ध से सब प्रकार से अच्छी बनी है।

परन्तु कितनी बात हमको अपनी बुद्धि से अच्छी मालूम नहीं देती हैं, उनको प्रकाश करते हैं न जाने वे बड़े बुद्धिमान् हैं उनने इन बातों में गुण समझा होगा, परन्तु मेरी बुद्धि से गुण इन बातों में नहीं देख पड़ते हैं।



इससे इन बातों को मैं लिखता हूँ। एक तो यह बात है कि नोन और पौंन रोटी में जो कर लिया जाता है वह मुझको अच्छा नहीं मालूम देता क्योंकि नोन के विना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता किन्तु सबको नोन का आवश्यक होता है। और वे मजूरी मेहनत से जैसे तैसे निर्वाह करते हैं। उनके ऊपर भी यह नोन का दण्ड तुल्य रहता है। इससे दरिद्रों को क्लेश पहुंचता है। इससे ऐसा होय कि मद्य, अफीम, गांजा, भांग इनके ऊपर चौगुना कर स्थापन होय तो अच्छी बात है क्योंकि नशादिकों का छूटना ही अच्छा है और जो मद्यादिक बिलकुल छूट जायं तो मनुष्यों का बड़ा भाग्य है क्योंकि नशा से किसी को कुछ उपकार नहीं होता। परन्तु रोगनिवृत्ति के वास्ते औषधार्थ तो मद्यादिकों की प्रवृत्ति रहना चाहिये, क्योंकि बहुत से ऐसे रोग हैं कि जिनके मद्यादिक ही निवृत्तिकारक औषध हैं। सो वैद्यकशास्त्र की रीति से उन रोगों की निवृत्ति हो सकती है तो उनको ग्रहण करैं जब तक रोग न छूटै। फिर रोग के छूटने से पीछे मद्यादिकों को कभी ग्रहण न करैं, क्योंकि जितने नशा करनेवाले पदार्थ हैं वे सब बुध्यादिकों के नाशक हैं। इससे इनके ऊपर ही कर लगाना चाहिये और लवणादिकों के ऊपर न चाहिये। पौन रोटी से भी गरीब लोगों को बहुत क्लेश होता है, क्योंकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले आये वा लकड़ी का भार, उनके ऊपर कौड़ियों के लगने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा। इससे पौन रोटी का जो कर स्थापन करना सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं। तथा चोर, डाकू, पर-स्त्री-गामी और जूआ के करने वाले, इनके ऊपर ऐसा दण्ड होना चाहिये कि जिसको देख वा सुनके सब लोगों को भय हो जाय और उन कामों को छोड़ दे, क्योंकि जितने अनर्थ होते हैं, वे सब उनसे ही होते हैं। सो जैसा मनुस्मृति राजधर्म में दण्ड लिखा है वैसा ही करना चाहिये। सब देशों से आर्यावर्तवासियों के ऊपर अवश्य करना चाहिए, क्योंकि आजकाल जैसी आर्यावर्तवासी लोगों की बुद्धि बिगड़ गई है, मत-मतान्तर के भ्रष्ट उपदेश से और मिथ्याचार से, वैसी अन्यत्र नहीं।

जब कोई चोरी करै तब यथावत् निश्चय करके कि इस ने अवश्य

चोरी की है कुत्ते के पंजे की नांई लोहे का चिह्न राजा बना रक्खे, उसको अग्नि में तपाके ललाट के भों के बीच में लगा दे। कुछ बेंत भी उसको मार दे और गधे पै चढ़ाके नगर के बीच में बजार में जूतियां भी लगती जाय और घुमाया करै। फिर उसको कुछ धन-दण्ड दे अथवा थोड़े दिन जहल्खाने रक्खे। वहाँ सूखे चने पाव भर तक खाने को दे और रात भर पिसवावै, न पीसे तो वहाँ भी उसको जूते बैठें और दिवस में भी कठिन काम उससे करवावै, जब तक वह निर्बल न हो जाय। परन्तु ऐसा बहुत दिन न रक्खे जिससे कि मर ही न जाय। फिर उसको दो तीन दिन तक शिक्षा करै कि सुन भाई! तैंने मनुष्य होके ऐसा बुरा काम किया कि तेरे ऊपर ऐसा दण्ड हुआ। हमको भी तेरा दण्ड देख के बड़ा हृदय में दुःख भया। और आप भले आदमी होके व्यवहार करना। फिर ऐसा काम कभी न करना चाहिये अच्छे-अच्छे काम करना चाहिये, जिससे राजघर में और सभा में तथा प्रजा में तुमलोगों की प्रतिष्ठा होय और आप लोगों के ऊपर ऐसा कठिन जो दण्ड दिखा गया सो केवल आप लोगों के ऊपर नहीं, किन्तु सब संसार के ऊपर यह दण्ड भया है जिससे इस दण्ड को देख वा सुनके सब लोग भय करैं और फिर ऐसा काम कोई न करै। ऐसी शिक्षा, जितने बुरे कर्म करने वाले हैं, उनको दण्ड के पीछे अवश्य करनी चाहिये। क्योंकि दण्ड का तो सदा उसको स्मरण रहै और हठी वा विरोधी न बन जाय, इस वास्ते शिक्षा अवश्य करना चाहिये। केवल शिक्षा वा केवल अत्यन्त दण्ड सुधर नहीं सकते, किन्तु दोनों से मनुष्य सुधर सकते हैं।

फिर भी वही चोरी करै तो उसका हाथ काट डालना चाहिये। फिर भी वह न मानै तो उसको बुरी हवाले से मार डालना चाहिये। किसी दिन उसकी आंखें निकाल डालै, किसी दिन कान, किसी दिन नाक और सब जगह में घुमाना चाहिये कि जिस को सब देखैं। फिर बहुत मनुष्यों के सामने उसको कुत्ते से चिथवा डालें। ऐसा दण्ड एक पुरुष को होय तो उसके राज भर में कोई चोरी को इच्छा भी न करेगा और राजा को भी इनके प्रबन्ध में बड़ा आनन्द होगा, नहीं तो बड़े प्रबन्ध में क्लेश होते हैं।



साधारण दण्ड से वे कभी सूधे होंगे नहीं। डाकुओं को भी चोर की नांई दण्ड देना चाहिये और जुआ करनेवालों को एक बार करने से ही बुरी हवाल से जैसाकि चोरी का लिखा, गधे पर चढ़ानादिक सब करके फिर कुत्ते से चिथवा डालना चाहिये। क्योंकि चोरी, पर-स्त्री-गमन और जितने बुरे कर्म हैं वे जुआरी से ही होते हैं। इससे उनके सहाय करनेवालों को भी ऐसा दण्ड देना चाहिये। क्योंकि जितने लड़ाई, दंगा, चोरी, पर-स्त्री-गमनादिक, इनसे ही उत्पन्न होते हैं। इससे इनके ऊपर राजा दण्ड देने में कुछ थोड़ा भी आलस्य न करै, सदा तत्पर रहै।

महाभारत में एक दृष्टान्त लिखा है कि सोने, चांदी और अच्छे-अच्छे पदार्थ धरे रहैं, उसको कोई न स्पर्श करै, तब जानना कि राजा है और धनाढ्य लोग लाखहां रुपैयों की दुकान का किवाड़ कभी नहीं लगावै और रात-दिन कोई किसी का पदार्थ न उठावै, तब जानना कि राजा है धर्मात्मा। इस वास्ते ऐसा उग्र दण्ड चाहिये कि सब मनुष्य न्याय से चलैं अन्याय से कोई नहीं। जब स्त्री वा पुरुष व्यभिचार करैं अर्थात् परपुरुष से स्त्रीगमन करै, पर-स्त्री से पुरुष, जब उनका ठीक-ठीक निश्चय हो जाय तब स्त्री के ललाट में अर्थात् भों के बीच में पुरुष के लिंगेन्द्रिय का चिह्न लोहे का अग्नि में तपाके लगा दे तथा पुरुष के ललाट में स्त्री के इन्द्रिय का चिह्न लगा दे। फिर जिसको सब देखा करैं। फिर उनको भी खूब फजीहत करैं और कुछ धन दण्ड भी करैं। पीछे उसी प्रकार से शिक्षा भी करैं सबको। फिर भी वे न मानैं और ऐसा काम करैं, तब बहुत स्त्रियों के सामने उस स्त्री को कुत्तों से चिथवा डाले और पुरुष को बहुत पुरुषों के सामने लोहे के तख्त को अग्नि से तपाके सोवा दे उसके ऊपर। फिर उसके ऊपर घुमावै। उसी पर्यंक के ऊपर उसका मरण हो जाय। फिर कोई पुरुष व्यभिचार कभी न करेगा ऐसा दण्ड देख के वा सुन के।

और सरकार कागद को बेचती है और बहुत-सा कागजों पर धन बढ़ा दिया है। इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुँचता है, सो यह बात राजा को करनी उचित नहीं, क्योंकि इसके होने से बहुत गरीब लोग दुःख पाके बैठे रहते हैं। कचहरी में विना धन से कुछ बात होती नहीं, इससे

कागजों के ऊपर जो बहुत धन लगाना है, सो मुझको अच्छा मालूम नहीं देता। इसको छोड़ने से ही प्रजा में आनन्द होता है, क्योंकि थाने से लेके आगे-आगे धन का ही खर्च देख पड़ता है, न्याय होना तो पीछे। फिर नाना प्रकार के लोग साक्षी झूंठ सच बना लेते हैं। यहाँ तक कि सत्तू खाने को दे देओ और झूंठ गवाही हजार वक्त देवा देओ। जो जैसा मनु में दण्ड लिखा है कि वैसा दण्ड चले तो खाने पीने के वास्ते झूंठी साक्षी देने को कोई तैयार नहीं होय।

**अवाङ् नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते॥**

इसका यह अभिप्राय है कि जब यह निश्चय हो जाय कि इसने झूंठ साक्षी दी, तब उसकी जीभ कचहरी के बीच में काट ले, वही अवाक् नाम जीभ रहित जो नरक भोग, उसको प्रत्यक्ष होय, क्योंकि राजा प्रत्यक्ष न्यायकर्ता है, उसी वक्त उसको प्रत्यक्ष ही फल होना चाहिये।

और जितने अमात्य, विचारपति राजघर में होवैं उनके ऊपर भी कुछ दण्ड व्यवस्था रखनी चाहिये, क्योंकि वे भी अत्यन्त सच झूंठ के विचार में तत्पर होके न्याय ही करने लगें। देखना चाहिये कि एक के यहाँ अर्जी पत्र दिया, उसके ऊपर विचारपति ने विचार करके अपनी बुद्धि और कानून की रीति से एक की जीत की और दूसरे का पराजय। जिसका पराजय भया, उसने उसके ऊपर जो हाकिम होता है उसके पास फिर अपील करी। सो प्राय: जिसका प्रथम विजय भया था उसका दूसरे स्थान में पराजय होता है, और जिसका पराजय होता है, उसका विजय। फिर ऐसे ही जब तक धन नहीं चूकता दोनों का, तब तक विलायत तक लड़ते ही चले जाते हैं। प्राय: रहीस लोग इस बात से हठ के मारे बिगड़ जाते हैं। इससे क्या चाहिए कि विचार करने वाले के ऊपर भी दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिये जिससे वे अत्यन्त विचार करके न्याय ही करैं। ऐसा आलस्य न करैं कि जैसा हमारी बुद्धि में आया वैसा कर दिया, तुमको इच्छा होय, तो तुम जाओ अपील कर देओ। ऐसी बातों से विचारपति भी आलस्य में आ जाते हैं। और विचारपति की अत्यन्त परीक्षा करनी चाहिये कि अधर्म से डरते होंय और विद्या बुद्धि से युक्त



होंय। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादिक दोष जिनमें न होंय और अन्तर्यामी जो सबका परमेश्वर उससे ही जिनको भय होय और से नहीं। सो पक्षपात कभी न करैं किसी प्रकार से। तब उस राजा की प्रजा को सुख हो सकता है अन्यथा नहीं। और पुलिस का जो दरजा है, उसमें अत्यन्त भद्रपुरुषों को रखना चाहिये, क्योंकि प्रथम स्थान न्याय का यही है। इससे ही आगे प्राय: वाद-विवाद के व्यवहार चलते हैं। इस स्थान में जो पक्षपात से अनर्थ लिखा पढ़ा जायगा सो आगे भी अन्यथा-अन्यथा प्राय: लिखा पढ़ा जायगा और अन्यथा व्यवहार भी प्राय: हो जायगा। इससे पुलीस में अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुषों को रखना चाहिये। अथवा पहिले जैसे चौकीदार महल्ले-महल्ले में एक-एक रहता था उससे बहुधा अन्याय नहीं होता था। जबसे पुलिस का प्रबन्ध भया है, तब से बहुधा अन्यथा व्यवहार ही सुनने में आता है।

और गाय, बैल, भैंसी, छेरी और भेंड़ी आदिक मारे जाते हैं, इससे प्रजा को बहुत क्लेश प्राप्त होता है और अनेक पदार्थों की हानि भी होती है, क्योंकि एक गैया दस १० सेर दूध देती है, कोई ८ सेर, छ: ६ सेर, पान ५ सेर और दो २ सेर तक। उसके मध्य छ: ६ सेर नित्य दूध गिना जाए। कोई १० मास तक दूध देती है, कोई छह मास तक, उसका मध्यस्थ आठ मास तक गिना जाता है। सो एक मास भर में सवा चार मन दूध होता है। उसमें चावल डाल के चीनी भी डाल दें तो सौ पुरुष तृप्त हो सकते हैं। जो ऐसे ही पीये तो ८० पुरुष तृप्त हो जायेंगे। और ८०० वा ६४०० पुरुष तृप्त हो सकते हैं। कोई गाय १५ दफे बियाती है, कोई दस दफे बियाती है। उसका हमने १२ वक्त रख लिये। सो ९६०० सै पुरुष तृप्त हो सकते हैं। फिर उनसे बछड़े और बछियाँ बढ़ेंगे। उनसे बहुत बैल और गाय बढ़ेंगी। एक गाय से लाख मनुष्यों का पालन हो सकता है। उसको मार के माँस से ८० पुरुष तृप्त हो सकते हैं। फिर दूध और पशुओं की उत्पत्ति का मूल ही नष्ट हो जाता है। जो बैल आर्यावर्त्त में पांच रुपैयों से आता था सो अब ३० में भी नहीं आता। और कुछ-कुछ गाँव और नगर के पास पशुओं के चरने के वास्ते उसकी सीमा में भूमि रखनी चाहिये,

जिसमें कि वे पशु चरैं। जैसी दुग्धादिक से मनुष्य के शरीर की पुष्टि होती है वैसी सूखे अन्नादिकों से नहीं होती और बुद्धि भी नहीं बढ़ती। इससे राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिये कि जिन पशुओं से मनुष्य के व्यवहार सिद्ध होते हैं और उपकार होता है वे कभी न मारे जांय। ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिससे सब मनुष्यों का सुख होय। वैसा ही प्रजास्थ पुरुषों को भी करना उचित है। सो राजा से प्रजा जिससे प्रसन्न रहे और प्रजा से राजा प्रसन्न रहै यही बात करनी सबको उचित है।

देखना चाहिये कि महाभारत में सगर राजा की एक कथा लिखी है उसका एक पुत्र असमंजा नाम था। उसको अत्यन्त शिक्षा की गई परन्तु उसने अच्छा आचार वा विद्या ग्रहण नहीं की और प्रमाद में ही चित्त देता था। सो उसकी युवावस्था भी हो गई परन्तु उसको शिक्षा कुछ न लगी। राजादिक श्रेष्ठ पुरुषों को उसके ऊपर प्रसन्नता नहीं भई। फिर उसका विवाह भी करा दिया। एक दिन सर्जू में असमंजा स्नान के लिये गया था। वहाँ प्रजा के बालक आठ-आठ दश-दश बरस के जल में स्नान करते थे और क्रीड़ा भी करते थे। सो उनमें से एक बालक बाहर निकला, उसको पकड़ के असमंजा ने गहिरे जल में फेंक दिया। सो बालक डूबने लगा, तब तक कोई प्रजास्थ पुरुष ने बालक को पकड़ लिया। उसके शरीर में जल प्रविष्ट होने से वह मूर्छित हो गया। उसकी दशा देख के असमंजा बहुत प्रसन्न भया और हंसके घर को चला गया। कोई बालक उसके पिता के पास गया और कहा कि तुम्हारे बालक की यह दशा है। राजा के पुत्र ने कर दी। सुनके उसकी माता, पिता और सब कुटुंब के लोग दुःखी भये। उसको देख के फिर उस बालक को उठा के जहाँ सगर राजा की सभा लगी थी वहाँ को चले। राजा सभा के बीच में सिंहासन पै बैठे थे। सो उनको आते दूर से देख के झट उठ के उनके पास चले गये और पूंछा कि इस बालक को क्या भया? तब उसकी माता रोने लगी। राजा ने देख के बहुत उनको धैर्य दिया कि तुम रोओ मत, बात कह देओ कि क्या भया। तब बालक का पिता बोला कि हमारे बड़े भाग्य हैं कि आपके जैसे राजा हमलोग के ऊपर हैं। दूर से देख के प्रजा के ऊपर कृपा कर के पूंछना



और दौड़ के आना। यह बड़ा प्रजा का भाग्य है, इस प्रकार का राजा होना। फिर राजा ने पूंछा कि तुम अपनी बात कहो। तब उसने राजा को कहा कि एक तो आप हैं और एक आपका पुत्र है जो कि अपने हाथ से ही प्रजा को मारने लगा और जैसा भया था, वैसा सत्य-सत्य हाल राजा से कह दिया तब राजा ने वैद्यों को बोला के उसका जल निकलवा डाला और ओषधों से उसी वक्त स्वस्थ बालक हो गया। फिर सभा के बीच में बालक, उसकी माता, पिता और जिसने बालक निकाला था वह भी वहाँ था। फिर राजा ने सिपाहियों को आज्ञा दी कि असमंजा की मुसकें चढ़ा के ले आओ। सिपाही लोग गये और वैसा ही उसको बांध के ले आये। असमंजा की स्त्री भी संग-संग चली आई और सभा में खड़े कर दिये। राजा ने पुत्र की स्त्री से पूछा कि तू इसके साथ जाने में प्रसन्न है वा नहीं? तब उसने कहा कि अब जो दुःख वा सुख हो सो होय, परन्तु मेरे अभाग्य से ऐसा पति मिला सो मैं साथ ही रहूंगी, पृथक् नहीं। तब राजा ने असमंजा से कहा कि तेरा कुछ भाग्य अच्छा था कि यह बालक मरा नहीं। जो यह मर जाता तो तुझको बुरे हवाल से चोर की नांई मैं मार डालता। परन्तु तुझको मैं मरण तक वनवास देता हूँ। सो तूं कभी गांव में वा नगर में अथवा मनुष्यों के पास खड़ा रहा, वा गया, तो तुझ को चोर की नांई मार डालेंगे। इससे तूं ऐसे वन में जाके रह कि जहाँ मनुष्य का दर्शन भी न होय। सिपाहियों से हुकुम दे दिया कि जाओ तुम घोर वन में इन दोनों को छोड़ आओ। उसको न वस्त्र दिया अच्छे-अच्छे, न सवारी दी, न धन दिये, किन्तु जैसे सभा में दोनों खेड़े थे, वैसे ही छोड़ आये। फिर वे वन में रहे और उन दोनों से ही वन में पुत्र भया। उसकी स्त्री अच्छी थी। सो अपने पास ही बालक को रक्खा और शिक्षा भी की। जब पांच वर्ष का भया तब ऋषियों के पास पुत्र को वह स्त्री रख आई और ऋषियों से कहा कि महाराज! यह आपका ही बालक है। जैसे यह अच्छा बने, वैसा कीजिये। तब ऋषि लोग बहुत प्रसन्न होके उसको रक्खा और कहा कि इसको अच्छी प्रकार से शिक्षा की जायगी क्योंकि यह सगर का पौत्र है। फिर स्त्री चली गई अपने स्थान पर। और ऋषि लोगों ने उस बालक के

यथावत् संस्कार किये, विद्या पढ़ाई और सब प्रकार की शिक्षा भी की और उसने यथावत् ग्रहण की। जब वह ३६ बरस का हो गया तब उसको लेके सगर राजा के पास ऋषि लोग गये और कहा कि यह आप का पौत्र है। इसकी परीक्षा कीजिये। सो राजा ने उसकी परीक्षा की और प्रजास्थ श्रेष्ठ पुरुषों ने भी। सो सब गुण और विद्या में योग्य ही ठहरा। तब प्रजास्थ पुरुषों ने राजा से कहा कि आसमंजस जो आपका पौत्र, सो राजा होने के योग्य है। तब राजा ने कहा कि सब बुद्धिमान् प्रजास्थ जो श्रेष्ठ पुरुष उनकी प्रसन्नता और सम्मति होय, तो इसका राज्याभिषेक हो जाय। फिर सब श्रेष्ठ लोगों ने सम्मति दी और उसका राज्यभिषेक भी हो गया, क्योंकि सगर राजा अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। राज्य कार्य में बहुत परिश्रम पड़ता था। सो सब अधिकार उसके ऊपर दे दिये, परन्तु अपने भी जितना हो सकता था, उतना करते थे। राजा ऐसा ही होना चाहिये।

एक भरत राजा था, जिसके नाम से इस देश का भरत खण्ड नाम रक्खा गया है। उसके भी नव पुत्र थे, सो २५ वर्ष के ऊपर सब हो गये थे, परन्तु मूर्ख और प्रमादी थे। राजा ने और प्रजास्थ पुरुषों ने विचार किया कि इनमें से एक भी राजा होने के योग्य नहीं। सो भरत राजा ने इश्तिहार करके पुरुष और स्त्री लोगों को बोलाया, जो प्रतिष्ठित राजा और प्रजास्थ थे। सो एक मैदान में समाज स्थान बनाया। उसके बीच में एक मचान भी गाड़ दिया। सो जब सब लोग एक दिन इकट्ठे भये, परन्तु किसी को विदित न भया कि राजा क्या करेगा और क्या कहेगा। फिर मचान के ऊपर राजा चढ़ के सबसे कहा कि जिन राजा अथवा प्रजास्थ रईस लोगों का पुत्र इस प्रकार का दुष्ट होय, उसको ऐसा ही दण्ड देना उचित है जो कि इस वक्त हम अपने पुत्रों को देंगे। सो सदा सब सज्जन लोग इस नीति को मानैं और करैं। फिर मंचान से उतरे और नव पुत्र भी बीच में खड़े थे। सब समाज वाले देख भी रहे थे और उनकी माता भी। सो सबके सामने खड्ग हाथ में लेके नवों का सिर काट के और मंचान के ऊपर बांध दिये। फिर भी सबसे कहा कि जो किसी का पुत्र ऐसा दुष्ट होय, उसको ऐसा ही दण्ड देना चाहिये, क्योंकि जो हम इनका सिर न



काटते, तो ये हमारे पीछे आपस में लड़ते राज्य का नाश करते और धर्म की मर्यादा को तोड़ डालते। इससे राजपुत्र वा प्रजास्थ जो श्रेष्ठ धनाढ्य लोग उनको ऐसा ही करना उचित है, अन्यथा राज्य, धन और धर्म सब नष्ट हो जायेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

देखना चाहिये कि आर्यावर्त्त देश से ऐसे-ऐसे राजा और प्रजास्थ श्रेष्ठ पुरुष होते थे। सो इस वक्त आर्यावर्त्त देश में ऐसे भ्रष्टचार हो गये हैं कि जिनकी संख्या भी नहीं हो सकती। ऐसा सर्वत्र भूगोल में देश कोई नहीं, ऐसा श्रेष्ठ आचार भी किसी देश में नहीं था, परन्तु इस वक्त पाषाणादिक मूर्त्ति पूजनादिक पाखण्डों से, चक्रांकितादिक सम्प्रदायों के वाद-विवादों से भागवतादिक ग्रन्थों के प्रचार से, ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या के छोड़ने से ऐसा देश बिगड़ा है कि भूगोल में किसी देश भी नहीं, जैसी कि दुर्दशा महाभारत के युद्ध के पीछे आर्यावर्त्त देश की भई है। सो आजकाल अंगरेज के राज्य से कुछ-कुछ सुख आर्यावर्त्त देश में भया है। जो इस वक्त वेदादिक पढ़ने लगें, ब्रह्मचर्याश्रम चालीस वर्ष तक करें, कन्या और बालक सब श्रेष्ठ शिक्षा और विद्या वाले होवैं, इन मत-मतान्तरों के वाद विवाद आग्रहों को छोड़ैं, सत्य धर्म और परमेश्वर की उपासना में तत्पर होवैं, तो इस देश की उन्नति और सुख हो सकता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि विना श्रेष्ठ व्ययवहार विद्यादिक गुणों से सुख नहीं होता।

आजकाल जो कोई राजा, जमींदार वा धनाढ्य होता है, उनके पास मत-मतान्तर के पुरुष और खुशामदी लोग बहुत रहते हैं। वे बुद्धि, धन और धर्म नष्ट कर देते हैं। इससे सज्जन लोग इन बातों को विचार के समझ लें और करने के व्यवहारों को करैं, अन्यथा नहीं।

एक ब्राह्मसमाज मत चला है। वे ऐसा मानते हैं कि नित्य परमेश्वर सृष्टि करर्ता है, अर्थात् जीवादिक नये-नये नित्य उत्पन्न करता है। जीव पदार्थ ऐसा है कि जड़ और चेतन मिला भया उत्पन्न ईश्वर करता है। जब वह शरीर धारण करता है तब जडांश से शरीर बनता है और चेतनांश जो है सो आत्मा रहता है। जब शरीर छूटता है तब केवल चेतन और मन आदिक पदार्थ रहते हैं। फिर जन्म दूसरा नहीं होता किन्तु पापों का भोग

पश्चात्ताप से कर लेता है ऐसे ही क्रम से अनन्त उन्नति को प्राप्त होता है।

यह बात उनकी युक्ति और विचार से विरुद्ध है क्योंकि जो नित्य-नित्य नयी सृष्टि ईश्वर करता तो सूर्य चन्द्र पृथिव्यादिक पदार्थों की भी सृष्टि नयी-नयी देखने में आती। जैसे पृथिव्यादिक की सृष्टि नयी-नयी देखने में नहीं आती, ऐसे जीव की सृष्टि भी ईश्वर ने एक ही बार की है। सो केवल कल्पना मात्र से ऐसा कथन वे लोग कहते हैं, किन्तु सिद्धान्त बात यह नहीं है। इससे ईश्वर में नित्य उत्पत्ति का विक्षेप दोष आवेगा और सर्वशक्तिमत्त्वादिक गुण भी ईश्वर में नहीं रहेंगे। क्योंकि जैसे जीव क्रम से शिल्प विद्या से पदार्थों की रचना करता है, वैसा ईश्वर भी हो जायगा। इससे यह बात सज्जनों के मानने के योग्य नहीं।

और एक-जन्मवाद जो है, सो भी विचार विरुद्ध है, क्योंकि अनेक जन्म होते हैं सो प्रथम पूर्वार्द्ध में विचार किया है वहीं देख लेना। और पश्चात्ताप से पापों की निवृत्ति मानना, यह भी युक्ति विरुद्ध है सो प्रथम लिख दिया है कि पश्चात्ताप जो होता है सो किये भये पापों का निवर्त्तक कभी नहीं होता, किन्तु आगे कर्त्तव्य पापों का निवर्त्तक होता है। विना शरीर से पाप-पुण्यों का फल भोग कभी नहीं हो सकता और विना शरीर के जीव रहता ही नहीं। जो मन में पश्चात्ताप से पापों का फल जीव भोक्ता तो जिस-जिस देश, काल और जिन जीवों के साथ पाप और पुण्य किये थे, उनका भी मन से स्मरण होता। और जो स्मरण होता तो फिर भी जीव मोह के होने से वहीं अपने पुत्र स्त्र्यादिक सम्बन्धियों के पास आ जाता, सो कोई आता नहीं। इससे यह बात भी उनकी प्रमाण विरुद्ध है।

और वर्णाश्रम की जो सत्यव्यवस्था शास्त्र की रीति से, उसका छेदन करना है सो सब मनुष्यों के अनुपकार का कर्म है, यह तृतीय समुल्लास में विस्तार से लिख दिया है, वहीं देख लेना। यज्ञोपवीत केवल विद्यादिक गुणों का और अधिकार का चिह्न है, उसका तोड़ना साहस से, इससे भी अत्यन्त मनुष्यों का उपकार नहीं होता, किन्तु विद्यादिक गुणों से वर्णाश्रम का स्थापन करना शास्त्र की रीति से, इससे ही मनुष्यों का उपकार हो सकता है। संसाराचार की रीति से नहीं। वे ब्राह्मणादिक वर्ण वाची जो



शब्द हैं, उनको जातिवाची ब्राह्मण लोग जान के निषेध करते हैं। सो केवल उन को भ्रम है किन्तु शास्त्र की रीति से मनुष्यादिक जाति वाचक शब्द हैं, सो मनुष्य, पशु, वृक्षादिक की एकता कोई नहीं कर सकता। सोई मनुष्यादिक शब्द जाति वाचक शास्त्र में लिखे हैं, सो सत्य ही है।

और खाने पीने से धर्म किसी का बढ़ता नहीं और न किसी का घटता। इसमें भी अत्यन्त जो आग्रह करना कि सबके साथ खाना अथवा किसी के साथ नहीं खाना वही धर्म मान लेना, यह भी अनुचित बात है। किन्तु नष्टभ्रष्ट संस्कार हीन पदार्थों के खाने और पीने से मनुष्य का अनुपकार होता है, अन्यत्र नहीं।

और वार्षिक उत्सवादिकों से मेला करना इसमें भी हमको अत्यन्त श्रेष्ठ गुण मालूम नहीं देता क्योंकि इसमें मनुष्य की बुद्धि बहिर्मुख हो जाती है और धन भी अत्यन्त खर्च होता है।

केवल अंगरेजी पढ़ने से मंतोष कर लेना यह भी अच्छी बात उनकी नहीं हैं, किन्तु सब प्रकार के पुस्तक पढ़ना चाहिये। परन्तु जब तक वेदादिक सनातन सत्य संस्कृत पुस्तकों को न पढ़ेंगे तब तक परमेश्वर, धर्म, अधर्म, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य विषयों को यथावत् नहीं जानेंगे इससे सब पुरुषार्थ से इन वेदादिकों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये, इससे सब विघ्न नष्ट हो जायेंगे, अन्यथा नहीं। और हमको ऐसा मालूम देता है कि थोड़े ही दिनों से ब्राह्मसमाज के दो तीन भेद चल गये हैं और उनका चित्त भी परस्पर प्रसन्न नहीं है किन्तु ईर्ष्या ही एक से दूसरे की होती है। जैसे वैराग्यादिकों में अनेक भेदों के होने से अनेक प्रमाद और विरुद्ध व्यवहार हो गये हैं, ऐसा उनका भी कुछ काल में हो जायेगा। क्योंकि विरोध से ही विरुद्ध व्यवहार मनुष्यों के होते हैं अन्यथा नहीं। सो वेदादिक सत्यशास्त्रों को ऋषि मुनियों के व्याख्यान सनातन रीति से अर्थ सहित पढ़ें तो अत्यन्त उपकार हो जाय, नहीं तो आगे-आगे अन्यथा व्यवहार हो जायगा। ईसा, मूसा, महम्मद, नानक, चैतन्य प्रभृतियों को ही साधु मानना और जैगीषव्य पंचशिखा, आसुरि ऋषि और मुनियों को नहीं गिनना यह भी उनकी भूल है। अन्य बात जो परमेश्वर की उपासनादिक

वे सब उन की अच्छी हैं।

यह कुछ थोड़ा-सा आर्यावर्त देश के विषय में लिखा गया। इससे भिन्न भी बहुत बातें हैं, इनको सज्जन लोग विचार लेवैं।

इसके आगे जैन मत के विषय में लिखा जायेगा॥

**इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविरचिते एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ११॥**

### द्वादश समुल्लासः

# अथ जैनमतविषयान् व्याख्यास्यामः॥

सब सम्प्रदायों से जैन का मत प्रथम चला है उसको साढ़े तीन हजार वर्ष अनुमान से भये हैं सो उनके २४ तीर्थङ्कर अर्थात् आचार्य भये हैं। जैनेन्द्र, परशनाथ, ऋषभदेव, गौतम और बौद्धादिक उनके नाम हैं। उनने अहिंसा धर्म परम माना है। इस विषय में वे ऐसा कहते हैं कि एक बिन्दु जल में अथवा एक अन्न के कण में असंख्यात जीव हैं। उन जीवों के पांख आ जाय तो एक बिन्दु और एक कण के जीव ब्रह्माण्ड में न समावैं, इतने हैं। इससे मुख के ऊपर कपड़ा बांध रखते हैं। जल को बहुत छानते हैं और सब पदार्थों को शुद्ध रखते हैं और ईश्वर को नहीं मानते। ऐसा कहते हैं कि जगत् स्वभाव से सनातन है। इसका कर्त्ता कोई नहीं। जब जीव कर्म बन्धन से छूट जाता है और सिद्ध होता है तब उसका नाम केवली रखते हैं और उसी को ईश्वर मानते हैं। अनादि ईश्वर कोई नहीं है, किन्तु तपोबल से जीव ईश्वर रूप हो जाता है। जगत् का कर्त्ता कोई नहीं, जगत् अनादि है। जैसे घास, वृक्ष, पाषाणादिक पर्वत, वनादिकों में आपसे आप



ही हो जाते हैं, ऐसे पृथिव्यादिक भूत भी आप से आप बन जाते हैं। परमाणु का नाम पुद्गल रक्खा है, सो पृथिव्यादिकों के पुद्गल मानते हैं। जब प्रलय होता है तब पुद्गल जुदे-जुदे हो जाते हैं और जब वे मिलते हैं तब पृथिव्यादिक स्थूल भूत बन जाते हैं। और जीव कर्म योग से अपना-अपना शरीर धारण कर लेते हैं। जैसा जो कर्म करता है, उसको वैसा फल मिलता है। आकाश में चौदह राज्य मानते हैं, उनके ऊपर जो पद्म शिला उसको मोक्ष स्थान मानते हैं। जब शुभ कर्म जीव करता है तब उन कर्मों के वेग से चौदह राज्यों को उल्लंघन करके पद्म शिला के ऊपर विराजमान होते हैं। चराचर को अपनी ज्ञानदृष्टि से देखते हैं। फिर संसार दुःख जन्म मरण में नहीं आते, वहीं आनन्द करते हैं। ऐसी मुक्ति जैन लोग मानते हैं। और ऐसा भी कहते हैं कि धर्म जो है सो जैन का ही है और सब हिंसक हैं तथा अधर्मी, क्योंकि जो हिंसा करते हैं, वे धर्मात्मा नहीं। जो यज्ञ में पशु मारते हैं और ऐसी-ऐसी बातें कहते हैं कि यज्ञ में जो पशु मारा जाता है सो स्वर्ग को जाता होय, तो अपना पुत्र वा पिता को ही मार डालैं स्वर्ग को जाने के वास्ते। ऐसे-ऐसे श्लोक उनने बना रक्खे हैं—**त्रयो वेदस्य कर्त्तारो धूर्त्तभण्ड निशाचराः।**

इसका यह अभिप्राय है कि ईश्वर विषय की जितनी बात वेद में हैं, वह धूर्त्त की बनाई है। जितनी फल स्तुति अर्थात् इस यज्ञ को करैं तो स्वर्ग में जाय, यह बात भण्डों ने बना रक्खी हैं। और जितना मांस भक्षण, पशु मारने का विधि है वेद में, सो राक्षसों ने बनाया है। क्योंकि मांस भोजन राक्षसों को बड़ा प्रिय है सब बात अपने खाने पीने और जीविका के वास्ते लोगों ने बनाई है। और जैनमत है सो सनातन है, और यही धर्म है इसके विना किसी की मुक्ति वा सुख कभी नहीं हो सकता। ऐसी-ऐसी वे बातें कहते हैं।

इनसे पूंछना चाहिए कि हिंसा तुम लोग किसको कहते हो? जो वे कहें कि किसी जीव को पीड़ा देना सो तो विना पीड़ा के किसी प्राणी का कुछ व्यवहार सिद्ध नहीं होता, क्योंकि आप लोगों के मत में ही लिखा है कि एक बिन्दु में असंख्यात जीव हैं। उसको लाख वक्त छानैं,

तो भी वे जीव पृथक् नहीं हो सकते। फिर जलपान अवश्य किया जाता है तथा भोजनादिक व्यवहार और नेत्रादिकों की चेष्टा अवश्य की जाती है। फिर तुम्हारा अहिंसा धर्म तो नहीं बना।

**प्रश्न**—जितने जीव बचाये जाते हैं, उतने बचाते हैं, जिनको हमलोग देखते ही नहीं, उनकी पीड़ा में हम लोगों को अपराध नहीं।

**उत्तर**—ऐसा व्यवहार सब मनुष्यों का है, जो मांसाहारी हैं, वे भी अश्वादिक पशुओं को बचा लेते हैं। वैसे तुमलोग भी जिन जीवों से कुछ व्यवहार का प्रयोजन नहीं है। जहाँ अपना प्रयोजन है वहाँ मनुष्यादिकों को नहीं बचाते हो, फिर तुम्हारी अहिंसा नहीं रही।

**प्रश्न**—मनुष्यादिकों को ज्ञान है। ज्ञान से वे अपराध करते हैं, इससे उनको पीड़ा देने में कुछ अपराध नहीं। वे पश्वादिक जीव विना अपराध हैं, उनको पीड़ा देना उचित नहीं।

**उत्तर**—यह बात तुम लोगों की विरुद्ध है, क्योंकि ज्ञान वालों को पीड़ा देना और ज्ञानहीन पशुओं को पीड़ा न देना, यह बात विचार शून्य पुरुषों की है, क्योंकि जितने प्राणी देह धारी हैं, उनमें से मनुष्य अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। सो मनुष्यों का उपकार करना और पीड़ा का न करना सबको आवश्यक है। हिंसा नाम है वैर का। सो योगशास्त्र व्यास जी के भाष्य में लिखा है—

**सर्वथा सर्वदा सर्वभूतेष्वनभिद्रोहः अहिंसा॥**

यह अहिंसा धर्म का लक्षण है। इसका यह अभिप्राय है कि सब प्रकार से सब काल में सब भूतों में अनभिद्रोह अर्थात् वैर का जो त्याग, सो कहाता है अहिंसा। सो आपलोग अपने सम्प्रदाय में तो प्रीति करते हो और अन्य सम्प्रदायों में द्वेष तथा वेदादिक सत्यशास्त्र तथा ईश्वर पर्यन्त आप लोगों को वैर और द्वेष है। फिर अहिंसा धर्म आप लोगों का कहने मात्र है। अपने सम्प्रदायों के पुस्तक तथा बात भी अन्य पुरुषों के पास प्रकाशित नहीं करते हो। यह भी आप लोगों में हिंसा सिद्ध है। ईश्वर को आप लोग नहीं मानते हैं, यह आप लोगों की बड़ी भूल है। और स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति का मानना यह भी तुम लोगों की झूठ बात है। इसका



उत्तर ईश्वर और जगत् की उत्पत्ति के विषय में देख लेना।

प्रथम जीव का होना और साधनों का करना, पश्चात् वह सिद्ध होगा। जब जीवादिक जगत् विना कर्त्ता से उत्पन्न ही नहीं होता और प्रत्यक्ष जगत् में नियमों के देखने से सनातन जगत् का नियन्ता ईश्वर अवश्य है। फिर उसको ईश्वर नहीं मानना और साधनों से सिद्ध जो भया उसी को ही ईश्वर मानना, यह बात आप लोगों को सब झूठ है। आप से आप जीव शरीर धारण कर लेते हैं, तो शरीर धारण में जीव स्वतन्त्र ठहरे। फिर छोड़ क्यों देते हैं। क्योंकि स्वाधीनता से शरीर धारण कर लेते हैं फिर कभी उस शरीर को जीव छोड़ेगा ही नहीं। जो आप कहें कि कर्मों के प्रभाव से शरीर का होना और छोड़ना भी होता है तो पापों के फल जीव कभी नहीं ग्रहण करेगा, क्योंकि दुःख की इच्छा किसी को नहीं होती, सदा सुख की इच्छा ही रहती है। जब सनातन न्यायकारी ईश्वर कर्म फल की व्यवस्था का करने वाला न होगा तो यह बात कभी न बनेगी।

आकाश में चौदह राज्य तथा पद्मशिला मुक्ति का स्थान मानना, यह बात प्रमाण और युक्ति से विरुद्ध है, केवल कपोल कल्पना मात्र है। और उसके ऊपर बैठ के चराचर का देखना और कर्म वेग से वहाँ चला जाना, यह भी बात आप लोगों की असत्य है। यज्ञों के विषयों में आप कुतर्क करते हैं, सो पदार्थ विद्या के नहीं होने से। क्योंकि घृत, दूध और [सुगन्ध्यादिकों] के यथावत् गुण जानते और यज्ञ का उपकार कि यज्ञ में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है उनको जो जानते तो कभी यज्ञ विषय में तर्क न करते। वेदों का यथावत् अर्थ के नहीं जानने से ऐसी बात तुम लोग कहते हो कि धूर्त्त भाण्ड और निशाचरों ने लिखा है। यह बात केवल अपने अज्ञान और संप्रदायों के दुराग्रह से कहते हो। और वेद जो है सो सबके वास्ते हितकारी है। किसी सम्प्रदाय का ग्रन्थ वेद नहीं है, किन्तु केवल पदार्थ विद्या और सब मनुष्यों के हित के वास्ते वेद पुस्तक है, पक्षपात उसमें कुछ नहीं इन बातों को जानते तो वेदों का त्याग और खण्डन कभी न करते। वेद विषय में सब लिख दिया है वहीं देख लेना।

और यज्ञ में पशु को मारने से स्वर्ग में जाता है, यह बात किसी मूर्ख के मुख से सुन ली होगी। ऐसी बात वेद में कहीं नहीं लिखी।

जीवों के विषय में वे ऐसा कहते हैं कि जीव जितने शरीरधारी हैं उनके पांच भेद हैं। एक इन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। जड़ में एक इन्द्रिय मानते हैं अर्थात् वृक्षादिकों में। सो यह बात जैनों की विचार शून्य है क्योंकि इन्द्रिय सूक्ष्म के होने से कभी नहीं देख पड़ती। परन्तु इन्द्रिय का काम देखने से अनुमान होता है कि इन्द्रिय अवश्य है। सो जितने वृक्षादिकों के बीज हैं, उनको जब पृथिवी में बोते हैं, तब अङ्कुर ऊपर आता है और मूल नीचे जाता है। जो उनको नेत्रेन्द्रिय न होता तो ऊपर नीचे को कैसे देखता। इस काम से निश्चित जाना जाता है कि नेत्रेन्द्रिय जड़ वृक्षादिकों में भी है। तथा बहुत लता होती है, सो वृक्ष और भित्ती के ऊपर चढ़ जाती हैं, जो नेत्रेन्द्रिय न होता तो उसको कैसे देखता तथा स्पर्शेन्द्रिय तो वे भी मानते हैं, जीभ इन्द्रिय भी वृक्षादिकों में हैं क्योंकि मधुर जल से बागादिकों में जितने वृक्ष होते हैं, उनमें खारा जल देने से सूख जाते हैं। जीभ इन्द्रिय न होता तो स्वाद खारे वा मीठे का कैसे जानते। तथा श्रोत्रेन्द्रिय भी वृक्षादिकों में है, क्योंकि जैसे कोई मनुष्य सोता होय, उसको अत्यन्त शब्द करने से सुन लेता है तथा तोफ आदिक शब्द से भी वृक्षों में कम्प होता है, जो श्रोत्रेन्द्रिय न होता, तो कम्प क्यों होता। क्योंकि अकस्मात् भयङ्कर शब्द के सुनने से मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक कम्प जाते हैं, वैसे वृक्षादिक भी कम्प जाते हैं। जो वे कहें कि वायु के कम्प से वृक्ष में चेष्टा हो जाती है, अच्छा तो मनुष्यादिकों को भी वायु की चेष्टा से शब्द सुन पड़ता है, इससे वृक्षादिकों में भी क्षोत्रेन्द्रिय है। तथा नासिका इन्द्रिय भी है क्योंकि वृक्षों का रोग धूप के देने से छूट जाता है, जो नासिकेन्द्रिय न होता तो गन्ध का ग्रहण कैसे करता। इससे नासिका इन्द्रिय भी वृक्षादिकों में है। तथा त्वचा इन्द्रिय भी है, क्योंकि कुमोदिनी कमल, लज्जावती अर्थात् छुई-मुई ओषधि और सूर्यमुखी आदिक पुष्पों में और शीत तथा उष्ण वृक्षादिकों में भी जान पड़ते हैं क्योंकि शीत तथा अत्यन्त उष्णता से वृक्षादिक कुमला जाते हैं और सूख



भी जाते हैं। इससे तत्तत् इन्द्रियों का कर्म देखने से तत्तत् इन्द्रिय वृक्षादिकों में अवश्य मानना चाहिये। यह भ्रम जैन सम्प्रदाय वालों को स्थूल गोलक इन्द्रियों के नहीं देखने से हुआ है। सो इससे जैन लोग इन्द्रियों को नहीं जान सकते। परन्तु कार्य द्वारा सब बुद्धिमान् लोग वृक्षादिकों में भी इन्द्रिय जानते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं। और जहाँ जीव होगा, वहाँ इन्द्रिय अवश्य होगा, क्योंकि इन सब शक्तियों का जो संघात, इसी को जीव कहते हैं। जहाँ जीव होगा वहाँ इन्द्रियाँ क्यों न होंगी।

जैनों का ऐसा कहना है कि तालाब, बावली, कुंआ नहीं बनवाना, क्योंकि उनमें बहुत जीव मरते हैं। जैसे तालाब के रचने से भैंसी उसमें बैठेगी, उसके ऊपर मेघा बैठेगा, उसको कौआ ले जायगा और मार भी डालेगा। उसका पाप तालाब बनानेवाले को होगा, क्योंकि वह तालाब न बनाता तो यह हत्या न होती।

इसमें उनने कुछ नहीं समझा, क्योंकि उस तालाब के जल से असंख्यात जीव सुखी होंगे, उसका पुण्य कहाँ जायगा। सो पाप के वास्ते तालाब कोई नहीं बनाता, किन्तु जीवों के सुख के वास्ते बनाते हैं, इससे पाप नहीं हो सकता। परन्तु जिस देश में जल नहीं मिलता होय, उस देश में बनाने से पुण्य होता है। जिस देश में बहुत जल मिलता होवै उस देश में तडागादिकों का बनाना व्यर्थ है। और वे बड़े-बड़े मन्दिर और बड़े-बड़े घर बनाते हैं, उनमें क्या जीव नहीं मरते होंगे सो लाखहां रुपैये मन्दिरादिकों में मिथ्या लगा देते हैं जिनसे कुछ संसार का उपकार नहीं होता। और जो उपकार की बात है उसमें दोष लगाते हैं। फिर कहते हैं कि जैन का धर्म श्रेष्ठ है और इसके विना मुक्ति भी किसी की नहीं होती। सो यह बात उन की मिथ्या है, क्योंकि ऐसी बात और ऐसे कर्मों से मुक्ति कभी नहीं हो सकती। मुक्ति तो मुक्ति के कर्मों से सर्वत्र होती है, अन्यथा नहीं।

जितना मूर्त्ति-पूजन चला है, सो जैनों से ही चला है। यह भी अनुपकार का कर्म है, इससे कुछ उपकार नहीं संसार में विना अनुपकार के। सो जैनों को बड़ा भारी आग्रह है, जो कोई कुछ पुण्य किया चाहता

है धनाढ्य, सो मन्दिर ही बना देता है, और प्रकार का दान पुण्य नहीं करते हैं। उनने जैन गायत्री भी एक बना ली है। और एक यती होते हैं उनको श्वेताम्बर कहते हैं। दूसरा होता है दिगम्बर जिसको मुनि और श्रावक कहते हैं। उनमें से ढूंढ़िये लोग मूर्त्ति-पूजन को नहीं मानते और लोग मानते हैं। उनमें एक श्री पूज्य होता है, उसका ऐसा नियम होता है कि इतना धन जब सेवक लोग दें, तब उसके घर में जांय। और मुनि दिगम्बर होते हैं, वे भी उनके घर में जब जाते हैं, तब आगे-आगे थान बिछाते चले जाते हैं। और उनके मत में न होय, वह श्रेष्ठ भी होय, तो भी उसकी सेवा अर्थात् जल तक भी नहीं देते, यह उनका पक्षपात से अनर्थ है। किन्तु जो श्रेष्ठ होय उसी की सेवा करनी चाहिये, दुष्ट की कभी नहीं। यह सब मनुष्यों के वास्ते उचित है।

जो ढूंढिये होते हैं, उनके केश में जूआं पड़ जाय, तो भी नहीं निकालते। और हजामत नहीं बनवाते किन्तु उनका साधु जब आता है, तब जैनी लोग उसकी दाढ़ी, मोंछ और सिर के बाल सब नोंच लेते हैं, जो उस वक्त वह शरीर कम्पावै अथवा नेत्र से जल गिरावै, तब सब कहते हैं कि यह साधु नहीं भया है क्योंकि इस को शरीर के ऊपर मोह है। विचार करना चाहिये कि ऐसी-ऐसी पीड़ा और साधुओं को दुःख देना और उनके हृदय में दया का लेश भी नहीं आना यह उनकी बात बहुत मिथ्या है। क्योंकि बालों के नोंचने से कुछ नहीं होता, जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादिक दोष हृदय से नहीं नोचे जायेंगे, यह ऊपर का सब ढोंग है।

उनमें जितने आचार्य भये हैं, उनके बनाये ग्रन्थों को वेद मानते हैं, सो अठारह ग्रन्थ वे हैं। तथा महाभारत, रामायण, पुराण, स्मृतियाँ भी उन लोगों ने अपने मत के अनुकूल ग्रन्थ बना लिये हैं अन्य भगवती गीता, ज्ञान चरित्रादिक भी ग्रन्थ नाना प्रकार के बना लिये हैं। बहुत संस्कृत में ग्रन्थ हैं और बहुत प्राकृत भाषा में रच लिये हैं। उनमें अपने सम्प्रदाय की पुष्टि और अन्य सम्प्रदायों का खण्डन कपोल कल्पना से अनेक प्रकार लिखा है जैसेकि जैन मार्ग सनातन है प्रथम सब संसार जैन मार्ग में था



परन्तु कुछ दिनों से जैन मार्ग को छोड़ दिया है लोगों ने। सो बड़ा अन्याय है, क्योंकि जैन मार्ग छोड़ना किसी को उचित नहीं। ऐसी-ऐसी कथा अपने ग्रन्थों में जैनों ने लिखी हैं। सो सब सम्प्रदाय वाले अपनी-अपनी कथा ऐसी ही लिखते हैं और कहते हैं। इनमें प्रायः अपने मतलब के लिये बातें मिथ्या-मिथ्या बना ली हैं।

**यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।**
**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥**
**यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।**
**अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्॥**
**बुद्धिपौरुष हीनानां जीवकेति बृहस्पतिः।**
**अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथानिलः॥**
**केनेचित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः।**
**न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवान्यःपारलौकिकः।**
**नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायकाः।**
**अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्॥**
**बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकाधातृनिर्मिता।**
**पशुश्चन्निहतःस्वर्गे ज्योतिष्टोमे गमिष्यति॥**
**स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।**
**मृतानामपि जंतूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्॥**
**गच्छतामिह जंतूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।**
**स्वर्गः स्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः॥**
**प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते।**
**यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः॥**
**कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः।**
**ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह॥**
**मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्।**
**त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः॥**
**जर्फरीतुर्फरीत्यादि पंडितानां वचःस्मृम्।**

**अश्वस्यात्र हि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम्॥**
**भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातिं प्रकीर्त्तितम्।**
**मांसानां खाद नं तद्वन्निशाचरसमीरितम्॥**

इत्यादिक श्लोक जैनों ने बना रक्खे हैं और अर्थ तथा काम दोनों पदार्थ मानते हैं। लोकसिद्ध जो राजा सोई परमेश्वर और ईश्वर नहीं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन के संयोग से चेतन उत्पन्न होके इन्हीं में लीन हो जाता है और चेतन पृथक् पदार्थ नहीं ऐसे-ऐसे प्राकृत दृष्टान्त देकर निर्बुद्धि पुरुषों को बहका देते हैं।

जो चार भूतों के योग से चेतन उत्पन्न होता तो अब भी कोई चार भूतों को मिलाके चेतन देखला दे, सो कभी नहीं देख पड़ेगा। इन स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति आदि का उत्तर ईश्वर और सृष्टि के विषय में लिख दिया है, वहीं देख लेना।

**भूतेभ्यो मूर्त्युपादनवत्तदुपादनम्॥**

इत्यादिक गोतम मुनिजी के किये सूत्र नास्तिकों के मत देखाने के वास्ते लिखे जाते हैं और उनका खण्डन भी, सो जान लेना।

**[ प्रश्न ]**—जैसे पृथिव्यादिक भूतों से बालु पाषाण गेरु अञ्जनादिक स्वभाव से कर्त्ता के विना उत्पन्न होते हैं, वैसे मनुष्यादिक भी स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। न पूर्वापर जन्म, न कर्म और न उनका संस्कार, किन्तु जैसे जल में फेन, तरंग और बुद्‌बुदादिक अपने आपसे उत्पन्न होते हैं वैसे भूतों से शरीर भी उत्पन्न होता है उसमें जीव भी स्वभाव से उत्पन्न होता है।

**उत्तर—न साध्यसमत्वात्** २ गो०। जैसे शरीर की उत्पत्ति कर्म संस्कार के विना सिद्ध मानते हो, वैसे बालुकादिक की भी उत्पत्ति सिद्ध करो। बालुकादिकों के पृथिव्यादिक प्रत्यक्ष निमित्त और कारण हैं। वैसे पृथिव्यादिक स्थूल भूतों का कारण भी सूक्ष्म मानना होगा। ऐसे अनवस्था दोष भी आ जायगा और साध्यसमहेत्वाभास के नांई यह कथन होगा और इससे देहोत्पत्ति में निमित्तान्तर अवश्य तुम को मानना चाहिये।

**[ प्रश्न ]—नोत्पत्तिनिमित्तत्वान्मातापित्रोः** ३ गो०।

यह नास्तिक का अपने पक्ष का समाधान है कि शरीर की उत्पत्ति



का निमित्त माता और पिता हैं जिनसे कि शरीर उत्पन्न होता है और बालुकादिक निर्बीज उत्पन्न होते हैं। इससे साध्यसम दोष हमारे पक्ष में नहीं आता क्योंकि माता पिता खाना पीना करते हैं उससे वीर्य बीज शरीर का हो जायगा।

**उत्तर—प्राप्तौ चानियमात्** ४ गो०।

ऐसा तुम मत कहो क्योंकि इसका नियम नहीं। माता और पिता का संयोग होता है और वीर्य भी होता है, तो भी सर्वत्र पुत्रोत्पत्ति नहीं देखने में आती। इससे यह जो आपका कहा नियम, सो भङ्ग हो गया।

इत्यादिक नास्तिक के खण्डन में न्याय दर्शन में लिखा है। जो देखा चाहै सो देख ले।

दूसरे नास्तिक का ऐसा मत है कि **अभावाद् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य-प्रादुर्भावात्** ५ गो०।

अभाव अर्थात् असत् से जगत् की उत्पत्ति होती है, क्योंकि जैसे बीज का नाश करके अङ्कुर उत्पन्न होता है, वैसे जगत् की उत्पत्ति होती है।

**उत्तर—व्याधातादप्रयोगः॥ ६॥** गो०।

यह तुम्हारा कहना अयुक्त है, क्योंकि व्याघात के होने से जिसका मर्द्दन होता है, बीज के ऊपर भाग का, यह प्रकट नहीं होता और जो अङ्कुर प्रकट होता है उसका मर्द्दन नहीं होता। इससे यह कहना आपका मिथ्या है।

तीसरा नास्तिक का मत ऐसा है **ईश्वरः कारणं पुरुषकर्मा फल्यदर्शनात्** ७ गो०।

जीव जितना कर्म करता है उसका फल ईश्वर देता है। जो ईश्वर कर्मफल न देता तो कर्म का फल कभी न होता, क्योंकि जिस कर्म का फल ईश्वर देता है, उसका तो होता है और जिसका नहीं देता, उसका नहीं होता। इससे ईश्वर कर्म का फल देने में कारण है।

**उत्तर—पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः** ८ गो०।

जो कर्म फल देने में ईश्वर कारण होता तो पुरुष कर्म न करता तो

भी ईश्वर फल देता सो। विना कर्म करने से जीव को फल नहीं देता। इससे क्या जाना जाता है कि जो जीव कर्म जैसा करता है, वैसा फल आप ही प्राप्त होता है। इससे ऐसा कहना व्यर्थ है।

फिर भी वह अपने पक्ष को स्थापन करने के वास्ते कहता है कि **तत् कारित्वादहेतुः** ९ गो०।

ईश्वर ही कर्म का फल और कर्म कराने में कारण है जैसा कर्म कराता है वैसा जीव करता है अन्यथा नहीं।

**उत्तर**—जो ईश्वर कराता तो पाप क्यों कराता। और ईश्वर के सत्य संकल्प के होने से, जो जीव जैसा चाहता, वैसा ही हो जाता। और ईश्वर पापकर्म कराके, फिर जीव को दण्ड देता तो ईश्वर को भी जीव से अधिक अपराध होता। उस अपराध का फल जो दुःख तो ईश्वर को भी होना चाहिये और केवल छली कपटी और पापों के कराने से पापी हो जाता। इससे ऐसा कभी न कहना चाहिये कि ईश्वर कराता है।

चौथे कास्तिक का ऐसा मत है कि **अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्** १० गो०। निमित्त के विना पदार्थों की उत्पत्ति होती है क्योंकि वृक्ष में कांट होते हैं वे भी निमित्त के विना ही तीक्ष्म होते हैं। कणृवों की तीक्ष्णता पर्वत धातुओं को चित्रता पाषाणों की चिक्कनता जैसे निर्मित देखने में आती है। वैसे ही शरीरादिक संसार की उत्पत्ति करता के विना होती है। इसका करता कोई नहीं।

**उत्तर—अनिमित्तनिमित्तत्वान्नानिमित्ततः** ११ गो०।

विना निमित्त के सृष्टि होती है ऐसा मत कहो, क्योंकि जिससे जो उत्पन्न होता है वही उसका निर्मित्त है। वृक्ष, पर्वत, पृथिव्यादिक उनके निमित्त जानना चाहिये, वैसे ही पृथिव्यादिक की उत्पत्ति का निमित्त परमेश्वर ही है। इससे तुम्हारा कहना मिथ्या है।

पाँचवें नास्तिक का ऐसा मत है कि **सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाश-धर्मकत्वात्** १२ गो०।

सब जगत् अनित्य है क्योंकि सबकी उत्पत्ति और विनाश देखने में आता है। जो उत्पत्ति धर्म वाला है सो अनुत्पन्न नहीं होता जो विनाश



धर्मवाला है, सो अविनाशी कभी नहीं होता। जो अविनाश धर्मवाला है सो विनाशी कभी नहीं होता। आकाशादि भूत शरीर पर्यन्त स्थूल जितना जगत् है और बुद्ध्यादि सूक्ष्म जितना जगत् है, सो सब अनित्य ही जानना चाहिये।

**उत्तर—नानित्यतानित्यवात्** १३ गो०।

सब अनित्य नहीं हैं, क्योंकि सबकी अनित्यता जो नित्य होगी तो, उसके नित्य होने से सब अनित्य नहीं भया और जो अनित्यता अनित्य होगी तो उसके अनित्य होने से सब जगत् नित्य भया। इससे सब अनित्य है ऐसा जो आपका कहना सो अयुक्त है।

फिर भी वह अपने मत को स्थापन करने लगा—**तदनित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुविनाशवत्** १४ गो०। वह जो हमने अनित्यता जगत् की कही, सो भी अनित्य है क्योंकि जैसे अग्नि काष्ठादिक का नाश करके अपने भी नष्ट हो जाता है। वैसे जगत् को अनित्य करके आप भी अनित्यता नष्ट हो जाती है।

**उत्तर—नित्यस्याप्रत्याख्यानं यथोपलब्धिव्यवस्थानात्** १५ गो०।

नित्य का प्रत्याख्यान अर्थात् निषेध कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जिसकी उपलब्धि होती है और जो व्यवस्थित पदार्थ है उसकी अनित्यता नहीं हो सकती। जो नित्य है प्रमाणों से और जो अनित्य है, सो नित्य-नित्य ही होता है और अनित्य-अनित्य ही होता है। क्योंकि परम सूक्ष्म कारण जो है, सो अनित्य कभी नहीं हो सकता और नित्य के गुण भी नित्य हैं, तथा जो संयोग से उत्पन्न होता है और संयुक्त के गुण, ये सब अनित्य हैं, नित्य कभी नहीं हो सकते, क्योंकि पृथक् पदार्थों का संयोग होता है। वे फिर भी पृथक् हो जाते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं।

छःठा नास्तिक यह है कि **सर्वं नित्यं पंचभूतनित्यत्वात्** १६ गो०।

जितना आकाशादिक यह जगत् है जो कुछ इन्द्रियों से स्थूल वा सूक्ष्म जान पड़ता है सो सब नित्य ही है, पांच भूतों के नित्य होने से। क्योंकि पांच भूत नित्य हैं, उनसे उत्पन्न भया जो जगत् सो भी नित्य ही होगा।

**उत्तर—नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः** १७ गो०।

जिसका उत्पत्ति कारण देख पड़ता है और विनाश कारण, वह नित्य कभी नहीं हो सकता।

इत्यादिक समाधान न्यायदर्शन में लिखे हैं सो देख लेना।

सातवां नास्तिक का मत यह है कि **सर्वं पृथक्भावलक्षणं-पृथक्त्वात्** १८ गो०। सब पदार्थ जगत् में पृथक्-पृथक् ही हैं क्योंकि घटपदादिक पदार्थों के पृथक्-पृथक् चिह्न देख पड़ते हैं। इससे सब वस्तु पृथक्-पृथक् ही हैं, एक नहीं।

**उत्तर—नानेकलक्षणैरेकभावनिष्पतेः** १९ गो०।

यह बात आपकी अयुक्त है, क्योंकि घड़े में गंधादिक गुण है और मुखादिक घड़े के अवयव भी अनक पदार्थों से एक पदार्थयुक्त प्रत्यक्ष देख पड़ता है। इससे सब पदार्थ पृथक्-पृथक् हैं, ऐसा जो कहना सो आपका व्यर्थ है।

आठवां नास्तिक का मत यह है कि **सर्वमभावो भावेष्वितरतरा-भावसिद्धेः** २० गो०।

यावत् जगत् है, सो सब अभाव ही है, क्योंकि घड़े में वस्त्र का अभाव और वस्त्र में घड़े का अभाव तथा गाय में घोड़े का और घोड़े में गाय का अभाव है, इससे सब अभाव ही है।

**उत्तर—न स्वभावसिद्धेर्भावानाम्** २१ गो०।

सब अभाव नहीं है क्योंकि अपने में अपना अभाव कभी नहीं होता है और जो अभाव होता तो उसकी प्राप्ति और उससे व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होती, इससे सब अभाव है, ऐसा जो कहना, सो व्यर्थ है। क्योंकि आप ही अभाव होते, फिर आप कहते और सुनते हो, सो कैसे बन सकता, सो कभी नहीं बनता। ऐसे-ऐसे वाद-विवाद मिथ्या जो करते हैं, वे नास्तिक गिने जाते हैं। सो जैन सम्प्रदाय में अथवा किसी सम्प्रदाय में ऐसा मतवाला पुरुष होय, उसको नास्तिक ही जान लेना। जैन लोगों में प्राय: इस प्रकार के वाद हैं, वे सब मिथ्या ही सज्जनों को जानना चाहिये। यजमान की पत्नी अश्व के शिश्न को पकड़ै, यह बात मिथ्या है। तथा



संसार में राजा जो है सोई परमेश्वर है, यह भी बात उनकी मिथ्या है, क्योंकि मनुष्य क्या परमेश्वर कभी हो सकता है। धर्म को बड़ा न समझना और अर्थ तथा काम को ही उत्तम समझना यह भी उनकी बात मिथ्या है। इत्यादिक बहुत उनके मत में मिथ्या-मिथ्या कल्पना है उनको सज्जन लोग कभी न मानैं। यह जैनों के मत के विषय में थोड़ा-सा लिखा गया।

इसके आगे मुसलमानों के विषय में लिखा जाएगा।

**इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविरचिते द्वादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १२॥**

# अथ यवनमत विषयान्ध्याख्यास्यामः।

जब से मुहम्मद जी भये हैं, उस दिन से कुरान् का मार्ग चला है। तब से मुसल्मान् शब्द भी चला है उनकी माता का नाम आमिना था। मुहम्मद जी का चाचा अबु तालिब था। उसने उसको पाला था और विद्या भी उनने मुहम्मद जी को पढ़ाई थी। मुसल्मान् लोग कहते हैं कि मुहम्मद जी ने कुछ नहीं पढ़ा था, यह बात झूठ है। मुहम्मद बाल्यावस्था से बुद्धिमान् और विचारशील था। सो एकान्त में जाके नित्य विचार किया करता था। ईसाई यहूदियों का संग तथा उनसे विचार भी करता था और यह उनके हृदय में था कि सत्य और असत्य का निश्चय करना चाहिये और उनका मत सुनता था, परन्तु इनके चित्त में नहीं बैठता था।

फिर एक विधवा स्त्री थी कि जिस का नाम खदीजा था, उसके साथ विवाह भया था। वह बड़ी धनाढ्य थी और मुहम्मद का पिता पाषाण मूर्त्ति का पूजारी था, परन्तु मुहम्मद ने विचार से छोड़ दिया था। फिर वर्ष-वर्ष में एक मासीहरा पर्वत्त में जाके विचार करता था। उनका चाचा था, उसके साथ व्यवहार करने को, और देश-देशान्तर में जाता था। सो देश-

देशान्तर के व्यवहार देखने से चतुरता भी आ गई थी।

फिर इस वक्त तक तो मुहम्मद का संकल्प अच्छा था, परन्तु इसके पीछे ऐसा उनके चित्त में आया कि हम पैग़म्बर बन जांय। सो अपनी स्त्री के पास जाके कहा कि मेरे पास खुदा बात भेजते हैं। तब स्त्री ने सुनके कहा कि मैंने पहिले से ही जान रक्खा था कि आप पैग़म्बर होने के योग्य हो। फिर अबूबक्र धनाढ्य था, उसने भी कुछ माना। फिर अपने इष्ट मित्रों को निमन्त्रण दिया और उनके बीच में प्रसिद्ध कहा कि मैं पैग़म्बर हूँ, मुझ से आप लोग उपदेश लें कि मेरे पास खुदा हुकुम भेजता है। सो मैं आप लोगों को सुना देऊँगा। उनमें से कोई लोग ने मान लिया और कोई-कोई ने नहीं। फिर अली को मत चलाने के वास्ते दीवान किया। हमजा और उमर ये दोनों प्रसिद्ध भये और मूर्त्ति-पूजन भी छोड़ दिया। फिर बड़ा वाद-विवाद कोलाहल होने लगा, क्योंकि मक्का और उस देश में सर्वत्र मूर्त्ति-पूजन था। वे पुजारी लोग बहुत चिड़े और चाहा कि मुहम्मद को मार डालैं, परन्तु उनका चाचा उस नगर में करनैल था। उनके डर के मारे कोई उनको नहीं मार सका। जब वे मर गये, तब उन पुजारियों की इच्छा भई कि इसको अब जरूर मार डालना चाहिये, नहीं तो हम लोगों की आजीविका नष्ट हो जायेगी। तब मुहम्मद अपने मन में डरे कि ये लोग कुछ विघ्न अवश्य करेंगे ऐसा जानके और उनके डर से मदीना को छिप के चले गये। जिस दिन मक्के से मदीने को चले गये, उस दिन से मुसल्मानों के सम्वत् का नाम हिजरी पड़ा। सो आज तक चला आता है।

एक मक्के की यात्रा के वास्ते बड़ा धनाढ्य आता था, उसके साथ लड़ाई करके डाकुओं की नाई उनको लूट लिया। बद्र की लड़ाई में यह बहुत अन्याय का काम मुहम्मद ने किया फिर उस लड़ाई में कैदियों को पकड़ा था, उनको धन ले छोड़ दिया। तब मुहम्मद ने कहा कि खुदा अप्रसन्न हो गया।

देखना चाहिये अन्याय की बात। उनको छोड़ने से खुदा अप्रसन्न कभी न होगा। यह केवल अपने मतलब के वास्ते मुहम्मद ने बात बना



ली है।

एक सालिम नाम का कोई पुरुष था, सो मुहम्मद की बात का खण्डन करता था, उसको मारने के वास्ते अपने चेलों को अतिथि बना के उसके घर में भेजा और चेलों से कहा कि जिस प्रकार से मारा जाय, उस प्रकार से मार डालो। सो मुहम्मद के हुकुम से जब वे गये अतिथि बनके, तब सालिम ने उसका बड़ा सत्कार किया और भोजन के वास्ते घर में ले गया। भोजन के वास्ते पंक्ति सब की कराई और खाने-पीने लगे। सालिम नहीं जानता था कि ये मुहम्मद के भेजे आये हैं, सो अत्यन्त प्रीति से उनके पास बैठा, उसका सिर झट काट डाला और मुहम्मद से आके सबने कहा, तब मुहम्मद अत्यन्त प्रसन्न भया।

देखना चाहिये कि ऐसे-ऐसे अनर्थ कराये और प्रसन्नता फिर करनी, यह श्रेष्ठ पुरुषों का काम नहीं।

फिर बहुत मुहम्मद ने लड़ाई कराई और अपने भी साथ लड़ाई में रहा उसमें लाखों मनुष्य मारे गये, फिर मक्का भी उसने ले लिया। उसमें से सब मूर्त्तियाँ तोड़ डाली और देश-देशान्तर की मूर्त्तियाँ तोड़ डाली। लाखों पुरुष भय के मारे मत में आ गये, क्योंकि मुहम्मद और उनके मत वाले सब से कहते थे कि कुरान् मुहम्मद के पास खुदा ने भेजा और मुहम्मद खुदा की तरफ से सब के ऊपर पैग़म्बर आया है। उनको तुम लोग मानो, नहीं तो तुम को कतल कर देंगे। ऐसे-ऐसे डरा के बहुत पुरुषों को मार डाले, फिर भय से बहुत पुरुष मुहम्मद के मत में आ गये।

देखना चाहिये कि यह धर्म की बात कभी नहीं हो सकती जो कि दण्ड से अपने मत को बढ़ाना, क्योंकि हृदय में धर्म वा अधर्म का ज्ञान कभी न होगा, जब तक कि विद्या और उपदेश मनुष्यों को न दिया जायगा। इसी से एक मत में से दो भेद सिया और सुन्नी हो गये, फिर भी बहत्तर फिरके विद्या के विना उनके मत में हो गये हैं। मुसल्मान लोग कहते हैं कि हम मूर्त्ति-पूजन नहीं करते, यह बात उनकी युक्त नहीं, क्योंकि जो मक्का में एक काला पत्थर रक्खा है उसको आज तक सब लोग चुम्बन करते हैं। वह भी एक पाषाण-पूजन है। और अन्य लोग बुत-

पूजन थोड़ा करते हैं और मुसल्मान लोग अधिक करते हैं, क्योंकि वे तो छोटी-छोटी मूर्त्ति पाषाणादिकों की उनमें देवभाव करके नमस्कारादिक करते हैं और मुसल्मान् लोग बड़ा भारी जो काबा का मन्दिर उसकी तरफ मुख करके नमस्कार और निवाज करते हैं, सो हमारी समझ से बड़ा भारी मुसल्मान् लोग पाषाण-पूजन करते हैं, क्योंकि उस मन्दिर में लाखों पाषाण लगे हैं, उसकी तरफ नमस्कार करने का कुछ प्रयोजन नहीं। जो वे कहें कि हम लोग उस मन्दिर को नमस्कार नहीं करते हैं, किन्तु उसकी तरफ मुख करके ईश्वर को नमस्कार करते हैं। ऐसा ही जितने मूर्त्ति-पूजक हैं वे भी कहते हैं कि हम लोग पाषाणादिक पूजन नहीं करते, किन्तु देवता का भाव करके पूजन करते हैं। जैसा इनका कहना अयुक्त है, वैसा मुसल्मानों का भी कहना अयुक्त है, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है और सर्वव्यापक के होने से कोई दिशा का नियम नहीं कि इस दिशा में मुख करना इसमें नहीं करना।

कुरान जो ग्रन्थ है सो ईश्वर ने मुहम्मद के पास भेजा है, सो खुदा की तरफ से है, परन्तु हमको ऐसा मालूम देता है कि मुहम्मद और मौलवियों ने बनाया है, क्योंकि ईश्वर का बनाया होता तो सब देश के वास्ते होता और पक्षपात की बात उसमें न होती कि जो कुरान् को न मानैं तथा मुहम्मद और मुहम्मद के कलमा को न मानैं सो मुक्ति को नहीं पाता, किन्तु इसको मानैं सोई श्रेष्ठ है और मुक्ति को पाता है। ऐसी-ऐसी बात केवल पक्षपात की है, क्योंकि मुक्ति का होना विद्या, धर्मानुष्ठान और परमेश्वर के ज्ञान से होता है, सो जो मनुष्य मुक्ति का साधन करेगा, उसकी सर्वत्र मुक्ति होती है। इसमें कुरान्, मुहम्मद और उसके कलमें के मानने का नियम नहीं।

अब इसके आगे कुरान् का हाल कुछ लिखते हैं जिससे मुसल्मानों का मत चला है। मुसल्मानों ने मुहम्मद के उपदेश के अनुसार यह मान लिया है कि वे वाक्य समूह जिसका नाम कुरान् है, सो ईश्वर का वाक्य है। एक फरिश्ता जिसका नाम जिब्रईल, सो एक-एक वाक्य को ईश्वर की आज्ञा से मुहम्मद के पास आके कहता था, तब मुहम्मद के मुख से



वही वाक्य निकलता था।

इसमें विचारना चाहिये कि वे मनुष्य अन्तर्यामी और सर्वज्ञ नहीं थे कि मुहम्मद के हृदय की बात यथावत् जान लें, क्योंकि अपने मतलब के वास्ते मनुष्य मिथ्या बात बना सकता है कि यह ईश्वर का वाक्य है, क्योंकि बड़े का नाम नहीं लेने से कोई विश्वास नहीं करता। ऐसे-ऐसे बहुत प्रकार के अन्यथा व्यवहार संसार में देख पड़ते हैं। यह भी मुसल्मानों ने मान लिया मुहम्मद के कहने से, कि खुदा का भेजा जिब्रईल फरिश्ता मेरे पास आके ईश्वर का वाक्य कह जाता है। उसी को मैं आप लोगों के सामने सुना देता हूँ, सो किसी ने उस फरिश्ते को न देखा कि खुदा के पास से यह आता है और वाक्य देके चला जाता है। किसी ने प्रत्यक्ष उसको वा उसके आने-जाने का तथा मुहम्मद के कहने-सुनने का चिह्न एक भी नहीं देखा, फिर उन्होंने मुहम्मद के कहने से ही मान लिया। ऐसी बात बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मानते, क्योंकि प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से जो सत्य-सत्य बात निश्चित होती है, उसी को बुद्धिमान् लोग मानते हैं, अन्य को नहीं। कुरान् में ऐसा नहीं है कि जो वाक्य ईश्वर के पहिले आया होय, सोई पहिले लिखा गया है, किन्तु उसमें पहिले लिखने के योग्य वाक्य पीछे लिखे हैं और पीछे लिखने के योग्य पहिले लिखे हैं। यह उलट-पलट बहुत वाक्यों का लिखना, ईश्वर का काम नहीं, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ और निर्भ्रम है। वह जिस वाक्य की योग्यता जहाँ लिखने की है, वहीं लिखता है। यह भ्रम जीव में हो सकता है, ईश्वर में नहीं। इसको आगे लिखेंगे जो वाक्य उलट-पलट हैं।

कुरान् के खण्ड दो प्रकार के हैं—एक का नाम सूरः और दूसरे का नाम सिपारा, सो कुरान् में सूरः ११६ वा ११४ हैं। एक-एक सूरः में अनेक बातों का वर्णन है। एक प्रकरण, एक सूरः में नहीं, किन्तु अनेक प्रकरण एक में ही लिखे हैं। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि सूरः के अनुसार जो विभाग किया गया, सो विभाग करने वाले की उन्मत्तता का बोधक है, क्योंकि जिसका प्रकरण लिखना चाहिये उसकी साङ्गोपाङ्ग सब बात पूर्ण लिख के, फिर दूसरी बात का प्रकरण लिखना चाहिये, सो बात कुरान्

में नहीं है, इससे यह प्रमाद दोष गिना जाता है।

दूसरा विभाग कुरान् का सीपारा कहलाता है, उसका नियम ऐसा है कि पहिले सूरः छोड़कर, दूसरे सूरः के आदि से लिखते गये। जब आठ वा दश पत्र लिखे गये उसका नाम पहिला सीपारा रक्खा। इसी रीति से सीपारा ३० तक कुरान् में सीपारे हैं। यह व्यवस्था पहिले लिखने वालों ने की है।

निश्चय से इसमें विचारना चाहिये कि छोटे अक्षर लिखने से थोड़े पत्र होते हैं और बड़े अक्षरों के लिखने से बहुत पत्र होते हैं और बड़े अक्षरों के फिर आठ वा दश पत्र के नियम से सूरः लिखना यह बात व्यर्थ है। यह ईश्वर की बात कभी नहीं हो सकती, यह कल्पना मनुष्य की है।

पहिला प्रकरण यह हम लिखते हैं जो कि उलट-पलट वाक्य है सू० मायदः सी० ला० यहब्बु, इसमें ऐसी आयत है कि हे रसूल तूँ पहुँचा दे, जो वाक्य तेरे पास पहुँचा और जो तूँ नहीं पहुँचावेगा तो तूने ईश्वर का वाक्य पहुँचाने का काम पूरा नहीं किया, तुझको ईश्वर बचावेगा, मनुष्यों के हाथ से।

इसमें शीआ लोग कहते हैं कि यह वाक्य ईश्वर का मुहम्मद के अन्त समय में आया था किस बात के ऊपर कि अली मुहम्मद के जगह पर खलीफा होय, परन्तु मुहम्मद इस बात को औरों के डर से छिपाता था।

सो विचारना चाहिये कि यह वाक्य भी छठहे सिपारे में है और इसके पीछे अनेक वाक्य और लिखे हैं जिसके अर्थ से जाना जाता है कि वे सब वाक्य इसके पहिले के हैं।

इसमें विचार करना चाहिये कि मुहम्मद ने ईश्वर का हुकुम नहीं माना जो कि ईश्वर के वाक्यों का पहुँचाने के वास्ते दिया था, सो मनुष्य के डर के मारा नहीं कहता था और ईश्वर के हुकुम का डर कुछ नहीं माना और यह वाक्य अन्त के लिखने के योग्य था, क्योंकि मुहम्मद के स्थान में कोई तब बैठ सकेगा, जब कि मुहम्मद नहीं रहेगा। इससे ऐसी उलट-पलट बात खुदा की नहीं हो सकती, यह मनुष्यों की ही रची है।

सू० बकर० सी० अलम्। उसमें ऐसी आयत है कि ईश्वर को लज्जा



नहीं आती है, मच्छर आदि की बात कहने से।

इसकी टीका में ऐसा लिखा है कि दुष्ट लोग कुरान् पर हँसते थे कि कुरान् ईश्वर का बनाया नहीं, क्योंकि ईश्वर मक्खी-मकरी इत्यादि की बात कभी न कहेगा, अर्थात् यह बात मोटी है। तब ईश्वर ने यह वाक्य भेजा।

अब देखना चाहिये कि इस बात से पहिले कोई ऐसा वाक्य नहीं है कि जिसमें मक्खी-मकरी आदिक का वर्णन होय, किन्तु इसके पीछे ऐसे-ऐसे वाक्य हैं। इसमें देखना चाहिये कि जब पहिले किसी बात में, किसी का हास हो चुके, पीछे उसका समाधान वा कोई बात कहनी चाहिये प्रथम नहीं। ऐसा कोई नहीं करता कि पुत्र का जन्म भी नहीं भया और प्रथम ही नाम रख दे।

सू० मुजम्मिल् सी० तवारक्। इसमें ऐसी आयत है कि हम तुझ पर भारी और कठिन बात भेजेंगे। इस वाक्य की टीका में लिखा है कि पहिले यह वाक्य मुहम्मद के पास पहुँचा था। इसके पीछे और सब वाक्य पहुँचे। जब जैसा प्रयोजन होता था, वैसा वाक्य आता था। यह स्पष्ट मालूम देता है, इसके पहिले बहुत वाक्य आ गये थे। फिर ऐसा कहना कि यह पहिले आया और पीछे दूसरे सब वाक्य। ऐसा पूर्वापर विरुद्ध ईश्वर का वचन नहीं होता, किन्तु केवल मनुष्य का वचन ऐसा विरुद्ध होता है।

सू० अलक् अम्म। इस सूरा की टीका में लिखा है कि इसके पाँच वाक्य और सब वाक्यों के पहिले पहुँचे हैं। यह भी कहना विरुद्ध है, क्योंकि ये ही वाक्य सबके पहिले नहीं आये हैं और न लिखे हैं।

सू० जासिया सी० इलेहयरद्दो। इसमें ऐसी आयत है कि मुसल्मानों को कहो कि माफ करो उन मनुष्यों पर जो कि ईश्वर के दण्ड से नहीं डरते। इसकी टीका में लिखा है कि इस वाक्य के पहुँचने का कारण यह है कि जब ईश्वर ने आज्ञा की थी कि लोगों से धन उधार माँगो, तब दुष्टजन हँसते थे कि अब ईश्वर निर्धन-कङ्गाल हो गया कि मनुष्यों से उधार धन माँगता है। उधार माँगने के वाक्य नीचे लिखते हैं।

सू० हदीद् सी० हम्म। जो ईश्वर को उधार देता है, उसको अनेक

गुना मिलता है। ईश्वर को उधार देओ, उसका अनेक गुना मिलेगा।

सू० मुजम्मिल् सी० तवारक्। ईश्वर को उधार देओ उसका अनेक गुना मिलेगा।

सू० लगाबुन् सी० कद्स मिअ। जो उधार देओगे ईश्वर को, तो ईश्वर अनेक गुना देगा तुम को।

सू० मुजम्मिल् सी० तवारक्। ईश्वर को उधार देओ।

सू० बकरः सी० सयकूलो। जो मनुष्य ईश्वर को उधार देगा, उसको ईश्वर अनेक गुना देगा।

इसमें विचारना चाहिये कि उधार माँगने के वाक्य कालान्तर में पहुँचे। फिर क्षमा करने का वाक्य भी कालान्तर में उसको लिखना उचित था, परन्तु अबूबकर् ने उन हँसने वालों को क्रोध करके मारने की इच्छा की। तब क्षमा का वाक्य उन सब वाक्यों से पहिले लिखा है। एक वाक्य सू० बकरः का क्षमा के वाक्य से पहिले है। इसमें विचारना चाहिये कि मुहम्मद को जब-जब धन का प्रयोजन पड़ता था, तब-तब ईश्वर के नाम से लेता था। जैसे कि आजकाल पाषाणादिक मूर्त्ति-पूजन करने वाले तथा तीर्थ के पुरोहित, पण्डे और घाटिये लोग देवतादिकों के नाम से लेते हैं। ऐसे मुहम्मद ने भी अपना मतलब ईश्वर के नाम से सिद्ध कर लिया। और पीसे भये पिसान को कोई नहीं पीसता। इससे एक अर्थ की आयत अनेक वार लिखना बड़ा भारी दोष है। यह ईश्वर की बात कभी नहीं हो सकती सिवाय मनुष्य के।

सू० इन् आम् सी० इजा समिऊ। जैसे वाक्य मुहम्मद के पास पहुँचते हैं, वैसे ही वाक्य मेरे पास पहुँचते हैं ऐसा अब्दुल्लाह ने कहा। इसकी टीका में लिखा है कि अब्दुल्लाह जो मुहम्मद के पास ईश्वर के भेजे वाक्य को लिखता था सो एक दिन ऐसा हुआ कि नीचे लिखा हुआ वाक्य जब पहुँचा तब मुहम्मद ने पूरा वाक्य नहीं बोला था, सो मुहम्मद के कहने के पहिले ही अब्दुल्लाह ने वह आयत पूरी लिख दी और पहिले ही कह दी। तब मुहम्मद ने शेष वाक्य सुन के उसको कहा कि इस शेष वाक्य को लिख के यह ईश्वर का वाक्य है। अब्दुल्लाह भी कहने लगा कि मेरे पास



भी ईश्वर आयत भेजता है, क्योंकि अब्दुल्लाह ने समझ लिया, जैसे मुहम्मद विचार के लिखता है, वैसे मैं भी रच सकता हूँ, सो यह बात सच है कि मनुष्य कल्पना से अनेक वाक्य रच सकता है और वक्ता के अभिप्राय को जानने से शेष वाक्य भी जान सकता है। इससे क्या जाना जाता है कि मुहम्मद और उनके सम्प्रदायी मौलवी लोगों ने सम्प्रदाय, अर्थात् मजहब बढ़ाने और धन लेने तथा प्रतिष्ठा कराने के वास्ते कुरान् और सम्प्रदायों की सब बात बना ली है। ईश्वर का बनाया या इसमें कुछ नहीं जान पड़ता।

सू० मोमिन् सी० कद फलः। इसमें यह आयत है कि खुदा कहता है हमने उत्पन्न किया मनुष्य को मिट्टी से, फिर पानी, फिर मांस बनाया, फिर हड्डी, फिर जीवत्व धर्म। इन वाक्यों को सुनते ही अब्दुल्लाह् बोला मुहम्मद के कहने से पहिले धन्य परमेश्वर जो सब उत्पत्ति करने वालों में उत्तम श्रेष्ठ है, तब से अब्दुल्लाह् अहंकार करने लगा कि मेरे पास भी ईश्वर के वाक्य पहुँचते हैं।

इसमें विचारना चाहिये कि अहंकार बोध के वाक्य पहिले लिखे, परन्तु उचित ऐसा था कि जिस वाक्य शेष से अहंकार अब्दुल्लाह् को हुआ था वह वाक्य पहिले लिखने के योग्य था, क्योंकि वह शेष वाक्य ठीक-ठीक जब आता तब अभिमान करना योग्य था। इससे ऐसी बात बुद्धिमान् मनुष्य भी नहीं कहता, तो खुदा कैसे कहेगा। परन्तु जब अब्दुल्लाह् ऐसी-ऐसी बात कहने और अभिमान करने लगा, तब मुहम्मद को डर भया कि मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी जो अब्दुल्लाह् पैग़म्बर बन जायेगा। इस वास्ते मुहम्मद चालाकी करता था कि यह अब्दुल्ला पैग़म्बर न बनने पावे, यह नहीं तो मेरी प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जायगी।

**यह प्रथम खण्ड पूरा हुआ**

**इसके आगे**

## दूसरा खण्ड

किस बात के वर्णन में है। मुहम्मद को बुद्धिमान् लोग कहते थे कि

ये सब वाक्य ईश्वर के नहीं हैं, ये सब तूने ही बना लिये हैं। तब मुहम्मद कहता था कि तुम सब की शंका-समाधान के अर्थ ईश्वर ने ये सब वाक्य भेजे हैं, ऐसा समाधान कहता था।

सू० बकरः सी० अलम्। इसमें ऐसी एक आयत है कि तुम सब जो सन्देह करते हो इन वाक्य समूह पर, जो कि हमने भेजा है अपने सेवक के पास, सो तुम सब ले आओ एक सूरा ऐसा ही।

यह कुछ समाधान उस शंका का नहीं भया, क्योंकि अकबर के पास जो फैजी था, उसने बेनुक्ता की कुरान् सब बना ली थी, सो कोई अरबी का पण्डित अच्छा हो, सो इस कुरान् से भी अच्छा ग्रन्थ बना सकता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

सू० यूनस् सी० यात जरून्। इसमें ऐसी एक आयत है कि क्या वे सब कहते हैं तूने सब ये बना ली हैं, तू कह कि तुम एक ऐसा ही सूरा ले आओ।

सू० नूर् सी० हम्म। ले आओ एक ऐसा ही वाक्य।

सू० हूद् सी० मामिन् दाब्दा। क्या वे कहते हैं कि तूने ये सब बात बनाई हैं, तू कह दे कि तुम सब ऐसे दश सूरे बना ले आओ।

देखना चाहिये कि खुदा बड़ा भूलने वाला है, क्योंकि एक बात बहुत वक्त भूल के कह देता है। ऐसी, सर्वज्ञ जो ईश्वर, उसकी बात कभी नहीं होती। इससे स्पष्ट मालूम देता है कि आदमियों का बनाया है, ईश्वर का नहीं।

सू० बनी इसराईल् सी० सुबूहान् अल्लजी। इसमें एक ऐसी आयत है कि जो मनुष्य और राक्षस मिलकर एक दूसरे की सहायता करैं कि ऐसा कुरान् हम बना ले आवैं तो कभी ऐसा नहीं ले आने सकेंगे।

यह समाधान कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि फैजी आदि ने इससे भी अच्छा कुरान् बना लिया था।

सू० हूद् सी० मामिन् दाब्बा। इसमें ऐसी एक आयत है कि जो वे लोग जवाब नहीं दें तुम को, तो तुम जानो कि कुरान् ईश्वर के ज्ञान से उतरी है।



इससे कुछ उत्तर नही हो सकता। ईश्वर के ज्ञान से उतरती तो ईश्वर का ज्ञान सत्य और पक्षपात रहित है, सो कुरान् में परमेश्वर की जो अनन्त विद्या सो कुछ नहीं मालूम पड़ती जैसी कि सर्वज्ञ वेद-विद्या है परमेश्वर की किई।

सू० हूद् सी० मामिन् दाब्बा। इसमें ऐसी एक आयत है कि परोक्ष की बातें हमने तुझको पहुँचाई हैं। तूँ और तेरे जाति के लोग इससे पहिले इसको जानते थे।

सू० यू० सुफू सी० मामिन् दाब्बा। इसमें एक ऐसी आयत है कि हम अच्छा किस्सा तेरे पास भेजते हैं तू इसको पहिले से नहीं जानता था।

इसमें देखना चाहिये कि कुरान् में भविष्यत् की बात कुछ नहीं ठीक-ठीक है। और किस्सा का कहना बुद्धिमानों का भी काम नहीं है तो ईश्वर का कैसे होगा, कभी नहीं।

सू० किस सू० सी० अमन् खलक। इसमें ऐसी एक आयत है कि जिस समय हमने मूसा की तर्फ हुकुम भेजा, तू उस वक्त हाजिर नहीं था और उस स्थान के पश्चिम दिशा में भी नहीं था।

सू० किस सू० सी किसस्। इसमें ऐसी आयत है कि तू मदियन् वालों में पुकारने वाला नहीं था और तू कोहनुर पहाड़ की तरफ नहीं था, जिस वक्त हमने पुकारा।

इसमें कुछ ईश्वरता की बात नहीं देख पड़ती और प्रमाणों से सत्य भी नहीं निश्चित होती, क्योंकि ऐसी-ऐसी पुरानी निष्प्रयोजन वाणी ईश्वर कभी नहीं कहेगा। जिसका ठौर न ठिकाना। न जाने उस वक्त खुदा ने पुकारा था वा नहीं उस बाबिल में भी कुछ जिकर नहीं। जब मुहम्मद तो था ही नहीं उस वक्त। ईश्वर तो सर्वज्ञ है, सो क्या नहीं जानता था कि मुहम्मद इस वक्त है वा नहीं और ईश्वर को इतना सामर्थ्य नहीं था कि मुहम्मद की आँख खोल देता। वह सब भूत-भविष्यत् की बात अपने ही देख लेता।

सू० अन् कबूत् सी० अतुलोमा ऊही। इसमें ऐसी आयत है कि तूने इससे पहिले कोई किताब नहीं पढ़ी थी और न अपने हाथ से लिखता था

ऐसा होता तो वादी लोग सन्देह कर सकते। इसका उत्तर वही है जो कि उसके चाचा ने पढ़ाया था बाल्यावस्था में। और तवारीखों से साबत है कि मुहम्मद पढ़ा था। और बे पढ़े मुहम्मद को जैसे हृदय में किताब का प्रकाश किया ऐसे सब मनुष्य के हृदय में प्रकाश कर देता है, सो यह बात केबल बनावट की मालूम पड़ती है।

सू० किस सू० सी अम्मबू खलक। इसमें ऐसी आयत है कि तुज्झ को भरोसा नहीं था किताब उतरने का यह ईश्वर की कृपा है।

सू० शोरायू सी० जुम्म। इसमें ऐसी एक आयत है कि तू नहीं जानता था किताब को और इमान को ईश्वर ने अनपढ़ लोगों के बीच अनपढ़ पैग़म्बर भेजा जो कि ईश्वर वाक्य को पढ़ता है उन लोगों के पास, और उन लोगों को किताब और पदार्थ-विद्या सिखलाता है।

सू० एराफ् सी० कालल् मल ओ। इसमें यह आयत है कि जो लोग अनपढ़ रसूल की आज्ञा को मानते हैं जिस को तौरेत् और अञ्जील में लिखा हुआ पाते हैं वे लोग अच्छे हैं।

सू० यून सू० सी० यात जूरून्। इसमें एक आयत है कि जो कुरान् पर शक है तुज्झ को तो पूछ उन लोगों से जो तेरे पहिले की किताब को पढ़ते हैं यह ईश्वर का वाक्य सच तेरे पास आया है।

इसको विचार के देखना चाहिये कि ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं होती और ऐसा पुरुष पैग़म्बर भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो सत्य है उसके वास्ते इतना ही साबूत देना उचित है कि उस पदार्थ का यथार्थ तत्त्व दिखा देना, जैसे कि चाँदी का रुपैया हो उसको काट के अथवा अग्नि में डाल के वा किसी प्रकार से परीक्षा होनी, इतना ही उसमें पुरुषार्थ है। और जो उसमें भीतर ताम्बा होय अथवा चाँदी के साथ ताम्बा मिला हो उसको सत्य करने के वास्ते बहुत परिश्रम करे तो भी वह सत्य कभी न होगा। जो ईश्वर है सो ऐसी-ऐसी बात कुरान को सच करने के वास्ते क्यों कहेगा, क्योंकि एक क्षण में सब को सत्य बात का निश्चय करा सकता है और जो मुहम्मद पैग़म्बर होते तो अपने ज्ञान से ही जैसा वह है वैसा ही जान लेता। और जो उसको कुरान् पर शक न होता, खुदा उसको क्यों



कहता कि उनसे पूछ के कुरान् पर निश्चय तूँ कर। यह ईश्वर का वाक्य सच तेरे पास आया है। सो यह बात केवल अपने मतलब के वास्ते लोगों ने बना ली है कि कुरान ईश्वर की तरफ से आया है ऐसा हमको निश्चित मालूम देता है।

सू० फते सी० हम्म। इसमें लिखा है कि कहना उनके उसमें तौरेत् और इञ्जील में कहते हैं कली निकल गई और पूरी हो गई।

सू० सफू सी० कद् समिअ। इसमें ऐसा लिखा है कि ईसा मरियम के बेटे ने कहा कि मैं ईश्वर का दूत हूँ, तुमारी तरफ खबर देता हूँ कि एक रसूल मेरे पीछे आयेगा उसका नाम अहमद है फिर जब वह आया आश्चर्य बातों के साथ, तब लोगों ने कहा कि यह जादू है।

सू० हूद् सी० मामिन् दाब्बा। इसमें ऐसी आयत है कि जो पुरुष ईश्वर की तरफ से आश्चर्य-शक्ति रखता है और एक साक्षी उसकी गवाही देता है और मूसा की किताब उसके पहिले की है।

सू० किस सू० सी० अमन् खलक। इसमें ऐसी आयत है कि वे लोग जिन को हमने पहिले किताब दी है उस रसूल को मानते हैं फिर इसी में दूसरी आयत है किताब वाले इस रसूल को मानते हैं। फिर इसी में दूसरी आयत है किताब वाले इस रसूल को मानते हैं।

सू० एहकाफ सी० हम्म। इसमें ऐसी आयत है कि बनी ईसराईल् में से एक पुरुष ने गवाही दी और मान लिया।

इसमें जानना चाहिये कि तौरेत् और अञ्जील में इस बात का लेशमात्र भी व्यवहार नहीं देखने में आने से सत्य यह बात कैसे हो सकती है यह केबल बनावट की बात देखने में आती है। जैसे व्यासादिक मुनि और शंकराचार्यादिकों के नाम से अनेक मिथ्या ग्रन्थ और बातों चल गई वैसे यह बात भी है।

सू० बकरः सी० अलम्। इसमें ऐसी तीन वक्त एक मतलब की बात आती है। जब ईश्वर के पास से एक किताब आई जो कि उनकी किताब की सत्य गवाही देती है तो भी उन लोगों ने उस किताब को नहीं माना। दूसरी आयत यह है कि कहते हैं कि हम मानते हैं उस किताब को, जो

हमारे रसूल के पास आई है और उसके सिवाय हम नहीं मानते, परन्तु यही सत्य है और उनकी किताब सत्य होने की गवाही देती है। तू उन लोगों से कह कि तुम लोगों ने रसूल को क्यों मार डाला। तीसरी इसी सीपारे और सूरे में यह आयत है कि जब रसूल ईश्वर के पास से आया उनकी किताब को सत्य कहता हुआ तो भी लोगों के समूह फिर गये। ऐसी एक मतलब की बात एक ही सूरे और सीपारे में बुद्धिमान् पुरुष भी तीन वार नहीं लिखता तो ईश्वर कैसे लिखेंगे। यह वक्ता का दोष है कि एक बात अनेक वार लिखना। पहिले की किताबों में गवाही भी ठीक-ठीक देखने में नहीं आती, इससे यह बात सत्य नहीं हो सकती।

सू० यून० सू० सी० यातजूरून्। इसमें ऐसी आयत है कि अगर तूँ कुरान पर शक करता है तो पूछ उन लोगों से जो तेरे पहिले कि किताब है, कि यह किताब ईश्वर से आई है तेरे पास।

यह स्पष्ट मालूम पड़ता है, इसमें कि लोगों की अपने मतलब के वास्ते रचना है, क्योंकि ईश्वर की ऐसी बात नहीं हो सकती।

सू० बनी इसूरा ईल् सी० सुबूहान् अल्लजी। इसमें ऐसी आयत है कि मूसा को किताब हमने दी और उसको उपदेश बनाया बनी ईसराईल् के वास्ते।

सू० मो मिन् सी० फमन् अजलम्। इसमें यह आयत है कि हमने बनी ईसराईल् को किताब दी। यही बात सूरे मोम् नून् फुर् कान् कसिस् और सिजूदा में है।

यह बड़ा दोष है जो कि एक बात अनेक वार लिखना। ऐसी बात, सर्वज्ञ जो ईश्वर, उसकी कभी नहीं हो सकती, किन्तु बुद्धिमान् पुरुष भी ऐसी बात नहीं लिखता तो ईश्वर कैसे लिखेंगे।

सू० साफान्, सी० गुम्माली। इसमें ऐसी आयत है कि हमने प्रकाशमान् किताब उन दोनों को दी।

सू० मायदः सी० लायुदब्बो। हमने तौरेत् भेजी उसमें उपदेश है, हमने अञ्जील भेजी उसमें उपदेश है।

सू० बनी इस् राईल् सी० सुबूहान् अल्लजी। इसमें लिखा है कि हमने दाउद को जबूर् दी।



सू० शोरा सी० कालल्लजी। यह कुरान है पहिली किताब में।

इसमें विचारना चाहिये कि एक वार उपदेश कर दिया और किताब भी दी, फिर और किताब का देना उसी मतलब के वास्ते, सो निर्भ्रम सर्वज्ञ जो ईश्वर उसकी बात ऐसी नहीं बन सकती।

सू० मायदः सी० इजासमिउ। इसके आगे इ० चिह्न लिखेंगे, इससे इतना सब जान लेना कि इसमें लिखा है। मत पूछो ऐसी बातों को कि जो खोली जायें तो तुम को बुरा लगे।

यह बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जो अधर्म की बात होती है, सो हृदय में बुरी लगती है और उसका खोल देना ही अच्छा है, क्योंकि उसको दूसरा न करे।

सू० हज् सी० इक्तरबू इ०। अगर वे लोग तुझ से झगड़ा करें, तू कह उनसे कि ईश्वर जानता है कि जो तुम लोग करते हो।

मुहम्मद जो करता है उसको भी तो ईश्वर जानता है, फिर इसका कहना क्या है।

सू० बकरः सी० अलम् इ०। क्या चाहते हो कि पूछो अपने रसूल से जैसा कि पूछा गया था मूसा से।

सू० बकरः सी० अलम् इ०। क्या चाहते हो कि पूछो अपने रसूल से जैसा कि पूछा गया था मूसा से।

सू० बकरः सी० अलम् इ०। क्या मुझसे झगड़ा करते हो ईश्वर के विषय में वह हमारा और तुम्हारा ईश्वर है। हमारे वास्ते हमारे कर्म, तुम्हारे वास्ते तुम्हारे कर्म हैं।

सू० निसा० सी० लायुहब्बो इ०। तुझको पूछते हैं किताब वाले यह बात, क्या आसमान से किताब उतरी है।

सू० निसा सी० बलयुहसिनात् इ०। अपने उपदेश को उनसे फेर दे। उसी सूरे और सीपारे में फिर लिखा है उनसे मुँह फेर ले।

सू० एराफ् सी० कालल्मल ओ इ०। इन मूर्खों से मुँह फेर ले।

सू० यूनफ् सी० यात जूरून् इ०। यह तुझको झूठा कहें कि तू उनसे

कह कि मेरे वास्ते मेरे कर्म और तुम्हारे वास्ते तुम्हारे कर्म हैं। तुम लोग हमारे कर्म से पृथक् और हम तुम्हारे कर्म से पृथक् हैं।

सू० एहजाब सी० अतुलोम उही इ०। उनसे मुँह फेरो और राह देखते रहो वे सब भी राह देख रहे हैं।

सू० जास्यिान् सी० कालेफमा इ०। उनसे मुँह फेर।

सू० काफर् सी० अम्म इ०। तुम लोगों को तुम्हारा मत और हमको हमारा मत।

सू० तोवा सी० यात जूरून् इ०। तुम सब उन लोगों से मुँह फेरो वे सब भ्रष्ट हैं।

सू० जुखरफ सी० इलहयब्दा इ०। उनसे अलग हो सलाम कहो।

स० निसा सी० यल्मुह सिनात् इ०। झगड़ा मत करो उन लोगों से जो कपट करते हैं अपने से।

सू० बलबूइन्ता सी० इन् आम् इ०। छोड़ दे उनको जो कुछ कपट बनाते हैं।

सू० इ० जासमिउ सी० हून् आम् इ०। जब देखें तू उन लोगों को कि हमारे वाक्य में शंका करते हैं, विचारते हैं तो उनसे मुँह फेर ले।

सू० वातेरक् सी० मुहसिर् इ०। हम विचार करते थे विचार करने वालों के साथ।

सू० आमारिज् सी० तवारक् इ०। उनको छोड़ दे विचार करैं और खेल करैं।

सू० इन् आम् सी० इजासमिउ इ०। उनको छोड़ दे इनके विचार में और खेल में।

सू० तोवा सी० वालमु। तू कह कि क्या तुम हँसी करते हो ईश्वर के साथ।

इसमें इन वाक्यों को विचारने से यह मालूम देता है कि जैसा बालकों का खेल होय, क्योंकि जैसे लड़के लोग एक बात को अनेक वार कहते हैं यह ईश्वर वा किसी विद्वान् पुरुष का भी काम नहीं।

सू० त्वाहा सी० कालेबलम् इ०। कुरान को तेरे पास हमने भेजा नहीं



है इस वास्ते कि तू पूछने वालों से तकलीफ पावे, बल्कि इस वास्ते भेजा है जो लोग डरते हैं, उनके वास्ते उपदेश हो।

यह बात केवल मुहम्मद की बनावट की मालूम पड़ती है, क्योंकि वह रसूल होता तो उत्तर देते, समझाते और सिद्धि भी होती। फिर ईश्वर ऐसी बात क्यों कहते।

सू० तोबा सी० यात जूरून् इ०। अरब के लोग बहुत ही काफर और कपटी हैं, क्योंकि ईश्वर के हुकुम को बिल्कुल नहीं मानते हैं।

यह भी बात ईश्वर की तरफ से नहीं, क्योंकि काफर और कपटी होंगे वे आपस में ही दु:ख पावेंगे। इसमें ईश्वर क्यों अपना सोच करे, क्योंकि ईश्वर चाहता तो एक क्षण में सब की बुद्धि धर्म में कर देता।

सू० बकर: सी० अलम् इ०। वाक्य सब हमने भेजे हैं, श्रद्धा रखने वाले लोगों के वास्ते।

सू० निहऊ सी० रुमायुवद्दो इ०। झूठ बाँधा है लोगों ने जो कि ईश्वर के वाक्य को नहीं मानते।

सू० निहल् सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। जो लोग ईश्वर के वाक्य को नहीं मानते, ईश्वर उनको राह नहीं दिखाता।

यह बात भी युक्त नहीं, क्योंकि प्रथम तो एक बात को दो वार कहना यह दोष है, दूसरा ईश्वर कृपालु है जैसे कि माता-पिता। ऐसे ईश्वर भी अपने पुत्रों को राह दिखाना चाहता तो अवश्य दिखाता, एक क्षण मात्र में।

सू० बनी इ० सूरा ईल् सी० सुब्हान् अल्लजी इ०। यह कुरान राह दिखाता है, सच्चे और सीधे पुरुषों को।

सू० काफ्० सी० हम्म इ०। कुरान उपदेश है उस पुरुष के वास्ते जिस को अन्त:करण है और वह चित्त लगा के सुनता है।

सू० काफ्० सी० अम्म इ०। तू कुरान से उपदेश कर जो पुरुष डरता है ईश्वर के दण्ड से।

सू० इन् आम् सी० बल् इन्ना इ०। तू उन पुरुषों की इच्छा के पीछे मत चल, जो लोग ईश्वर के वाक्य को झूठा जानते हैं।

सू० बनी ईसराईल् सी० सुबहान् अल्लाजी इ०। जिस वक्त तू कुरान पढ़ता है तो हम पड़दा डाल देते हैं तेरे और नहीं मानने वालों के बीच में।

इसमें विचारना चाहिये कि प्रथम तो कुरान का भेजना उपदेश के वास्ते है, ऐसा लिखा। फिर बीच में पड़दा डाल देना कि कोई न समझ सके। यह केवल पूर्वापर विरुद्ध है।

सू० आले इम्रान् सी० तिलकर् रसुल इ०। कोई वाक्य स्पष्ट है और कोई वाक्य अर्थान्तर है कि जिसका अर्थ कोई नहीं जानता सिवाय ईश्वर और पक्के ज्ञानी के।

जो ऐसा है तो उसका भेजना ही निष्फल, क्योंकि पक्का ज्ञानी तो जानता ही है तथा ईश्वर भी, फिर भेजने का कुछ प्रयोजन नहीं आता।

सू० यून० सू० सी० यात जूरून् इ०। जिस बात को उनके बोध में नहीं आया, उस बात को वे झूठा कहते हैं, परन्तु उसके अर्थ को उन लोगों ने नहीं जाना। इसका इसमें यह विचार है कि उनको सर्वशक्तिमान् ईश्वर क्या नहीं जना सका। इससे ईश्वर के सामर्थ्य में दोष आता है।

सू० राक्० सी० तवारक् इ०। कुरान बड़े रसूल का वाक्य है, अर्थात् जब्रईल का। ईश्वर से आया किसी कवि वा जादूगर का वाक्य नहीं है।

सू० तकूवीर सी० अम्म इ०। यह कुरान वाक्य है बड़े रसूल का। वह बड़ा पराक्रमी है और साहिब अर्थ के समीप प्रतिष्ठा वाला। शैतान का वाक्य नहीं है।

इससे स्पष्ट आता है कि मुहम्मद साहेब जहाँ जैसा प्रयोजन पड़ता था, वहाँ वैसा-वैसा वाक्य बना लेते थे, क्योंकि यह आकाश में बैठा होता तो सर्वव्यापक न होगा और जो सर्वव्यापक न होता सबका धारण और अन्तर्यामी न होता। तथा यह शैतान का वाक्य नहीं, यह जो कहना है सो जनाता है कुरान अन्य का बनाया। क्योंकि प्राप्त का निषेध किया जाता है। कोई कहीं बैठा हो तो उसको उठा दे और जो न बैठा हो तो क्या उठावे।

सू० हदीहू सी० कालफमा इ०। ईश्वर अपने सेवक पर प्रकाश करने वाले वाक्य भेजता है, इसलिये कि तुम सबकी प्रकाश के तरफ ले जाये।



इसमें देखना चाहिये कि पहिले पड़दा डाल देता हूँ और जिसका अर्थ कोई नहीं जान सकता ऐसा कहा, और फिर प्रकाश की तरफ ले जाये यह पूर्वापर विरुद्ध वाक्य है। ऐसे ईश्वर के नहीं होते, सिवाय मनुष्य के।

सू० कहफ् सी० सुबूहान् अल्लजी इ०। धन्य है ईश्वर जिसने अपने सेवक के पास किताब भेजी, उस किताब में कुछ गड़बड़ नहीं।

सू० जुमर् सी० अजलम् इ०। कुरान अरबी है उसमें कुछ गड़बड़ नहीं।

अपने इसका विचार करना चाहिये कि सेवक के पास भेजने और अरबी के होने से गड़बड़ नहीं हो सकती। क्योंकि अरबी ग्रन्थों में भी बहुत-सा गड़बड़ बनाया है और सेवक के पास भेजना, इतनी बात से कुरान का प्रमाण नहीं हो सकता जब तक कि वह कुरान निर्दोष न होय।

सू० जुखरफ सी० इलहेयरद्दो इ०। खुदा कहता है कि कुरान हमारे पास है सब पुस्तकों की माता में, अर्थात् भीतर।

इसके कहने से स्पष्ट मालूम देता है कि कुरान तो ईश्वर के पास है और यह कुरान किसी ने बना लिया जो कि आजकाल प्रसिद्ध मुसल्मानों में है।

सू० निसा० सी० वलमुह सिनात् इ०। कुरान को नहीं सोचते हैं जो, वह ईश्वर सिवाय किसी अन्य के तरफ से होता, तो उसमें बहुत-सा असंगत होता।

इसमें विचारना चाहिये जो कुरान को विद्वान् लोग पक्षपात छोड़ के प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से विचारें तो अनेक असंगत दोष हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं।

सू० जुमर् सी० फमन् अजलम् इ०। ईश्वर ने अच्छा पुस्तक भेजा है सबसे मिलता हुआ कुरान है।

क्योंकि तौरेत् जबूर् और अञ्जील इनसे कुरान की बातें बहुत नहीं मिलती। इससे मिलता भया जो कुरान ऐसा जो उनका कहना सो अयुक्त है।

सू० इन् आम् सी० इजा समिऊ इ०। ईश्वर के वाक्य बदलते नहीं।

यह भी बात अयुक्त है, क्योंकि तौरेत् आदि पुस्तकों से विरुद्ध-विरुद्ध बात कुरान में है।

सू० इन् आम् सी० वलबूइन्ना इ०। ईश्वर के वाक्य का बदलने वाला कोई नहीं। यही बात यून, सूकहफ्, फतेह काफ्, बनी, ईसराईल्, मलायकह् और रूम् इन सात सूरों में भी कथन है।

देखना चाहिये कि यह बात बहुत अयुक्त है सो आठ वक्त एक बात को लिखना एक ग्रन्थ में, सो यह बहुत छोटी बुद्धि वाले का काम है।

सू० बकरः सी० अलम् इ०। जिस वाक्य को हम बदलते हैं अथवा भुला देते हैं तो पूर्व की अपेक्षा अच्छी ले आते हैं।

सू० निहल् सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। जब हम बदलते हैं एक वाक्य को दूसरे वाक्य के स्थान में, सो ईश्वर अच्छा जानता है जिस बात को भेजता है, परन्तु नहीं मानने वाले कहते हैं कि तू ही बना ले आया है, तू उनसे कह कि ईश्वर ने सत्य भेजा है।

सू० यूराफ में भी यही वाक्य लिखा है।

इसमें विचारना चाहिये कि ईश्वर जो वाक्य कहता है, सो कभी नहीं बदलता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। फिर ईश्वर अच्छा जानता है यह बात कहना व्यर्थ है, क्योंकि ईश्वर तो अच्छा जानता है, परन्तु ऐसा वाक्य ईश्वर का कभी नहीं हो सकता, किन्तु मनुष्य का वचन यह निश्चित होता है, मनुष्य को भ्रम के होने से। फिर दूसरी वार लिखना, सो भी दोष है।

सू० बनी इस्राईल् सी० सुव्हान् अल्जी इ०। जो हम चाहें तो उठा ले जावें इस कुरान को, जिसको हमने तेरे पास भेजा है।

यह भी ईश्वर की बात नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर जो कुछ देता है सो विचार के ही देता है फिर दूसरी वार यह कभी नहीं कहता कि मैं इसको देके ले-लूँ।

सू० इन् आम् सी० इजासमिऊ इ०। तू कह कि मैं कुछ नहीं माँगता हूँ, तुम लोगों से मजदूरी कुरान पर। यही वाक्य सू० फुर्कान् तथा सू० खाद् शोरा यू० नून् में भी है।



एक वाक्य का अनेक वार एक ग्रन्थ में लिखना जिनका कि एक ही प्रयोजन है, यह बड़ा भारी दोष है।

सू० यूनस् सी० यातजूरून् इ०। तू कह कि मैं अपने वास्ते नलाभर खाता हूँ न हानि जो ईश्वर चाहे।

सू० जारियात् सी० कालेफमा इ०। मैं नहीं माँगता हूँ जीविका उनसे।

सू० सबा सी० वमन्यक् नुत् इ०। तू कह कि मैंने जो तुम से जीविका माँगी हो, सो तुम्हीं लेओ।

सू० नून् सी० तवारक् इ०। हे मुहम्मद! तेरे वास्ते जो जीविका देता है, वह अभिमान न करे कि मैं पालनकर्त्ता हूँ।

परन्तु इसके विरुद्ध बहुत वाक्य हैं।

सू० इन आम् सी० वलइन्ना इ०। ईश्वर का अंश ले आओ अन्न काटने का समय।

सू० अन् फाल् सी० कालल् मलओ इ०। लूट का माल ईश्वर और रसूल का है।

सू० अन्फाल् सी वालम्० इ०। तुम लोग जानो कि सब असाब तूने लूटा है उनमें से पाँच वाँ हिस्सा ईश्वर, रसूल, रसूल के सम्बन्धी, गरीब परदेशी और अनाथ लड़कों का है।

इनमें पूर्वापर विरुद्ध बड़ा दोष है, क्योंकि प्रथम तो कहा कि मैं तुम से कुछ लेना नहीं चाहता और पीछे पाँचवाँ हिस्सा का चाहना यह प्रत्यक्ष विरोध है। ऐसा कथन ईश्वर का कभी नहीं हो सकता, सिवाय मनुष्य के।

सू० अन् फाल् सी० वालम् इ०। तू कैदियों को कह दे कि यदि ईश्वर ऐसा समझे कि तुम लोगों के मन में भलाई है तो तुम लोगों को फेर देवें जो लूटा है।

यह केवल मुहम्मद अपने मतलब सिद्ध करने के वास्ते बात बनाते हैं। यह बात लूटने की, और नहीं फेरने की, ईश्वर की कभी नहीं होती। देखिये यह केवल मुहम्मद की बात है ईश्वर की नहीं, क्योंकि ईश्वर भेंट नजर को कभी नहीं चाहता।

सू० मुनाफिन् सी० कद् समिअ इ०। कहते हैं कि रसूल के सेवकों को मत देओ जिसमें सब छिन्न-भिन्न हो जावें।

फिर उसी सूरे और सीपारे में लिखा है कि तुम्हारा धन और कुटुम्ब ईश्वर स्मरण से न भुला देवें। अर्थात् मुहम्मद युक्ति से चाहता है कि मुझको धन मिल जाये।

सू० हशर् सी० कद् समिअ। जो धन ईश्वर ने दिया अपने रसूल को। तुम सबने उस पर चढ़ाई नहीं की थी, फिर भी इसी सूरे और सीपारे में लिखा है कि जो धन दिया ईश्वर ने अपने रसूल को गाँव वालों से। वह धन सब ईश्वर के रसूल के सम्बन्धी, गरीब और परदेशियों का है और रसूल तुमको देवे तो उसको मान लेओ।

देखना चाहिये कि अपने कुटुम्बियों के मतलब के वास्ते वचन मुहम्मद ने बना लिये हैं।

सू० यूनस् सी० यात जूरून् इ०। तू कह कि मुझको शक्ति नहीं है कि कुरान् को बदल डालूँ अपनी तरफ से, परन्तु जो वाक्य मेरे पास आते हैं उनके अनुसार मैं चलता हूँ।

इसी सूरे और सीपारे में लिखा है यह कुरान् ईश्वर के विना दूसरे की बनाई नहीं है। इसकी सत्यता और इसके हैं ईश्वर की तरफ से हैं।

सू० हाक् सी० तवारक् इ० कुरान बड़े रसूल का वाक्य है। ईश्वर की तरफ से आया है किसी कवि वा जादूगर का वाक्य नहीं है।

सू० इसी और सीपारे में लिखा है यदि तू कोई बात हम पर कहे तो हम तेरी शक्ति ले-लेते और तेरे जीवन की नाड़ी को काट डालते।

सू० निहल् सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। कहते हैं कि तू ही कुरान बना ले आया है, तू उनसे कह कि जिब्राईल फरिश्ता ले आया है ईश्वर से सत्य-सत्य।

इसमें विचारना चाहिये कि जो कुरान ईश्वर का वाक्य होता तो ऐसी बात कुरान में न होती कि कुरान ईश्वर का बनाया है जिब्राईल ले आया है मुहम्मद के पास ले आया है। मुहम्मद के चारों ओर फरिश्ते रक्खे हैं ईश्वर ने, कि मुहम्मद मेरा हुकुम करता है वा नहीं।



जो ऐसा है तो ईश्वर सर्वज्ञ नहीं और जो फरिश्तों से मुहम्मद की रक्षा करता है तो सर्वशक्तिमान् नहीं। इससे यह कुरान ईश्वर का बनाया नहीं हो सकता। फिर डर भी दिखलाता है और जबर्दस्ती करता है कि तू मेरी बात न मानता तो तेरी शक्ति मैं हर लेता और तेरे को मैं मार भी डालता। यह बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती सिवाय आदमियों के।

सू० जिन् सी० तवारक् इ०। रसूल के आगे और पीछे परीक्षक लोग हैं ईश्वर की तरफ से इस बात को जानने के अर्थ कि रसूल ने ईश्वर की आज्ञानुसार काम किया वा नहीं। इस बात से ईश्वर अल्पज्ञ हो जाता है, सो यह बड़ा दोष ही है।

सू० यूनस् सी० यातजूरून् इ०। यदि तू सन्देह कर इस कुरान पर जो हमने भेजी है तो पूछ ले उनसे जो तेरे पहिले की किताब को पढ़ते हैं कि यह सत्य है ईश्वर के पास से आई है।

यह बात पहिले भी कुरान में लिखी है फिर इसका लिखना व्यर्थ है और पहिले की किताब वेद, बाबिल, जबूर और अंजील हैं। उनमें कुरान का नाम भी नहीं इससे यह जाना जाता है कि मुहम्मद ने अपना मत चलाने के वास्ते कुरान रच ली है।

सू० बनी इसराईल सी० सुबूहान अल्लजी इ०। जो मैं तुझ को ठीक-ठीक नहीं रखता तो तू विरुद्ध मत वालों की तरफ झुक जाता।

यह भी बात ईश्वर की नहीं, किन्तु मनुष्य की है जिन को विरुद्ध मत बतलाता है, वे भी ईश्वर की तरफ से हैं। ऐसा उनसे भी सुना जाता है, फिर ईश्वर ऐसी बात क्यों कहेगा और विरुद्ध मत से छोड़ाया चाहे तो क्षणमात्र में छोड़ा दे।

सू० यूनस सी० यात जूरून इ०। मत पुकार ईश्वर के सिवाय दूसरे को। यदि पुकारे तो तूँ बड़ा अन्यायी है।

मुहम्मद धन प्रतिष्ठा और चेले करने को पुकारते ही थे फिर यह कहना अयुक्त है।

सू० बकरः सी० सयूकलो इ०। जो लोग किताब वाले हैं, अर्थात् यहूदी और ईसाई, वे लोग जानते हैं कि किवले की तरफ मुह फेरना ठीक

है ईश्वर के उपदेश से।

यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि किवले की तरफ ही मुह फेरना व्यर्थ है, ईश्वर के सर्वव्यापक होने से। और यहूदी तथा ईसाई लोगों ने इस बात की प्रसिद्धि भी नहीं कि किवले की तरफ मुह फेरना। यह बात बनावट की है, ईश्वर की नहीं।

सू० कहफ सी० सुबहान अल्लजी इ०। जो पुरुष चाहे इसको माने और जो चाहे सो न माने।

यही बात सूरे मुदस्तिर अब्बस और दहर में भी लिखी है। यह बड़ा दोष और छोटी बुद्धि वाले का काम है।

सू० हज्जू सी० इकतुबर इ०। हमने जो रसूल तेरे पहिले भेजा, वह जब बोलने लगा तब शैतान ने उसमें अपनी बात मिला दी। उसके पीछे ईश्वर ने शैतान की बात को रद्द कर दिया, अपने दृढ़ वाक्यों के द्वारा।

सू० शोराय सी० कालल्लजी इ०। रसूल पर शैतान नहीं उतरते हैं। उन सब को यह शक्ति नहीं है। वे श्रवण ही नहीं कर सकते हैं।

यह बात पूर्वापर विरुद्ध है, क्योंकि पहिले पैग़म्बरों की बातों में शैतान ने अपनी बात मिला दी और उनको बहका दिये, फिर लिखा कि रसूल पर शैयतान नहीं उतरते हैं। ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं होती, सिवाय मनुष्य के।

सू० एराफ सी० बलवइन्ना इ०। जो लोग हमारे वाक्य को झूठ करते हैं और अहंकार अभिमान करते हैं वे सदा नरक में रहेंगे।

इसी सूरे और सीपारे में, फिर लिखा कि जो लोग हमारे वाक्य को झूठ बनाते हैं, अभिमान और अहंकार करते हैं वे स्वर्ग में न जायेंगे और आसमान के किवाड़ उनके वास्ते नहीं खुलेंगे।

एक ही सूरे और सीपारे में दो वार लिखना, सो कैसा है कि पीसे भये पिसान को फिर पीसना। यह बड़ा दोष है।

सू० इन् आम् सी० इजा समिऊ इ०। यदि जो लोग कुरान को नहीं मानेंगे तो हम दूसरी जाति को नियुक्त कर देंगे इन पर जो कि कुरान को मानते हैं।



यह केवल मुहम्मद साहेब की युक्ति है अपने मतलब सिद्ध करने के वास्ते। यह ईश्वर की बात कभी नहीं हो सकती।

सू० सवा सी० मन्यक् नुत् इ०। जो लोग हमारे वाक्य में विचार करते हैं, मुहम्मद के पराजय के लिये उन लोगों को बड़ा दण्ड होगा।

फिर भी इस सूरे और सीपारे में यही बात लिखी है, सो मुहम्मद साहेब की बनाई है, ईश्वर की तरफ से कभी नहीं। सो मुहम्मद कपट-छल से बात भूल जाता था, इससे एक बात अनेक वार लिखता था।

सू० जासिया सी० इल् हेयरद्दो इ०। हमारे वाक्य में से जब कुछ जानते हैं, तब उसको तुच्छ और व्यर्थ समझते हैं। ऐसे लोगों को बड़ा दण्ड होगा।

सू० मूमिन् सी० फमन् अजलम् इ०। जो लोग किताब और रसूल को झूठा कहते हैं वे सब शीघ्र जावेंगे।

सू० तूर् सी० कालेफमा इ०। अब पश्चात्ताप है उन पुरुषों को, जो हमारे वाक्य में विचार करते हैं और झूठा बताते हैं।

सू० इन् आम् सी० बलव् इन्ना इ०। कौन पुरुष अधिक अन्यायी है, उस पुरुष से जो कि ईश्वर के वाक्य को झूठ कहता है, उससे फिर जाता है, हम उसको जल्दी देंगे।

सू० यूनस् सी० यात जूरून् इ०। कौन अधिक अन्यायी है जो ईश्वर पर झूठ बाँधता है और ईश्वर की बात को झूठ बतलाता है।

सू० वेयन् सी० अम्म इ०। किताब वाले यहूदी, ईसाई और अनेक ईश्वरवादी इन सब में से जो नहीं मानेगा वह अत्यन्त बुरा है, वह सदा नरक की आग में रहेगा।

सू० मोमिन् सी० फमन् अजलम् इ०। जो लोग विना युक्ति के हमारे वाक्य में झगड़ते हैं उनके मन में अभिमान है वे इसको न पावेंगे।

सू० मोमिन् सी० कदफ्लः इ०। अगर हम उनको दण्ड दें तो भी ईश्वर के पद को न मानेंगे।

सू० मादहः सी० लायुहब्बो इ०। बात को फेर देते हैं स्व स्थान से, अर्थात् वाक्य के अर्थ से।

ये बात ईश्वर की नहीं, किन्तु मुहम्मद और मौलवियों की है। और सम्प्रदायों की निन्दा के विना उनका सम्प्रदाय बढ़ नहीं सकता। इससे ऐसी-ऐसी बात हम लोगों ने लिखी है।

और उनको दण्ड होगा तो भी ईश्वर के पद को वे नहीं मानेंगे, और उनको अवश्य दण्ड होगा यह पूर्वापर विरुद्ध और तुच्छ बात है, सो ईश्वर की ऐसी बात कभी नहीं होती।

इसमें फिर लिखा है कि तुम सब सत्य मार्ग पर नहीं हो, जब तक तौरेत और अंजील को ठीक न करो।

सू० सवा सी० मन्यक नुत् इ०। हमने वे किताबें नहीं दी हैं जो वे पढ़ते हैं, अर्थात् तौरेत और अंजील बदली हुई है।

सू० साफाल् सी० मालीला इ०। क्या तुम्हारे पास पक्की युक्ति है अपनी किताब ले आओ जो सच्चे हो।

सू० नूर् सी० काल्फमा इ०। क्या उनके पास श्रेणी है और आकाश पर पहुँचकर सुनते हैं तो अपनी सुनी कोई बातें कहो, पक्की युक्ति के साथ।

सू० नून् सी० तवारक् इ०। क्या तुम्हारे पास किताब है जिसमें पढ़ते हैं।

सू० कसिस् सी० अम्मन् खलक इ०। कहते हैं कि तू नहीं दिया गया जैसा कि मूसा को।

तू कह कि ईश्वर के पास से किताब ले आओ जो अधिक उपदेश करने वाली हो, तो मैं उसको मानूँ।

सू० यूनस् सी० यात जूरून् इ०। काफरों ने कहा कि यह बड़ा जादू करने वाला है।

सू० बनी इसराईल् सी० सुबूहान् अल्लजी इ०। यह पुरुष जादू से पागल हो गया, इसके पीछे मत चलो।

सू० सवा सी० मन्यक नुत् इ०। यह ठीक जादू है। यही बात सू० साफात् और अहिकाफ् में भी है।

सू० करमे सी० कालफमा इ०। यदि वे लोग देखें किसी वाक्य को



तो फिर जाते हैं और कहते हैं कि यह जादू है पक्का।

सू० राद् सी० माउब इ०। यदि कुरान से पहाड़ चलने लगते पृथिवी फट जाती और मुड़दे बोलते। ये सब ईश्वर की शक्ति से होगा, किन्तु कुरान से नहीं हो सकता।

सू० हशर् सी० कद् खमिअ इ०। अगर हम कुरान् को पहाड़ में भेज दें तो तू देखे उस को रोता और काँपता हुआ ईश्वर के भय से।

सू० यूनस् सी० यात जूरून्। पहिले लोगों ने भी ऐसे ही रसूलों को झूठ कहा है।

सू० हजर् सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। जो रसूल लोगों के पास आया उसको उन लोगों ने हँसा।

सू० हज्जू सी० इक्तुरब् इ० यदि तुझको झूठा कहा इन सबने, तो पहिले लोगों ने, अर्थात् नूर्०, आद्०, समूद्०, इब्राहीम०, लूत्०, मदियन्०, मूसा० इनको भी झूठा कहा और हमने काफिरों को अवकाश दिया है।

सू० मोमिन्न सी० कद्फलह इ० जो रसूल आया उस समय के लोगों ने उस-उस को झूठा कहा।

सू० स्वाद् सी० मालीला बहुत लोगों ने रसूल को झूठा कहा है।

सू० अम्बिया सी० इक्तरब् इ०। तुमसे पहिले वाले रसूलों को हँसा है और निरादर किया है।

सू० यूनस् सी० मामिन्दाब्बा इ०। हमने कुरान् को अरबी जबान में भेजा।

यही बात सूरे राद् और सीपारे माउबर्रॣ में भी लिखी है।

सू० मरियम् सी० कालबलम् इ०। कुरान को हमने सुलभ किया तेरी वाणी में, जिससे तू उन सबको समझावे और डरावे।

सू० शोराद् सी० कालल्लजी इ०। जिब्रईल् फरिश्ते ने अरबी भाषा में तेरे हृदय में पहुँचाया यदि हम कुरान को अजम वालों के पास अरब छोड़ के और देशवासियों के पास भेजते तो वे लोग उसको न मानते क्योंकि वे लोग उसको जानते नहीं।

सू० त्वाहा० सी० कालबलम् इ०। हमने कुरान अरबी में भेजी सीधी

और सत्य।

यही बात सूरे जुमर् और सी० मालीला में भी है।

सू० हम्मुस् सिज्दह सी० फमन् अजलम् इ०। अगर हम उस कुरान को अरबी भाषा को छोड़ दूसरी भाषा में भेजते तो वे लोग कहते कि हम सब अरबी भाषा में समझते हैं और यह कुरान दूसरी भाषा में है इसकी बात खोली नहीं गई।

किस वास्ते कि सू० जुखूरफ सी० इल्हेयरद्दो इ०। हमने इसको अरबी भाषा में भेजा है और वह कुरान हमारे पास है पुस्तकों की भाषा के बीच में।

सू० शोरा सी० इल्हेयरद्दो इ०। तेरे पास कुरान हमने भेजा है जिससे तू मक्के वालों को और उसके पास वालों को भय दिलावे।

सू० कमर् सी० कालफमा इ०। कुरान को हमने उपदेश के लिये सुलभ किया है।

फिर इसी सूरे और सीपारे में यही वाक्य चार दफे लिखा है।

सू० अहिकाफ् सी० हम्म इ०। यह किताब सत्य और अरबी भाषा है।

सू० इब्राहीम सी० माउबर्ऋ इ०। हमने जो रसूल भेजा सो उसकी देश की भाषा में जिससे वह रसूल खोल देवे वाक्यों को उन लोगों के पास।

सू० कसिस० सी० अम्मन् खलक इ०। तू उपदेश वालों को डरावे जिस देश में कोई रसूल तुझ से पहिले नहीं आया।

यही बात सू सिजूदह् सी० अतुलोमा इ०, सू० सवा सी० मन्यक नुत् में भी लिखी है।

सू० इन् आम् सी० बलव् इन्ना इ०। दो समुदाय पर, अर्थात् यहूदी और ईसाई पर पहिले से किताब भेजी और हम उनको बुद्धि की समझ से विस्मृत नहीं है। जो हमारे पास किताब आती तो हम उपदेश पाते। जब किताब आई तो वह उपदेश युक्ति पूर्वक उन सबों के वास्ते है।

सू० बनी इसराईल सी० सुबूहान् अल्लजी इ०। कुरान को हमने



थोड़ा-थोड़ा भेजा, जिससे तू इसको धीरे-धीरे पढ़े।

सू० कुरान सी० कालल्लजी इ०। सम्पूर्ण कुरान एक दफे क्यों न पहुँचा इसका कारण यह है कि तेरे हृदय को सन्तुष्ट रक्खे।

सू० बकर: सी० सय्कूलो इ०। रमजान के महिने में कुरान आई।

सू० कदर् सी० अम्म इ०। हमने कुरान को शवे कदर् में भेजी।

सी० दुखान् सी० इल्हेयरद्दो इ०। प्रकाशक किताब को हमने अच्छी रात में भेजी।

सू० निहल् सी० रूब्बमायुवद्दो इ०। कहते हैं कि मुहम्मद को एक आदमी ने सिखाया है। उसकी भाषा अरब देश को छोड़ के अन्य देश की है और इसकी भाषा अरबी है।

सू० फुर्कान् सी० कदफल: इ०। उस पर सहायता और लोगों ने की है और यह पुरानी कहानी है उसको लिखता है यह सब बातें उसको बताई जाती हैं।

सू० दुखान् सी० इल्हेवरद्दो इ०। कहते हैं कि उस मुहम्मद को सिखाया-पढ़ाया है और वह पागल है।

सू० एह्काफ् सी० हम्म इ०। जब तेरे तरफ को एक समूह जिन अर्थात् दैत्य को भेजा तो उन सबने कुरान को सुना और कहा कि हम ने सुनी यह किताब मूसा के पीछे आई है इसको मानो।

सू० फुर्कान् सी० कालल्लजी इ०। वे सब तुझ पर खण्डन करते हैं, सो खुदा कहता है कि हम उसका उत्तर सच्चा और अच्छा देते हैं।

इन बातों को बुद्धिमान् लोग विचारें कि ये सब बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, क्योंकि एक तो वार-वार एक बात का कुरान में लिखना यह बड़ा दोष है, तथा निरर्थक बात कहना यह भी बड़ा दोष है। और किस्सा की नांई लिखना यह बात परमेश्वर की कभी नहीं होती।

और ''हमारे वाक्य में विचार करते हैं वे पश्चात्ताप के पात्र हैं''।

यह जो कहना, सो विद्याहीन और छोटी बुद्धि वाले पुरुष का जाना जाता है, ईश्वर का कभी नहीं।

क्योंकि ''जो इन वाक्यों पर विचार करता है सो अधिक अन्यायी

उस पुरुष से कोई नहीं'', यह जो कहना, सो केवल अपना प्रपंच बढ़ाने के लिये है, ईश्वर का कभी नहीं। ''फिर उसको मैं जल्दी दण्ड देऊँगा'', यह कहना भी ईश्वर का नहीं हो सकता। फिर दण्ड देंगे तो भी न मानेंगे युक्ति से हमारे वाक्यों में झगड़ते हैं अंजील पर तर्क का करना कि अंजील को ठीक करो प्रथम ऐसा कहा कि मूसा आदि की किताबें हमने दी। फिर नहीं, ऐसा कहना। क्या उनके पास श्रेणी है जिससे आकाश पर चढ़, चढ़ के किताबें सुनी और ले-ली। ऐसे व्यर्थ तर्क का करना। मुहम्मद से लोगों का प्रश्न है कि तू जो पैग़म्बर है तो मूसा की नांई सिद्ध क्यों नहीं है। उसका उत्तर ईश्वर की तरफ से मुहम्मद ने कहा कि ईश्वर के पास से अधिक उपदेश करने वाली किताब ले आओ। यह उत्तर ऐसा है कि किसी ने किसी से पूछा कि आम का दर्खत कौन है, तब उत्तर देके किसी ने कहा कि देख यह कचनार का दर्खत है। किसी ने रोटी खाई और वमन भया चावल का। ऐसा यह उत्तर है। काफिरों ने कहा कि यह मुहम्मद जादू करने वाला है तथा पागल है, इसके पीछे मत चलो। इसका ठीक-ठीक युक्ति पूर्वक उत्तर देना था, सो कुछ ठीक उत्तर का नहीं देना। अगर हम कुरान को पहाड़ में भेजेंगे तो तू देखेगा ईश्वर के भय से उसको रोता और काँपता ऐसी अप्रसंग बात लिखना। जैसे तेरा अनादर, उपहास दुष्ट लोग करते हैं वैसे मूसा आदि पैग़म्बरों का भी हाल लोगों ने किया था। इससे ठीक उत्तर नहीं होता, जब तक प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से सत्य परीक्षा से ठीक-ठीक निश्चय न करा देवे। ''हमने कुरान में मुश्किल और अर्थान्तर कठिन वाक्य भेजे हैं फिर हमने सुलभ किया तेरी वाणी में'' इस पूर्वापर विरुद्ध का लिखना। जिब्रईल ने तेरे हृदय में कुरान को पहुँचाया, इससे विरुद्ध पूर्वापर लिखा कि यह कुरान बड़े रसूल का वाक्य है, अर्थात् जिब्रईल का, यह असम्बद्ध का लिखना। यह कुरान अरबी भाषा में भेजा सत्य और सीधी, फिर यह कुरान दूसरी भाषा में है उसको हमने नहीं खोली। वह कुरान सब पुस्तकों की माता के बीच में हमारे पास है। फिर लिखा कि कुरान मैंने तेरे पास भेजा, यह छल और असम्बद्ध प्रलाप का कहना। फिर एक-एक वाक्य को चार-चार दफे लिखना। तू उपदेश करने



वालों को डरावे। जिस देश में तुझ से पहिले रसूल नहीं आया केवल साधारण मनुष्यों की बात अन्यथा का लिखना। कुरान को हमने थोड़ा-थोड़ा भेजा, फिर लिखना कि रमजान के महिने में सम्पूर्ण कुरान आ गई। फिर लिखना कि हमने कुरान को शवे कदर में भेजी। फिर इससे विरुद्ध प्रकाशक किताब को हमने अच्छी रात में भेजी। ऐसी-ऐसी विरुद्ध और छोटी बात का लिखना। फिर कहते हैं कि मुहम्मद को एक आदमी ने सिखाया है इत्यादि प्रश्न का यथावत् उत्तर का नहीं देना। जिन्न, अर्थात् दैत्यों का किस्सा लिखना अप्रसंग से, वे सब तुझ पर खण्डन करते हैं। हम उसका उत्तर सच्चा और अच्छा देते हैं, ऐसी बात खुदा की नहीं होना। ऐसी-ऐसी इत्यादिक अन्यथा बातों का निश्चय होने से यह अवश्य बुद्धिमानों को निश्चय है और होगा कि कुरान ईश्वर की तरफ से नहीं आया, इसमें सन्देह नहीं। अपनी बुद्धि, प्रत्यक्षादिक प्रमाण के विचार से हमको ऐसा ही यह निश्चय होता है कि यह कुरान आदमियों ने अपने मजहब के वास्ते बना ली है।

इसके आगे इस बात के वर्णन मैं है कि मुहम्मद का, रसूल का होना किस-किस युक्ति से होता है, इस बात के ऊपर लिखा जायेगा।

सू० राद् सी० माउबर्रू इ०। ऐसे ही तुझ को भेजा हमने कि जो खाली थी रसूल से तू उनके पास वर्णन कर हमारी वाक्यों को जिस वास्ते हमने तुझ को भेजा है।

सू० निहल सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। प्रत्येक जाति में एक-एक रसूल हमने भेजा है।

सू० मलायका सी० मन्यक नुत् इ०। कोई जाति ऐसी नहीं है जिसके वास्ते एक रसूल नहीं भेजा।

सू० सू० यूनस् सी० यात जूरून् इ०। सब जाति में एक-एक रसूल है। जब उनका रसूल आया तब उसका हक लोगों ने नहीं माना।

सू० बकर: सी० सयकूलो इ०। हमने भेजा है तुम लोगों में एक रसूल तुम्हारी जाति में से। तुम सब के पास आके तुम्हारी भाषा में हमारे वाक्य को कहे।

सू० आले इम्रान सी० लतनाल् इ०। अरब में हमने एक रसूल उन्हीं लोगों में से भेजा। वे लोग पहिले से अन्धकार में थे।

सू० तोवा सी० यात जूरून् इ०। तुम्हारा रसूल तुम्हारी जाति से आया है।

सू० इब्राहीम सी० माउबर्रह्र इ०। हमने जो रसूल भेजा सो उसी जाति की भाषा बोलने वाला, जिससे वह रसूल उन लोगों को बताये।

सू० हुजराल सी० हम्म इ०। तुझ पर ऐहसान रखते हैं तेरा दीन मानने से। तू उनको कह दे कि मेरे पर एहसान मत रक्खो। ईश्वर ने तुझ पर एहसान किया है कि दीन की राह तुम को दिखाई।

सू० आले इम्रान् सी० लतनालू इ०। मुहम्मद सिर्फ रसूल और मनुष्य है। यही बात सू० हनी इसराईल सी० सुब्हान् अल्लजी इ० में भी दूसरी वार लिखी है।

इसमें बुद्धिमानों को अवश्य विचारना चाहिये कि एक ग्रन्थ में एक बात अनेक वार बुद्धिमान् भी नहीं लिखता तो ईश्वर कैसे लिखेंगे। प्रथम कुरान में लिखा कि तुझ से पहिले कोई रसूल जिस देश में नहीं भेजा है उनको तू डरा और उपदेश कर। फिर इसके विरुद्ध यह लिखा कि सब जातियों में एक-एक रसूल उनकी भाषा में समझाने वाला भेजा है। यह जो लिखना, सो बहुत छोटी बुद्धिवाले का लिखना जनाता है। ईश्वर का ऐसा वचन कभी नहीं होता, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ और निर्भ्रम ज्ञान वाला है। उसका ऐसा लिखना कभी नहीं हो सकता। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। जो सर्वशक्तिमान् होता है, सो दूसरे की मदद नहीं चाहता थोड़ी भी। और जो दूसरे की मदद से काम करता है, सो ईश्वर और सर्वशक्तिमान् कभी नहीं होता। सो जो रसूल के विना उपदेश नहीं कर सकता तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् ही नहीं रहता। इससे यह निश्चय जानना चाहिये कि ईश्वर जन्म धारण कभी नहीं करता और उपदेश करने के वास्ते रसूल को भी नहीं भेजता। जो ईश्वर सबको उपदेश करना चाहे तो एक क्षण में सब को यथावत् सत्य उपदेश कर दे। और अवतार से दुष्टों को मारना तथा क्रीडा का करना यह भी झूठ बात है, क्योंकि रावणादिकों का मारना और भक्तों



को तारना यह ईश्वर के सामने कुछ बड़ी बात नहीं, किन्तु एक क्षण में सब जगत् का नाश और भक्तों को विना अवतार और रसूल की सहायता से ईश्वर कर सकता है। फिर ऐसी बात का जो लिखना है, सो ईश्वर की ईश्वरता का नाशक है। ऐसा ही बुद्धिमानों को निश्चय करना उचित है अन्यथा नहीं।

सू० मोमिन् सी० फमन् अजलम् इ०। अपने सेवकों में से जिस पर चाहे भेज दे फरिश्ते को अपने हुकुम से।

यह बात भी ईश्वर की नहीं हो सकती, क्योंकि फरिश्तों से काम का करना यह सर्वशक्तिमत्त्व और सर्वान्तर्यामी का विरोधी है।

सू० तोवा सी० वालम् इ०। ईश्वर ने ऐसी सेना भेजी जिसको तुम लोग नहीं देखते हो, ईश्वरने सहायता की है अपनी सेना से।

यह भी बात अयुक्त है, क्योंकि सेना से सहायता का करना सर्वशक्तिमत्त्वादिक ईश्वर के जो अनन्त गुण उनका विरोधी है। फिर सेना का भेजना तो भी सर्वत्र शीघ्र मनुष्यों के युद्ध के विना विजय के नहीं होने से, ईश्वर की बात यह कभी नहीं हो सकती। ईश्वर की सेना न किसी ने देखी न उसका कुछ कार्य देखने में आया। फिर उनने कैसे कुरान का निश्चय किया कि यह परमेश्वर की बनाई है। यह बड़ा हम को आश्चर्य होता है।

सू० कहफूसी० कालबलम् इ०। तू कह कि मैं भी मनुष्य हूँ जैसे तुम सब, परन्तु मेरे पास ईश्वर का वाक्य पहुँचता है।

यही बात सू० हम्मुस् सिजूदहूसी० फमन् अजलम् में भी फिर लिखी है।

यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि जैसे बालकों को मनुष्य सिखाता है, वैसे मुहम्मद को ईश्वर कभी न सिखलावेगा, क्योंकि वह न्यायकारी है, मुहम्मद की तरफदारी कभी न करेगा। और जो करता है, सो अन्यायकारी हो जाता है। फिर इस बात को दूसरी वार लिखना यह तो बड़ा दोष है।

सू० आले इम्रान् सी० अलनालू इ०। क्या यह तुम सब को पूरा नहीं है कि ईश्वर ने तुम्हारे लिये ३००० फरिश्तों से सहायता की है।

सू० अन्फाल सी० कालल मलओ इ०। मैं तुम्हारा सहाय करता हूँ। एक हजार फरिश्ते सवारों से।

यह बात भी असंगत है, क्योंकि प्रथम तीन हजार फरिश्ते लिखे, फिर १००० लिखे। और फरिश्ता एक भी किसी ने देखा नहीं। फिर उसका मानना व्यर्थ है। प्रत्यक्षादिक प्रमाणों के विरोध से यह बात ऐसी है कि जैसे किसी ने किसी से कहा जो मेरी बात मानता है, सो अपने पिता से उत्पन्न भया है और जो नहीं मानता, सो अपने पिता से पैदा नहीं भया, अन्य किसी से भया है। उसकी बात झूठ भी हो, परन्तु कोई न माने तो, दूसरे से पैदा भया होता है, इस भय से झूठ को भी कोई मान लेता है। ऐसी बात कुरान और मुहम्मद की दीखती है।

सू० काफ् सी० हम्म् इ०। कुरान से उस पुरुष को उपदेश कर, जो कयामत के दिन के दण्ड से डरता है।

सू० आरिवाल सी० काफमा इ०। तू उपदेश कर, उपदेश लेकर देता है मानने वालों का।

सू० सफ् सी० कद् समिअ इ०। जब ईसा मर्यम का बेटा ने कहा हे बनी इसराईल! मैं रसूल हूँ तुम लोगों के वास्ते और तुम को खबर देता हूँ एक रसूल की, जो मेरे पीछे आवेगा, उसका नाम अहम्मद है, परन्तु जब वह ले आया प्रकाशक वाक्य, तो लोग कहते हैं कि यह साफ जादू है।

सू० राद् सी० माउबर्रा़ इ०। काफर लोग कहते हैं कि तू रसूल नहीं है, तू कह कि हमारे और तुम्हारे बीच में ईश्वर साक्षी है।

यही बात सू० बनी इसराईल्, अन्कवल०, एहकाफ० इन तीनों में भी फिर-फिर लिखी है। यह पीसे का जैसे पीसना कुरान में सो अनेक वार है। और उपदेश का भी करना दो वार लिखा। यह ईश्वर की बात कभी नहीं हो सकती, सिवाय सामान्य मनुष्य के।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान् अल्लजी इ०। यदि पृथिवी पर फरिश्ते रहते तो हम फरिश्ते ही को रसूल भेजते आकाश से मनुष्यों के बीच में।



सू० जुखरफ सी० इलहेयरद्दो इ०। जो हम चाहें तो तुम सब में से पृथिवी पर फरिश्ता बनावें।

यह बात पूर्वापर विरुद्ध है, क्योंकि पृथिवी पर फरिश्ते नहीं रहते, इससे मनुष्य को रसूल हम बनाते हैं, फिर इससे विरुद्ध हम चाहते तो फरिश्ते को रसूल बनाते, ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं होती, मनुष्य की ही जानना चाहिये।

सू० यूनस् सी० यात जूरून् इ०। तेरे पहिले के लोगों को भी ऐसा ही लोगों ने झूठ कहा है। यही बात सू० हज्ज् सी० इक्तरब् सू० मोम् नून्० सी० कदफलः में भी लिखी है।

जिसने कुरान बनाई है, वह विद्या और बुद्धिहीन मालूम पड़ता है, इन बातों से।

सू० हजर् सी० रुथमायुवद्दो इ०। जो रसूल आया उसको लोगों ने हँसा। फिर यही बात सू० अम्विया सी० इक्तरब में भी लिखी है।

इससे यह मालूम पड़ता है कि मुहम्मदादिकों ने जब कुरान बनाई थी, तब उनकी अकल थोड़ी थी, क्योंकि ऐसी-ऐसी अन्यथा बातों से मुहम्मद पैग़म्बर कभी नहीं हो सकता।

सू० यूनस् सी० यात जूरून् इ०। उन लोगों का वाक्य तुझ को शोक ग्रस्त न कर लेवें सब बड़ाई ईश्वर के वास्ते है।

सू० एह्काफ सी० हम्म इ०। तू क्षमा कर जैसी क्षमा की है पहिले रसूलों ने। यही आयत सू० दहर् सी० तवारक् सू० मुजम्मिल् सी० तवारक् में भी लिखी है। यह पिष्टपेषणवत् कुरान में दोष अनेक हैं, सज्जन लोगों को ऐसा जानना चाहिये कि कथन में ये बड़े दोष हैं।

सू० आले इम्रान सी० लतनाल इ०। कहते हैं कि ईश्वर ने प्रतिज्ञा की है हमारे साथ। हम लोग किसी रसूल को न मानें जब तक वह नहीं ले आवे एक कुर्बानी, अर्थात् बलि-प्रदान उसको आग खा जाये।

ऐसी बात से कोई पैग़म्बर कभी नहीं बन सकता, क्योंकि ऐसी-ऐसी बात बालकों की होती है।

सू० यूनस् सी० यात जूरून् इ०। जिन लोगों पर ईश्वर का वाक्य

ठहर चुका है वे लोग नहीं मानेंगे, यद्यपि उनको आश्चर्य शक्ति दिखावे।

सू० बनी इसराईल् सू० बूहान् अल्लजी इ०। हमने आश्चर्य शक्ति को भेजना रोका नहीं है, परन्तु पहिले लोगों ने उसको झूठ कहा और हम आश्चर्य युक्त शक्ति डराने के लिये भेजते हैं।

सू० निसा सी० लायुहब्बो इ०। तुझसे पूछते हैं किताब वाले, अर्थात् यहूदी और ईसाई कि उनके पास एक किताब आस्मान से उतरे।

सू० इन् आम् सी० इजा समिऊ इ०। मेरे पास वह वस्तु नहीं है जिसको तुम जल्दी चाहते हो हुकुम ईश्वर के आधीन है।

उसी सूरे और सीपारे में ऐसी आयत लिखी है। यदि मेरे पास वह पदार्थ होता जिस को तुम शीघ्र चाहते हो तो हमारे और तुम्हारे बीच में न्याय हो जाता।

सू० राद् सी० माउबर्रह इ०। दण्ड के वास्ते तुझ से जल्दी करते हैं। इनसे पहिले बहुत से लोग हो गये हैं ईश्वर कृपालु है, मनुष्य से अन्याय पर।

सू० यूनस् सी० यात जूरून इ०। कहते हैं कि कोई आश्चर्य युक्त शक्ति मुहम्मद के साथ क्यों नहीं की गई।

सू० फुरकान सी० कालल्लजी इ०। जो लोग हमारे दर्शन की आशा नहीं करते हैं, वे लोग कहते हैं कि हमारे पास फरिश्ते क्यों नहीं आये अथवा ईश्वर को हम क्यों नहीं देखते।

सू० फुरकान सी० कदफलः। फरिश्ता क्यों नहीं आया मुहम्मद के ऊपर जिससे डराने वाला उसके साथ होता है अथवा खजाना उसके साथ क्यों नहीं भेज दिया गया।

सू० हूद सी० मामिन दाब्बा इ०। तेरे मन को शोक-ग्रस्त करते हैं और यह कहते हैं कि उसके साथ फरिश्ता क्यों नहीं आया अथवा खजाना उसके साथ क्यों नहीं आया।

सू० राद सी० माउबर्रह इ०। क्यों नहीं दी आश्चर्ययुक्त शक्ति ईश्वर ने।

इसी सूरे और सीपारे में इसी अर्थ की आयत फिर भी लिखी है।



सू० हजर् सी० रुब्बमा युवद्दो इ०। हे पुरुष! तेरे पास कुरान पहुँचा है तू पागल है। यदि तू सच्चा है तो फरिश्तों को ले आओ।

सू० राद सी० माउबर्रह इ०, सू० मोमिन् सी० फमन् आजलम् इ०। कोई रसूल आश्चर्ययुक्त शक्ति नहीं ले आया है, परन्तु ईश्वर की आज्ञा से।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान् अल्लजी इ०। हम आश्चर्ययुक्त शक्ति को भेज देते हैं डराने के लिये।

सू० अन्कबूत् सी० अतुलोमा इ०। कहते हैं कि मुहम्मद के साथ आश्चर्य युक्त शक्ति क्यों नहीं आई तू कह कि आश्चर्य युक्त शक्ति ईश्वर के पास है और तुम सब को क्या यह थोड़ा है कि किताब को तुम्हारे पास भेजा।

इससे यह स्पष्ट मालूम देता है कि जब-जब कोई मुहम्मद से प्रश्न पूछता था तब-तब उत्तर तो मुहम्मद को आता नहीं था, परन्तु अपनी पोल न निकल जाय, इस वास्ते जैसी तैसी बात बना के सुना देता था कि यह आयत ईश्वर के पास से आई है। ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर न्यायकारी है अन्याय के ऊपर दण्ड देता ही है। और कुरान को देखने से कि मुहम्मद को विद्या और सिद्धि नहीं थी, किन्तु लोगों को बहकाता था अपनी प्रतिष्ठा के वास्ते। और दो प्रकार की बात कह देता था कि हम दिखावेंगे कोई प्रतिज्ञा तुझ को अथवा मार डालेंगे तुझको। इससे अच्छी तरह से मालूम देता है कि इन्द्रजाल की नांई बुद्धिहीन पुरुषों को तमाशा से मोहित कर के चेला बना लेंगे और जो न मानेगा तो उसको कतल कर देंगे? फिर यही बात सूरे जुखरफ सी० इलह्यरद्दो में भी फिर लिखी है आयत। इन बातों से कुरान ईश्वर का बनाया वा मुहम्मद ईश्वर का भेजा पैग़म्बर कभी नहीं हो सकता।

सू० आले इम्रान सी० तिल कर रसूल इ०। अगर तुम प्यारा मानते हो ईश्वर को कि मेरी आज्ञा पालन कर। ईश्वर तुम को प्यार करेगा और तुम्हारे पाप सब क्षमा करेगा।

सू० निहर सी० रुमायुवद्दो इ०। ईश्वर के मार्ग की तरफ तू बोलाओ

सब को अच्छे उपदेश से और उनके साथ वाद-विवाद कर अच्छी बातों से।

यह बात बहुत अयुक्त है, क्योंकि जो पापों की क्षमा ईश्वर करेगा तो बहुत पाप मनुष्यों में बढ़ जायेंगे और कोई पापों के करने से भय नहीं करेगा, क्योंकि क्षमा ईश्वर पापियों पर कर देता है, फिर क्यों भय होगा। प्रथम लिखा कि अच्छी बातों से उपदेश कर। फिर कहा कि वाद-विवाद कर। यह बात अयुक्त है।

सू० बकरः सी० सयूक्लो इ०। हमने भेजा है एक रसूल तुम्हारी जाति का तुम्हारे पास कि हमारे वाक्यों को तुम लोगों के पास पढ़ के सुनावें।

सू० एराफ सी० कालल मलओ इ०। तू क्षमा और भलाई करने की आज्ञा से और मूर्खों से मुँह फेर ले।

सू० इन् आम् सी० इजासमिउ इ०। जिन लोगों को ईश्वर ने अच्छी राह दिखाई है तू उनके पीछे चल।

सू० जुरूख रफ्सी० इल् हयरद्दो इ०। अपने पहिले वाले रसूलों से पूछ कि हमने ईश्वर के सिवाय और कोई ईश्वर ठहराया है कि उसकी उपासना करो।

सू० आले इम्रान् सी० लतनाल् इ०। ईश्वर भविष्य बातों का किसी पुरुष को नहीं अधिकार देता। फिर यही आयत सू० यूनस् और सी० यात् जूरून् में भी लिखी है।

सू० हूद सी० मामिन् दाब्बा इ०। मैं नहीं कहता हूँ कि मैं भविष्यत् बात जानता हूँ अथवा मेरे पास ईश्वर के खजाने हैं।

इसी अर्थ की आयत सू० मलक् सी० तवारक् इ०, सू० एहजाद् सी० मन्यक् नुत में भी लिखी है।

सू० जिन्न सी० तवारक् इ०। इसके भविष्य कार्यों पर किसी को खबर नहीं है, परन्तु जिसको ईश्वर रसूलों के बीच में से चुन ले।

यही बात सू० एराफ् सी० कालल् मलओ० सू० हेएजाद्० सी० मन्यक् नुत० में भी लिखी है।



सू० एराफ् सी० कालल् मलओ इ०। तूँ कह कि भविष्य का ज्ञान ईश्वर के पास है अगर मैं भविष्य को जानता तो बहुत-सी भलाई अपने वास्ते बटोरता और बुराई मुझको न लगती।

सू० स्वाद् सी० मालीला इ०। मैं नहीं जानता हूँ ऊपर के फरिश्तों को जो आपस में झगड़ा करते हैं मेरे पास सिर्फ ईश्वर का वाक्य आता है।

इससे यह मालूम होता है कि मुहम्मद भविष्य बात को नहीं जानता था। प्रथम लिखा कि भविष्य की बात का अधिकार किसी को ईश्वर नहीं देता। फिर इससे विरुद्ध लिखा कि जिसको रसूलों में से ईश्वर चुन ले उसको भविष्य ज्ञान देता है। यह पूर्वापर विरुद्ध बात कुरान में है। प्रथम यह लिखा कुरान में ईसा मर्यम के बेटे ने खबर दी कि मेरे पीछे एक रसूल आवेगा, उसका नाम अहम्मद है, सो भी इस बात से विरुद्ध है। और प्रथम लिखा कि जिब्रईल फरिश्ता खुदा की पास से मेरे पास कुरान की आयत ले आता है, फिर यहाँ लिखा कि मैं फरिश्तों को नहीं जानता, अर्थात् फरिश्ता मेरे पास कोई नहीं आता। यह भी बात पूर्वापर विरुद्ध है। ऐसी बातों से मुहम्मद के रसूल का होना, कुरान ईश्वर के वाक्य का होना कभी नहीं बनता।

सू० कसिस सी० अम्मन खलक इ०। हे मुहम्मद, तूँ राह नहीं दिखा सकता है जिसको कि चाहे, परन्तु ईश्वर राह दिखाता है जिसको चाहे।

सू० जुमर सी० मालीला इ०। जिस पर दण्ड का वाक्य निश्चित हो चुका तो क्या तूँ बचायेगा उसको कि जो आग में है।

सू० मलांयक सी० मन्यक नुत इ०। तूँ नहीं सुनेगा बात उस पुरुष की जो मर गया है।

सू० नमल सी० अम्मन खलक इ०। अन्धे को अन्धकार से तूँ नहीं रस्ता दिखा सकता।

फिर यही बात सूरूम सी० आतुलोमा में भी लिखी है।

सू० जुखूरफ सी० इल्हयरद्दो इ०। तूँ अन्धे को क्या दिखावेगा। तूँ क्या बधिर को सुनावेगा।

सू० इन् आम् सी० इजा समिऊ० इ०। तूँ उन पर रखवारा नहीं है, हमने तुझको रखवारा नहीं भेजा है। यही आयत और इसी अर्थ की बात जुमर० शोरा०, यूनस०, बनी इसराईल०, फुरकान०, हूद०—इन छह सूरों में फिर-फिर लिखी है। और फिर इसी इन आम सूरे में भी यही बात दूसरी वार लिखी है। यह पुनरुक्त अर्थात् पिष्टपेषणवत् जो महादोष, सो तो कुरान में अनेक जगह में है, सो जान लेना। परन्तु इन कुरान की आयतों से सिद्ध होता है कि मुहम्मद को खुदा ने नहीं भेजा और उसका जो उपदेश, सो इन बातों से मिथ्या हो जाता है, क्योंकि वह किसी को तो बचा सकता नहीं। फिर उपदेश करना उसका व्यर्थ है। इससे यह मालूम देता है कि जैसी बालकों की किस्सा और कहानी-सी कुरान की बातें हैं ईश्वर की कभी नहीं हो सकती।

सू० निसासी० बल मुहूसिनात इ०। हमने तुझको मनुष्यों के पास रसूल भेजा परन्तु जो कोई फिर जाये तो तूँ रखवारा नहीं है।

सू० निहल सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। वे लोग फिर जावें तो तेरे ऊपर उपदेश पहुँचा देना है। यही बात सू० राद और तगाबुन में भी तीन वार लिखी है। फिर निहल०, अङ्कबूत० और नूर—इन तीनों में भी यही बात लिखी है।

सू० एहुजाब् सी० मन्यक नुत इ०। दुष्टों की आज्ञा मत मान।

सू० बकरः सी० तिल्कर रसूल इ०। दीन के मानने में जबर्दस्ती नहीं है। यही बात सू० यूनस० जारियात० काफिरों में भी लिखी है।

सू० बकरः सी० अलम इ०। तुम लोगों के वास्ते तुम्हारे कर्म हैं और हमारे वास्ते हमारे कर्म हैं। यही बात सू० शोरा में भी लिखी है।

सू० यूनस० सी० यातजूरून इ०। जो तुझको झूठा कहते हैं, तूँ कह कि मेरे वास्ते मेरे कर्म और तुम्हारे वास्ते तुम्हारे कर्म। मैं अलग हूँ तुम्हारे कर्मों से और तुम अलग हो मेरे कर्मों से।

सू० सवासी० मन्यक नुत इ०। तूँ कह कि जो मैं भटक गया हूँ तो अपने वास्ते, जो श्रेष्ठ मार्ग में चलता हूँ, तो अपने ईश्वर के पास हूँ। ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं होती सिवाय मनुष्यों के, क्योंकि पूर्वापर विरुद्ध और पिष्टपेषणवत् लिखना यह ईश्वर का काम नहीं।



सू० तयल् सी० अम्म इ०। हमारे ऊपर राह दिखा देना है।

सू० बकरः सी० तिल्कर रसूल इ०। उनको राह दिखाना तेरे ऊपर नहीं है ईश्वर जिसको चाहे उसको राह देखावे।

सू० आले इम्रान सी० तिल्कर रसूल इ०। जो तुम सब ईश्वर से प्यार करते हो तो मेरी आज्ञा में चलो। ईश्वर तुम से प्यार करेगा और तुम्हारे पापों को क्षमा करेगा।

सू० इन् आम सी० इजा समिऊ इ०। तूँ कह कि मैं डरता हूँ, ईश्वर का अपराधी हूँ। यही बात सू० यूनस् सू० जुमर् में भी लिखी है।

सू० एह्जाब् सी० मन्यक नुत इ०। जो लोग ईश्वर के वाक्य को पहुँचाते हैं, ईश्वर से डरते हैं और किसी से नहीं डरते, क्योंकि ईश्वर से ही डरना चाहिये।

सू० नमल् सी० काललजी इ०। मेरे पास रसूलों को डर नहीं है।

सू० फतेहू सी० हम्म इ०। ईश्वर तेरे अपराधों को क्षमा करेगा जो अपराध हो चूके और होने वाले हैं। अपनी कृपा को तुम पर पूरी करेगा।

सू० बनी इस्राईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। धन्य है जो ईश्वर ले गया अपने सेवक को। मस्जिद हराम से मस्जिद अकसा तक।

जानना चाहिये कि इन स्थानों के बीच में बहुत अन्तर है, अर्थात् कई सौ कोस का।

सू० बनी इस्राईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। हम लोग नहीं जानेंगे जब तक किताब नहीं उतरे हमारे पास और हम सब उसको पढ़ लेंवे। तूँ कह कि धन्य है मेरा ईश्वर।

प्रथम तो इन बातों में एक बात अनेक वार लिखना यह दोष है। दूसरा तुझको राह दिखा देना, फिर उससे विरुद्ध लिखा कि तेरे ऊपर राह दिखाना नहीं है, फिर इससे विरुद्ध लिखा कि तुम लोग मेरी आज्ञा में चलो और तुम्हारे पापों को क्षमा करेगा। यह बात अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि जब पापों की क्षमा करेगा तो पाप करने की आज्ञा दे चुका और सब निर्भय होके पाप ही करेंगे, क्योंकि ईश्वर क्षमा करने वाला है। इससे

ईश्वर पक्षपाती के होने से अन्यायकारी हो जायेगा।

इससे विरुद्ध यह है कि जो मैं अपराधी हूँ तो प्रलयकाल में दण्ड पाऊँगा। यह पूर्वापर विरुद्ध है। फिर भी इसी को लिखा।

फिर भी लिखा कि जो पाप कर चुके हैं और करेंगे उनकी क्षमा हम लोग पर ईश्वर करेगा।

यह भी बात अयुक्त है। फिर अपने सेवक को ले गया। यह भी बात बनावट की है। हम लोग जब किताब पढ़ेंगे तब मानेंगे। इसका उत्तर ईश्वर की प्रेरणा से मुहम्मद ने कहा कि धन्य है मेरा ईश्वर। यह बात केवल दम्भ और छल की है, क्योंकि मुहम्मद अपनी प्रतिष्ठा और मतलब के वास्ते ऐसी बात बना लेता है। यह बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती।

सू० मोमि नूत सी० कदफलः इ०। तेरा शरण माँगता हूँ हे ईश्वर शैयतानों की प्रेरणा से।

सू० निम्ता सी० बल मुह सिनात इ०। तुम सब झगड़ा करो यदि किसी पदार्थ में, तो ले आओ उसको ईश्वर और रसूल के पास।

सू० नूर सी० कदफलः इ०। मानने वालों को ऐसा बोलना चाहिये कि जब रसूल हुकुम करे तो वे लोग बोलें कि हमने सुना और माना।

सू० त्वाहा सी० का ले अलम इ०। तूँ कह कि हे ईश्वर मेरे ज्ञान को बढ़ा।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। हे ईश्वर तूँ कह कि सत्य मार्ग में मुझ को ले चल और निकाल। इसमें यह मालूम पड़ता है कि शैयतान जो बागी सब को बहकाने वाला, उसको ईश्वर वशीभूत क्या नहीं कर सकते और मुहम्मद साहेब राजा भी बनना चाहते हैं, क्योंकि रसूल जो कहे उसको मान ही ले और झगड़ा करने वालों का न्याय दण्ड भी किया चाहते हैं। इससे यह मालूम पड़ता है कि मुहम्मद को धन-प्रतिष्ठा और विषय-भोग की बहुत इच्छा थी।

सू० एहकाफ सी० हम्म इ०। तूँ कह मैं नहीं जानता कि क्या करेगा ईश्वर मेरे वास्ते और तुम्हारे वास्ते।



इससे मालूम देता है कि ईश्वर के गुण और स्वभाव को मुहम्मद नहीं जानते, फिर रसूल अर्थात् पैगम्बर कैसे हो सकते हैं।

सू० एहजाद सी० मन्यक नुत इ०। मुहम्मद किसी लड़के का बाप नहीं है, ईश्वर का रसूल है और सब रसूलों का अन्त है।

सू० बकरः सी० अलम इ०। कौन अधिक अन्यायी है उस पुरुष से जो कि रोके ईश्वर के स्थान को कि उस स्थान में ईश्वर का नाम बोले और कहें, उस स्थान के गिराने में प्रवृत्त हो।

सू० निसा सी० बल मुहसिनात् इ०। तूँने नहीं देखा उन लोगों को जो किताब रखते हैं, अर्थात् यहूदी और ईसाई मानते हैं जादू और शैयतान को।

सू० निसा सी० बल मुहसिनात इ०। तूँने नहीं देखा उन लोगों को जोकि किताब रखते हैं, क्या उन लोगों को राज्य का अधिकार है।

इसके विरुद्ध मैं कहता हूँ कि तुम लोगों को हमने राजा बनाया।

सू० मायदः सी० लायुहब्बा इ०। बात को फेर देते हैं उसके स्थान से यहूदी और ईसाई कहते हैं कि हम ईश्वर के मित्र हैं। तूँ कह कि ईश्वर ने तुम लोगों के अपराध का दण्ड क्यों नहीं देता तुम सब मनुष्य हो।

सू० निसा सी०......सू० तोबा सी० बालम० यहूदी कहते हैं उज़ैर ईश्वर का बेटा है और ईसाई कहते हैं कि यसू मसीह ईश्वर का बेटा है, ये सब उन लोगों का गप्प है।

सू० मोमन्न सी० कदफलः इ०। ईश्वर ने कोई बेटा नहीं पैदा किया और उसके साथ दूसरा ईश्वर नहीं है।

यही बात सू० कुरकान सी० कदफलः इ० और मर्यम में भी लिखी है।

सू० अम्बिया सी० इक्तरब इ०। कहते हैं कि ईश्वर ने बेटा बनाया है। ईश्वर शुद्ध और पवित्र है, ये सब प्रतिष्ठित सेवक हैं।

इन बातों से यह जाना जाता है कि मुहम्मद का पालित बेटा था। उसकी स्त्री को अपनी स्त्री किया चाहा, तब ऐसा वचन बना लिया कि मुहम्मद किसी लड़के का बाप नहीं है। उनको राज्य का अधिकार नहीं

है फिर उससे विरुद्ध लिखा कि उसको हमने राजा बनाया। यह पूर्वापर विरुद्ध है। अपराध का दण्ड क्यों नहीं दिया। इससे विरुद्ध वह है जोकि क्षमा करना लिखा फिर हम किसी को नहीं मानते हैं। इससे विरुद्ध उज़ैर और यसू मसीह ईश्वर के बेटे हैं। यह कुरान में पूर्वापर विरुद्ध है उनका। जो मुहम्मद खण्डन करता है, सो केवल अपनी प्रतिष्ठा के वास्ते है।

सू० अम्बिया सी० तवारक् इ०। यदि आकाश और पृथिवी में अनेक ईश्वर होते तो वे दोनों फट जाते। पश्चात्ताप है उनके पर जोकि ऐसा गुणानुवाद कहते हैं।

सू० यूनस सी० यात जूरून इ०। ईश्वर ने बेटा बनाया है, ईश्वर शुद्ध है और पवित्र है। तुम सब के पास कोई युक्ति है इस बात की तूँ कह जो लोग झूठ बाँधते हैं ईश्वर पर, वे लोग भलाई नहीं पाते।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। धन्यवाद है ईश्वर को जिसने कोई बेटा नहीं बनाया और राज्य में उसका कोई साक्षी नहीं है।

सू० इन आम सी० इजासमिउ इ०। बनाया है लोगों ने ईश्वर के वास्ते बेटा। कहाँ से होगा उसके बेटा, उसके पास बीबी नहीं है।

सू० कहफ सी० सुब्हान अल्लजी इ०। कहते हैं कि ईश्वर ने बेटा बनाया, न उनको ज्ञान है, न उनके बाप-दादों को।

सू० मर्यम सी० कालवलम इ०। शीघ्र है कि आकाश सब फट जावे और पहाड़ सब गिर पड़े गर्त्त हो जावे यदि तुम बोलो कि ईश्वर को बेटा है।

सू० जिन्न सी० तवारक इ०। हमारे ईश्वर की विभूति बड़ी है। इसी सूरे और सीपारे में फिर लिखा है और मत पुकारो ईश्वर के साथ किसी को।

सू० अम्बिया सी० इक्तरब इ०। उनमें से जो पुरुष माने और कहे कि मैं ईश्वर हूँ तो हम उसको दण्ड देंगे नरक।

सू० मायदः सी० लायुहन्नो इ०। वे लोग काफर हैं जो कहते हैं कि यसू मसीह ईश्वर है। मसीह ने कहा कि हे बनी इसराईल तुम सब लोग उपासना करो ईश्वर की वह मेरा और तुम सबों का ईश्वर है।



सू० मायदः सी० लायुहब्बो इ०। वे लोग काफर हैं जिन्होंने कहा है ईश्वर तीन का तीसरा है अर्थात् एक ईश्वर बाप, दूसरा बेटा और तीसरा रूहुल कुद्स, अर्थात् निराकार यही तीन में तीसरा है।

सू० तोबा सी० वालम० इ०। उन लोगों ने अपने पण्डितों को और ब्रह्मचारियों को पूज्य बनाया है। ईश्वर को छोड़ के और मसीह मर्यम का बेटा है।

इसमें विचारना चाहिये कि जैसे ईश्वर का कोई बेटा नहीं होता वैसे ही ईश्वर रसूल, अर्थात् पैग़म्बर को भी नहीं बनाता और भेजता। जो पैग़म्बर भेजेगा, वह बेटा भी बनावेगा और अनेक ईश्वर भी हो जाएँगे और जो ईश्वर का बेटा वा अनेक ईश्वर न होंगे तो रसूल भी कोई न होगा। और उसके बीबी नहीं है इससे बेटा नहीं होता, यह बात मिथ्या है, क्योंकि ईश्वर का बेटा सब जगत् है और जो मनुष्य अपने को ईश्वर मानता है तथा तीन ईश्वर के भेद मानते हैं, जैसे यह अयुक्त है, वैसे कुरान ईश्वर से आया और मुहम्मद रसूल है यह भी बात अयुक्त है और पूर्वापर विरुद्ध तथा पिष्टपेषणवत् दोष इन बातों में हैं इनको सज्जन लोग विचार लेवें।

सू० बकरः सी० अलम इ०। यदि तुम सबों को ईश्वर के पास स्वर्ग है औरों को नहीं तो तुम अपना सब मरण चाहो।

सू० जुमा सी० कदसमिअ इ०। तूँ कह कि हे यहूदी लोग तुम सब जानते हो कि हम सब ईश्वर के प्रिय हैं और कोई मनुष्य प्रिय नहीं, तो तुम सब अपना मरण मांगो, परन्तु तुम कभी न माँगोगे।

सू० काफ सी० हम्म इ०। क्या हम थक गये पहिली सृष्टि बनाने से।

सू० तोबा सी० बालम० इ०। बहुत से पण्डित, ज्ञानी, ब्रह्मचारी और वनवासी मनुष्यों का धन झूठ में खाते हैं। झूठ कहकर और ईश्वर के मार्ग से फेरते हैं।

सू० हदीद सी० कालफमा इ०। हमने नहीं लिखा उन लोगों के वास्ते ब्रह्मचर्य और वनवास, परन्तु ईश्वर की प्रसन्नता के वास्ते तिस पर जैसा करना चाहिये उन लोगों ने न ही किया। उनमें से बहुत से कुकर्मी

हैं।

सू० निसा सी० बलम मुहूसिनात् इ०। ईश्वर को नहीं पुकारते शैयतान को पुकारते हैं। ईश्वर को छोड़कर स्त्रियों को पुकारते हैं, अर्थात् फरिश्तों को।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। वे लोग फरिश्तों में से स्त्रीलिंग बोलते हैं।

सू० साफात सी० मालीला इ०। क्या हमने फरिश्तों को स्त्रीलिंग उत्पन्न किया है।

सू० इन आम सी० लौइन्ना इ०। अपनी हानि करी उन लोगों ने जिन्होंने अपने बेटा-बेटी को मार डाला नीचता से।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। अपने बेटा-बेटी मत मारो निर्धनता के डर से।

सू० जासिया सी० इल्हयरद्दो इ०। कहते हैं कि हमारे बाप-दादे को ले आओ यदि तुम सच्चे हो।

सू० जुखरफ सी० इल्हयरद्दो इ०। जो ईश्वर चाहता तो हम उन सबको न पूजते, उन लोगों को ज्ञान नहीं है।

सू० जुमर सी० मालीला इ०। जिन लोगों ने ईश्वर के सिवाय अन्य सहाय माने हैं वे कहते हैं कि हम उन सबकी उपासना करते हैं इस कारण से कि हम को ईश्वर के पास पहुँचा देवें।

सू० अबील्हब सी० अम्म इ०। कट जायेंगे दोनों हाथ अबीलहब के और उसकी जोरू नरक के आग की लकड़ी है।

सू० इन् आम् सी० इजासमिऊ इ०। अधिक अन्यायी उस पुरुष से कौन है जो ईश्वर पर झूठ बाँधता है और कहता है कि ईश्वर का वाक्य मेरे पास आता है, परन्तु कभी उसके पास कुछ नहीं आता। यह कलङ्क मुझसे इलमा और अबदुल्लाह् पर है।

इसमें विचारना चाहिये कि ब्रह्मचर्य और वनवास का निषेध करना यह केवल अज्ञान का कर्म है, क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या पढ़ने के वास्ते है और वनवास परमेश्वर की उपासना के वास्ते हैं और कुकर्मी गृहस्थों में



भी होते हैं। एक जन्म का मानना और बहुत जन्मों को नहीं मानना, यह भी विचाररहित पुरुषों की बात होती है। और ईश्वर को छोड़ के स्त्रियों को पुकारना ठीक नहीं, परन्तु मुहम्मद ने भी पुत्र की स्त्री को घर में पुकार लिई। और फरिश्तों को स्त्रीलिंग बोलते हैं, फिर इससे विरुद्ध लिखा कि फरिश्तों को क्या स्त्रीलिंग उत्पन्न किया है। उसकी जोरू नरक के आग की लकड़ी है। अबूलहब मुहम्मद का चचा था। वह मुहम्मद को बुरा कहता था। उसकी स्त्री भी उसका हास्य करती थी। वह एख दिन मुहम्मद के ऊपर थूक गई थी, तब मुहम्मद ने जलकर अबूलहब और उसकी स्त्री के लिए यह आयत बनाई।

खुदा का वाक्य ऐसा नहीं होता। जैसे अबदुल्लाह पर कलङ्क कहा। यही कलङ्क मुहम्मद साहेब पर भी होता है, क्योंकि मुहम्मद भी ईश्वर के ऊपर झूठ बाँधता है। कुरान ईश्वर की पास से मेरे पास आती है। जैसी अब्दुल्लाह की बात, वैसी मुहम्मद साहेब की भी जानना।

सू० रादसी० माउबर्त्रे इ०। हमने भेजे बहुत से रसूल तेरे पहिले, और उनके वास्ते जोरू और बेटा-बेटी थी।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि यसू मसीह को न जोरू, न बेटा और न बेटी थी।

सू० एहजाद सी० मन्यक नुत् इ०। इस काल से पीछे तुझको और स्त्री लेनी न चाहिये, यद्यपि उनकी सुन्दरता से तेरा मन चाहे। इस समय में मुहम्मद के पास ग्यारह जोरू और आठ लौंडी थी और उनका आपस में बड़ा झगड़ा और लड़ाई होती थी। इससे यह मालूम ठीक-ठीक पड़ता है कि मुहम्मद ने अपना मतलब सिद्ध करने के वास्ते कुरान को बना लिया है। एक स्त्री एक पुरुष के वास्ते बहुत होती है। मुहम्मद के पास १९ उनईस स्त्री थीं। इससे जाना जाता है कि मुहम्मद बड़ा विषयी था। इसी दोष से ईश्वर और ईश्वर के गुण को यथावत् नहीं जाना। और विषय-भोग अच्छी तरह से मैं करूँ, इस वास्ते एक अपना मजहब बनाके बहुत चेले और धन इकट्ठा कर लिया।

सू० एहजाब सी० मन्यक् नुत् इ०। जो स्त्री अपना शरीर मुहम्मद को

देवै, जो हम चाहै तो उसके साथ निकाह करै, परन्तु अन्य मुसलमानों के वास्ते यह बात नहीं है।

सू० निसा सी० लतनाल इ०। तुम निकाह करो एक स्त्री के साथ जो तुम को अच्छी मालूम हो। दो-दो, तीन-तीन अथवा चार-चार तक करो आगे नहीं।

सू० नूर सी० कदफल: इ०। विधवा स्त्री का विवाह कर देओ।

सू० एहजाद सी० मन्यक् बलम् इ०। रसूल की जोरुओं से उनके मरने के पीछे विवाह मत करो। तुमको नहीं चाहिये कि रसूल को दु:ख देओ उसके मरने से पीछे।

सू० एहजाद सी० अतुलोमा इ०। रसूल की जोरू सब, तुम सब की माँ है।

इसमें विचारना चाहिये कि अन्य मुसलमानों को चार विवाह तक आज्ञा दी और अपने चाहे इतनी स्त्री कर लेवे। पहिले लिखा कि इसके आगे और स्त्री तुझको न करनी चाहिये, इससे यह विरुद्ध है। अन्य की स्त्री जो विधवा होतो विवाह फिर भी हो जाये, परन्तु रसूल की स्त्री विधवाओं से फिर विवाह न करना चाहिये, क्योंकि वे सबकी माता हैं। रसूल को मरे पीछे भी दु:ख न देना चाहिये। इससे स्पष्ट अन्याय मालूम होता है कि मुहम्मद चाहे सो करे और कोई नहीं। ये सब बात मुहम्मद की ही बनाई हैं, ईश्वर की कभी नहीं।

सू० तहरीम् सी० कदसमअ इ०। हे रसूल तूँ हराम मत कर अर्थात् अस्वीकार मत कर उसको कि जिसको तेरे वास्ते ईश्वर ने विहित किया है तूँ अपनी जोरुओं की प्रसन्नता चाहता है। इसी सूरे और सीपारे में लिखा कि रसूल जब छिपा रक्खी एक बात अपनी एक स्त्री के पास और उसने सब बात को प्रकट कर दिया। फिर भी इसी सूरे और सीपारे में बात लिखी कि ईश्वर उसकी जोरुओं को बदल दे दूसरी स्त्रियों से जो सुन्दरी और बात मानने वाली हैं तथा कन्या और अक्षतयोनि हैं।

सू० नूर सी० कदफल: इ०। जो लोगों के लिये फरेब और झूठ, अर्थात् व्यभिचार का कलङ्क ले-आ ऐसा नाम मुहम्मद की स्त्री पर, तो



तुम उस कलङ्क को बुरा न जानो वह तुह्मारे वास्ते अच्छा है।

सू० एहजाब सी० मन्यक् नुत् इ०। किसी पुरुष वा स्त्री को नहीं चाहिये कि जब ईश्वर ने और उसके रसूल ने कोई बात ठहराई तो वे सब वैसा ही करें। इसी सूरे और सीपारे में ऐसी बात अनेक वार लिखी हैं आयत कि जब तूँने कहा उस पुरुष को जिस पर ईश्वर ने और तूँने कृपा की है यह बात कि तूँ अपनी जोरू को अपनी पास रख और ईश्वर से डर।

सू० तथा सी० तथा तूँ छिपाता है जो तेरे मन में है, ईश्वर उसको प्रकट करता है। तूँ मनुष्यों से डरता है ईश्वर से डरना चाहिये।

सू० तथा सी० तथा इ०। रसूल पर कुछ कलङ्क नहीं है उस बात में कि जिस बात को रसूल के वास्ते ईश्वर ने नियम किया।

सू० तथा सी० तथा इ०। जब कि जैद ने अपना काम कर लिया तो हमने जैनब को तेरी जोरू करी अब कुल कलङ्क नहीं होगा मुसलमानों को।

अपने लेपालक बेटे की स्त्री को अपनी जोरू बना लेने में इसका वृत्तान्त ऐसा है कि जैनब मुहम्मद की चचेरी बहिन थी। उसका विवाह जयद् के साथ हुआ था। वह जयद मुहम्मद का गुलाम था, परन्तु मुहम्मद ने फिर उसको पुत्र मान लिया और प्रसिद्ध कर दिया कि यह मेरा कृत्रिम पुत्र है। जयनब को मुहम्मद चाहता था कि यह मेरी जोरू हो जाये। मुहम्मद के बहकाने से जयनब ने अपने स्वामी को बहुत दु:ख दिया। तब उसने जयनब को तलाक दिया, अर्थात् छोड़ दिया। तब जयनब मुहम्मद की जोरू हो गई। ऊपर के पाँच वाक्य आयत इसी व्यवस्था के वास्ते हैं। ये बातें सब अनर्थ की हैं। ईश्वर की कभी नहीं हो सकती सिवाय अश्रेष्ठ मनुष्यों के। इससे यथावत् निश्चय होता है कि कुरान मुहम्मद की बनाई है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। जब मुहम्मद की अनर्थ करने से निन्दा होने लगी, तब प्रतिष्ठा अपनी नष्ट न हो जाये, इस वास्ते खुदा के नाम से अनेक आयतें बना के लोगों को सुनाता था।

सू० एहजाद सी० मन्यक् नुत् इ०। मुहम्मद बाप नहीं है किसी

लड़के का।

सू० आले इम्रान सी० लतनाल० इ०। रसूल चोरी नहीं करेगा।

यह वाक्य क्यों कहा। इसका कारण है कि जब किसी जगह लूट का माल प्राप्त हुआ था, सो मुसलमानों ने ऐसा अपवाद उठाया कि मुहम्मद ने इन पदार्थों में से कई एक पदार्थ चुरा लिये। इस पर यह ईश्वर का वाक्य आया है।

सू० बकरः सी० सयूकूलो इ०। किस कारण ने मुसलमानों को फेर दिया उनके काबे से जिस पर वे पहिले से थे तूँ कह कि पूर्व और पश्चिम सब तरफ खुदा है।

इसी सूरे और सीपारे में लिखा कि हमने किबूले की तरफ तेरा मुँह फेरा। तुम सब उसकी तरफ मुँह रक्खा करो निवाज में। जो मुहम्मद किसी का बाप नहीं है तो प्रथम बेटा करके क्यों माना और पुकारा था। और जोरू का जो खसम बनेगा, सो कन्या वा बेटे का बाप क्यों नहीं बनेगा, किन्तु अवश्य ही बनेगा। मुहम्मद बड़ा भारी विषयी है। इससे मालूम पड़ता है कि किसी पदार्थ को चुरा ले अथवा छिपा ले तो कुछ आश्चर्य नहीं, परन्तु अपना कपट जाहिर न हो इस वास्ते खुदा के नाम से आयत बना के सुनाता था और बहका के विद्याहीन पुरुषों को चेला बना लेता था, धन हरने के वास्ते। जो पूर्व और पश्चिम ईश्वर है सर्वत्र, तो किबूले की तरफ मुँह का फेरना मिथ्या है, अथवा सर्वत्र खुदा नहीं है। ऐसी बात विरुद्ध और छल की खुदा की कभी नहीं होती।

सू० तोबासी० बालम्० इ०। अनेक ईश्वरवादी अपवित्र हैं मस्जिद के पास न आवे।

सू० हज्ज सी० इकतरब०। जो लोग मनुष्यों को फेरते हैं ईश्वर के मार्ग से और मस्जिद से जो कि सब मनुष्यों के वास्ते हैं तो हम उनको बड़ा दण्ड देंगे।

सू० बकरः सी० अलम् इ०। कौन अधिक अन्यायी है उस पुरुष से, जिसने रोका ईश्वर का स्मरण करना मस्जिद में और उसको उजाड़ने में प्रवृत्त भया। इसमें विचारना चाहिये प्रथम लिखा कि मस्जिद के पास वे



न आवें। इससे विरुद्ध दो वार लिखा कि मस्जिद से किसी को न रोकना चाहिये ऐसा पूर्वापर विरुद्ध खुदा का वचन कभी नहीं हो सकता, सिवाय साधारण मनुष्य के।

सू० मोमिन् सी० फमन् अजलम् इ०। कहते हैं दुष्ट लोग कि मुहम्मद जादूगर और झूठा है।

यही बात सूरे० स्वाद और यूनस् में भी लिखी है।

सू० हजर सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। कहते हैं तेरे पास कुरान आई है। तूँ पागल है। यदि तूँ सच्चा है तो ले आओ फरिश्तों को।

सू० दुखान् सी० इल्यरद्दो इ०। दुष्ट लोग कहते हैं कि वह सिखाया हुआ पागल है।

यही बात सू० नूनलक् बीर मोमिन्न में भी लिखी है। यह पिष्टपेषणवत् दोष कहाता है। खुदा का ऐसा वचन कभी नहीं होता।

सू० तोबा सी० बालम् इ०। जब दुष्ट लोगों ने निकाल दिया मुहम्मद को तो मुहम्मद और अबूबकर गढ़े में छिपे थे। उन लोगों ने बहुत यत्न दृढ़ किया रसूल को निकालने में। बुराई उन्होंने पहिले ही की है। तथा सू० मुनतहिना सी० कदसमिअ में भी लिखी है।

सू० तोबा सी० यात जरून् इ०। मदीने वालों को और उसके पास वालों को नहीं चाहिये कि रसूल से फिरें।

और यह बात मक्के वालों को मारने और उनसे लड़ने के वास्ते मुहम्मद साहेब ने बनाई है। और मुहम्मद से कोई फिरे नहीं, यह भी बात अपने मतलब के वास्ते मुहम्मद ने बनाई है।

सू० निसा सी० बल् मुहसिनात् इ०। निर्बल बूढ़े और लड़के मक्के में कहते हैं कि हे ईश्वर हमको इस बस्ती से निकाल जिसका स्वामी अन्यायी है।

सू० हज्ज सी० इकतरब इ०। जिन लोगों ने तुम सबको निकाल दिया अपने देश से, लड़ो उनके साथ, क्योंकि उन्होंने अन्याय किया है।

सू० बकरः सी० सयूकलो इ०। जो वे सब लड़ें, तो तुम उनसे लड़ो जहाँ पाओ और उनको निकाल देओ, जैसे उन्होंने तुम को निकाल

दिया।

सू० निहल्सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। वे लोग तुम्हारा पीछा करें तो तुम लोग भी पीछा करो।

सू० सी० यातज रून् इ०। लड़ो पास वाले दुष्टों से।

तथा यही बात सू० तोबा सी० बालम्, सू० बकर: सी० सय्क्लो०, सू० निसा सी० बल मुहसिनात०, सू० फुरकान्० सी० काललजी० में भी लिखी है।

सू० निसा सी० बल मुहसिनात्० इ०। जो वे सब अलग हो जायें, तो मत लड़ो उनसे। कोई राह लड़ने की ईश्वर ने नहीं बनाई।

यह बात मुहम्मद ने अनर्थ की बनाई है ईश्वर किसी से लड़ाई का हुकुम नहीं देता, किन्तु लड़ाई छोड़ने का हुकुम देता है। फिर इससे विरुद्ध लिखा कि लड़ाई की राह ईश्वर ने नहीं बनाई। ये बात सब ईष्या-द्वेष वाले पुरुषों की है ईश्वर की नहीं।

सू० तोबा सी० बालम्० इ०। बूढ़े लोग, रोगी और निर्धनी लोगों पर कुछ शंका नहीं लड़ाई में नहीं जाने से।

तथा सू० फतेह में भी लिखी है।

सू० मुहम्मद सी० हम्म इ०। दुष्टों से जब सामना हो तब उनका गला काटो और घर को बन्ध कर देओ।

यह बात केबल अन्याय की है, क्योंकि विना विचार से गला का काटना बहुत अयुक्त है, क्योंकि मुहम्मद और कुरान पर विश्वास न ले आवे, उसी को वे दुष्ट जानते हैं। ऐसी बातों से मुसल्मनों के मजहब में दया का लेश नहीं होता। यह मनुष्यों के वास्ते अत्यन्त अनुपकार की बात है।

सू० बकर: सी० सयू कूलो इ०। जो ईश्वर को धन उधार देवैं ईश्वर उसको अनेक गुना देगा।

तथा यही बात सू० हदीद तगाबुनू० मुजम्मिल् में भी लिखी है।

सू० आले इम्मान सी० लंतनालू इ०। तुम सबको जो दु:ख हुआ लड़ाई में तो उन लोगों को भी दु:ख हुआ है।



यही बात सूरे और सीपारे में दो वार फिर लिखी है। और फिर भी सू० निसी सी० वलमुह सिनात् में भी लिखी है।

सू० वकर सी० सयूकूलो इ०। जो लोग मारे गये ईश्वर के मार्ग में वे जीते हैं। उनको मुड़दा मत कहो वे ईश्वर के पास भोजन करते हैं।

तथा यही बात सू० आलेईम्मान सी० लेतनालू में भी लिखी है।

इसमें यह विचारना चाहिये कि खुदा के दोनों नाम से मुहम्मद उधार धन मांग के अपना मतलब सिद्ध करता है। लड़ाई का उपदेश करना, सो भी मुहम्मद का काम है, ईश्वर का नहीं। वे ईश्वर के पास भोजन करते हैं, यह बात जब प्रलय होगा, तब सब जीवों का न्याय ईश्वर करेगा तभी बहिश्त वा दोजख में सुख वा दु:ख मिलेगा, इससे यह विरुद्ध बात है।

सू० अन् फाल सी० वालम् इ०। तुम सबमें सौ पुरुष धीरज वाले हो तो दो सौ पुरुषों को दबा लेवैं। तथा यही बात इसी सू० और सीपारे में लिखी है कि यदि दश धीरज वाले होय तो सौ को दबा लेवें। यह जो मुहम्मद का मजहब युद्ध के वास्ते ही दीखता है। यह मुहम्मद साहेब की सब लीला है खुदा की नहीं।

सू० अनफाल सी० वालम् इ०। जो नहीं लिखा होता ईश्वर ने पहिले तो तुम लोगों को बड़ा दु:ख होता।

ठीक है कि लडाई और लूट अन्याय से नहीं मचाते तो धन के विना सुख नहीं हो सकता और जो खुदा के नाम से अपनी बात को प्रसिद्ध न करता तो कोई मानता भी नहीं।

इससे मुहम्मद ने विचार के खुदा के नाम से अपना मतलब सिद्ध कर लिया।

सू० मुहम्मद सी० हम्म इ०। ईश्वर की सहायता करो तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।

जो सहायता हम लोगों से चाहता है, सो ईश्वर ही नहीं हो सकता।

सू० मूमतहिना सी० कद्समिअ इ०। जो लोग तुम से नहीं लड़े दीन के वास्ते और तुमको तुमारे देश से ही निकाल दिया तो उनसे मत लड़ो और उनके साथ स्नेह रक्खो।

सू० अनफाल सी० कालल मल ओ इ०> तुम लोगों ने नहीं मारा है वैरियों को, किन्तु ईश्वर ने उन सबको मारा है।

इसमें विचार करना चाहिए कि प्रथम लिखा जहाँ तुमको वे लोग अपने मत से विरुद्ध, उनका गला काटो। उससे विरुद्ध दीन के वास्ते मत लडो जो कि अपने से न लड़ें, उनसे प्रीति रक्खो।

यह मुहम्मद ने विचारा कि अधिक बल वाले से मत लड़ो। और ईश्वर ने सब वैरियों को मारा है, यह बात अत्यन्त अयुक्त है ईश्वर के स्वभाव से। इन बातों से यह निश्चय मालूम पड़ा कि मुहम्मद को ईश्वर ने नहीं भेजा और न वह रसूल होने के योग्य।

यह बात मुहम्मद के विषय में लिखी गई। इसके आगे ४ खण्ड कुरान में ईश्वर के गुण और कर्मों के वर्णन में हैं वह लिखा जाएगा।

सू० हज्जू सी० इकतरबू इ०। यह दोनों आपस में वैर करते हैं ईश्वर के गुण वर्णन में।

सू० सोमू न् न् सी० कदफत्द इ०। सब लोग उसी में प्रसन्न हैं जे उनके पास हैं। तथा यही बात सू० रूम् सी० अनुलोमा में भी लिखी है वे दोनों ईश्वर के गुण वर्णन में विरोध करते हैं अर्थात् मुहम्मद सबसे अपने मत को छोड़ के विरोध करता है फिर यह कहना व्यर्थ है।

सू० इन् आम् सी० इजासिमि उ इ०। हमने सब लोगों को उनके काम उनके जानने में अच्छे कर दिये हैं।

तथा यही बात सू० नमलू सी० काललू जी, सू० इन् आम् सी० लौइन्ना में भी लिखी है।

ये दोष तो अनेक कुरान में है विना लिखने से जान लेना।

सू० शोरा सी० इलहयरद्दो ई०। ईश्वर के सदृश कोई पदार्थ नहीं है वह सुनता है और देखता है। अर्थात् रस, स्पर्श और गन्ध को नहीं जानता होगा।

सू० हम्मुसूसि जूदा सी० फमन अजलम इ०। मत सिजदा करो सूरज और चाँद को, परन्तु सिजदा करो ईश्वर को जिसने उन सबको बनाया है।

सू० निसा सी० लायुहबो इ०। मत कहो तीन ईश्वर। ईश्वर एक ही



है। काफर हैं वे लोग जो कहते हैं कि तीन में तीसरा ईश्वर है।

यह मुहम्मद साहेब की बात मतलब के वास्ते है कि मुझको और मेरे मत को न माने, वही बुरा है।

सू० बनी ईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। ईश्वर का कोई साझी राज्य में नहीं है।

तथा यही बात सू० फुरकान् सी० कदफल में भी लिखी है।

सू० हज सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। ईश्वर को सिजदा करते हैं यह पशु, फरिश्ते तारे वृक्ष जो कुछ है आसमान और जमीन के बीच में।

तथा यही बात सू० जुमआ० तगावुन् हशर हमान्० और राद्ध में भी लिखी है।

यह बात झूठ है क्योंकि जड़ पदार्थों में ज्ञान ही नहीं, फिर वे खुदा को सिजदा कभी नहीं कर सकते। अनेक वार एक बात का लिखना यह भी दोष है।

सू० अम्बिया सी० इकतरबू इ०। हमने दाउद के साथ पहाड़ों को वश कर दिया और पक्षियों को भी दाऊद के वश में कर दिया। वे सब ईश्वर का स्मरण करते हैं।

तथा यही बात सू० रवाद में भी लिखी है।

यह भी बात अयुक्त है, क्योंकि पहाड़ जड़ के होने से कभी किसी के वशीभूत नहीं होते और उनको सिजदा करते भी हमलोग नहीं देखते।

सू० शोरा सी० इलहयरद्दो ई०। क्यों नहीं हुआ न्याय का वाक्य। यदि न्याय का वाक्य होता तो झगड़ा उनके बीच में से मिट जाता।

तथा यही बात सू० इन् आम सी० इजासमिउ, सू० शोरा हूद् हम्मुससिजदा और यूनस में भी लिखी है।

सू० हज्ज सी० इकतरब इ०। ईश्वर कियामत के दिन न्याय कर देगा यहूदी ईसाई मजसी सायबीन और अनेक ईश्वर वादियों के बीच में।

तथा यही बात सू० यून सू० सिजदा० और बकर: में भी लिखी है।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि न्याय का होना जल्दी चाहिये। जैसे राजा लोग करते हैं। इससे भी शीघ्र ईश्वर न्यायकर्त्ता है। क्योंकि राजा लोग

निश्चय करने के वास्ते विलम्ब से न्याय करते हैं, परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ और निर्भ्रम जिसका ज्ञान है उसके न्याय में विलम्ब कुछ नहीं होता, जैसे किसी को नजर कैद और दौरे में रक्खै, जब तक उसका न्याय नहीं होता, तब तक बड़ा दुःख पाता है कि मेरे वास्ते क्या होगा। ऐसा ईश्वर का न्याय नहीं है, किन्तु ईश्वर की जो न्याय रूप सत्य व्यवस्था, उससे जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। इससे यह बात जोकि कियामत के दिन न्याय करेगा, सो अन्यथा है, ईश्वर की नहीं।

सू० हजर सी० रूबमायुवद्दो इ०। जो ईश्वर चाहता तो सब मनुष्यों को राह देखा देता।

यही बात फिर भी सू० जुखरफ में लिखी है।

सू० निसा सी० वलमुह सिनात् इ०। ईश्वर सब पदार्थ के साथ व्यापक है, तुम सबके साथ है।

यही बात सू० हम्मुससिजदा० बुरूज० हदीद० मुजा विलै० निसा० में भी लिखी है।

सू० अनफाल सी० कालल् मलओ इ०। ईश्वर मनुष्य के हृदय में है। तथा यही बात सू० वाक के आ० काफ में भी लिखी है।

सू० मायदः सी० तायुहबो इ०। ईश्वर की सेना सब पर उत्तम है। यही बात सू० साफात० मुजा दिलै०, सू० फतेह० सी० हम्म में लिखी है। जब मुसल्मानों ने रसूल की आज्ञा मानी तब ईश्वर ने जान लिया जो उनके हृदय में है।

देखो यह बात विरुद्ध है क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ के होने से सब कुछ जानता है पहिले से ही। प्रथम लिखा कि ईश्वर व्यापक है, तद्विरुद्ध फिर लिखा कि खुदा मनुष्यों के हृदय में है।

सू० एराफ० एहजाद मलक हम्मुस सिजदा० यूनस० में भी लिखी है कि भविष्य सब ईश्वर जानता है।

सू० जुमर सी० फमन् अंजलम् इ०। खुदा मारता है सब जीवों को, वह मरणकाल में और स्वप्न काल में फिर रोक रखता है उस जीव को जो कि मर गया और स्वप्न में था।



यह विरुद्ध है कि जीवों को मार डालता है, फिर उनका रोकना कभी न हो सकेगा और जो फिर भेजता है तो एक जन्म का मानना मुसलमानों का मिथ्या है।

सू० तगाबुन सी० कदसमिअ इ०। जो दुःख पहुँचता है सो ईश्वर की आज्ञा से।

यही बात सू० बकरः मुजा दिलै० तोबा० अनुफालू निसा हदीद०, राद०, हजूर० और बनी इसराईल में भी लिखी है।

जो खुदा की तर्फ से सब को दुःख पहुँचता है तो अन्यायकारी खुदा हो जाएगा, क्योंकि अपराध का निश्चय करके दण्ड का देना चाहिए अन्यथा नहीं। वार-वार एक बात का लिखना यह भी बड़ा दोष है।

सू० यूनस् सी० यातजरून इ०। कोई जीव ईश्वर को नहीं मानता परन्तु मानें तो ईश्वर की ही आज्ञा से।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। सब मनुष्यों के गले में उसकी होनहार अवस्था लगा दी है।

यही बात सू० हूद० एराफ०, हजर०, शोरा० में भी लिखी है। इससे ईश्वर चाहै उसको ज्ञानी बनावै और चाहै उसको अज्ञानी बना दे तो खुदा ही अन्यायकारी उन्मत्त सा हो जायगा। इससे यह बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती। पुनरुक्त दोष तो अनेक हैं।

सू० सिजदा सी० अतुलोमा इ०। जो हम चाहते तो सब जीवों को राह देखा देते परन्तु हम पहिले ही कह चुके हैं कि हम नरक को भरेंगे मनुष्य और राक्षसों से।

यही बात सू० मायदः, शोरा०, निहल०, इन् आम्०, राद०, यूनस्० और हूद में भी लिखी है।

यह बात खुदा की नहीं, क्योंकि प्रथम तो बहका के पाप कराना और फिर नरक में डालना, यह अन्यायकारी कपटी और छल की होती है, ईश्वर की कभी नहीं।

सू० मर्यम० सी० कालअलम् इ०। जो पुरुष अन्धकार अन्याय में पड़ा, तो ईश्वर उस को उसी में रखता है अर्थात् अन्धकार अन्याय से

निकलना मनुष्य के आधीन नहीं, ईश्वर ने ऐसा ही भाग्य ठहरा दिया है।

यह बड़ी अव्यवस्था की बात है कि एक वार भूलके अधर्म किया जिसने, उसको सदा दण्ड में रखना और जिसको सुख में रक्खा उसकी भी अवधि नहीं। कि फिर कराने वाला वही है जो कि पीछे दण्ड देता है। इसमें अपराध सब खुदा का ठहरता है जो न्याय से व्यवस्था होय तो खुदा को ही सब दण्ड होना चाहिये, जीवों को नहीं, क्योंकि इसमें जीवों का अपराध ही साबूत नहीं होता।

सू० बनी ईसराईल सी० सुब्हान अलजी इ०। ईश्वर ने कहा कि शैतान को कि तू चला जा, जो मनुष्य तेरी बात माने, हम उसको नरक में बडा दण्ड देंगे।

सू० हजर् सी० रुबमायुवद्दो इ०। हमारी प्रजा पर शयतान का कुछ जोर नहीं, परन्तु जो उसको मानै, उस पर शयतान को हमने भेजा है दुष्टों पर।

सू० सवासी० मनयक नुत इ०। शयतान का वश हमारी प्रजा पर इस हेतु से है कि जिससे हम जानैं ईश्वर के मानने वालों को और सन्देह करने वालों को।

सू० एराफ० सी० तौइन्ना इ०। जो वे लोग नहीं मानते ईश्वर को हमने उनका सहायक शयतान बनाया है।

इसमें यह बात है कि जब खुदा ने आदमी को बनाया तब सब फरिश्तों से कहा कि तुम सब आदमी को सिजदा करो अर्थात् नमस्कार करो खुदा के अर्थात् मेरे हुक्म से। सब फरिश्तनों ने नमस्कार किया, परन्तु शयतान ने नहीं किया। खुदा से कहा कि हम लोग आदमी से उत्तम हैं क्योंकि हम आगी से पैदा भये हैं और आदमी मिट्टी से, सो मैं नमस्कार उसको न करूँगा। तब खुदा ने गुस्सा होके कहा कि तू मेरा हुकुम नहीं करता, तब शयतान बोला कि आप ठीक हुकुम देओगे तो मैं करूँगा और अन्याय से अन्यथा हुकुम करेंगे, तो उसको मैं कभी न करूँगा। तब खुदा ने अत्यन्त गुस्सा होके कहा कि लानत है तुझको अर्थात् धिक्कार है। तू मेरे पास से चला जा। फिर शयतान वहाँ से चला और खुदा से कहा कि



मैं तेरी प्रजा को ऐसी बहकाऊँगा कि तेरा नाम और तेरी तरफ कोई न आवेगा। तब खुदा ने उससे कहा कि तू जा और प्रजा को बहका। परन्तु मैं एक तोबा शब्द से सबके अपराधों को अर्थात् क्षमा पापों की कर देऊँगा।

इसमें विचारना चाहिये कि शयतान खुदा की बराबरी का हुआ। उस बागी को कैद भी खुदा नहीं कर सका। कोई कहे कि उसने बहुत बन्दगी की थी, इससे उसको उस वक्त दण्ड नहीं दिया। यह भी बात अयुक्त है क्योंकि चोर और डांकू तथा दुष्ट, राजा की अत्यन्त सेवा करैं, तो भी उनको कभी न छोड़ना चाहिये। और खुदा इस बात से शरीरधारी निश्चित मालूम देता है। सो प्रथम कहा कि खुदा व्यापक है, इससे यह विरुद्ध है। और तू मनुष्य को बहकाता था, तेरा जोर प्रजा पर चलेगा। फिर लिखा कि शयतान का कुछ जोर नहीं, इससे विरुद्ध। हमने दुष्टों पर शयतान को भेजा, यह विरुद्ध है। फिर इससे विरुद्ध जिससे हम जानें शयतान की सहाय से कि यह ईश्वर को मानता है वा नहीं। यह ईश्वर की सर्वज्ञता का नाशक है। फिर लिखा कि ईश्वर को जो नहीं मानते हैं, उनका सहायक शैतान को हमने बनाया है, यह पूर्व से विरुद्ध। यह ऐसी बात खुदा की कभी नहीं हो सकती सिवाय छोटी बुद्धिवाले मनुष्य से।

सू० इब्राहीम सी० माउबर्ऱ्ह इ०। सब जीवों को, जो किया है, कर्म का फल, सो दिया जायगा। यही बात सू० जासिया०, मोमिन०, मुदस्सिर०, बकर:०, आलेइम्रान्०, नजम्० और हशर् में भी लिखी है।

सू० अन्कबूत० सी० अम्मन् खलक इ०। जो लोग अच्छा काम करते हैं, हम उनकी बुराइयों को काट देते हैं।

यही बात सू० हूद फरकान एहकाफ० फतेह० और जुमर में भी लिखी है।

देखना कि जो जैसा कर्म करेगा, वह वैसा पावेगा। फिर लिखा कि उनकी बुराइयों को हम काट देते हैं। यह पूर्वापर विरुद्ध है और पिष्टपेषणवत् भी।

सू० निसासी० वलमुह सिनात इ०। न तुम सबको भरोसा है, न

यहूदी, न ईसाइयों को, क्योंकि जो जैसा कर्म करेगा, वह वैसा फल पावेगा।

सू० बकरः सी० अलम इ०। मुसलमान, यहूदी, ईसाई, सायबीन इन सबमें से जो पुरुष ईश्वर को मानैं कि या मत को और अच्छा काम करै तो उनको अच्छा फल मिलेगा।

यही बात सू० मायदः सी० लायुहब्बो में भी लिखी है।

यह बात क्षमा करने की आयतों से विरुद्ध है। इससे खुदा की बनाई कुरान नहीं हो सकती।

सू० रुम० सी० अतुरोमा०। उपद्रव उठा है भूमि और समुद्र में लोगों के कर्मों से, हम उनके कर्मों का दण्ड देंगे।

यह भी बात क्षमा करने के वाक्यों से विरुद्ध है।

सू० इन आम्० सी० लौइन्ना इ०। जो पुरुष भलाई करै तो उसको दश गुना मिलेगा और बुराई जितनी है, उतनी ही मिलेगी अधिक नहीं।

यही बात सू० मोमिन० और यूनस० में भी लिखी है।

जो ऐसा होगा तो संसार में बुराई से कोई नहीं डरेगा। और एक वक्त बुराई करै उसको सब दिन दोजख में ही डाल देना। इससे यह विरुद्ध है।

सू० मोमिन० सी० फमन अजलम इ०। वे लोग स्वर्ग में जायेंगे और अनन्त सुख पावेंगे।

सू० हजर सी० रुब्बमायुबद्दो इ०। हमने उन सबका भाग ठहरा दिया है कि वे सब दुःख में पड़ेंगे और बहुत लोगों को हमने दण्ड दिया है, मार डाला है और डुबा दिया है।

यही बात सू० इन आम्० मर्यम०, किसस०, यूनस०, फुरकान०, बनी इसराईल० और नमल में भी लिखी है।

यह बात पूर्व से विरुद्ध है, क्योंकि करानेवाला तो खुदा ही है। फिर जीवों को दण्ड का होना अनुचित है और पुनरुक्त दोष भी है। ऐसी बात खुदा की नहीं हो सकती।

सू० राद् सी० माउबर्रौ इ०। हमने दुष्टों को अवकाश दिया है फिर हम उनको पकड़ेंगे।



यही बात सू० मलायक० नून० और इब्राहीम में भी लिखी है।

यह बात अयुक्त है क्योंकि प्रथम तो दुष्टता करने के वास्ते अवकाश देना, फिर उनको पकड़ के दण्ड देना। यह जाल खुदा के पर ही ठहरता है इससे न्यायकारी ईश्वर की ऐसी बात कभी नहीं होती।

सू० शोरा० सी० इलहयरद्दो इ०। यदि ईश्वर प्रजा की जीविका खोल देता, तो यह सब पृथिवी पर अन्धकार मचाते। ईश्वर देता है जीविका जितना चाहता है। यह भी पक्षपात की बात है क्योंकि विना अपराध से थोड़ी जीविका क्यों देता है।

सू० निहल सी० रूब्बमायुवद्दो इ०। यदि ईश्वर मनुष्यों को उनके अपराध पर पकड़ता तो पृथिवी पर एक जीव को भी नहीं छोड़ता।

यही बात सू० मलायकः में भी लिखी है।

यह बात अयुक्त है क्योंकि अपराधी न पकड़े जांय, तो सब अपराध करने में ही प्रवृत्त हो जांय।

सू० निसासी० वलमुह सिनात् इ०। ईश्वर चाहता है तुम सब पर तोबा करावै।

यही बात सू० तौबा एहराफ० और निहल में भी लिखी है।

सू० निसासी० लतनालू इ०। तौबा उन लोगों पर है कि जे अपराध करैं विना जानैं, तो फिर जावैं।

इसी सूरे और सीपारे में है तौबा उन लोगों के वास्ते नहीं है कि अपराध करते जावैं और मरण काल में कहैं कि हमने तोबा किया।

तथा सू० आले इम्रान् में भी लिखा है।

सू० मोमिन सी० फमन अजलम् इ०। जो पुरुष डरैं अपराधों से आज के दिन अर्थात् हर रोज तो ईश्वर उस पर कृपा करै।

सू० तौबा सी० यातजरून इ०। अपराध की क्षमा कराने वाला कोई नहीं परन्तु उसके हुकुम से।

तथा यही बात सू० सबामर्यम् बकरः, अम्बिया सिजदहः० जुमर० और जुखरफ० में भी लिखी है। ये सब बात परस्पर विरुद्ध हैं कि ईश्वर चाहता है कि तुम सब पर तौबा करावैं। इससे विरुद्ध यह लिखा कि

बेजानें किये अपराधों से क्षमा होती है अन्यथा नहीं। फिर इससे विरुद्ध लिखा कि क्षमा कराने वाला कोई नहीं। ये सब पूर्वापर विरुद्ध दोष हैं और पिष्टपेषणवत् भी दोष हैं। इससे ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती यह अल्पज्ञ मनुष्यों की ही रचना है।

सू० तौबा सी० यातजरुन् इ०। रसूल को और मुसलमानों को नहीं चाहिये कि अपने सम्बन्धी अनेक ईश्वरवादियों के अर्थ ईश्वर से अपराध क्षमा की प्रार्थना करैं। और इब्राहीम ने अपने बाप के अर्थ ऐसी प्रार्थना की थी परन्तु जब उसने जाना कि यह ईश्वर का द्रोही है तो उससे अलग हो गया। यह बात अयुक्त है क्योंकि सबके कल्याण के वास्ते सज्जनों को ईश्वर से प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। सो मुहम्मद ने ऐसा चाहा कि उनको लूटो मारो और अपना मतलब करो। ऐसी बात ईश्वर की नहीं होती।

सू० तौबा सी० वालम० इ०। तुम सब ईश्वर को भूल गये, तब ईश्वर तुम सबको भूल गया।

यह बात ईश्वर की नहीं क्योंकि ईश्वर दयालु और सर्वज्ञ के होने से कभी किसी को नहीं भूलता।

सू० बकरः सी० समकूलो इ०। हम सब उन सबको चाहते हैं, भय, क्षुधा, धन की हानि और जीव की हानि से।

यह बात भी अयुक्त है क्योंकि जो मुहम्मदादिक चाहते तो लूट और लड़ाई क्यों मचाते।

यही बात सू० फजर०, निहल्०, हूद०, आले इम्रान्० मायदः०, कहफ० और मलक० इत्यादि में भी लिखी है। यह भी पिष्टपेषणवत् दोष जानना।

सू० हदीद सी० कालफमा इ०। हमने लोहा पैदा किया है उसमें बहुत गुण है। और ईश्वर अब जानेगा कि कौन ईश्वर की सहायता करता है।

यह बात अयुक्त, क्योंकि लोहा का गुण मुहम्मद केवल लड़ाई करने के वास्ते कहता है। और ईश्वर को क्या भय पड़ा है कि हमसे सहायता



मांगे।

सू० निसा सी० वलमुह सिनात् इ०। ईश्वर बड़ा छल करने वाला है और इसका छल पक्का है।

यही बात सू० अनफाल०, सी० एराफ०, आले इम्रान्०, नमल और तारक में भी लिखी है।

भला आदमी भी किसी से छल नहीं करता तो खुदा छल कैसे करेगा। और जो करता है सो खुदा कभी नहीं होता।

सू० इन आम्० सी० लौइन्ना इ०। हम सब बस्तियों में बड़ा अपराधी भेजा है, जिसमें वह सबको छलै।

ईश्वर बड़ा छली और छल करने वाला होगा तो वह बड़ा अपराधी होगा, फिर वह खुदा कभी नहीं होगा।

सू० एराफ सी० लौइन्ना इ०। खुदा ने कहा कि तू चला जा यहाँ से, जो पुरुष मेरी बात मानैंगे उन पुरुषों से हम नरक को भरेंगे।

सू० सिजूदह सी० अतुलोमा इ०। मेरा वाक्य निश्चित हो चुका है कि मैं नरक को भरूँगा मनुष्य और राक्षसों से। यही बात सू० हूद०, स्वाद०, मोमिन्०, एहकाफ०, हम्मुससिज दहः० और एहकाफ में भी लिखी है।

यह बात अत्यन्त धर्म से विरुद्ध है क्योंकि सबको छलने को वास्ते शयतान को भेजा खुदा ने कि मैं सब नरक को भरूँगा। इसमें जीवों का कुछ अपराध नहीं ठहरता सिवाय खुदा के।

सू० काफ० सी० हम्म० इ०। एक दिन ऐसा होगा कि ईश्वर नरक को कहेगा क्या तू भर गया। वह कहेगा, क्या कुछ और है।

सू० त्वाहा सी० काल अलम् इ०। ईश्वर ने कहा आदमी और हवा को कि तुम सब नीचे गिर पड़ो।

एक दूसरे के वैरी हो जाओ। यही बात सू० बकरः एहराफ० में भी लिखी है।

सू० मायद सी० लायुहव्वो इ०। हमने उन सबके बीच में वैर और ईर्ष्या डाल दी है प्रलय काल तक।

यही बात सू० तोबा और मायदः० में भी लिखी है।

सू० रूम् सी० अतुलोमा इ०। हमने उन सबके बीच में स्नेह मित्रता और दया दी है।

यह बात अयुक्त है क्योंकि नरक जड़ है इससे उसका बोलना असम्भव। एक दूसरे के वैरी हो जाओ तथा ईष्या और वैर प्रलय काल तक उनके बीच में हमने रख दिया है। फिर उन सबमें स्नेह मित्रता और दया रख दी है। ऐसी बात उन्मत्त पुरुष की होती है, बुद्धिमान् और खुदा की कभी नहीं।

सू० राद् सी० माउबर्ऱ्रे इ०। सब बातें लिखी हुई हैं, पुस्तकों की माता ईश्वर के पास है। ईश्वर जिसको चाहे, उसको नचावै, जिसको चाहै उसको बना रक्खै।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। जिसको ईश्वर राह देखावै वही अच्छा राह वाला है। और जिसको खुदा भटकावैं उसको कोई सहायक नहीं है ईश्वर को छोड़ के।

यही बात सू० कहफ०, निसा० और एराफ में भी लिखी है।

सू० इन आम् सी० इजासमिऊ इ०। ईश्वर जिसको चाहै उसको राह देखावै।

फिर भी यही आयत सू० यूनस०, इन आम्०, शोरा० नूद०, नून० इत्यादिक में भी लिखी है।

सू० निहल सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। किसी पुरुष को ईश्वर राह देखाता है, और कोई ऐसे हैं कि उनके लिए भटकना ठहरा दिया है।

सू० तौबा सी० बालमू०। ईश्वर राह नहीं देखाता है काफरों को।

तथा यही बात सू० बकरः, निहल०, मायद:० और जासियादि में भी लिखी है।

यह बात बुद्धिहीन पुरुषों की दीखती है खुदा की नहीं, क्योंकि खुदा न्यायकारी और दयालु है। आपसे आप कोई जीव भटके सो तो भटकता है, और ईश्वर की तरफ से भटकाना कभी नहीं बनता।

सू० रूम् सी० अतुलोमा इ०। ईश्वर जिसको चाहै उसको बहुत जीविका दे और जिसको चाहे उसको थोड़ी दे।



यही बात आयतों सू० सवा०, राद०, जुमर्० और बनी इसराईल में भी लिखी है। यह बात अयुक्त है, क्योंकि विना भलाई से बहुत आजीविका का देना और विना अपराध से थोड़ी का देना, यह खुदा की बात नहीं बनती सिवाय अन्यायकारी मनुष्यों के।

सू आलेइम्रान् सी० तिलकर रसूल इ०। ईश्वर जिसको चाहै राज्य दे और जिससे चाहै छीन ले। जिसको चाहे प्रतिष्ठा दे जिसको चाहे अप्रतिष्ठित करै।

यही बात सू० बकरः सी० तिलकर रसूल इ०। ईश्वर जिसको चाहै उसको क्षमा दे, और चाहै जिसको दण्ड दे।

यही आयत कुरान के सू० आले इम्रान् मायद:०, फतेह०, अनुकबूत्०, दहर०, शोरा० और मलायका इत्यादि में लिखी हैं।

सू० निसासी० वलमुह सिनात् इ०। ईश्वर जिसको चाहै उसका मन शुद्ध करैं और अपनी सहायता दे।

तथा सू० नूर०, यूसुफ० और आले इम्रान में भी लिखी है।

सू० शोरा० सी० इलहयरद्दो इ०। जिसको चाहै बेटी दे, जिसको चाहे बेटा और जिसको चाहै वन्ध्या करै।

सू० अनफाल सी० वाल मू० इ०। ईश्वर बडा ही दण्ड देने वाला है।

तथा सू० इन आम्०, एराफ० इब्राहीम०, आले इम्रान और हजर में भी लिखी है। ये सब बात अन्याय की जाननी न्याय की नहीं।

सू० बकरः सी० सयकूलो इ०। ईश्वर शीघ्र गणना करने वाला है। तथा सू० मायद:०, इब्राहीम०, आले इम्रान् और इनआम में भी लिखी है।

सू० रूम० सी० अतुलोमा इ०। ईश्वर मूर्खों के हृदय पर मोहर लगा देता है। अर्थात् अप्रकाश कर देता है।

तथा सू० एराफ०, मुतफ्फीन्, तौबा०, यूनस०, बकर:०, जासिया और निहल० इत्यादि में भी लिखी है।

सू० तौबा सी० यात जूरून् इ०। ईश्वर ने फेर दिया है उनके हृदय को, वे लोग नहीं समझते।

तथा सू० एराफ० और इन आम्० में भी लिखी है।

सू० बनी इसराईल, सी० सुब्हान अल्लजी इ०। हमने परदा डाल दिया उनके हृदयों पर और उनके कान में बोझ रख दिया और उनके आँख, कान, हृदय पर मोहर लगा दी।

तथा सू० इन आम्० निहल० और जासिया० में भी लिखी है।

जो ये बात सत्य हैं तो ईश्वर को ही सब दण्ड होना चाहिये अन्य को नहीं।

सू० इन् आम् सी० इजासमिऊ इ०। ईश्वर को आखें नहीं देख सकती।

परन्तु इसके विरुद्ध सब नीचे की आयत हैं।

सू० रु० सू० सी अतुलोमा इ०। जो लोग हमारा दर्शन पाने को परलोक में नहीं मानते उनको बड़ा दण्ड होगा।

तथा सू० कहफ०, इन् आम्०, यूनस०, हम्मुस सिजदह, इन् आम और सिजदह में भी लिखी है। इन दोषों से कुरान् खुदा की बनायी नहीं बन सकती, सिवाय साधारण मनुष्य के।

सू० निमल सी० कालह्ल जीन् इ०। शब्द हुआ कि इस आग में और इसके पास जो है सो पवित्र है। हे मूसा! हम हैं ईश्वर तेरे।

सू० जुमर सी० फमन् अजलम् इ०। पृथिवी प्रकाशवती हो रही है अपने ईश्वर के प्रकाश से।

सू० त्वाहा सी० काल अलम् इ०। जब देखा मूसा ने आग को और आया वहाँ, तो शब्द हुआ हे मूसा हम हैं तेरे ईश्वर। अपने दोनों पाओं की जूती उतार डाल। तू पवित्र स्थान में है। हमारे सिवाय कोई ईश्वर नहीं है, तू हमारी उपासना कर।

सू० किसस् सी० अम्मन् खलक इ०। हे मूसा! हम हैं ईश्वर आओ और मत डरो।

सू० तोबा सी० वालम्० इ०। ईश्वर अपने प्रकाश को पूरण कर्त्ता है यद्यपि बुरा।

सू० नूर० सी० कदफल: इ०। ईश्वर ज्योति है, पृथ्वी और आकाश की। उस ज्योति की उपमा यह है कि आला अर्थात् गवाक्ष में दीपक कांच



पात्र में एक प्रकाशित तारा है श्रेष्ठ वृक्ष के तैल से वह बरता है। वह न पूर्व का है न पश्चिम का है। उसका तैल बर उठेगा अग्नि के स्पर्श के विना ही। यह परम प्रकाश है। ईश्वर राह देखावै अपनी प्रकाश की तर्फ जिसको चाहै।

सू० हूद० सी० मामिन् ब्बा इ०। ईश्वर का सिंहासन पानी के उपर था।

सू० हाक सी० तवारक इ०। फरिश्ता उठाता है सिंहासन तेरे ईश्वर का।

सू० राद् सी० लौइन्ना इ०। ईश्वर सिंहासन पर विराजमान हुआ।

तथा सू० सिजदह०, यूनस्०, राद्०, त्वाहा० फुरकान और नजम्० में भी लिखा है।

सू० सिजदह सी० अतुलोमा इ०। सब काम बनाता है आकाश से पृथिवी की तर्फ आके फिर चढ़ जाता है आकाश की तर्फ।

सू० रहमान सी० कालफमा इ०। जो कुछ है पृथिवी पर सब विनाशी है। ईश्वर जो बड़ा पराक्रमी तेजस्वी है वह एक रह जाता है अर्थात् उसका मुख रह जाता है।

सू० कसिस सी० अम्मन् खलक इ०। सब पदार्थ विनाशी है ईश्वर के मुख को छोड़ के।

सू० मोमिन्नू सी० कदफल इ०। ईश्वर के हाथ में है सब पदार्थ की शक्ति।

तथा सू० मलिक और यासीन् में भी लिखी है।

सू० फतेह सी० हम्म इ०। खुदा के हाथ उनके हाथ के ऊपर है।

सू० जारियात सी० काल फमा इ०। आकाश को बनाया हमने हाथों से।

सू० हूद सी० मामिन् दाब्बा इ०। आकाश को उत्पन्न किया हमारे आँखों के सामने।

सू० तूर सी० कालफमा इ०। तू हमारी आँखों के सामने है।

सू० नून० सी० तवारक इ०। जिस दिन खोली जावैं जंघा और कहें

सिजदा, अर्थात् अभिवादन करने को तो वे लोग नहीं मानेंगे।

सू० एराफ० सी० काललमल ओ इ०। ईश्वर ने कहा है कि हे मूसा! मैंने आदमियों के बीच में तुझको उत्तम देख के निकाल लिया, अपने वाक्य पहुँचाने के वास्ते।

सू० हज्ज सी० इकतरब इ०। ईश्वर ने चुन लिया रसूल को फरिश्तों से।

सू० त्वाहा सी० काल अलम् इ०। हमने तुझको बनाया अपने वास्ते।

सू० आले इम्रान सी० तिलकर रसूल इ०। बनाता है मुरदे से जिन्दे को और मुरदा बनाता है जीते से।

तथा यही बात सू० इन आम्० यूनस० रूम हज्ज में भी लिखी है।

सू० बकर: सी० अलम् इ०। तुम मुरदे थे हमने तुझको जीता किया। फिर तुमको मारूँगा, फिर जिलाऊँगा, उसके पीछे तुम लोग फिरोगे ईश्वर की ओर।

तथा इसी सू० और हज्ज में भी लिखी है।

सू० मुहम्मद सी० हम्म इ०। ईश्वर पूर्ण काम है, तुम सब दीन हो।

इसमें विचारना चाहिए कि मूसा से अग्नि रूप हो के बात की और जिसको जैसा चाहे वैसा कर दे। मूर्खों के हृदय पर मोहर लगाना चाहे तो खोल दे, नहीं तो बहकाया करे। फिर उनको दण्ड देना, कांच के पात्र के दीप की उपमा देना। ईश्वर सिंहासन पर बैठा है, फरिश्ता उसको उठाता है। आकाश से पृथिवी की तरफ आके फिर चढ़ जाता है। यह बात 'व्यापक खुदा को प्रथम लिखा' उससे विरुद्ध का होना। फिर उसका मुख रह जायगा, उसके हाथ में सब पदार्थ की शक्ति है, उसके ऊपर खुदा के हाथ हैं। आकाश को हाथों से बनाया हमारे आखों के सामने। ये बात व्यापक और निराकार कथन से सब विरुद्ध हैं। आदमियों के बीच में से तुझको चुन लिया, इससे विरुद्ध फरिश्तों से रसूल को बनाया, दुनिया के भले के वास्ते रसूल को बनाया और भेजा। इससे विरुद्ध तुझको अपने वास्ते बनाया। मुरदे का जिलाना, मारके और फिर उनको जिलाना। इन बातों से खुदा का खुदापन बनता तो नहीं किन्तु नष्ट हो जाता है। कुरान्



में जो ईश्वर विषय लिखा है सो हमको साधारण मनुष्य की कल्पना दीखती है। इससे कुरान् मुहम्मदादिकों ने अपने मतलब के वास्ते बना लिया है खुदा की तर्फ से नहीं।

यह पाँचवाँ खण्ड कुरान के विषय में लिखा गया। इसके आगे छठहा खण्ड जैसा कि पदार्थ विद्या की प्रशंसा के विषय में लिखा है इस विषय में लिखा जाएगा।

सू० बकर सी० तिलकर रसूल इ०। जिसको पदार्थ विद्या दी गई है उसको बहुत भलाई दी गई है।

सू० आले इम्रान सी० लतनाल इ०। पृथिवी और आकाश की उत्पत्ति में रात्रि और दिन के घटने और बढ़ने में विद्वानों को ईश्वर की शक्ति का बोध होता है।

तथा सू० यूनस में भी लिखा है।

सू० निहल सी० रुब्ब मायुबद्दो इ०। सूर्य, चांद और तारे ये ईश्वर के विषय में घिरे हुए हैं, विद्वानों को ईश्वर की शक्ति का बोध होता है।

सू० जारियात सी० कालफमा इ०। हमने उत्पन्न किया है मनुष्य और राक्षसों को उपासना करने के अर्थ।

सू० स्वाद्सी० मालीला इ०। हमने आकाश और पृथिवी को और उसके बीच में जो हैं उनको व्यर्थ नहीं बनाया। तथा यही बात सू० आले इम्रान्, अम्बिया०, मोमिनून० और हजर्० में भी लिखी है।

इतनी बात से ही ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती और न प्रशंसा, किन्तु सर्वशक्तिमत्त्व और न्यायकारित्वादिक गुणों से प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से सिद्ध होने से मनुष्यों को निश्चय हो सकता है अन्यथा नहीं। परन्तु यह मालूम भया कि मुहम्मदादिक इतना जानते थे ईश्वर विषय में, उतना ही लिखा, अधिक कहाँ से लिखें। और उपासना से ईश्वर का मतलब सिद्ध होता होगा, इससे इनको खुदा ने बनाया। परन्तु इसमें ऐसा लिखना योग्य था कि ईश्वर की उपासना से जीव सब दु:खों से छूट के ईश्वर को प्राप्त होता है और अनन्त आनन्द को भी।

पुनरुक्त दोष भी कुरान में अनेक हैं।

सू० एह काफ सी० हम्म इ०। हमने मनुष्य को उपदेश किया है कि अपने मा बाप का उपकार करैं।

सू० निहल सी० रुब्बमायुबद्दो इ०। ईश्वर आज्ञा करता है न्याय उपकार कुटुम्ब पालन को और निषेध करता है बुरे कामों से।

यह भी प्रथम लेख से विरुद्ध है क्योंकि जो न्याय और उपकार करना आवश्यक है तो जहाँ देखो वहाँ काफरों का गला काटो यह बात क्यों कहता।

सू० बनी इसराईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। जो अन्धा है इसलोक में तो वह परलोक में भी अन्धा होगा। इसमें जीव का कुछ दोष नहीं क्यों कि खुदा जिसको चाहे उसको अन्धा बनावै और जिसको चाहे उसको देखता।

सू० अम्बिया सी० इकतरब इ०। सब जीव काल के भक्ष्य हैं।

तथा सू० अन् कबूत में भी लिखा है।

सू० अम्बिया सी० इकतरब इ०। तेरे पहिले किसी मनुष्य को हमने अमर नहीं बनाया है हे मुहम्मद!

जो सब काल के भक्ष्य हैं तो प्रथम क्यों लिखा कि मैं मारता हूँ और मैं ही जिलाता हूँ। और जो खुदा ही काल है तो खुदा का ही सब भक्ष्य ठहरा और जो खुदा काल नहीं तो खुदा के हाथ में मारना नहीं। फिर पूर्व कथन से विरुद्ध होगा। इससे कुरान न ईश्वर का बनाया और पदार्थविद्या की प्रशंसा ऐसी बातों से नहीं होती, किन्तु निन्दा होती है। और जो मुहम्मद को अमर बनाया तो वह जन्मा और मर क्यों गया। ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं होती। इससे क्या जाना गया कि मुहम्मदादिकों को पदार्थ विद्या ऐसी आती थी। और जो खुदा की ऐसी बात हो तो खुदा की भी पदार्थ विद्या की परीक्षा हो जाय। इससे खुदा की बनाई यह बात नहीं है सिवाय साधारण मनुष्यों के।

यह छठा खण्ड पूरा भया। इसके आगे सातवाँ खण्ड लिखा जायगा, उत्पत्ति के विषय में जैसा कि कुरान में लिखा है।

सू० बकरः सी० अलम् इ०। जिस समय ईश्वर ने किसी काम को



करना चाहा तो उसने कहा कि हो जाओ, हो गया।

तथा यही बात सू० मर्यम०, मोमिन्०, आले इम्रान्०, निहल और यासीन० में भी लिखी है।

जो ऐसा होता कि हो जाओ, हो गया, तो ईश्वर अपनी उपासना कराया चाहता है मनुष्य और राक्षसों से, फिर क्यों नहीं सब उसकी उपासना करते।

सू० मोमिन् सी० फमन् अजलम इ०। आकाश और पृथिवी की उत्पत्ति बड़ी है मनुष्य की उत्पत्ति से।

सू० बकरः सी० अजलम् इ०। ईश्वर विराजमान हुआ आकाश पर और आकाश के सात विभाग कर दिये।

तथा यही बात सू० तलाक०, मलकू० और मोमनून् में भी लिखी है।

सू० एराफ सी० लौइन्ना इ०। ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को छः दिवस में बनाया। पीछे सिंहासन पर विराजमान हुआ।

तथा यही बात सू० यूनस० सिजदहः, फुरकान्०, हदीद०, हूद० में भी लिखी है।

आकाश निराकार है फिर उसका विभाग कैसे बन सकेगा। ईश्वर के हुकुम से सब बन गया, फिर उससे विरुद्ध यह लिखा कि छह दिवस में बनाया। और जो छह दिवस में बनाया तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् ही नहीं। ऐसी बात ईश्वर की नहीं होती।

सू० लुकमान् सी० अतुलोमा इ०। ईश्वर ने आकाश को बनाया स्तम्भा के विना।

तथा यही बात सू० राद्० में भी लिखी है।

आकाश बड़ा भार वाला पदार्थ जाना होगा मुहम्मदादिकों ने, इससे यह अयुक्त बात लिखी है।

सू० हम्मुस् सिज्दहः सी० फमन् अजलम् इ०। ईश्वर ने पृथिवी को बनाया दो दिन में और चार दिन में उसके पदार्थ सब। पीछे आकाश पर विराजमान हुआ और यह आकाश धूम है। आकाश और पृथिवी को कहा तुम दोनों प्रसन्नता वा अप्रसन्नता से रहो। तब आकाश के और दो

दिनों में सप्तविभाग किये और नीचे वाले आकाश को ताराओं से शोभायमान किया।

प्रथम लिखा कि छह दिनों में सब जगत् को उत्पन्न किया। उससे विरुद्ध यह है कि और दो दिनों में आकाश के सप्त-विभाग किये। ऐसा साधारण मनुष्य का कहा होता है, खुदा का नहीं।

सू० हज्ज सी० इकतरब इ०। आकाश को रोक रक्खा है नहीं तो पृथिवी पर गिर पड़े।

यह बात अत्यन्त विरुद्ध है कि पृथिवी पर आकाश गिरना, क्योंकि वह बहुत सूक्ष्म पदार्थ है और हल्का, वह कैसे गिरेगा।

सू० सिज्दह सी० अतुलोमा इ०। सब कार्य पृथिवी में बनाये हैं आकाश से। फिर चढ़ गया आकाश की ओर एक दिन में, जोकि मनुष्यों का एक १००० हजार वर्ष हैं।

इससे मालूम पड़ा कि खुदा ने अपने छह वा आठ दिनों में सब जगत् रचा होगा, फिर खुदा सर्वशक्तिमान् न रहा। और कहा खुदा ने तभी बन गया, उससे यह अत्यन्त विरुद्ध है और ईश्वर के व्यापकता से भी।

सू० हजर सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। हमने आकाश में बनाये हैं बुर्ज। हमने चाँद के स्थान में सब तारे निर्मित किये हैं जिससे संवत्सरों की संख्या जानी जाये।

तथा यही बात सू० यासीन् में भी लिखी है।

यह भी बात विरुद्ध है, क्योंकि आकाश में बुर्ज नहीं बन सकते। और चाँद के स्थान से बहुत तारे दूर भी हैं, और कितनेक निकट भी हैं। इससे यह कहना कुरान में विरुद्ध है।

सू० बकरः सी० सयूकूलो इ०। तुझको पूछते हैं द्वितीया के चन्द्र को तूँ कह कि यह समय का प्रमाण है मनुष्यों के लिये और हज्ज करने के लिये, अर्थात् मक्के की नियम पूर्वक यात्रा का नाम है।

सू० कहफ सी० काल अलम् इ०। जब पहुँचता है सूर्य पश्चिम में तूँ उसको पावेगा कि डूब गया है एक झील में।

ऐसी बात कोई बेसमझ आदमी भी नहीं कहता तो खुदा कैसे



कहेगा।

सू० यासीन् सी० मालीला इ०। सूर्य नहीं पाने सकता है चन्द्रमा को। और न रात्रि आगे हो जाती है दिन से। और सब आकाश में ईश्वर की उपासना करते हैं।

यह बात युक्ति से विरुद्ध है। जड़-पदार्थ क्या ईश्वर की उपासना करेंगे।

सू० कदर सी० अम्म इ०। कदर की रात्रि हजार महीने से भी उत्तम है। उसमें ईश्वर की आज्ञा से फरिश्ते और रूह् उतरती हैं। रूह का अर्थ जीव है और कहीं जिब्रईल् फरिश्ते की भी संज्ञा है। यह भी बात युक्ति और बुद्धि से विरुद्ध है, क्योंकि हजार वर्ष तक उतरना रूह और फरिश्ताओं का, यह मुहम्मद साहेब का कहना मात्र है।

सू० इन् आम् सी० इजासमिऊ इ०। ईश्वर वह है जिसने तुह्मारे वास्ते तारे बना दिये हैं जो कि तुम को राह देखाते हैं, भूमि और समुद्र के अन्धकार में।

सू० हजर सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। हमने आकाश की रक्षा की है शैयतान से। और जो शैयतान वा आकाश से श्रवण करके चुरा ले जावे तो उसको लाल अंगारा मारा जाता है।

इसमें जानना चाहिये कि लोगों ने पूछा था मुहम्मद से कि आकाश में तारा सा टूटता देखाई देता है, सो क्या है। मुहम्मद ने उत्तर दिया कि यह लाल अंगारा है। इससे मुहम्मद साहेब की विद्या और बुद्धि जान पड़ी जैसा की है। क्योंकि आकाश में वायु के परस्पर घर्षण से अग्नि उत्पन्न होके दीखता है, फिर विलय हो जाता है और कुछ नहीं।

तथा यही बात सू० साफात० मलिक और जिन्न में भी लिखी है फिर भी उस-उस आयतों में इस बात का उत्तर अन्यथा लिखा है, सो बुद्धिमान् विचार लेवें।

सू० रूम सी० अतुलोमा इ०। तुम को बिजली दिखाता है भय और लोभ के अर्थ।

सू० राद० सी माउबर्रह् इ०। ईश्वर तुमको बिजली दिखाता है, भय

और लोभ के अर्थ और मेघ ईश्वर के गुणानुवाद को उच्चारण करते हैं और ईश्वर भेजता है विद्युत् अर्थात् जो जमीन में गिरती है, उस विद्युत् से जिसको सताना चाहता है।

सू० तवारक् सी० अम्म इ०। सब प्राणियों पर रक्षक निर्माण किये गये हैं।

तथा यही बात इन फित्तार में भी लिखी है।

सू० फतेह सी० हम्म इ०। ईश्वर की सेना है जो कुछ है आकाश और पृथिवी में।

सू० मुदस्सिर् सी० तवारक्। ईश्वर के सेना की संख्या कोई नहीं जानता ईश्वर को छोड़ के।

सू० मलायकः सी० मनयक नुत् इ०। ईश्वर ने फरिश्तों को बनाया है दो बाजू और तीन और चार बाजू का अर्थ जो पक्षियों के पंख।

सू० रहमान सी० कालफमा इ०। उत्पन्न किया जिन्नों को अग्नि से।

तथा सू० हजर में भी लिखा है।

इसमें विचारना चाहिये कि भय और लोभ के अर्थ बिजली को ईश्वर क्यों दिखावेगा, किन्तु बिजली तो वृष्टि में कारण है। और बिजली से मनुष्यों को सताता है यह भी ईश्वर की बात नहीं, किन्तु कर्मों की बात है। सब ऊपर रक्षक हैं फिर लोक पाप क्यों करते हैं जो कुछ आकाश और पृथिवी में है सो ईश्वर की सेना है तो उसको खुदा वश में क्यों नहीं रखता और पाप क्यों कराता है। ईश्वर की सेना की संख्या नहीं होती। और दो बाजू फरिश्तों को रक्खा है उनके कहने से संसार का हाल जो खुदा जानता है तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं। इससे कुरान मनुष्य का बनाया दिखता है, खुदा का नहीं।

यह छठा खण्ड पूरा भया। इसके आगे सातवाँ खण्ड लिखा जायेगा जैसा कि कुरान में है, सो पृथिवी की उत्पत्ति और मनुष्यों के वर्णन में जानना।

सू० निहल सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। पृथिवी में डाल दी है बिछावन फैलाने के वास्ते।



सू० आले इम्रान सी० लतनाल इ०। पहिले घर में जो सब से पहिले बनाया गया है, सो आश्चर्ययुक्त शक्ति है वह इब्राहीम का स्थान है, जो उसके अन्दर आवे सो निर्भय होवे।

सू० मायदः सी० इजासमिऊ इ०। ईश्वर ने बनाया काबे को प्रतिष्ठित घर।

सू० हज्ज सी० इकतरब इ०। हमने आज्ञा दी कि मेरा-सा किसी का घर मत बनवाओ और मेरे घर को शुद्ध रख यात्रा करने वाले के लिये।

सू० बकरः सी० सय्क्लो इ०। सफा और मर्वः ईश्वर की शक्तियों के चिह्न हैं। सफा और मर्व दो पहाड़ियों के नाम हैं मक्के में। वहाँ पानी भी बहता है। इसमें यह मालूम देता है कि मुहम्मदादिकों ने मस्जिद बनाई है अपने मतलब के वास्ते, उनका नाम रख दिया है खुदा का स्थान, क्योंकि यात्रा में बहुत मनुष्यों के आने से जीविका होगी। सब से पहिले वह स्थान नहीं बना है, किन्तु इब्राहीम से बना है। और उसमें आश्चर्ययुक्त शक्ति कुछ नहीं सिवाय पाषाणादिक जड़-पदार्थों के। और उसके अन्दर आने से निर्भय भी नहीं होता और जो अपराधी को उसमें जाने से दण्ड न दिया जाये तो अन्याय होगा। दोनों पहाड़ी में ईश्वर की शक्ति कुछ नहीं है, किन्तु जो ईश्वर की शक्ति है सो तो ईश्वर में है। इन बातों से ठीक मालूम पड़ता है कि ये सब मनुष्य की बनाई बात है।

सू० यासियात सी० मालीला इ०। हरे वृक्षों में से तुह्मारे वास्ते अग्नि निकाली है।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि अग्नि सबमें व्यापक है और सब पदार्थों से अग्नि अब भी हम लोग उत्पन्न कर सकते हैं। इससे ऐसी बात ईश्वर की नहीं बन सकती सिवाय साधारण मनुष्य के।

सू० अम्बिया सी० इकतरब इ०। हमने सब चीज को पानी से जिलाया है।

सू० नूर सी० कदफलः इ०। ईश्वर ने सब पशुओं को उत्पन्न किया है जल से।

सू० मोमिन् सी० कदफलः इ०। पशु तुम को पिलाते हैं, अर्थात्

अपना दूध और उसमें तुमको बहुत लाभ है।

केवल एक पानी से सब का जीवन और पशुओं की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती। पशुओं से सब को बड़ा लाभ है, फिर मुसलमान लोग उनका गला क्यों काटते हैं। इससे यह बात भी ईश्वर की नहीं।

सू० रूम् सी० अतुलोमा इ०। ईश्वर की आश्चर्ययुक्त शक्ति से है, पृथिवी और आकाश की उत्पत्ति मनुष्यों की पृथक्-पृथक् भाषा और पृथक् रंग।

यह भी बात अयुक्त है, क्योंकि अब तक हम लोग पृथक्-पृथक् भाषा उत्पन्न होती देखते हैं और पढ़ भी सकते हैं। रंग भी देश-देशान्तर के गर्मी और शीतता के स्वभाव से बदल जाता है। इसी बात से ईश्वर की आश्चर्य शक्ति नहीं सिद्ध हो सकती।

सू० मर्यम सी० काले अलम् इ०। हमने उसको उत्पन्न किया पहिले से कुछ भी नहीं था।

सू० तीन् सी० अम्म इ०। मनुष्य को अच्छी बनावट में उत्पन्न किया और उसको नीचे से नीचे में फेंक दिया है।

ईश्वर ने जिसको बनाया है उसको अपने गुणों में अच्छा ही बनाया है। और नीचे में फेंक दिया तो वह जीता कैसे रहा।

सू० लुकमान सी० अतुलोमा इ०। तुम सबको उत्पन्न किया है एक जीव के समान।

तथा यही बात सू० निसा०, जुमर०, एराफ० और इनआम् में भी लिखी है।

सू० रूम् सी० अतुलोमा इ०। तुम लोगों को जोड़े तुह्मारी जाति में से बनाये हैं।

सू० निहल् सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। मनुष्य को हमने उत्पन्न किया वीर्य से।

तथा यही बात सू० यासीन में भी लिखी है।

सू० वाकआइ० सी० कालफमा इ०। क्या तुमने देखा तुम वीर्य डालते हो क्या, तुम उत्पन्न करते हो, हम उत्पन्न करते हैं।



सू० नवा सी० तवारक इ०। क्या तुम वीर्य नहीं था, फिर होते-होते ठीक हो गया।

सू० दहर सी० तवारक०। हमने उत्पन्न किया मनुष्यों को वीर्य से। फिर उसको सुनने वाला और देखने वाला बना दिया।

तथा सू० मुर्सिलात० तरक० अब्बस० में भी यही बात लिखी है।

सू० मूमनून सी० कदफलः इ०। मनुष्य को हमने उत्पन्न किया मिट्टी से। फिर उसको वीर्य बनाया, फिर उसको मांस बनाया, फिर उसमें हड्डी बनाया, फिर हड्डियों को लपेट दिया मांस से। फिर उत्पन्न किया दूसरी उत्पत्ति धन्य है ईश्वर सब उत्पत्ति करने वालों में श्रेष्ठ।

तथा यही बात सू० इन् आम्० सिजदहः० त्वाहा०, साफात्०, मलायकः०, मोमिन्०, कहफ०, हजर्० और रहमान में भी लिखी है।

सू० फुरकान् सी० कालह्लजीन इ०। मनुष्य को उत्पन्न किया जल से।

सू० सिज्दहः० सी० अतुलोमा इ०। मनुष्य की उत्पत्ति का आरम्भ किया मिट्टी से, फिर पानी से, फिर ठीक कर दिया और उसमें फूँक दिया अपनी रूह से ईश्वर ने।

सू० मा० आरिज् सी० तवारक इ०। इन्सान को उत्पन्न किया निर्बल और कच्चा।

तथा सू० निसा में भी लिखा है।

सू० रूम् सी० अतुलोमा इ०। तुमको उत्पन्न किया है निर्बलता से, उसके पीछे बलवान् बनाया, उसके पीछे निर्बल और बूढ़ा।

सू० बल्द सी० अम्म इ०। मनुष्य को उत्पन्न किया कपट-छल में।

तथा सू० अम्बिया में भी लिखा है कि मनुष्य को जल्दी और शीघ्रता से बनाया है।

ऐसी-ऐसी अत्यन्त पूर्वापर विरुद्ध बात खुदा की कभी नहीं हो सकती। और जो हो तो वह खुदा ही नहीं। इससे यही जानना चाहिये कि मुहम्मदादिकों ने कुरान बना लिया है।

सू० कहफ् सी० काले अलम् इ० मनुष्यों को बहुत से पदार्थों से

श्रेष्ठ बनाया।

सू० जासिया सी० इलहवरद्दो इ०। जो कुछ आकाश और पृथिवी के बीच में है उन सबको मनुष्य के वश में कर दिया।

यह बात ठीक नहीं, क्योंकि आकाश और पृथिवी के बीच में अनेक पदार्थ दु:ख-रोग और वायु आदिक हैं जो कि मनुष्यों के वश में नहीं।

सू० अलक सी० अम्म इ०। मनुष्य को सिखाया जो बात नहीं जानता था।

सू० साफात सी० मालीला इ०। मनुष्य के सन्तान में भले हैं और अन्यायी भी हैं अपने वास्ते।

सू० असर सी० अम्म इ०। मनुष्य अवश्य हानि में है।

सू० आदि सात सी० अम्म इ०। मनुष्य अपनी ईश्वर की कृपा को भूला हुआ है।

सू० दहर सी० तवारक् इ०। हमने मनुष्य को राह दिखा दी है, परन्तु कोई गुण मानने वाला है और कोई नहीं मानने वाला।

सू० तगाबुन सी० कदसमिअ इ०। ईश्वर वही है जिसने तुम सबको उत्पन्न किया फिर तुम में से कोई उपकार मानने वाला है और कोई नहीं मानने वाला। यही बात सू० बनी इस्राईल शोरा० और जुखरफ्० में भी लिखी है।

सू० इब्राहीम सी० उबर्ऱ्ह इ०। मनुष्य अन्यायी और उपकार नहीं मानने वाला है।

यही बात सू० कहफ० अलक और हज्ज में भी लिखी है।

प्रथम यह लिखा कि कोई उपकार मानता है, कोई नहीं, कोई न्यायकारी है और कोई अन्यायकारी, कोई उपकार और गुण को मानता है, कोई नहीं। इससे विरुद्ध यह लिखा कि मनुष्य बहुत अन्धकारी, अन्यायी और उपकार नहीं मानने वाला है, यह पूर्वापर विरुद्ध मनुष्य के वचन में हो सकता है, खुदा के वचन में कभी नहीं तथा इसमें पुनरुक्त दोष भी है।

सू० मा० अरज सी० तवारक इ०। जब बुराई लग जावै मनुष्य को



तब दीन होके गिड़-गिड़ाता है और जब लाभ उसको कुछ प्राप्त हो तो ईश्वर को नहीं मानता।

तथा यही बात सू० हम्मुस् सिजदह:० में भी लिखी है।

सू० अन्कबूत् सी० अतुलोमा इ०। जिस वक्त चढ़ते हैं नाव पर तो ईश्वर को निष्कपट मानते हैं और जब ईश्वर ने पहुँचा दिया पृथिवी पर, तो वे अनेक ईश्वर की बात करते हैं।

तथा यही बात सू० लुकमान् में भी लिखी है।

सू० बनी इस्राईल सी० सुब्हान् अल्लजी इ०। तुझसे पूछते हैं कि रूह क्या है ? तूँ कह कि रूह ईश्वर की आज्ञा है और तुम लोगों को थोड़ा ही ज्ञान दिया गया।

सू० सिजदह: सी० अतुलोमा इ०। ईश्वर ने फूँक दी अपनी रूह से मनुष्य में।

तथा यही बात सू० हजर् स्वाद० हरीम० और अम्बिया में भी लिखी है।

सू० मर्यम सी० काल अलम् इ०। मर्यम के पास हमने भेजा अपनी रूह को।

इस स्थान में रूह का अर्थ जिब्रईल् फरिश्ता है। वह ठीक मनुष्य बन गया।

सू० बकर: सी० अलम् इ०। ईसा की सहायता की हमने रूह कुद्स से। रूह कुद्स का अर्थ है शुद्ध ईश्वर।

तथा यही बात सू० बकर: सू० सी० तिलकर रसूल मायद:० और मुजादिल्० में भी लिखी है।

सू० निसा सी० लायुहब्बो इ०। मसीह ईसा मर्यम का बेटा है। ईश्वर ने वाक्य और अपनी रूह उस में डाल दी।

सू० कदर् सी० अम्म इ०। फरिश्ते और रूह अर्थात् जिब्रईल् ईश्वर की आज्ञा से उतरते हैं कदर् की रात में।

सू० मोमिन् सी० फमन् अजलम् इ०। ईश्वर अपने सेवकों में से जिसको चाहै उसको उतारता है।

तथा यही बात सू० निहल्० और शोरा० में भी लिखी है।

इसमें विचारना चाहिये कि नाव का किस्सा लिखना, ईश्वर जो पहुँचा देता है तो डुबाता भी वही होगा। प्रथम लिखा कि रूह ईश्वर की आज्ञा है। फिर उससे विरुद्ध लिखा कि फूँक दी अपनी रूह मनुष्यों में। फिर लिखा कि रूह को मर्यम के पास अर्थात् जिब्रईल् को भेजा। वह ठीक मनुष्य हो गया। ईसा की सहायता रूह कद्स से हमने की, फिर उसका सहाय पूरण क्यों नहीं पड़ा, किन्तु बीच में ही मारे गये। फिर उससे विरुद्ध लिखा कि अपनी रूह उसमें डाल दी, फिर वह ईसा ईश्वर का अंश ही ठहरता है। कदर् की रात में रूह और जिब्रईल् उतरते हैं यह कहने मात्र है। इसका कुछ प्रमाण नहीं हो सकता। फिर लिखा जिस सेवक पर चाहे, उस पर रूह उतारे। यह बात पक्षपात की होती है और पूर्वापर विरुद्ध भी तथा पिष्टपेषणवत् दोष भी बहुत से हैं।

यह सातवाँ खण्ड पूरा हो गया। इसके आगे आठवाँ खण्ड शयतान की बातों के वर्णन में, कुरान में है, सो लिखा है—

सू० बकरः सी० अलम् इ०। जब हमने हुकुम दिया फरिश्तों को कि आदम को सिज्दा करो उन सबने सिज्दा अर्थात् नमस्कार किया। परन्तु शयतान ने हुकुम नहीं माना और अहंकार किया वह जिन्नात् में से था।

तथा यही बात सू० एराफ्०, कहफ्०, हजर्०, बनी इस्राईल और त्वाहा में भी लिखी है।

सू० एराफ् सी० लौइन्ना इ०। शयतान ने कहा कि मैं आदम से श्रेष्ठ हूँ, मुझको तूँने उत्पन्न किया है आग से और आदम को उत्पन्न किया है मिट्टी से। ईश्वर ने कहा कि तूँ गर्व मत कर, गिर पड़ नीचे बिहिस्त से।

देखो कि ईश्वर की आज्ञा खण्डित हो गई और उसके मन को वश न कर सके। फिर उस बागी को छोड़ दिया और जैसे आदमियों की परस्पर वाद-विवाद और कहानी होती है वैसे खुदा की भी दिखाती है। ऐसी बात खुदा की नहीं हो सकती।

सू० त्वाहा सी० काल अलम् इ०। शयतान ने आदम को कहा कि क्या तुझको खुदा ने बनाया है, अमर पद के वृक्ष को।



सू० बकरः सी० अलम् इ०। आदम और हवा को शयतान ने भटकाया और दोनों को निकलवा दिया।

तथा यही बात सू० एराफ्० में भी लिखी है।

सू० निसा सी० वलमुह सिनात् इ०। खुदा ने शयतान को धिक्कार दिया। तब शयतान ने खुदा को कहा कि मैं अपना भाग लेऊँगा मनुष्य से और उनको बहकाऊँगा।

सू० बनी इस्राईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। शयतान ने कहा खुदा से जो तूँ मुझको अवकाश दे प्रलय काल तक तो मैं मनुष्यों के सन्तानों को सताऊँ परन्तु किसी-किसी को छोड़कर।

सू० स्वाद० सी० मालीला इ०। खुदा ने कहा कि तूँ देख प्रलय काल तक। तब शयतान ने खुदा से कहा कि मैं देखता हूँ, तेरी प्रतिष्ठा की शपथ खाता हूँ कि मैं अवश्य उन सबको भटकाऊँगा और बहकाऊँगा।

सू० हजर सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। शयतान ने कहा कि हे खुदा! जिससे तूँने मुझको बहकाया, मैं मनुष्यों को पृथिवी पर धोखा देऊँगा और बहकाऊँगा, परन्तु तेरे सच्चे सेवकों को छोड़ के।

सू० बनी इस्राईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। खुदा ने कहा शैयतान को कि तूँ चला जा। मनुष्यों में से जो तुझको मानै उसको दण्ड है, नरक है। तेरी बोली से और सवारी से तथा पाँव से उनको रोंद डाल, अर्थात् छिन्न-भिन्न कर मनुष्यों को। उनके धन और सन्तान में तूँ साझी हो और उनको दबा।

सू० इन् आम् इ० सी० लौइन्ना इ०। शयतान के पैर के चिह्न मत चलो। यह तुम्हारा बहुत ही वैरी है।

तथा यही बात बनी इस्राईल, मलायकः, त्वाहा और यासीन में भी लिखी है।

सू० एराफ् सी लौइन्ना इ०। शयतान को उसके साथी उन सबको देखते हैं किस प्रकार से कि तुम उनको नहीं देखते।

इसमें इन बातों से यह निश्चित मालूम पड़ता है कि शयतान दूसरा खुदा है और खुदा का विरोधी भी, क्योंकि विरुद्ध ही चलता है और

डरता नहीं, किन्तु खुदा की बराबर वाद-विवाद करता है। और खुदा ने भी उसको मार नहीं डाला और कैद नहीं किया। इससे मालूम पड़ता है कि खुदा शयतान का साथी है और अन्याय भी कराता है, क्योंकि उसको मारने वा कैद करने से ही खुदा न्यायकारी बन सकता है अन्यथा नहीं।

सू० अन्फाल् सी० बालम् इ०। मैं देखता हूँ जो कि तुम सब नहीं देखते हो। मैं ईश्वर को डरता हूँ।

तथा यही बात सू० हशर् में भी लिखी है।

जो शयतान खुदा से डरता तो बागी क्यों होता। इससे कहने मात्र डर है।

सू० इब्राहीम सी० माउबर्रऊ इ०। शयतान का वश उन सब पर कुछ नहीं, परन्तु वह बोलाता है तुमको, यदि तुम सब मानो, तो उसको दोष मत देओ, अपने को ही धिक्कार देओ।

सू० हजर् इ०। शयतान का वश उन लोगों पर है कि जो उनके पीछे चलते हैं।

तथा यही बात सू० हज्ज में भी लिखी है।

बहकाने वाले का ही अधिक दोष गिना जाता है, थोड़ा बहकने वाले का। शयतान का वश उन पर है, और उन पर नहीं है, यह बात परस्पर विरुद्ध है, खुदा की नहीं बन सकती।

सू० नूर् सी० कदफलः इ०। शयतान तुम सब को आज्ञा करता है बुरे-बुरे काम करने की।

सू० मायदः सी० इजासमिऊ इ०। शयतान तुम लोगों के बीच में वैर और झगड़ा उत्पन्न करता है तूँ आ और मुद्रा के द्वारा।

सू० अन्कबल् सी० अम्मन् खलक इ०। शयतान ने मनुष्य को ऐसा भरमा दिया है कि मनुष्य जो काम करता है, सो अच्छा जानता है।

तथा यही बात नमल० इन् आम्०, हम्मुस्, सिजदा०, हजर्० और अन्फाल् में भी लिखी है।

सू० इन् आम् सी० लौइन्ना इ०। मनुष्य के शयतान और जिन्नात के शयतान एक दूसरे को बात बताते हैं झूठी।



तथा इसी सूरे में फिर भी लिखी है।

सू० शोरासी० कालल्लजीन् इ०। शयतान दुष्ट लोगों के मन में बात डाल देता है और वह सब झूठी है।

सू० निसा सी० बल्मुह सिनात् इ०। शयतान का मकर निर्बल है, तुच्छ है। देखो कि शयतान मनुष्यों को बहकाता और झगड़ा डाल देता है।

मनुष्य के शयतान और जिन्नात के शयतान, दो प्रकार के शयतान एक दूसरे को बात बताते हैं। ये सब बात अयुक्त हैं और दुष्टों के मन में बात शयतान डाल देता है यह बात अयुक्त है, क्योंकि शयतान के बहकाने के विना वह दुष्ट ही नहीं बन सकेगा। इससे यह जाना जाता है कि कुरान के कथन से शयतान बड़ा जबर्दस्त है जो कि खुदा की आज्ञा से भी विरुद्ध हो गया और खुदा उसको दण्ड यथावत् नहीं दे सका। इससे कुरान खुदा की और विद्वान् की बनायी नहीं दिख पड़ती।

यह आठवाँ खण्ड हो गया। इसके आगे नववाँ खण्ड आश्चर्ययुक्तशक्ति की बातों के वर्णन में है, सो लिखा जाता है—

सू० बकरः सी० अलम् इ०। अपनी लाठी को तूँ पत्थर से मार। हे मूसा! जब उसने मारा तब उसमें से बारह झरने फटकर निकल आये।

यही बात सू० एराफ्० और स्वाद में भी लिखी है।

सू० कहफ० सी० सुब्हान अल्लजी इ०। तूँने जाना कहफ् और रकीम के पुरुष हमारी आश्चर्ययुक्त शक्ति है। सूर्य जब उदय होता है तब उनके खोह से दाहिने है और जब अस्त हो गया है तब उनके बाँयें हैं। और वे सब छाया में हैं, अर्थात् सूर्य के किरण उन पे नहीं पड़ती। तूँ उनको जागता हुआ जानेगा, परन्तु वे सोए हैं। हम उनको फेर देते हैं दहने से बाँयें। कहते हैं कि वे तीन पुरुष हैं और कोई लोग कहते हैं कि पाँच हैं और कोई कहते हैं कि सात हैं। हे मुहम्मद! तूँ कह कि ईश्वर जानता है इतने हैं। वे अपनी खोह में तीन से नव वर्ष से हैं। मुहम्मद तूँ कह कि ईश्वर जानता है कितने वर्ष से हैं।

इन आश्चर्ययुक्त बातों से जाना जाता है कि मनुष्यों ने अपने मतलब

के वास्ते कथा-कहानी बना ली है। ईश्वर की तरफ से नहीं मालूम देती।

यह नववाँ खण्ड हो गया। इसके आगे दशवाँ खण्ड चलेगा, आश्चर्ययुक्तशक्ति और पहिले रसूलों के वर्णन में—

सू० इब्राहीम सी० माउवर्र्रु इ०। लोगों ने कहा अपने समय के रसूलों को कि तुम सब हमारे सदृश मनुष्य हो। रसूलों ने कहा कि हाँ-हाँ तुम्हारे सदृश मनुष्य हम भी हैं, परन्तु ईश्वर अपनी प्रजा में से जिस पर चाहे कृपा करे।

सू० फुरकान् सी० कदफल: इ०। हे मुहम्मद! तुझसे पहिले वाले रसूल खाना खाते थे और हाट में फिरते थे।

सू० हजर सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। जब हमने ठीक बना दिया आदम को तब अपनी रूह फूँक दी उसमें। तब सब फरिश्तों ने सिज्दा किया, परन्तु शयतान ने न किया।

सू० बकर: सी० अलम् इ० खुदा ने आदम को कहा कि तूँ और तेरी जोरू स्वर्ग में रहो और इस वृक्ष को मत छूना।

सू० एराफ् सी० लौइन्ना इ०। खुदा ने कहा आदम और हव्वा को कि तुम दोनों इस वृक्ष को मत छूओ, परन्तु शयतान ने उन दोनों को बहकाया और कहा कि ईश्वर ने तुम दोनों को किस हेतु से रोका है इस वृक्ष को छूने से कि तुम दोनों फरिश्ते हो जाओगे और अमर पद को पाओगे इस वृक्ष के फल खाने से।

तथा इसी सू० और सीपारे में भी लिखा है कि जब उन दोनों ने उस पेड़ का फल खाया, तब उनको ज्ञान हुआ अपने बुराई का और अपने नंगे होने का। तब उन दोनों ने अपने ऊपर पत्ते लपेटे। तब ईश्वर ने पुकारा क्या तुम दोनों को हमने नहीं रोका था उस वृक्ष से। तब वे दोनों बोले कि हे ईश्वर! हमने अपने ऊपर अन्याय किया।

सू० त्वाहा सी० काल अलम् में फिर भी वह बात लिखी है।

इससे यह मालूम पड़ता है कि स्वर्ग हिमालय में ही खुदा का था, क्योंकि आदम और आदमी इसी जमीन पर पैदा भये हैं और खुदा भी उसी स्थान में रहता होगा, तो सात आस्मान के ऊपर खुदा रहता है, उससे



यह बात विरुद्ध हो गई। और इस वृक्ष का फल मत खाना, यह जो रोकना, सो खुदा का नहीं बन सकता, क्योंकि उस फल के खाने से ज्ञान हो जाता था और उमर बढ़ जाती थी। उसको कोई बिगाड़ नहीं था, फिर खुदा अच्छे काम से क्यों रोकता। और जो रोका तो ज्ञान का निषेध किया कि ये अज्ञानी रहें। और उमर के रोकने से उनका मरण चाहता है, तो उनको पैदा ही क्यों किया। फिर जो उस वृक्ष के फल के खाने को रोका तो उस वृक्ष को उत्पन्न करना ही व्यर्थ। और उनको निकाल दिया तो भी अच्छा नहीं, क्योंकि बहकाने वाला जा शयतान उसको ही दण्ड देना योग्य था। इससे ऐसी बात खुदा की कभी नहीं बनती।

सू० त्वाहा सी० काल अलम् इ०। हमने प्रतिज्ञा की थी कि आदम के साथ, परन्तु वह भूल गया।

अच्छा वह तो भूल गया अल्पज्ञ के होने से, परन्तु खुदा तो सर्वज्ञ था। उनने भूल के प्रतिज्ञा पहिले ही क्यों की। ऐसी बात खुदा की कभी नहीं हो सकती सिवाय मनुष्यों के।

सू० एराफ सी० कालल मलओ इ०। उन दोनों ने ईश्वर का साझी ठहराया है, परन्तु ईश्वर शुद्ध है और बड़ा है, अर्थात् कोई उसका साझी नहीं है।

सू० एराफ् सी० लौइन्ना इ०। हमने बचाया नूह को और जो उसके साथ थे। और हमने डुबा दिया उन लोगों को कि जो हमारी शक्ति को नहीं मानते थे।

सू० नूर सी० तवारक इ०। नूह ने कहा हे ईश्वर! तूँ दुष्ट लोगों को फिरता हुआ पृथिवी पर मत छोड़। यदि तूँ छोड़ेगा उनको, तो तेरी प्रजा को बहकावेंगे और दुष्ट व्यभिचारी जन्मावेंगे।

सू० इन आम सी० इजासमिऊ इ०। इब्राहीम ने अपने बाप को कहा कि यह मूर्त्ति क्या ईश्वर है। तब उसने तारे को देखा फिर चाँद को देखा और कहा कि यह मेरा ईश्वर है। जब अस्त हो गये तब इब्राहीम ने कहा कि मैं अलग हूँ अनेक ईश्वर वाद से।

देखना चाहिये कि उनके साझी ठहराने से आदम और हव्वा के

ऊपर खुदा नाराज हो गया अन्यथा। क्योंकि वे तो अज्ञानी थे, उनके ऊपर नाराज क्या होना। और खुदा पक्षपाती भी है, क्योंकि उसकी शक्ति को जो मानैं उसको बचा दे और जो न मानैं उसको डुबा दे। यह तुच्छ बात खुदा की नहीं हो सकती, क्योंकि उसकी दया और क्षमा अनन्त है, डूबता है वा तरता है, सो अपने-अपने कर्म और पुरुषार्थ से। नूह के कहने से दुष्टों को मारने लगे इससे अन्याय और पृथिवी पर घूमे, इससे साकार, अर्थात् शरीर वाला खुदा होता है, सो भी बात अयुक्त है। इब्राहीम और उसके बाप की कथा से यह मालूम भया कि प्रथम उन देशों में बुतपरस्ती थी, वहाँ से अब आर्यावर्त्त में आ गई है।

सू० बकरः सी० तिलकर रसूल इ०। हे इब्राहीम! प्रत्येक पहाड़ पर एक-एक टुकड़ा फेंक दे फिर उनको पुकार। सब दौड़े चले आवेंगे तेरे पास।

इसकी कथा यह है इब्राहीम ने चार पक्षी पाले और उनको मार कर एक-एक टुकड़ा पहाड़ों पर फेंक दिया और उन सब पक्षियों को पुकारा तो वे सब टुकड़े दौड़ते इब्राहीम के पास आये और मिल गये। ऐसी बात पदार्थ गुणों से हो सकती है जैसे कि जादूगर करते हैं।

सू० निसा सी० बलमुहसिनात् इ०। इब्राहीम के सन्तानों को हमने बड़ा मुल्क दिया।

सू० अम्बिया सी० इकतरब इ०। खुदा ने कहा कि हे अग्नि तू ठण्डी हो जा, अर्थात् इब्राहीम के बचाने के वास्ते।

इसमें भी पक्षपात ईश्वर का ठहरता है, क्योंकि एक को बचाता है और अन्य को नहीं।

सू० एराफ्० सी० कालल् मलऔ इ०। लूत ने कहा हे ईश्वर! फैला देओ, तब दुष्ट लोग अपने-अपने घर में औंधे गिर पड़े।

सू० नमल् सी० काललजीन् इ०। क्या तुम सब दुष्कर्म ले आये हो पुरुषों पर दौड़ते हो स्त्रियों को छोड़ कर।

तथा यही बात सू० एराफ्० में भी लिखी है।

सू० हूद् सी० मामिन्दाब्बा इ०। हमने उस बस्ती में ऊपर वाली को



नीचे कर दिया और उस पर मेह बरसाया।

इसमें विचारना चाहिये कि लूत के कहने से ही औंधे सब गिर गये, यह बात सब बुद्धि से बाहर है। इसमें भी ईश्वर पक्षपाती बन सकता है। और बस्ती को उलटी कर देना यह भी ईश्वर के दया गुण से विरुद्ध है, क्योंकि उन सब को अर्थात् बालकादिकों को मार डालना बे-अपराध से। यह अन्यायकारी का काम है, ईश्वर का नहीं।

सू० एराफ् सी लौइन्ना इ०। साल्ह रसूल ने कहा कि ऊँटनी ईश्वर की है, तुम सब के वास्ते यह ईश्वर चिह्न है। तुम इससे डरो और उनके साथ बुराई मत करो। उन लोगों ने काट डाला ऊँटनी को, तो उनको भूकम्प ने पकड़ा और वैसे ही अपने घर में औंधे गिर पड़े।

तथा यही बात सू० हूद शोरा० और कमर में भी लिखी है।

यह बात भी प्रमाण विरुद्ध है, क्योंकि एक ऊँटनी ही ईश्वर की कैसे बन सकती है। ऐसे किस्सों से कुरान मनुष्य का बनाया मालूम देता है, ईश्वर का नहीं।

सू० हूद सी० मामिन्दाब्बा हमने बचाया शोएव रसूल को और उसके मानने वालों को तब घोर शब्द ने पकड़ लिया अन्याय करने वालों को। वे सब गिर पड़े अपने घर में और उज़ैर नाम रसूल को। हजार वर्ष बाद उसको फिर जिलाया। उज़ैर ने अपनी सवारी का घोड़ा भी जीता हुआ पाया। और अपना सब अस्बाब वैसे ही पाया। उसने ऐसा जाना कि हम एक दिन सोए थे।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि हजार वर्ष पीछे जिलाना असम्भव और घोड़े का जीना भी, क्योंकि घोड़ा कैसे जी सकेगा।

सू० शोरा सी० काललजीन् इ०। मूसा ने कहा कि मैं मिसिर वालों का अपराधी हूँ कि वे लोग मुझे मार डालैं और मैं राह भूला हूँ।

सू० कसिस् सी० अम्मन् खलक इ०। मूसा ने कहा कि यह शयतान का काम है। हे ईश्वर! मुझ पर क्षमा कर। तो ईश्वर ने क्षमा की। फिर मूसा वहाँ से डरता हुआ भाग गया।

इसकी कथा यह है कि मूसा ने एक आदमी को मुक्का मारा और

वह मर गया। फिर मूसा को लोगों ने कहा कि तूँ भी मारा जायेगा। फिर मूसा डर के वहाँ से भाग गया। जो मूसा रसूल है तो उसको क्रोध क्यों भया। और ईश्वर तो सहाय पर है, फिर डरा क्यों और क्यों भाग गया।

सू० बनी इस्राईल इ० सी० सुब्हान अल्लजी इ०। हमने मूसा को नव आश्चर्ययुक्त शक्ति दी।

सू० एराफ् सी० कालल मलओ इ०। मूसा ने डाल दी अपनी लकड़ी तो वह साँप हो गई और अपने हाथ को निकाला तो अत्यन्त उज्ज्वल और प्रकाशमान था। और हमने मूसा को कहा कि तूँ अपनी लकड़ी डाल दे तो यह निगल जायेगी सब जादुओं को जो कि मिसिर वालों ने की है।

तथा यही बात सू० शोरा० नमल्० और त्वाहा० में भी लिखी है।

सू० त्वाहा सी० काल अलम् इ०। हमने मन्न और सलुआ उन पर अर्थात् मूसा और मूसा के साथ वालों पर भेजा। इसकी कथा यह है कि जंगल में जब कुछ भोजन को नहीं था तो ईश्वर ने चालीस दिन तक तुरंजवीन जिसका नाम मन्न है और एक चिड़िया जिसका नाम सलुआ [बटेर] है, आकाश से प्रति दिन भेजा। उसी को खाकर वे लोग जीवे थे।

सू० शोरा सी० काल्लजीन् इ०। हमने मूसा को कहा कि तूँ अपनी लाठी नील नदी पर मार। तब वह नद फट गया है और दोनों किनारे बड़े पहाड़ के तुल्य हो गये। तब मूसा और उनके साथियों को हमने बचा लिया। और पीछे आने वालों को अर्थात् मिश्र की सेना को डुबा दिया।

इन बातों से खुदा पक्षपाती हो जाता है और बात भी असम्भव है। ऐसी बातों को बुद्धिमान् कभी नहीं मान सकते।

सू० निसा सी० लायुहब्बो इ०। मूसा ने कहा कि हे बनी इस्राईल। तूँ जबरदस्ती मत करो शनैश्चर के दिन।

यही बात सू० निसा और सी० बल मुहसिनात्० में भी लिखी है।

सू० एराफ्० सी० कालल् मलओ इ०। मछली सब पानी के ऊपर आती थी शनैश्चर के दिन। और दिन पानी के ऊपर नहीं आती थी। हम उनकी परीक्षा इससे करते थे।



यह बात बनावट की है, क्योंकि मछलियों को ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता। उनको बहकाने के वास्ते मूसा ने रच ली होगी।

सू० बकर: सी० तिलकर् रसूल इ०। रसूलों में से किसी रसूल को हमने दूसरे रसूल पर बड़ाई दी है, किसी के साथ बात की है।

सू० एराफ् सी० लालल् मलओ इ०। मूसा ने कहा हे ईश्वर! तूँ मुझ को दर्शन दे। मैं तेरी तरफ देखूँ। ईश्वर ने कहा तूँ मुझ को कभी नहीं देख सकता। तूँ पहाड़ की तरफ देख, वह ठहर सकेगा अपने स्थान पर, तो तूँ देख सकेगा मुझको। उसके पीछे ईश्वर ने पहाड़ पर अपना प्रकाश किया। तब उस पहाड़ के टुकड़े-टुकड़े कर डाला और मूसा बेहोश गिर पड़ा। ईश्वर ने कहा हे मूसा! हमने तुझको मनुष्यों में से चुन लिया मेरे वाक्य पहुँचाने के वास्ते।

सू० इन् आम् सी० लौइन्ना इ०। फिर हमने मूसा को किताब दी, उसमें सब बात का विचार है।

तथा इसी सू० और सीपारे में फिर भी लिखा है।

सू० कहफ् सी० सुब्हान् अल्लजी इ०। जब चढ़े नाव में मूसा और खिजर्, तब खिजर् ने नाव को तोड़ दिया और जब एक लड़के को पाया तो उसको मार डाला।

तथा इसी सूरे सी० काल अलम् में भी लिखा है कि जब मूसा और खिजर गाँव में पहुँचे और एक भीत गिरी जाती थी, उसको खड़ा कर दिया।

इन तीनों बात की कथा यह है कि नाव को इस वास्ते तोड़ दिया कि वह अन्यायी राजा, सो लोगों की नौका छीन लेता था।

इस नौका को निकम्मी जान को छोड़ दे। और उस लड़के को इस वास्ते मार डाला कि वह दुष्ट होता और माँ-बाप को सताता। और भीत जो खड़ी कर दी उसके स्वामी दो बालक थे और उस भीत के जड़ में धन गड़ा हुआ था। जो उन दोनों बालक के युवावस्था प्राप्त होने के पहिले यह भीत खोदी जाती तो धन दूसरे लोग ले जाते।

सू० अम्बिया सी० इकतरब् इ०। हमने दाऊद के वश में कर दिया

है पहाड़ और पक्षियों को।

तथा यही बात सू० स्वाद० और सबा० में भी लिखी है।

इसमें देखना चाहिये कि नाव पर चढ़ना और नाव को बिगाड़ देना, लड़के को मार डालना, दिवाल को खड़ी कर देना दाऊद के वश में पहाड़ और पक्षियों का होना, ये सब बात और पुनरुक्त दोष इनसे ये बातें अयुक्त मालूम देती हैं, अन्यथा नहीं।

सू० नमल् सी० कालल्लजीन् इ०। सुलेमान् की सेना जिन्नात मनुष्य और पक्षियों से बनाई गई है।

यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि पक्षपात खुदा में इससे आता है और खुदा सर्वशक्तिमान् के होने से सब कार्य आप ही कर सकता है, फिर वह ऐसी सेना क्यों उसके वास्ते बनावेगा।

सू० अम्बिया सी० इकतरब् इ०। सुलेमान् की आज्ञा में वायु चलती है और सब शयतान उसके वश में हैं।

तथा यही बात सू० स्वाद० में भी लिखी है।

सू० सवा सी० मन्यक नुत् इ०। हमने सुलेमान् के वश में कर दिया वायु को और उसके वास्ते गलाये हुए ताम्बे की एक धारा बहा दी और जिन्नों ने उसके घर, मूर्त्ति, तालाव और किला बनाया।

इसमें विचारना चाहिये कि सुलेमान की सेना फरिश्तों की करी, उसकी आज्ञा में वायु तथा सब शयतान उसके वश में। फिर भी यही बात का लिखना, गलाये ताम्बे की धारा चलाना, जिन्नों ने उसके घरादिक बनाये, ये बात सर्वशक्तिमान् ईश्वर की नहीं बन सकती, क्योंकि विना सहाय से सब काम करता है सहाय तो मनुष्यों के वास्ते होता है। ईश्वर के वास्ते नहीं। यह बात कुरान की असम्भव और अयुक्त मालूम पड़ती है।

सू० आले इम्रान सी० तिलकर् रसूल इ०। ईश्वर ने मर्यम को अच्छा माना और उसको अच्छा अंकुर होता है ऐसा बनाया ईश्वर ने पवित्र किया है मर्यम को और चुन लिया सब जगत् की स्त्रियों में से। हे मर्यम! ईश्वर तुझ को एक वाक्य से प्रसन्नता का वचन भेजता है। मसीह ईसा मर्यम का



बेटा है और वह मसीह बोला झूलने में, अर्थात् गोद में उत्पन्न होने के थोड़े ही काल पीछे। मर्यम ने कहा हे ईश्वर! क्या मुझ से पुत्र उत्पन्न होगा, जब की मुझ को नहीं छूआ है किसी पुरुष ने। तो ईश्वर ने कहा कि ईश्वर उत्पन्न करता है जैसा कि चाहे।

सू० मर्यम सी० काल अलम् इ०। हमने भेज दी अपनी रूह मर्यम के तरफ, अर्थात् जिब्रईल् को तो वह बन गया ठीक मनुष्य और मर्यम से कहा कि मैं ईश्वर का भेजा आया हूँ तेरे पास, तुझको एक बुद्धिमान् बेटा देने को। मर्यम बोली कि मुझ को नहीं छूआ किसी पुरुष ने और मैं कभी नहीं व्यभिचारिणी हूँ। जिब्रईल ने कहा कि ईश्वर को यह बात, अर्थात् विना पिता के पुत्र उत्पन्न करना, मुझको बहुत ही सुगम है। तब वह गर्भिणी हो गई। ईसा बोला कि मैं हूँ ईश्वर का दास। मुझको ईश्वर ने किताब दी और पैग़म्बर बनाया और मेरे माता के आश्रय से मुझको क्षमा किया।

सू० मायदः सी० इजा समिऊ इ०। जब ईश्वर ने सहायता की कि तेरी रूह तुझ से, अर्थात् शुद्धात्मा से हे ईसा तूँ बोला गोद में।

तथा यही बात सू० बकरे में दो वार फिर भी लिखी है।

सू० निसा सी० लायुहब्बो इ०। मसीह ईसा मर्यम का बेटा है और ईश्वर ने एक वाक्य मर्यम में डाल दिया और रूह अपनी, तो तुम मत कहो कि ईश्वर तीन हैं।

सू० मायदः सी० लायुहब्बो इ०। ईश्वर यदि चाहे तो मार डाले मसीह को और उसकी माता को तथा सब जीव और पदार्थों को।

सू० निसा सी० लायुहब्बो इ०। ईसा को यहूदियों ने नहीं मारा है ईसा के सदृश एक पुरुष उनके पास प्राप्त हुआ। ईसा को उठा लिया अपने पास मरने के समय। जैसे मनुष्यों में स्त्री और पुरुष बात करते हैं वैसे ही मर्यम के साथ ईश्वर बात कभी न करेगा और जो कहेगा तो हममें और ईश्वर में भेद नहीं आवेगा। उसको चुन ली सब स्त्रियों के बीच में से। फिर शंका निवारण कर देनी।

यही बात प्रथम भी लिखी।

और कभी कहता है खुदा ने अपनी रूह भेजी मर्यम के पास और इससे विरुद्ध कहता है कि जिब्रईल को भेजा वह ठीक मनुष्य बन गया। मर्यम और जिब्रईल् का शंका-समाधान होना, शुद्धात्मा से सहाय ईश्वर ने की और विना अपराध से मार डालना वा दु:ख देना तथा विना अच्छे कामों से सुख वा जिलाना, इन बातों से ईश्वर अन्यायकारी अर्थात् पक्षपाती हो जाता है। इससे जन्म-जन्मान्तर का मानना, अपने-अपने किये कर्मों के ऊपर सुख-दु:ख के होने से ईश्वर की ईश्वरता बनी रहती है अन्यथा नहीं। इससे यह मालूम देता है कि कुरान ईश्वर की बनाई नहीं, किन्तु अपने सम्प्रदाय के वास्ते मनुष्यों ने बना ली है।

यह दशवाँ खण्ड पूरा हो गया। इसके आगे ईश्वर की प्राप्ति के वर्णन में कुरान के लेख के अनुसार अग्यारहवाँ खण्ड लिखा जाता है—

सू० निहल् सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। ईश्वर ने एक की एक पर जीविका बनाई है।

सू० दुखान् सी० इलहयरद्दो इ०। हमने बनी इस्राईल को सब मनुष्यों में से उत्तम मान लिया।

तथा यही बात सू० जासिया में भी लिखी है।

सू० इन् आम् सी० इजासमिऊ इ०। इस्राईल यूनस्० इत्यादिकों को सब मनुष्यों में बड़ा माना है ईश्वर ने।

सू० आले इम्रान् सी० तिलकर् रसूल इ०। ईश्वर ने सब मनुष्यों को चुन लिया आदम० नूह्० आले इब्राहीम को।

सू० बकर: सी० तिलकर् रसूल इ०। रसूलों में किसी को किसी पर हमने बड़ा किया है।

तथा यही बात सू० बनी इस्राईल और हज्ज में भी लिखी है।

सू० बकर: सी० अलम् इ०। हम नहीं भेद करते हैं रसूलों में से इसी में।

तथा यही बात आले इम्रान में भी लिखी है।

सू० फतेह सी० हम्म इ०। जो लोग तेरी आज्ञा मानते हैं हे मुहम्मद! वे ईश्वर की ही आज्ञा मानते हैं।



सू० जुखरफ् सी० इलहयरद्दो इ०। वे लोग कहते हैं कि हमारे पुरुखा बड़े सब एक मत पर थे। हम उनके पीछे राह चलते हैं।

यह बात केवल रची भई और अपने मतलब की है, क्योंकि प्रतिज्ञा करी ईश्वर की प्राप्ति के वर्णन की और लिखा कि इसको इनमें से चुन लिया बनी इस्राईल। और यूनस् को प्यारा माना। प्रथम लिखा कि किसी पर कोई रसूल हमने बड़ा किया, फिर हम नहीं भेद करते हैं रसूलों में से। जो तेरी आज्ञा मानते हैं, वे ईश्वर की ही आज्ञा मानते हैं। यह बात मुहम्मद ने खूब लिखी अपने मतलब सिद्ध करने के वास्ते। सर्वज्ञ जो ईश्वर उसकी ऐसी बात कभी नहीं बन सकती और ऐसी बातों से ईश्वर की प्राप्ति भी कभी नहीं हो सकती।

यह ग्यारहवाँ खण्ड पूरा भया। इसके आगे बारहवाँ खण्ड लिखा जायेगा मुहम्मद के मत की निष्ठा और कामों के वर्णन में—

सू० बकर: सी० अलम् इ०। जो लोग मानते हैं परोक्ष को निवाज पढ़ते हैं, जो हमने दिया उसको खाते हैं, मेरे पहिले की किताबों को और तेरी किताबों को तथा परलोक को सत्य मानते हैं वे लोग राह पर हैं और अच्छे हैं।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि उन्हीं किताबों के मानने में क्या ठीक प्रमाण है निवाज के पढ़ने से ही राह पर है। यह पक्षपात का कहना, क्योंकि जो कोई जहाँ अच्छा काम करेगा, सो राह पर होता है, इससे यह लिखना अयुक्त है।

सू० अनफाल सी० वालम्० इ०। सबसे बुरा जीव वह है जो नहीं मानता ईश्वर को।

तथा यही बात सू० यूनस० और एराफ्० में भी लिखी है।

केवल ईश्वर को माने और बुराई न छोड़े वह भी अच्छा नहीं होता, किन्तु बुराई को छोड़ दे और ईश्वर को भी माने, तो अच्छा हो सकता है अन्यथा नहीं।

सू० युजादिलै सी० इजासमिऊ इ०। जब तुम रसूल के कान में बात कहो तब पहिले दान दे लेओ।

देखो कि यह मुहम्मद ने अपने लेने की युक्ति रच ली है।

सू० निसा सी० लतनालू इ०, सू० इन् आम् सी० लौइन्ना इ०। जिस दिन आवेगी कोई आश्चर्ययुक्त शक्ति ईश्वर की, उस दिन ईश्वर को मानने से भलाई नहीं होगी।

सू० आले इम्रान सी० तिलकर रसूल इ०। जो लोग ईश्वर को नहीं मानते और इसी पर हठ रखते हैं उनका तोबा स्वीकार नहीं किया जायेगा।

इससे मालूम पड़ता है कि मुहम्मद में कुछ आश्चर्ययुक्त शक्ति नहीं थी, क्योंकि जो होती तो दिखा देता। और उनका तोबा स्वीकार नहीं होगा तो ईश्वर के मानने वाले का, पाप करने को खूब आधार हो जायेगा। इससे यह बात बुद्धिमान् वा ईश्वर की नहीं बन सकती, क्योंकि मुहम्मद का यह अभिप्राय मालूम पड़ता है कोई पाप करो वा पुण्य करो, परन्तु मेरे मत में आ जाओ। जो तुम पाप भी करोगे तो खुदा तोबा शब्द से क्षमा करेगा इस लोभ से करोड़हाँ मनुष्य मुहम्मद के मत में हो गये हैं। और जो सत्य-सत्य बात होती तो बुद्धिमान् लोक मान लेते और मूर्ख लोक नहीं।

सू० हज्ज सी इकतरब इ०। बलि प्रदान के पशुओं का मांस वा लोहू ईश्वर नहीं लेता।

अर्थात् लाल करके दे तो ले-लेता होगा। और विचार शून्य की भी बात है, क्योंकि रुधिर के निकल जाने से मांस का गुण ही न्यून हो जाता है।

सू० मायदः सी० लायुहब्बो इ०। आज्ञा है तुम सब को पशु का घात करना, परन्तु हज्ज, अर्थात् मक्के की यात्रा में जाने के समय में नहीं। और जब हज्ज कर चुको तब घात करो।

सू० मायदः सी० इजासमिऊ इ०। आज्ञा है तुमको मत्स्यादिक मारने की हज्ज में और आज्ञा नहीं है पशु के घात की उस काल में।

खूब खाने-पीने के आनन्द का मत मुहम्मद साहेब का है इससे खाने-पीने वालों को और विषयी लोगों को इसमें मिलने से आनन्द होता



होगा।

सू० युजम्मिल् इ०। जो रोगी हैं देशान्तर में जाते हैं और लड़ते हैं ईश्वर के अर्थ, वे सब निवाज पढ़ें जितना हो सके।

अर्थात् इनसे भिन्न लोक न पढ़ें यह आया।

सू० काफसी हम्म इ०। ईश्वर के गुणानुवाद को कहा करो सूर्य के उदय से पहिले और सूर्यास्त से पहिले तथा रात्रि में।

अर्थात् और वक्त अवकाश हो तो ईश्वर के गुणों को न कहें।

सू० निसा सी० बल मुहसिनात् इ०। जिस काल में तुम सब मदिरा पीये हो, उस वक्त निवाज मत पढ़ो।

अर्थात् रात-दिन मदिरा पीया करे, उसको निवाज पढ़ना कुछ जरूर नहीं। ऐसा उपदेश ईश्वर का नहीं होता। और मदिरा पीने का हुकुम भी आ गया।

सू० निसासी० बल मुहसिनात् इ०। जब तुम सुनो कि ईश्वर के वाक्य को नहीं मानते हैं और उपहास करते हैं तो उन लोगों के साथ मत बैठो।

सू० मूजूतहिनः सी० कद् समिअ इ०। मेरे वैरियों को और अपने वैरियों को अपना मित्र मत बनाओ।

तथा यही बात मुजादि ले० निसा और मायदः० में भी लिखी है।

अर्थात् जो कुरान को मानें, उनके साथ बैठो। इससे क्या आता है कि किसी की बुद्धि न बढ़ै और अपने मजहब में फसा रहे। इससे नित्य आजीविका बनी रहे। मेरे वैरी और अपने वैरियों को मित्र मत बनाओ यह भी बात मुहम्मद ने अपने युक्ति के वास्ते बना ली है। ऐसी बात खुदा की नहीं होती।

सू० मायदः सी० लायुहब्बो इ०। यहूदी और ईसाइयों को अपना मित्र मत बनाओ।

सू० इन् आम् सी० इजासमिऊ इ०। बुरा मत कहो जो ईश्वर को छोड़ औरों को मानते हैं, नहीं तो वे लोग वैर से ईश्वर को भी बुरा कहेंगे।

तथा सू० मायदः में भी लिखी है।

सू० अन्कबत इ०। यदि माँ-बाप तुझे बरबस अनेक ईश्वर मानने पर दबावै तो भी उनकी आज्ञा मत मान।

तथा यही बात सू० लुक्मान्० में भी लिखी है।

जहाँ ईश्वर से भिन्न रसूल को भी माना, वहाँ भी अनेक ईश्वरवाद आ जायगा, और उनको मित्र मत बनाओ, उनको बुरा भी मत कहो, यह परस्पर विरुद्ध बात है।

सू० हदीद् सी० कालेफमा इ०। यहूदी और ईसाइयों के सदृश तुम सब मत बनो। उनके हृदय दुष्ट हो गये हैं बुरे काम करते हैं।

मुहम्मद साहेब और उसके मजहब से अधिक बुरा काम नहीं हुआ होगा जिससे मजहब में लाखों पुरुष कट मरे हैं, और अब तक मजहब का विरोध चला ही जाता है फिर यह कहना मात्र भया।

सू० इन् आम् सी० लौइन्ना इ०। घात न करे मनुष्य को।

सू० हजरात् सी० हम्म इ०। सब मुसलमान आपस में भाई हैं अपने भाइयों में मित्रता रक्खो।

सू० बकर: सी० सयकूलो इ०। ईश्वर तुम सब को नहीं पकड़ेगा शपथ मिथ्या करने में, परन्तु पकड़ेगा जो तुम हृदय से किये हो उसमें।

सू० मायद: सी० इजासमिऊ इ०। ईश्वर तुम सब को नहीं पकड़ेगा शपथ मिथ्या करने में। इसका प्रायश्चित्त दश भिक्षुओं को भोजन देना इत्यादिक है।

सू० एहजाब् सी० अतुलोमा इ०। तुम पर अपराध नहीं है जिस में तुम भूले हो, परन्तु जो हृदय से दृढ़ करके किया हो उसमें अपराध है।

इसमें विचारना चाहिये कि मनुष्य को घात मत करो और प्रथम लिखा कि जहाँ देखो वहाँ गला काटो। फिर मुसलमान आपस में मित्रता रक्खो, अर्थात् और से मित्रता मत रक्खो। यह बात अत्यन्त धर्म से विरुद्ध है। मिथ्या शपथ करने में ईश्वर तुम को न पकड़ेगा। इसी से मुसलमान बहुधा खुशामद करते हैं और मिथ्या-मिथ्या शपथ करके दूसरे को मोहित कर लेते हैं। फिर विश्वासघात और उनके पदार्थ हरने में भय भी कुछ नहीं करते, क्योंकि कुरान खुदा की तरफ से जानते हैं। परन्तु ऐसा विचार



नहीं करते कि अन्याय ईश्वर कभी नहीं करता और न अन्याय करने की आज्ञा देता। फिर यह कुरान ईश्वर के स्वभाव से विरुद्ध होने से कुरान खुदा की बनाई नहीं हो सकती। जो तुम भूल के पाप करोगे उसमें न पकड़ेगा ईश्वर तुमको, तो फिर किसी को विचार और विद्या न करना चाहिये। परन्तु ज्ञान से वा अज्ञान से अग्नि में हाथ डालेगा, उसका जल ही जायेगा। इससे अज्ञान से भी पाप जो किया, सो भी भोगना ही पड़ेगा, परन्तु जन्म से पाँच वर्ष की उमर जब तक न हो, उसके पीछे यथावत् पाप-पुण्यों की व्यवस्था ईश्वर की तरफ से होगी। फिर यह जो कुरान का लिखना, सो अयुक्त हो गया।

सू० मायद: सी० लायुहब्बो इ०। सत्य साक्षी देने में ठीक खड़े रहो, वह बात अपनी हो चाहे सम्बन्धी वा मित्रों पर हो। यह बात मिथ्या शपथ करने में नहीं पकड़ेगा, उससे विरुद्ध है। और इन तीनों से अन्यत्र मिथ्या साक्षी चाहे तो दे-दे, ऐसी बात खुदा की कभी नहीं हो सकती।

सू० एहकाफ० सी० हम्म इ०। जब मनुष्य पहुँचा चालीस वर्ष की अवस्था में तो कहे हे ईश्वर! मुझको वह शक्ति दे कि तेरे उपकारों का गुणानुवाद करूँ।

अर्थात् चालीस वर्ष के पहिले ईश्वर के गुणानुवाद करने की कुछ जरूरियत् नहीं।

सू० बकर: सी० सयकूलो इ०। आज्ञा है तुम सब को रोजे की रात्रि में अपने स्त्रियों से भोग करो।

सू० तथा सी०, अर्थात् सू० बकर: और सी० सयकूलों में यह लिखा है कि तुम्हारी स्त्री तुम्हारी खेती है। अपने खेत में आओ जिस राह चाहो, अर्थात् आगे के छिद्र से वा पीछे के छिद्र से।

सू० नूर् सी० कदफल: इ०। अपनी दासियों पर जबरदस्ती न करो भोग के लिये।

सू० निसासी० लतनाल इ०। अपनी व्यभिचारिणी स्त्रियों को घर में बन्ध करो।

सू० निसासी० बल मुहसिनात् इ०। और उन सब को मारो।

देखो कि रोजे में भी जिस मत में भोग का त्याग नहीं, उस मत में विषयी लोग क्यों न गिरेंगे। अपनी खेती जैसे चाहो वैसे करो, इस कुरान की बात से लड़कों से भी लोग बुरा काम करते हैं। ऐसी बात बुद्धिमान् भी कभी न कहेगा, तो खुदा कैसे कहेगा। दासी प्रसन्न हो जाये तो उससे भोग करे, यह अयुक्त है। व्यभिचारिणी स्त्री को बन्द करे और मारे, ऐसा हुकुम कुरान में है, परन्तु व्यभिचारी पुरुष को बन्द करना और मारना क्यों नहीं लिखा। इससे साफ मालूम देता है कि मुहम्मदादिकों ने अपने सुख के वास्ते ऐसी बात बना ली है, खुदा की बात यह कभी नहीं हो सकती। ऐसा हम को निश्चित मालूम देता है।

यह बारहवाँ खण्ड पूरा भया। इसके आगे तेरहवाँ खण्ड लिखा जाता है मनुष्यलोक के जीवन और धनादिक के वर्णन में जैसा कि कुरान् में है—

सू० निसा सी० बलमुहसिनात् इ०। इस लोक के पदार्थ तुच्छ हैं।

सू० इन् आम् सी० इजासमिऊ इ०। इस लोक का जीवन तुच्छ है।

तथा यही बात सू० अङ्कबूत०, आला०, लुकमान्०, मलायक:० और तोबा इत्यादि में भी लिखी है।

सू० हदीद् सी० कालफमा इ०। इस लोक का जीवन खेल है और आपस वालों में शोभा दिखाना है, धन-सन्तान में वृद्धि होना है। यह गर्व की पूञ्जी है।

सू० तगाबुन० सी० कदसमिअ इ०। तुम्हारी स्त्री और सन्तान तुम्हारे वैरी हैं।

यह बात तो ठीक है, परन्तु ऐसी बात करने से संसार का व्यवहार नष्ट हो जायेगा। फिर मनुष्यों की वृद्धि ही नहीं होगी। परन्तु ऐसा उपदेश इसमें करना उचित था कि ये सब अनित्य हैं, इनसे जितना व्यवहार करना उचित है, उतना ही करना चाहिये, अधिक वा न्यून नहीं। और ईश्वर से मुक्ति और नित्य सुख के वास्ते पुरुषार्थ करना चाहिये तो इसमें कुछ विरुद्ध नहीं।

सू० मुनाफिकूल सी० कदसमिअ इ०। ईश्वर के स्मरण से खेल में



न लगा देवे तुम को और तुम्हारी सन्तान और सम्पत्ति को।

सू० तोबा सी० वालम् इ०। तुझको सन्देह में न डाले उनकी सम्पत्ति और सन्तान। चेत करो ईश्वर चाहता है कि उनको धनादिकों से दण्ड देवें इस लोक के जीवन में।

तथा यही बात इसी सू० और सीपारे में दो वार फिर भी लिखी है।

सू० आले इम्रान सी० लतनाल इ०। ईश्वर तुम्हारी परीक्षा करता है, तुम्हारे धन और सन्तान से।

तथा यही बात सू० अनफाल०, तगाबुन०, लुकमान्० और हूद में भी लिखी है।

सू० हूद् सी० मामिन्दाब्बा इ०। जो कोई चाहता है इस लोक का जीवन और शोभा, उसको परलोक में नरक मिलेगा।

तथा यही बात सू० शोरा और रूम् में भी लिखी है।

सू० मुम् तहिन: सी० कद्समिअ इ०। तुम्हारी स्त्री और सन्तान कियामत में काम न आयेगी, अर्थात् परलोक में।

इन सब आयतों के विरुद्ध नीचे की आयतें हैं।

सू० बनी इस्राईल सी० सुब्हान् अल्लजी इ०। ईश्वर ने तुम्हारी सहायता की है धन और सन्तान से।

सू० कहफ सी० सुब्हान अल्लजी इ०। धन और सन्तान इस लोक के जीवन की शोभा है।

सू० अम्बिया सी० इकतरब० इ०। हमने धनी बनाया है इनको और इनके पुरुखों को।

सू० अङ्कबूत सी० अम्मन् खलक इ०। शुभ कर्मों का फल हमने उनको इस लोक में दिया है।

सू० यूनस० सी० यातजूरून् इ०। जब उन लोगों ने ईश्वर को माना, तब हमने दण्ड उन पर से उतार दिया, इसी लोक के जीवन में।

सू० हूद् सी० यातजूरून् इ०। यदि तुम ईश्वर के शरण हो और ईश्वर की तरफ फिरो तो ईश्वर तुम को अच्छा धनी बनावे।

तथा यही बात सू० निहल में दो वार फिर भी लिखी है।

देखो कि दोनों बात परस्पर विरुद्ध हैं। अब किसको सच मानैं और किसको झूठ मानैं। पहिला ही जन्म एक वार मुसलमान लोक मानते हैं, दूसरा नहीं तो शुभ वा अशुभ कर्म होंगे ही नहीं। फिर लिखा कि उनको शुभ कर्मों का फल हमने इस लोक में दिया है, यह बात मुसलमानों के मत से विरुद्ध हो जायगी। और प्रथम लिखा कि जो ये मानते हैं कि हम जन्मते हैं और मरते हैं, वे काफर हैं, इस बात से और उस बात से विरोध होगा। और इस बात से अनेक जन्म मानना होगा। कुरान के लेख से उनको दण्ड मिलेगा उससे विरुद्ध, ईश्वर को जब माना, तब उन पर से दण्ड ईश्वर उतार देता है, यह बात न्याय से विरुद्ध और पूर्वापर विरुद्ध है। और ईश्वर की तरफ तुम फिरो तो तुम को ईश्वर अच्छा धनी बनावे, यह केवल प्रलोभन मात्र है सच नहीं, क्योंकि ईश्वर न्यायकारी है, जो जैसा कर्म करेगा, उसको वैसा ही फल देगा अन्यथा नहीं। इन बातों से मालूम देता है कि कुरान मनुष्यों ने अपने बुद्धि से बना ली है, खुदा की बनाई नहीं।

यह तेरहवाँ खण्ड पूरा हो गया। इसके आगे चौदहवाँ खण्ड चलेगा कियामत के वर्णन में जैसा कि कुरान में है—

सू० नमल् सी० अम्मन् खलक इ०। जब आज्ञा पहुँचेगी दुष्टों पर तब हम एक पशु पृथिवी में से निकालेंगे, वह बोलेगा उन सभों से।

सू० अम्बिया सी० इकतरब० इ०। जब खोल दिये जांयगे याजूज और माजूज और ईश्वर की प्रतिज्ञा समीप हो जायेगी।

याजूज माजूज दो राक्षस हैं और एक कूप में बन्द किये गये हैं। परन्तु सू० कहफ् सी० काले अलम् में कहा है कि किसी कन्दर ने याजूज और माजूज की आने की राह रोकने को लोहे और ताम्बे की भीत बनाई है दो पहाड़ों के बीच में।

सू० कमर् सी० कालफमा इ०। निकट पहुँचा प्रलयकाल फट जायगा चन्द्रमा।

सू० अम्बिया सी० इकतरब इ०। कियामत के दिन लपेट दिये जांयगे आकाश सब, जैसे कागज। हम फेर देंगे सब पदार्थों को जिस क्रम



से उत्पन्न किया था।

सू० हाक्० सी० तवारक इ०। फट जावेगा आकाश निर्बल होगा और छिन्न-भिन्न होगा।

सू० रहिमान् सी० कालफमा इ०। जब फट जायेगा आकाश तब हो जायेगा गुलाबी रंग जैसा तेल के नीचे का जमा हुआ मैल।

सू० मुजम्मिल सी० तवारक इ०। आकाश फट जायगा प्रलयकाल में और टुकड़े-टुकड़े हो जांयगे। पहाड़ और पृथिवी के।

सू० कियामत सी० तवारक इ०। जब निरर्थक हो जायगी चक्षुरिन्द्रिय और चन्द्र-ग्रहण हो जायेगा और सूर्य तथा चन्द्रमा इकट्ठे हो जांयगे।

सू० मआरिज् सी० तवारक इ०। उस दिन हो जांयगे आकाश और पहाड़ जैसे रूई का गाला।

तथा यही बात सू० इन् शिकाक्० तकबीर्० और मुर्सिलात्० में भी लिखी है।

एक पशु का निकलना और बोलना याजूज और माजूज एक कूप में बन्द किये हैं, प्रलय में उनका निकलना, चन्द्रमा का फटना, आकाश के निराकार होने से लपेटना नहीं होना कागज की नाई, सब पदार्थों को क्रम से फेर देने से पुनर्जन्म का होना और फिर नहीं मानना, वार-वार आकाश का फटना लिखना, निर्बल और छिन्न-भिन्न आकाश का हो जाना, आकाश के फटने से गुलाबी रंग का होना, दीया के नीचे जमे हुए मैल का दृष्टान्त देना, चन्द्र-ग्रहण का लिखना, फिर लिखना चन्द्र-सूर्य इकट्ठे हो जायेंगे, फिर लिखना आकाश और पहाड़ रूई का गाला-सा हो जायेगा, इस असम्भव अन्यथा बात का लिखना। ये जैसेकि बालक की बात, ऐसी यह बात है। क्योंकि जैसा उत्पत्ति क्रम वेदादिक शास्त्रों में यथावत् है तथा प्रलय क्रम यथावत् कहा है, उसका लेशमात्र के सदृश भी यह कुरान का कथन नहीं, फिर बुद्धिमान् कुरान ईश्वर का वचन है, ऐसा नहीं मान सकते।

सू० फजर् सी० अम्म इ०। फरिश्ते और ईश्वर आवेंगे पंक्ति बाँध के।

सू० जल-जाल इ०। कियामत के दिन पृथिवी अपना वृत्तान्त सब कहेगी, अपने ईश्वर की आज्ञा से।

सू० मुजम्मिल् सी० तवारक् इ०। तुमने यदि कियामत को नहीं माना तो कैसे मानते हो कि लड़के थे, अब बुड्ढे हो गये।

सू० मायदः० सी० इजासमिऊ इ०। कियामत के दिन सब रसूल इकट्ठे होंगे तब ईश्वर कहेगा कि क्या जबाब दिया तुम को उन लोगों ने। वे कहेंगे हम नहीं जानते हैं।

सू० सवा सी० मनयक् नुत् इ०। कियामत के दिन सब को खड़ा करेगा ईश्वर, और फरिश्तों को कहेगा कि क्या ये सब तुम्हारी उपासना करते थे। तो वे लोग कहेंगे कि ये दुष्ट लोग जिन्न की उपासना करते थे।

सू० हम्मुस् सिज्दः सी० फमन् अजलम् इ०। जो काम मनुष्य लोग करते थे उसका साक्षी देंगे उनके चक्षु, श्रोत्र और त्वचा।

सू० तोबा सी० यातजूरून् इ०। दुष्टों को उठावेगा ईश्वर कियामत के दिन अन्धा, बहिरा और गूँगा।

सू० नूर् सी० कदफलः इ०। डरो उस दिन को जिस में हृदय और चक्षु फिर जांयगे।

सू० हज्ज् सी० इकतरब इ०। तेरे ईश्वर के पास कियामत के दिन तुह्मारे हजार वर्ष के बराबर है।

सू० मआरिज् सी० तवारक इ०। चढ़ते हैं फरिश्ते और रूह ईश्वर की तरफ एक दिन में कि जो ५०००० पचास हजार वर्ष का है।

सू० नमल् सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। कियामत का विषय एक पलमात्र का है, पल से भी न्यून।

सू० यूनस् सी० यातजूरून् इ०। जिस दिन उठावेगा तुम को ईश्वर ऐसा जानो कि विलम्ब एक घण्टा मात्र हुआ।

देखो कि ईश्वर और फरिश्ते साकार होंगे, जिससे कि पंक्ति बाँध के आये। और पृथिवी जड़ के होने से वृत्तान्त क्या कहेगी? लड़के बुड्ढे होने के दृष्टान्त से प्रलय सिद्ध नहीं हो सकता। रसूल सब आवेंगे, सबको खड़ा करेगा ईश्वर, फरिश्तों से पूछ के जानेगा। चक्षु, श्रोत्रादिक जड़ के



होने से क्या साक्षी देंगे। दुष्टों को अन्धा-बहरा और गूँगा उठावेगा। हृदय और चक्षु फिर जांयगे। प्रथम लिखा कि हजार वर्ष के बराबर कियामत का दिन होगा, फिर इससे विरुद्ध लिखा कि ५०००० पचास हजार वर्ष के बराबर कियामत का दिन होगा। फिर सबसे विरुद्ध लिखा कि कियामत का विषय एक पलमात्र है वा पल से भी न्यून होगा। ऐसी विरुद्ध बात खुदा की कभी नहीं हो सकती सिवाय साधारण मनुष्यों के। कुरान की रीति से तीन जन्म सिद्ध होते हैं, क्योंकि जन्म नाम है पैदा होने का। प्रथम खुदा ही था और कोई नहीं था। उस खुदा ने सब को पैदा किया सो एक जन्म भया। और दूसरा शरीर धारण दुनिया में तथा तीसरा कियामत के दिन बिहिस्त वा दोजख में शरीर धारण से भोग करना। इस प्रकार से तीन जन्म सिद्ध उनके मत से होते हैं। फिर वे एक ही जन्म मानते हैं। यह मुझको बड़ा आश्चर्य है कि उनकी बुद्धि कैसी है।

यह चौदहवाँ खण्ड पूरा भया इसके आगे पन्द्रहवाँ खण्ड चलेगा कियामत के वृत्तान्त के वर्णन में—

सू० नब्बाय् सी० अम्म इ०। ईश्वर नहीं बोलेगा उनके साथ रूह और फरिश्ते पंक्ति बाँधे खड़े होंगे और कोई नहीं बोलेगा, परन्तु जिस को ईश्वर आज्ञा दे।

सू० रहिमान् सी० कालफमा इ०। कियामत के दिन मनुष्य वा जिन्न से उनके अपराध नहीं पूछे जायेंगे। अपराधी लोग अपने-अपने मस्तकों से ही पहिचाने जायेंगे।

सू० लुक्मान् सी० अतुलोमा इ०। डरो उस दिन को जिसमें नहीं सहायक होगा पिता अपने पुत्र का, न पुत्र पिता का।

सू० बकरः सी० सयकूलो इ०। नहीं बोलेगा ईश्वर कियामत के दिन दुष्टों से।

सू० नून् सी० तवारक इ०। जिस दिन खोली जावेगी जंघा और बोलाये जांयगे सिज्दा करने को तो नहीं कर सकेंगे।

सू० अब्बस् सी० अम्म इ०। उस दिन भागेगा पुरुष भाई और माता पिता पुत्रों से।

सू० वाकिअ सी० कालफमा इ०। तुम सब तीन पंक्ति हो जाओगे, दहिने और बाँये और आगे। पहिले और दूसरे में लोग होंगे और थोड़े पिछले लोगों में।

तथा यही बात इसी सू० और सीपारे में दो वार फिर लिखी है।

इसमें बुद्धिमान् लोग विचारें कि ईश्वर की ऐसी कचहरी न्याय करने के वास्ते बनी है और न्याय भी कैसे प्रबन्ध से होता है। ऐसा ईश्वर का व्यवहार कभी नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ न्यायकारी और सर्वान्तर्यामी है। वहाँ गवाह, वकील वा अमात्यादिक की अपेक्षा कुछ नहीं, क्योंकि उसकी आज्ञा सत्य है। उसी से सब न्याय शीघ्र ही होता चला जाता है। ऐसा अन्धेर ईश्वर में नहीं है कि मर के पृथिव्यादिकों में गड़े रहें। जब प्रलय समय होय, तब पुण्यात्मा और पापात्माओं का न्याय होय। यह अविद्वान् मनुष्यों का मिथ्या प्रलाप है, ईश्वर का नहीं हो सकता।

यह पन्द्रहवाँ खण्ड पूरा भया। इसके आगे सोलहवाँ खण्ड लिखा जायेगा स्वर्ग के उत्तम पदार्थ के वर्णन में जैसे कि कुरान में है—

सू० मायद:० सी० इजासमिऊ इ०। वे लोग स्वर्ग में सदा रहेंगे ईश्वर प्रसन्न हुआ उनसे, और वे प्रसन्न हुए ईश्वर से।

सू० तोबा सी० यातजूरून् इ०। ईश्वर ने अपने मानने वालों से उनके धन को और उनको बोल दिया स्वर्ग उनको दिया ईश्वर के अर्थ लड़े मारें वा मारे जावैं ईश्वर की सत्य प्रतिज्ञा पर जो कि तौरेत अञ्जील और कुरान में है।

देखो कि ईश्वर को क्या भीड़ पड़ा है जिसके वास्ते लड़ा जावै, किन्तु मुहम्मद साहेब बड़े लड़ाके थे, क्योंकि लड़ाई से ही धनादिक पदार्थ उनको मिलते, परन्तु यह श्रेष्ठ की बात नहीं कि ईश्वर और धर्म के नाम से मनुष्यों में लड़ाई लगा देनी।

सू० हदीद सी० कालफमा इ०। स्वर्ग में बगीचे हैं उनके नीचे कुल्या है, अर्थात् नहर बहती है, उसमें सदा रहेंगे।

तथा यही बात सू० तोबा०, बुरूज्०, सफ्०, बकर:०, आले इम्रान्०



और निसा० इत्यादि में अनेक वार लिखी है।

सू० सफ सी० कद्समिअ इ०। वहाँ बगीचे हैं उनमें नहरें बहतीं हैं और उत्तम प्रशस्त स्थान बने हैं।

सू० रहिमान सी० कालफमा इ०। वहाँ दो बगीचे हैं, दोनों में झरने बहते हैं और उनके सिवाय दो बगीचे हैं उनमें दो-दो झरने हैं वे उबलते हैं।

सू० बकर: सी० अलम् इ०। वे लोग स्वर्ग में सदा रहेंगे।

तथा यही बात आले इम्रान्० और यूनस् में भी अनेक वार लिखी है।

सू० हूद् सी० मामिन्दाब्बा इ०। शुभ कर्म वाले स्वर्ग में सदा रहेंगे जब तक आकाश और पृथिवी है, परन्तु जो चाहे ईश्वर। तथा यही बात सू० हजर० और कहफ० में भी लिखी है।

सू० दुखान् सी० इलहयरद्दो इ०। वे लोग स्वर्ग में नहीं मरेंगे परन्तु पहिला मरण होगा।

सू० दहर सी० तवारक इ०। वहाँ सरस नाम तालाब हैं, उससे पानी पीते हैं ईश्वर के उपासक।

सू० मुहम्मद सी० हम्म इ०। उसमें अनेक नहर हैं पानी की, दूध की, मधु की और मदिरा की।

सू० कौसर सी० अम्म इ०। हे मुहम्मद! हमने तुझे दिया है कौसर, अर्थात् वह सरस जो सबमें उत्तम है।

सू० जुमर् सी० मालीला इ०। वहाँ उत्तम स्थान बने हैं खिड़की के ऊपर खिड़की और उसके नीचे नहर बह रही हैं।

तथा यही बात सू० फुरकान्०, अङ्कबूत० और सवा० में भी लिखी है।

सू० रहिमान सी० कालेफमा इ०। उसमें, अर्थात् स्वर्ग में अनार, खजूर इत्यादिक मेवे हैं।

तथा यही बात सू० नब्बा०, वाकिअ० और राद्० में भी अंगूर इत्यादि मेवे और पक्षी के मांस का वर्णन है।

सू० कहिफ० सी० सुब्हान अल्लजी इ०। आभूषण सुवर्ण के वहाँ

पहिराते हैं और हरे कपड़े अत्युत्तम और प्रशस्त सिंहासनों पर बैठाते हैं।

तथा यही बात सू० हज्ज०, मलायक:०, दुखान० और दहर्० इत्यादि में चाँदी और मोतियों के आभूषण और अनेक उत्तम वस्त्रों के नाम उसमें लिखे हैं।

सू० तूर सी० कालेफमा इ०। पिलाते हैं स्वर्ग में सुरा उसमें उन्मत्त नहीं होता।

सू० दहर सी० तवारक इ०। अच्छे मनुष्य पीते हैं सुरा कपूर के प्यारे में।

तथा यही बात सू० दहर, नब्बा०, मुतफ्फीन्० में कस्तूरी की मदिरा का वर्णन है।

सू० तूर सी० कालेफमा इ०। सुन्दर किशोर अवस्था वाले गुलाम उन सबके चारों तरफ रहते हैं। वे अति सुन्दर जैसे मोती के सदृश और प्याले में मदिरा और सुवर्ण-रजत के पात्र हस्तों में लिये घूमते हैं।

तथा यही बात सू० साफात० जुखूरफ० दहर० और वाकिअ० में भी लिखी है।

सू० बकर: सी० अलम् इ०। उन सब को स्वर्ग में सुन्दरी कन्या अक्षत योनि मिलेंगी।

तथा यही बात सू० रहिमान, नब्बा०, वाकिअ०, स्वाद्०, साफात्०, निसा० और आले इम्रान्० में भी लिखी है। उनके अनेक गुण और शोभा चमत्कार वर्णन किये हैं।

सू० यासीत् सी० मालीला इ०। वे लोग और उनकी जोरू सिंहासन पर बैठेंगी।

सू० तूर सी० कालेफमा इ०। हमने उनके सन्तान को उनके साथ मिला दिया।

सू० इन् शिकाक० सी० अम्म इ०। हम फेर देंगे उनको उनकी जोरू की पास प्रसन्नता के साथ।

सू० दुखान सी० इलहयरद्दो इ०। स्वर्ग की सुन्दरियों के साथ हम उनका विवाह कर देंगे।



तथा यही बात सू० तूर और जुखरफ्० में भी लिखी है।

सू० वाकिअ० सी० कालेफमा इ०। हमने उत्पन्न किया उन स्त्रियों को और वे सुन्दरी अक्षत योनि हैं दहने वाले पुरुष के लिये।

सू० हजर सी० रुब्बमायुवद्दो इ०। स्वर्ग में वे लोग जो चाहेंगे सो पावेंगे।

तथा यही बात सू० फुरकान्०, जुमर०, काफ०, हम्मुस, सिज्दा:०, यासीद० और जुखरफ० में भी लिखी है।

सू० काफ० सी० हम्म इ०। वे लोग जो कुछ चाहेंगे सो स्वर्ग में है और हमारे पास अधिक है। तथा यही बात सू० शोरा० में भी लिखी है।

सू० वाकिअ० सी० कालेफमा इ०। जो हमारे पास वालों में होवे तो अत्यन्त आनन्द और स्वर्ग उत्तम पदार्थ उनके लिये हैं।

देखो कि स्वर्ग का वर्णन कुरान में ऐसा है कि बहुत लोग विषय में जिनकी प्रीति होय, वे मुहम्मद के मजहब में अत्यन्त गिरेंगे, क्योंकि जहाँ बगीचा, नहर, झरने उत्तम हैं वे सदा स्वर्ग में रहेंगे। जब तक आकाश और पृथिवी रहेगी, वे नहीं मरेंगे, परन्तु पहिला मरण होगा। जहाँ तालाब हैं पानी, दूध, सहद और मदिरा की नहरें लिखी, परन्तु घी, दही, मिश्री के पर्वत बासमती चावलादिक भूल गया लिखने वाला। सुवर्ण-रजतादि का आभूषण पहिरना, लुगाइयों के साथ सिंहासन पर बैठना, मदिरा का पीना, फिर उन्मत्तता नहीं होना, यह बड़ा आश्चर्य। कपूर के प्याले में मदिरा पीते और फिर वे सब अच्छे मनुष्य हैं। कस्तूरी आदिक मदिराओं के वर्णन से मनुष्यों को प्रलोभ करना सुन्दर किशोर अवस्था वाले गुलाम अति सुन्दर जिनका कि मोती के सदृश रूप वे सुवर्णादिक के पियाले में मदिरा पिलाते फिरते हैं। स्वर्ग में सुन्दरी स्त्री, कन्या अक्षत योनि मिलती हैं।

देखना चाहिये कि लड़के जो लौण्डे स्त्री, अर्थात् जैसी वेश्या उनने स्वर्ग को भी घेर लिया। वहाँ भी विषय भोग न छूटे। उन स्त्रियों के वर्ण शोभादिक का कथन करना, उनकी जोरू और पुत्रादिकों का फिर मिलना, स्वर्ग की सुन्दरी स्त्रियों के साथ विवाह का होना, स्वर्ग में जो

चाहै, सो उनको मिलेगा। परन्तु खुदा कहता है इन सब सामग्रियों से मेरे पास अधिक, अर्थात् अधिक सुन्दरी स्त्री और सुन्दर किशोर लड़के गुलाम खुदा के पास अधिक होंगे। ऐसी-ऐसी विषय भोग और मद्यादिकों का पान इन असम्भव और धर्म विरुद्ध कथा से वह स्वर्ग ही नहीं बन सकता। मुहम्मदादिकों ने बाग, मद्य, खाना, पीना, सिंहासन, झरने, नहर, सुन्दर स्त्री और गुलाम, हरे-हरे कपड़े, सोना, चाँदी, मोतियों के आभूषण संसार में जैसा देखा वैसा स्वर्ग का भी वर्णन कर दिया। विद्या-ज्ञान, विचार और पदार्थविद्या को जानते तो ऐसा तुच्छ वर्णन स्वर्ग का क्यों करते। मुहम्मदादिकों ने विचारा कि जिस प्रकार से मजहब बढ़े, वैसा करना चाहिये। यह कुरान इन बातों से खुदा की बनाई नहीं हो सकती।

यह सोलहवाँ खण्ड पूरा भया। इसके आगे सतरहवाँ खण्ड लिखा जाता है, नरक के वर्णन में जैसा कि कुरान में है—

सू० बकरः सी० अलम इ०। वे लोग नरक की अग्नि में सदा रहेंगे।

तथा यही बात सू० एराफ०, निसा०, तोबा०, जुमर्०, मोमिन० और अनपाल० इत्यादि में अनेक वार फिर भी लिखी है।

सू० हूद सी० मामिन्दाब्बा इ०। दो गुना दण्ड उनको होगा नरक में सदा रहेंगे।

सू० आले इम्रान् सी० लंतनाल इ०। गिराओ अग्नि में उन सबको जोकि काफिरों के वास्ते निर्माण की गयी है।

तथा यही बात सू० एहजाद०, सिज्दः० और हूद में भी लिखी है।

सू० इन आम सी० लौइन्ना इ०। हे जिन्न के साथी लोगो, तुमने बहुत अभिमान किया, आग में तुम्हारा स्थान है, सदा उसमें रहोगे, परन्तु जो चाहे खुदा।

सू० हदीद० सी० कालफमा इ०। आज के दिन तुम लोगों से नहीं लिया जायेगा दण्ड के प्रतिनिधि धन, तुम्हारा स्थान आग में है।

सू० शीरा० सी० कालल्लजीन इ०। वे सब बहकाने वाले और शयतान की सेना सब उसी आग में।

सू० मुदसिर सी० तवारक इ०। नरक पर उन्नीस फरिश्ते अधिकारी



हैं और हमने फरिश्तों को ही अधिकार दिया है परीक्षा के अर्थ।

सू० बकरः सी० सयकूलो इ०। अपराधियों के तरफ ईश्वर बात नहीं करेगा कियामत के दिन।

सू० आले इम्रान सी० तिलकर रसूल इ०। अपराधियों के तरफ ईश्वर नहीं देखेगा कियामत के दिन, और उनको अधिक ही दण्ड होगा।

यह अत्यन्त अन्याय की बात है कि जो स्वर्ग में गया, सो स्वर्ग में ही सदा रहै और जो नरक में गया सो नरक में ही सदा रहेगा, क्योंकि पाप और पुण्य अधिक और न्यून तारतम्य से बनता है। केवल पापी वा पुण्यात्मा कोई नहीं बहुधा हो सकते, किन्तु कोई पाप-पुण्य तुल्य करता है, कोई पाप अधिक करता है, पुण्य थोड़ा, कोई पुण्य अधिक करता है, पाप थोड़ा। फिर उनके ऊपर उतना ही दण्ड देना उचित है, अधिक वा न्यून नहीं। तब तो खुदा न्यायकारी हो सकता है। और जैसा कुरान में लिखा ऐसी व्यवस्था जो करेगा तो अन्यायकारी हो जायगा। वह खुदा ही फिर नहीं रहेगा। इससे ईश्वर की जो व्यवस्था, सो यथावत् होती है अन्यथा नहीं, क्योंकि वह सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी पक्षपात रहित है। इससे खुदा की बनाई कुरान हमको नहीं मालूम देती।

यह हुआ, इसके आगे अठारहवाँ खण्ड लिखा जायेगा जन्मान्तर के वर्णन में जैसा कि कुरान में है—

सू० बकरः सी० अजलम् इ०। तुम सब मृतक थे, हमने जिलाया, फिर तुमको मारेंगे, फिर तुमको जिलावेंगे, उसके पीछे ईश्वर की ओर फिरोगे।

सू० बकरः सी० अलम इ०। तुम सबको मरने पीछे हम फिर उठावेंगे।

तथा यही बात सू० आले इम्रान और रूम में फिर भी लिखी है।

सू० मूमिन् सी० फमन् अजलम इ०। कहते हैं क्या हम सब दो वार मरेंगे और दो वार जीयेंगे।

सू० बकरः सी० सयकूलो इ०। जो लोग मारे गये ईश्वर के मार्ग में, उनको मृतक मत कहो। वे सब जीते हैं और ईश्वर के पास भोजन करते

हैं।

तथा यही बात आले इम्रान में भी लिखी है।

सू० बकरः सी० अलम इ०। हमने उन दुष्ट मनुष्यों को कहा कि बन्दर हो जाओ।

तथा यही बात सू० एराफ़० में भी लिखी है।

सू० मायदः सी० लायुहब्बो इ०। जिसको ईश्वर ने धिक्कार दिया और जिस पर कोप किया और उनमें से अनेक को बन्दर और शूकर बना दिया। और जिसने शयतान की पूजा किया उनको बुरा स्थान मिलेगा।

सू० यासीत सी० मालीला इ०। अगर हम चाहें तो उन सब को उनके स्थान में पशु की योनि में डाल दें।

सू० त्वाहा सी० काल अलम इ०। जिसमें से तुम सबको हमने पैदा किया और उसी में फेर देंगे और उसमें से निकालेंगे उन सब को फिर दूसरी दफे।

तथा सू० रूम में भी लिखी है।

सू० दहर् सी० तवारक० इ०। क्या मनुष्य पर ऐसा काल आता है कि वह फेरा हुआ न था, अर्थात् तूँ वारम्वार वे सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

सू० बनी इस्राईल सी० सुब्हान अल्लजी इ०। तूँ कह कि तुम सब पत्थर और लोहा बन जाओ।

सू० रूम सी० अतुलोमा इ०। जो बुराई पहुँचती है उन लोगों पर, सो उन्हीं के पहिले कर्मों से है।

तथा इसी सूरे और सीपारे में लिखा है कि उपद्रव हुआ है भूमि में और जलाशय में, उस हेतु से जोकि मनुष्यों ने कर्म किया था वे भोग करें अपने कर्मों का फल।

सू० मोमिन सी० फमन अजलम इ०। क्या हम थक गये हैं पहिली सृष्टि को बनाकर, नहीं वे सन्देह में नयी सृष्टि से।

सू० जुमर सी० फमन अजलम इ०। ईश्वर मारता है जीवों को और उनके आत्माओं को खींच लेता है मरण काल में और स्वप्नकाल में। फिर जिसका मरण काल पहुँच गया है फिर उसके आत्मा को रोक रखता है



और दूसरे को भेजता है।

इसमें विचारना चाहिये कि अनेक जन्म कुरान की रीति से ठीक-ठीक सिद्ध होते हैं, क्योंकि इस कुरान के लेख से, परन्तु कहीं-कहीं भ्रम होने की बात लिखने से लोगों को भ्रम हो जाता है, क्योंकि कुरान के बनाने वालों को पदार्थविद्या बहुत थोड़ी थी।

इससे लोगों की बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है। और किसी पदार्थ का निश्चय यथावत् कुरान की रीति से नहीं हो सकता, क्योंकि पीसे को पीसना ये दोष तो अनेक कुरान में हैं। न्याय से विरुद्ध प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से भी विरुद्ध और अनेक परस्पर विरुद्ध आयत अनेक हैं, इससे ईश्वर की बनाई कुरान किसी रीति से हम को नहीं मालूम देती। किन्तु मुहम्मदादिकों ने ही अपना मतलब सिद्ध करने के वास्ते बना ली है। इसमें हम को कुछ सन्देह नहीं और जो अधिक विचार करें तो इनसे भी [अधिक] अनेक दोष कुरान में निकल सकते हैं और जो सत्य है सो तो सर्वत्र एक ही है, परन्तु बुद्धिमानों के वास्ते अधिक लिखना कुछ आवश्यक नहीं। जितना हमने लिखा, इसका यथावत् सज्जन लोग विचार करें पक्षपात छोड़ के, तो जैसा हमने लिखा वैसा ही उनको निश्चय होगा।

यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है, सो पटना शहर ठिकाना गुडहट्टा में रहने वाले मुन्शी मनोहरलाल जोकि अरबी में भी पण्डित है उनके सहाय से और निश्चय करके कुरान के विषय में हमने लिखा है।

अधिक विचार सज्जन लोग अपनी बुद्धि से कर लेवें।

इसके आगे बाइबिल के विषय में लिखा जायेगा जोकि आदम से लेके यसू मसीह तक पैग़म्बरों को मानते हैं और उनके उपदेश के अनुसार चलते हैं। अंग्रेज आदिक जोकि इंगलिस्तान आदिक देश में रहने वाले जिनके मजहब का नाम कृश्चिअन इनके विषय में जैसा कि हमने बाइबिल आदिक को देखके और उनके इतिहास वा प्रत्यक्ष व्यवहारों को जान के लिखता हूँ, सो सज्जन लोग जान लें।

**इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविरचिते त्रयोदशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १३॥**

# अथ गोरण्डमतविषयं व्याख्यास्यामः

अंग्रेजों के मत में तीन पुस्तकों का प्रमाण है उनको ईश्वर की तरफ से आये हैं ऐसा मानते हैं। एक तौरेत जोकि मूसा की किताब, दूसरी जबूर जोकि दाऊद की और तीसरी इंजील जोकि यसू मसीह की किताब, इन तीनों को ईश्वर साक्षात् भया और ईश्वर से बात भी उन लोगों की भई। इसका वर्त्तमान आगे लिखेंगे जैसा कि बाइबिल में है। वे लोग ऐसा मानते हैं कि ईसा के शरण से विना कोई की मुक्ति नहीं हो सकती।

यह उनका कहना अयुक्त है, क्योंकि मुक्ति के साधन जहाँ करेगा और ईश्वर को जानके उसका शरण और उसकी भक्ति यथावत् करेगा, वहाँ ही उसकी मुक्ति होती है। यह नियम नहीं है कि बाइबिल और ईसा में विश्वास के विना मुक्ति नहीं होती। यह बात अपने मजहब बढ़ाने के वास्ते वे लोग कहते हैं, क्योंकि ऐसा न कहें तो उनका मजहब नहीं बढ़ सकता।

दूसरी यह बात कहते हैं कि सब लोग पापी हैं, उन पापों की मुक्ति ईसा के विश्वास से होगी, क्योंकि वह सब पापों को ग्रहण करता है। सब के ऊपर अनुग्रह करके उनके पापों का फल अपने ही भोग लिया।

यह बात उनकी अयुक्त है, क्योंकि सब पापी नहीं हो सकते।

**प्रश्न**—ईश्वर की आज्ञा अनन्त है उसका पालन जीव यथावत् नहीं कर सकता। एक वार भी ईश्वर की आज्ञा का भंग होने से वह पापी ठहर जायेगा। और ईश्वर अनन्त है, उसका दण्ड भी अनन्त होना चाहिये।

**उत्तर**—यह बात अयुक्त है, क्योंकि ईश्वर ऐसी आज्ञा ही क्यों देगा जोकि हम से बन ही न सके, क्योंकि जिस बात में जिसका सामर्थ्य होता है, उसी बात का उसको हुकुम दिया जाता है। जैसे कि आँख वालों को देखने का अन्धे को नहीं। और जो नहीं होने के काम की आज्ञा देवे तो ईश्वर में ही अविचार दोष आ जाय। इससे जो काम हम लोग कर सकते



हैं, उसकी ही आज्ञा ईश्वर देता है अन्यथा नहीं। यह बड़ी अन्याय की बात है कि हम तो अन्त वाले हैं कि अनन्त नहीं, फिर हम लोगों के ऊपर अनन्त आज्ञा ईश्वर कभी न देगा। और सर्वथा ईश्वर की आज्ञा कोई नहीं खण्डित कर सकता। जैसे कि चोर आदिक मिथ्या बोलते हैं, परन्तु चोरों के बीच में वा अपने मित्रों के बीच में सत्य ही बोलते हैं, जैसा कि उनने किया है। सत्य बोलने की आज्ञा ईश्वर की है, झूठ बोलने की नहीं। सब काल में कोई मनुष्य झूठ बोलता नहीं, किन्तु कहीं झूठ बोलता है, कहीं सत्य बोलता है। इसमें यह विचार है कि कोई मध्यस्थ पुरुष पाप और पुण्य तुल्य करता है, कोई पुरुष दुष्ट प्रकृति पाप अधिक करता है और पुण्य थोड़ा, तथा श्रेष्ठ मनुष्य पाप थोड़ा करता है और धर्म अधिक। उनको यथा योग्य कि जितना जिसने पाप किया, उतना ही उसको दण्ड होना चाहिये अधिक वा न्यून नहीं। और जितना जिसने पुण्य किया, उतना ही उसको सुख होना चाहिये अधिक वा न्यून नहीं। तब तो ईश्वर न्यायकारी हो सकता है और जो थोड़े पाप पर अधिक दण्ड दे वा थोड़ा दे, तो ईश्वर ही अन्यायकारी हो जायेगा। फिर वह ईश्वर ही नहीं होगा। और यह भी अन्याय है कि अपराध और करे और दण्ड और के ऊपर होय, किन्तु जो पाप करे, उसी पर दण्ड होना चाहिये और के ऊपर नहीं। और इन से पूछना चाहिये कि सब मनुष्य सदा पापी होते हैं तो फिर पाप की निवृत्ति ही न होगी। और आप लोग भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान में पाप ही करते हैं तीनों काल में वा नहीं। जो कहो कि सब काल में पाप ही हम करते हैं, तो अब जो अपने मजहब में विश्वास किया और करते हो तथा करोगे, यह भी पाप होगा। और जो कहो कि अब हम लोग ईसा के मजहब में पुण्यात्मा बन गये विश्वास से, तो सब सदा पापी होते हैं, यह बात आप लोगों की झूठ हो गई।

मूसा, दाऊद और ईसापर्यन्त पैग़म्बर और पुत्र को भेज के मनुष्यों को ईश्वर ने अच्छा उपदेश कराया, यह भी बात नहीं बन सकती, क्योंकि सब जगत् ही ईश्वर का पुत्र है, केवल ईसामसीह नहीं, क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसका पुत्र होता है। और ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तथा

दयालु और न्यायकारित्वादिक गुणयुक्त। शक्तिमान् कौन होता है जोकि किसी दूसरे का किसी काम में सहाय ले और जो सहाय से काम करता है वह सर्वशक्तिमान् ही नहीं होता। फिर वह मूसादिक के सहाय से उपदेश क्यों करेगा। उसको उपदेश करने की इच्छा होय तो सर्वान्तर्यामी के होने से एक क्षण में सब को उपदेश कर दे और सब की मुक्ति भी। फिर ईश्वर के विषय में तीन भेद मानना कि रूह कुद्स, पिता और पुत्र, अर्थात् ईसामसीह तक। यह भी एक प्रकार की बुतपरस्ती ही है, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी और सब को नित्य प्राप्त है। उसकी प्राप्ति समय में तीसरे की अपेक्षा नहीं, किन्तु जिसको प्राप्त होता है वह ईश्वर और जो प्राप्तिकर्त्ता है, सो जीव, इन दोनों की अपेक्षा है तीसरे किसी की नहीं। परन्तु अच्छी बातों का उपदेश करना और बुरी बातों का छोड़ना, इतनी अपेक्षा तो मनुष्यों में परस्पर है, जिससे कि सत्य विद्या को मनुष्य जनावे और मनुष्य ही जाने, यह उपकार तो मनुष्यों का ही परस्पर है और नहीं।

इसके आगे बाइबिल की बात लिखी जायगी, सो पक्षपात को छोड़ के सज्जन लोग विचार कर लेवें। मैं भी पक्षपात को छोड़ के लिखता हूँ।

इसमें एक वार पुस्तक का नाम पूर्ण लिखा जायगा, फिर आदि के अक्षर लिखने से पूरा नाम जान लेना। जैसे कि उत्पत्ति की पुस्तक इसका उ० ऐसा चिह्न सब पुस्तकों के नाम जानने के वास्ते लिखे जायेंगे, सो जान लेना। और पर्व प० इसके आगे जो संख्या होगी, सो लिखी जायगी। पंक्ति के पं० इन चिह्नों से इन नामों को जान लेना।

उ० प० १ पं० ३। ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था। यह बात अयुक्त है, क्योंकि उसको देखा किसने? उस वक्त कोई भी नहीं था। और ईश्वर का शरीर कहाँ था? और ईश्वर तो सबका आत्मरूप ही है, फिर निराकार के होने से जल के ऊपर कैसे डोलेगा। आकाश और पृथिवी को सिरजा और जितने पदार्थ थे उनको किसने उत्पन्न किया?

ईश्वर ने कहा कि उजियाला होवे और उजियाला हो गया।

आत्मा से भिन्न ईश्वर क्या चीज था और विना आत्मा से बोलना



कैसा? ईश्वर ने कहा कि अच्छा है, तो ईश्वर पहिले नहीं जानता था कि इसको मैं उत्पन्न कैसा करूँगा। जो सर्वज्ञ है उसको ऐसा पीछे कहना नहीं बनता। दिन, रात और साँझ और बिहान कैसे हो सकता, जब तक कि सूर्यादिक उत्पन्न न हो। ऐसी ही बात छह दिनों की प्रायः पदार्थ विद्या से अयुक्त है।

उ० प० १ पं० २६। तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें।

यह बात भी नहीं बन सकती, क्योंकि ईश्वर भी आदम की नांई ही था। जो ईश्वर के स्वरूप के समान और स्वरूप में आदम है तो उसको अज्ञान कभी न होना चाहिये, क्योंकि ईश्वर के स्वरूप में अज्ञान का लेश भी नहीं बनता।

उ० प० २ पं० १। यों स्वर्ग और पृथिवी और उनकी कुद्त सेना बन गई। जो यह जगत् सब ईश्वर की सेना है तो ईश्वर के हुकुम में सब क्यों नहीं रहती, क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वह सबको अपने वश में रख सकता है। और छह दिन में सब सृष्टि की यह भी ईश्वर में नहीं बनता, क्योंकि वह क्षणमात्र सूक्ष्मकाल में सब को रच सकता है। सातवें दिन विश्राम किया यह भी बात अयुक्त है, क्या ईश्वर को परिश्रम भया था जिससे कि थक के विश्राम किया।

उ० प० २ पं० ८। और परमेश्वर ईश्वर ने अदन में पूर्व की ओर एक बारी लगाई। आदम को उसमें रक्खा। एक पेड़ को तो देखने में सुन्दर और खाने में अच्छा है। और उस बारी के मध्य में जीवन का पेड़ और भले-बुरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगाया।

अर्थात् आगे नद्यादिकों का वर्णन है। इससे क्या आया कि आदम भूमि पर था। वह बाग भी भूमि में होगा। फिर ईश्वर का घर भी वहाँ ही होगा।

उ० प० २ पं० २१। और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया। तब उसने उसकी पसलियों में से एक निकाली और उसके सन्ति मांस भर दिया इत्यादिक कथा लिखी है।

इस विषय में यह भी बात युक्त नहीं, क्योंकि एक पसुली मनुष्यों में कमती क्यों नहीं होती, क्योंकि माता और पिता के शरीर में जितने अवयव हैं, उतने ही सन्तान के शरीर में अवयव होते हैं अधिक नहीं। नर से निकाली गई इससे इसका नाम नारी है। यह भी बात युक्त नहीं, क्योंकि उसका नाम नर किस हेतु से पड़ा। इससे नर की जो स्त्री सो नारी और नारी का [जो पुरुष] सो नर कहाता है।

उ० प० ३ पं० १। अब सर्प भूमि के हरएक पशु से जिससे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था, धूर्त्त था। और उसने स्त्री से कहा क्या निश्चय इत्यादिक लिखा है। फिर उनने उस वृक्ष का फल खाया। तब परमेश्वर ने सर्प को शाप दिया कि जो तूँने यह किया है इस कारण तूँ सारे ढोर और हरएक वन में पशुओं से अधिक शापित होगा। और मैं तुझ में और स्त्री में और तेरे वंश और उसके वंश में वैर डालूँगा। वुह तेरे शिर को कुचलेगा और तूँ उसके एड़ी को काटेगा। और उसने स्त्री को कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्भधारण को बहुत बढ़ाऊँगा। तूँ पीड़ा से बालक जनेगी। और तेरी इच्छा, तेरे पति पर होगी। और वुह तुझ पर प्रभुता करेगा। और उसने आदम से कहा कि तूँने जो अपने पत्नी का शब्द माना है और जिस पेड़ को मैंने तुझे खाने से वर्जा था तूँने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिये श्रापित है इत्यादिक श्राप की बात लिखी है।

इसमें विचारना चाहिये कि सर्प मनुष्य से बात नहीं कर सकता। और जो कहे कि शयतान है तो साँप का शरीर उसका कैसे भया। फिर एक के अपराध से सब जातिभर को शाप देना, यह अन्याय की बात है। वह पेड़ गुण वाला था, उसके फल खाने को ईश्वर ने क्यों वर्जा। और जो वर्जा तो उसको उत्पन्न क्यों किया। जो वे परमेश्वर के स्वरूप में परमेश्वर तुल्य थे तो उनको प्रथम ही भले-बुरे का ज्ञान क्यों नहीं था। प्रथम उनको वर दिया कि तुम बढ़ो पृथिवी में भर जाओ, फिर उनको शाप क्यों दिया। ऐसी बात बुद्धिमान् वा ईश्वर की नहीं हो सकती।

उ० पृ० २ पं० ३। और ईश्वर ने विचार करके आदम को अदन से निकाला कि जीवन के पेड़ का फल खाकर अमर न हो। भले-बुरे के ज्ञान



में ईश्वर के तुल्य हुआ।

देखना चाहिये कि ईश्वर में भी ईर्ष्या है कि आदम अच्छा न हो जाय। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती। देवताओं को खड्ग देकर रखवाली करी अदन की बारी की। यह भी ईश्वर की बात नहीं हो सकती, क्योंकि वह त्रिकालदर्शी है जिसमें अपने को चिन्ता होय ऐसा उत्पन्न ही न करेगा।

उ० प० ३ पं० २४। और परमेश्वर ने कहा कि मेरा आत्मा आदमी में उनके अपराध के कारण सदा न्याय न करेगा।

देखो कि एक ने अपराध किया और सब अन्यायकारी कैसे हो जायेंगे यह बात युक्ति रहित है। उ० प० ६, पृ० १३, पं० ६ और यों हुआ कि जब आदमी पृथिवी पर बढ़ने लगे और उनसे बेटियाँ उत्पन्न भईं तो ईश्वर के पुत्रों ने आदम की पुत्रियों को देखा कि वे सुन्दरी हैं। और उनमें से जिन्होंने चाहा उन्होंने व्याहा।

देखो कि ईश्वर के पुत्रों से और आदम की पुत्रियों से विवाह भया तो आदम और ईश्वर दोनों सम्बन्धी ठहरे। और ईश्वर को स्त्री भी होगी। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती सिवाय मनुष्यों के।

प० ६ पं० ५ और ईश्वर ने देखा कि आदम की दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती हैं, तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर पछताया और उसे अतिशोच हुआ। उ० प० ६ पृ० १३ पं० ६।

यह बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ और अनन्त विद्या वाला है तथा त्रिकालदर्शी, फिर जैसे कि बुद्धिहीन पुरुष भूल से कुछ काम करके पीछे पछतावै और अतिशोच करै। यह ईश्वर की बात तो कभी नहीं हो सकती, किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य भी जो कुछ काम करता है, सो प्रथम विचार के ही करता है, फिर उसमें बिगड़ने वा सुधरने में शोच वा हर्ष नहीं करता तो ईश्वर कैसे करेगा। यह बात मनुष्यों ने अपनी छोटी बुद्धि से बना ली है, जैसे कि बुद्धिहीन मनुष्य हर्ष वा शोक करता है। ईश्वर को भी वैसा ही बना दिया।

उ० प० ६ पृ० १४ पं० १६। और सारे शरीरों में से जीवता दो-दो अपने साथ नाव में लेना, यह दाऊद से ईश्वर ने कहा।

यह बात तभी अयुक्त है, क्योंकि जीते जन्तु बहुत हैं। इतनी बड़ी नाव कहाँ से आवेगी। घोड़ी और घोड़ा, गधा और गधी तथा हाथी और ऊँट इत्यादिक दो-दो नाव में कैसे समावेगा, सो यह बात ऐसे ही असम्भव बना ली है।

उ० प० ८ पृ० ७ पं० २०। और नूह् ने परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हरएक पवित्र पक्षियों में से होम की भेट उस वेदि पर चढ़ाई। परमेश्वर ने सुगन्ध सूँघा।

यह बात युक्त है और अयुक्त भी है, क्योंकि होम का करना बहुत अच्छा। होम से सब जगत् को सुख पहुँचता है, परन्तु ईसामसीह आदिक के सम्प्रदाय वाले होम को नहीं करते। इनके पुस्तक में प्रमाण भी है, यह बात उनकी अयुक्त है। और परमेश्वर ने सुगन्ध लिया यह भी बात अयुक्त है, क्योंकि परमेश्वर सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापक के होने से तथा पूर्ण काम है। फिर वह सुगन्ध लेने की अपेक्षा क्यों करेगा वह तो पूर्णानन्द है। उ० प० ६ पृ० ८ पं० ३ हरएक जीता चलता जन्तु तुह्मारे भोजन के लिये होगा।

यह बात भी युक्त नहीं, क्योंकि जिन पशुओं के मांस से मनुष्यों को उपकार होता है उनकी गणना करनी उचित थी, सो नहीं की इससे यह कहना युक्त नहीं। उ० प० ६............ (यहाँ से आगे मूल ग्रन्थ के पृष्ठ ३७४-३७५-३७६ और ३७७ नहीं है) ................री थी।

देखना चाहिये झूठे बोलने वाले पुरुष को भी परमेश्वर का दर्शन और समागम भया यह बात मुझ को झूठ मालूम देती है।

उ० प० २६ पृ ६० पं० २५। और उसने वहाँ एक वेदी बनाई और परमेश्वर का नाम लिया। देखना चाहिये कि पहिले के लोग वेदी बना के होम करते आये। अब के मनुष्य पादरी आदिक विचार से अच्छे काम को छोड़ दिया। यह अच्छी बात नहीं करते।

उ० प० २७ पृ० ६२ पं० १९ वुह बोला मैं यहाँ हूँ तूँ कौन है हे मेरे



बेटे! तब यअकूब अपने पिता से बोला कि मैं आपका पहिलोठा एसौ हूँ। आपके कहने के समान मैंने किया है।

देखो जैसी कहानी और इतिहासों के नांई ऐसी बातों को जानना चाहिये। यह भी बात ईश्वर के पुस्तक की नहीं।

उ० प० २८ पृ० ६७ पं० १८ और यअकूब बिहान को तड़के उठा और उस पत्थर जिसे उसने अपना उसीसा किया, खम्भा खड़ा किया और उस पर तेल डाला।

यह बात भी बालकों की जैसी है। उ० प० ३१ पृ० ७५ पं० १९ और लावन अपने भेड़ों का रोम कतरने को गया। राखिल् ने अपने पिता की मूर्त्ति चुरा ली। और यअकूब अरामी लावन से अचानक चुरा के भागा।

भेड़ आदिक चराने वालों से ईश्वर बड़ा प्रसन्न था, क्योंकि वारम्वार उनों से भेंट करता था। और मूर्त्ति, अर्थात् बुतपरस्ती भी उस वक्त थी।

उ० प० ३१ पृ० ७९ पं० ५४ तब यअकूब ने उस पहाड़ पर बलि चढ़ाया।

आगे अंग्रेजों के देश में बलि-प्रदान होता था जैसे कि आज-कल आर्यावर्त्त देश में बलि-प्रदान बकरादिक के होते हैं।

उ० प० ३२ पृ० ८१ पं० २४ और यअकूब अकेला रह गया और वहाँ पौ फटे लू एक मल्ल युद्ध करता रहा और जब उसने देखा कि वुह उस पर प्रबल न हुआ तो उसकी जाँघ को भीतर से छुआ। तब यअकूब के जाँघ की नस उसके सङ्ग मल्लयुद्ध करने में चढ़ गई।

देखना चाहिये कि ईश्वर मनुष्यों से मल्ल युद्ध करता है, ऐसा ईश्वर का व्यवहार कभी नहीं बन सकता, ऐसी बात किन्हीं इन्द्रजाली पुरुषों की बन सकती है, ईश्वर की नहीं।

उ० प० ३२ पृ० ८१ पं० २८ इसमें यह लिखा है कि ईश्वर से मल्ल युद्ध किया यअकूब ने और ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा।

ये सब बात बनाबट की मालूम पड़ती है ईश्वर की नहीं। और ईश्वर के और मनुष्य के आगे राजा की नांई मल्ल युद्ध किया, अर्थात् ईश्वर को जीत लिया यअकूब।

उ० प० ४६ पृ० १२० पं० ३१ और युसुफ ने अपने भाइयों और अपने पिता के घराने से कहा कि मैं सन्देश देने को उन पास जाता हूँ और उसे कहता हूँ कि मेरे भाई और मेरे पिता का घराना जो कन्आन् देश में था मेरे पास आये हैं और वे मनुष्य गड़रिये हैं।

आगे उस देश में गड़रिये प्राय: थे जो-जो कहते थे जहाँ-जहाँ जाते थे और जो कुछ दिनचर्या करते थे। कुछ-कुछ लिख लेते थे यह सब बाइबिल में संग्रह कर दिया है लोगों ने। नाम इस वास्ते धर दिया है कि ईश्वर की तरफ से आया है कि इस पुस्तक को सब लोग मान लें और हमारा मजहब चले, परन्तु यह पुस्तक ईश्वर की तरफ से नहीं बन सकता।

उ० प० ४७ पं० ३० मुझे मिश्र में मत गाडियो, परन्तु मैं अपने पितरों में पड़ रहूँगा और तूँ मुझे मिश्र से बाहर ले जाइयो और उनके समाधिस्थान में गाड़ियो। तब वुह बोला कि आपके कहने के समान मैं करूँगा।

देखना चाहिये कि जिसको ईश्वर ने दर्शन दिया और ईश्वर के साथ जिसका अत्यन्त व्यवहार भया तो भी उसका भ्रम नहीं छूटा कि जब जीव का शरीर छूटता है पीछे शरीर का कुछ हो, क्योंकि जैसा पाप-पुण्य किया होगा वैसी ही गति होगी और समाधि-स्थान जहाँ मुर्दे गाड़े जाते हैं उसी को इस्राईल जानता है इस पर अत्यन्त आग्रह है, क्योंकि अपने बेटे को किरिया इस बात के वास्ते दी कि मुझ को मिश्र में न गाड़ना। मिश्र में गाड़ने से वह कुछ बुरा समझता था। और उसमें बुराई कुछ नहीं क्योंकि मुर्दा शरीर मिट्टी के समान है।

यह उत्पत्ति पुस्तक के विषय में थोड़ा-सा लिखा। इसके आगे बाइबिल में और यात्रा की जो पुस्तक है उसके विषय में लिखा जायेगा।

या० प० २ पृ० १३६ पं० ४, या० प० २ पृ० १३४ पं० ११ और उन दिनों में यों हुआ कि जब मूसा से आना हुआ तब वुह अपने भाइयों पास बाहर गया और उनके बोझों को देखा और अपने भाइयों में से एक इब्रानी को देखा कि मिश्री उसे मार रहा है तब उसने इधर-उधर दृष्टि की और देखा कि कोई नहीं। तब उसने उस मिश्री को मार डाला और बालू में उसे



छिपा दिया। तब वुह दूसरे दिन बाहर गया तो देखो कि दो इब्रानी आपस में झगड़ रहे हैं तब उसने उस अन्धेरी को कहा कि तूँ अपने परोसी को क्यों मारता है। तब उसने कहा कि किसने तुझसे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया। क्या तूँ चाहता है कि जिस रीति से तूँने मिश्री को मार डाला मुझे भी मार डालै। तब मूसा डरा और कहा कि यह बात खुल गई जब फिर उनने यह बात सुनी तो चाहा कि मूसा को मार डालें, परन्तु फिर मूसा उनके आगे से भाग निकला।

यह बात यात्रा की पुस्तक में लिखी है। इसमें विचारना चाहिये कि ऐसे पुरुष को ईश्वर कभी नहीं मिलेगा और पैगम्बर मूसा का होना भी ऐसी बातों से नहीं मालूम पड़ता।

प० ३ पृ० १३६ पं० ४ जब परमेश्वर ने देखा कि वुह देखने को एक अलंग फिरा, तो ईश्वर ने उसे झाड़ी के मध्य में से उसे पुकार के कहा कि हे मूसा, हे मूसा! तब वुह बोला कि मैं यहाँ हूँ। तब उसने कहा कि इधर पास मत आ। अपने पावों से जूती उतार, क्योंकि यह स्थान जिस पर खड़ा है पवित्र भूमि में है। और उसने कहा कि मैं तेरे पिता का ईश्वर, अविरहाम का ईश्वर, इजहाक का ईश्वर और यअक़ूब का ईश्वर हूँ। तब मूसा ने अपना मुँह छिपाया, क्योंकि वह ईश्वर पर दृष्टि करने से डरा। और परमेश्वर ने कहा कि मैंने अपने लोगों के कष्ट को जो मिस्र में हैं, निश्चय देखा और उनका चिल्लाना जो उनके करोड़ों के कारण से है सुना क्योंकि मैं उनके दु:खों को जानता हूँ और उतरता हूँ कि मिश्रियों के हाथ से उन्हें छोड़ाऊँ।

इत्यादिक बाइबिल के तीसरे पर्व में कथा लिखी है। यह कथा ईश्वर की नहीं बन सकती, क्योंकि आदमी की नांई मनुष्य से बात करता था तो अब भी करना चाहिये। और वह उस मूसा के पितादिक का ईश्वर नहीं, किन्तु सब जगत् का ईश्वर है। अपने पाँवों की जूती उतार, यह भी ईश्वर की बात नहीं, क्योंकि ईश्वर को जूती से स्पर्श वा दोष नहीं लगता था। और मिश्रियों के हाथ से छोड़ाऊँ, यह बात सर्वशक्तिमान् सत्य संकल्प की नहीं बन सकती। और सर्वव्यापी ईश्वर ऊपर से कैसे उतरेगा

और फिर कैसे ऊपर चढ़ेगा। ये सब बात ईश्वर की तो नहीं बन सकती, किन्तु ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य की बन सकती है। ऐसी-ऐसी कथाओं से क्या मालूम पड़ता है कि कोई सिद्ध पुरुष उन देशों में था जोकि गुप्त भी हो जाता था और कभी प्रगट होता था। उसी की कथा बाइबिल और कुरान की रीति में बन सकती है ईश्वर में नहीं।

या० प० ३२ पृ० २१४ पं० २६ तब मूसा छावनी के निकास पर खड़ा हुआ और कहा कि जो परमेश्वर की ओर है, सो मेरे पास आवे। तब लावी के समस्त सन्तान उसके पास एकट्ठे हुए। और उसने उन्हें कहा कि परमेश्वर इस्राईल के ईश्वर ने यह कहा है कि हर मनुष्य अपना खड्ग अपनी जाँघ पर बाँधे। और छावनी में एक फाटक से दूसरे फाटक तक चलो फिरो। और हरएक मनुष्य अपने भाइयों को और अपने मित्र को और अपने परोसी को घात करै। लावी के सन्तान ने मूसा के वचन के समान किया और उस दिन लोगों में से तीन सहस्र मनुष्य के लगभग मारे पड़े।

यह बात मूसा ने अपने मतलब के वास्ते रच ली है, क्योंकि ईश्वर पक्षपात रहित है वह मनुष्यों में लड़ाई कभी न करावेगा। मनुष्य लोग अपने काम-क्रोध, लोभ-मोहादिक दोषों से परस्पर लड़ते हैं ईश्वर की तरफ से नहीं। यह बात बाइबिल में अयुक्त है।

या० प० ३२ पृ० १४ पं० ३३ तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि जिसने मेरा अपराध किया है मैं उसी को अपनी पुस्तक से भेंट देऊँगा और परमेश्वर ने लोगों पर मरी भेजी। यह बात परमेश्वर की नहीं हो सकती, क्योंकि पुस्तक की भेंट मनुष्य को ईश्वर क्यों करेगा और मरी भी क्यों भेजेगा, क्योंकि सुख वा दुःख अपने कर्मों से मनुष्यों को होता है।

या० प० ३३ पृ० २१७ पं० १८ तब उसने कहा कि मैं तेरी विनती करता हूँ मुझे अपना विभव और रूप दिखा। और ईश्वर मूसा से बोला कि तूँ मेरा रूप नहीं देख सकता, क्योंकि मुझे देख के कोई मनुष्य न जीयेगा। फिर जहाँ-तहाँ बाइबिल में लिखा कि आदम आदिक ने ईश्वर



को देखा। वह बात विरुद्ध हो गई। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती सिवाय साधारण मनुष्यों के।

लैव्य व्यवस्था की पुस्तक के विषय में आगे लिखा जायेगा—लै० प० ६ पृ० २४९ पं० १३ आग वेदी पर सदा जलती रहे, बुझने न पावे।

इससे क्या जाना जाता है कि वेदों का प्रचार सब जगह में था और अग्नि-होत्रादिक कर्म भी थे फिर पीछे से छूट गये हैं इससे संस्कृत विद्या सब विद्याओं का मूल कारण जाना जाता है।

## गिनती की पुस्तक

गि० प० १२ पृ० ३५२ पं० ५ तब परमेश्वर मेघ के खम्भे में उतरा और तम्बू के द्वार में खड़ा हुआ और हारून् मरियम को बुलाया। तब वे दोनों गये, तब उसने कहा कि मेरी बातें सुनो।

यह बात 'मुझको कोई नहीं देख सकता' उससे विरुद्ध है। तम्बू के द्वार पर खड़ा होना, मेघ के खम्भे में उतरना, यह असम्भव बात के होने से ईश्वर की नहीं, किन्तु किसी सिद्ध योगी मनुष्य की हो सकती है।

पं० ७ मेरा दास मूसा ऐसा नहीं, वह मेरे सारे घर में विश्वासी है मैं उससे सामने-सामने, अर्थात् प्रत्यक्ष बातें करूँगा और गुप्त बातों से नहीं। और यह परमेश्वर के आकार को देखेगा।

इससे यह आया कि परमेश्वर साकार है फिर यह व्यापक नहीं हो सकता। और इस बात से 'मुझे कोई नहीं देख सकता', यह बात विरुद्ध हुई अथवा उससे यह विरुद्ध होगी। ऐसी बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती सिवाय साधारण मनुष्यों के।

गि० प० ३१ पृ० ४०५ पं० १७ सो अब लड़कों में से हरएक बेटे को और हरएक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो, परन्तु जो बेटियाँ पुरुष से संयुक्त न हुई हैं, उन्हें अपने लिये जीती रक्खो। और तुम सारे दिन छावनी के बाहर रहो जिस किसी ने मनुष्य को मारा हो। और जिस किसी ने लोथ को छूआ हो वह आपको और अपने बन्धुओं को तीसरे दिन अथवा सातवें दिन पवित्र करे। और तुम अपने समस्त वस्त्र और सब जो चमड़े के बने हुए हैं और सब बकरी के रोम के कार्य और

काष्ठ के पात्र शुद्ध करो। इत्यादिक कथा बाइबिल में लिखी है। जो सत्य है तो पादरी आदिक अंग्रेज इस बात को क्यों नहीं करते और जो झूठ मानते हैं तो बाइबिल की बात ही झूठ हो जायेगी। इस बात से मूसा की बुद्धि और धर्मात्मता भी जान पड़ी, क्योंकि बालक और स्त्रियों को मारने की आज्ञा देना यह बड़ा अन्याय है। ऐसी पुस्तक ईश्वर की बनाई नहीं हो सकती।

## विवाद की पुस्तक

वि० प० २४ पृ० ४८५ पं० १६ सन्तान की सन्ति पितर मारे न जावें, न पितरों की सन्ति सन्तान मारे जावें। हरएक अपने पाप के कारण मारा जावेगा।

इससे क्या जाना जाता है कि आगे अंग्रेजों के देश में ऐसा अन्याय था कि सन्तान के बदले पितर मारे जाते थे और पितरों के बदले सन्तान।

वि० प० २७ पृ० ४९१ पं० २६ जो कोई इस व्यवस्था के वचनों को पालन करने को स्थिर न रहे, सो स्रापित और समस्त लोग कहें आमीन।

ऐसी-ऐसी व्यवस्था बायबिल में अच्छी है।

## यहूशुअ की पुस्तक

य० प० ६ पृ० ५२९ पं० २१ और उनोंने सबको जो नगर में थे क्या पुरुष, क्या स्त्री, क्या युवा, क्या बैल, क्या गदहा, एक बार तलवार की धार से मार डाला।

यह युद्ध बाइबिल में अन्याय का है, क्योंकि गधे, बैल आदिक ने क्या अपराध किया था, ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती।

यहूशुअ की छटवी पुस्तक समाप्त हुई। इसमें यर्दन नदी के पार जाकर और सब लोगों को मारकर उस देश को मूसा की व्यवस्था के अनुसार इस्राईल के सन्तान के यहूशुअ ने बाँटा और उसमें कुछ नहीं।

देखना चाहिये कि मूसा की व्यवस्था से ऐसे अनर्थ से युद्ध भया, फिर कैसे निश्चय हो कि मूसा को ईश्वर मिला था।

## न्याइयों की सातवीं पुस्तक

इसमें यह लिखा है कि जब-जब इस्राईल की सन्तान ईश्वर के दास



मूसा की व्यवस्था को नहीं मानते थे और अन्य-अन्य देवताओं को पूजते थे, तब ईश्वर उनके राज्य को छीन लेता था। और फिर ईश्वर उनमें से किसी न्यायकारी पुरुष को उत्पन्न करके राज्य को देता था। पर्व-२ में ऐसी बात लिखी है।

देखना चाहिये कि ईश्वर तो सत्य संकल्प है, फिर उनकी इच्छा यह थी कि मेरी ही पूजा करें फिर वे और की पूजा कभी न कर सकते। इससे ईश्वर की तो आज्ञा है कि जो ईश्वर की उपासना को करेगा सो अनन्त सुख को पावेगा और जो न करेगा सो संसार के अनित्य सुख-दुःख में ही गिरा रहेगा। इससे वैसी बात ईश्वर की वा पण्डित पुरुष की कभी नहीं हो सकती।

## रूत की आठवीं पुस्तक

इसमें यह लिखा है कि रूत का पति मर गया और दूसरा पति उसका बोआज हुआ, और बोआज का बेटा अविद, और अविद का बेटा यस्सी, और यस्सी का पुत्र दाऊद हुआ। ऐसी वंशावली लिखी। इससे क्या जाना जाता है कि यह विद्या की पुस्तक बाइबिल नहीं, किन्तु इतिहास की पुस्तक जाननी चाहिये।

## समूएल की पहिली पुस्तक

समू० प० २१ पृ० ७१५ पं० १२ और दाऊद ने अपने मन में ये बातें जुगा रक्खी और जात के राजा अकीस से अति डरा। तब उसने उसके आगे अपनी चाल पलट डाली और उनमें आपको बौड़हा बनाया। और फाटक के द्वारों पर लकीरें खींचने लगा। और अपनी लार को दाढ़ी में बहने दिया। तब अकीस ने अपने सेवकों से कहा कि लेओ यह जन तो स्त्रीडी है, तुम उसे मुझ पास क्यों ले आये।

देखना चाहिये कि दाऊद को प्राण का बड़ा भय हुआ। इससे ऐसी दशा उसने कर ली और ईश्वर उसकी रक्षा पर था तो भी उसको डर नहीं छूटा। इससे ऐसी बात ईश्वर की वा विद्या पुस्तक की नहीं हो सकती।

समू० प० २८ पृ० ७३४ पं० १५ तब समूएल ने साऊल् से कहा कि तूँने मुझसे उठाके क्यों बेचैन किया। और साऊल् ने कहा कि मैं अति

दुःखी हूँ, क्योंकि फिलीसती मुझसे लड़ते हैं और परमेश्वर ने मुझे छोड़ दिया है और कुछ उत्तर नहीं देता। न तो आगम ज्ञानियों के द्वारा से न दर्शन से, सो मैंने तुझे बोलाया जिससे तूँ मुझे बतावे कि मैं क्या करूँ। और समूएल ने कहा कि जब परमेश्वर ने तुझे छोड़ दिया और तेरा वैरी बना, तब मुझसे किसलिये पूँछता है। और जैसा परमेश्वर ने मेरे द्वारा से कहा, उसने उसके लिये वैसा ही किया है, क्योंकि परमेश्वर ने तेरे राज्य को फाड़ा है और तेरे परोसी दाऊद को दिया है।

इसमें विचारना चाहिये कि परमेश्वर ने अपने नियम से सब को अपनी कृपा रीति से ग्रहण कर लिया है किसी को वह कभी नहीं छोड़ता। और जो छूटता है, सो अपने कुकर्म से। और परमेश्वर कभी किसी का वैरी नहीं बनता, क्योंकि वह तो पक्षपात रहित है। यह मनुष्य का व्यवहार है कि घड़ीभर में किसी का मित्र बन जाय, घड़ीभर में किसी का वैरी। ऐसा परमेश्वर का ज्ञान अनिश्चित नहीं होता, किन्तु वह सर्वत्र है। इससे ईश्वर में ऐसा दोष नहीं ठहर सकता। समूएल् की पहिली पुस्तक और गिनती में समाप्त हुई। इसमें साऊल् के हाथ से दाऊद ने वारम्वार दुःखी होकर अकीस फिलीसितियों के राजा के ओट लीनी और साऊल को पहिले ईश्वर ने राजा करके फिर पछताना और समूएल् ने जो मरा था उठके साऊल से बात करी। और कुछ नहीं लिखा।

इसमें विचारना चाहिये कि सर्वज्ञ जो ईश्वर, सो ऐसा काम क्यों करेगा जिसके पीछे पछताना हो और समूएल् मरा हुआ उठके बात कभी नहीं कर सकता। ऐसी असम्भव बात के होने से मनुष्य की बनाई बाइबिल है, ईश्वर की नहीं।

समू० २ प० ६ पृ० ७५५ पं० १९ तब दाऊद ने परमेश्वर से यह कहके बूझा कि मैं फिलीसितियों पर चढ़ जाऊँ। क्या तूँ उन्हें मेरे वश में कर देगा। तब परमेश्वर ने दाऊद से कहा कि चढ़ जा, क्योंकि मैं निःसन्देह फिलीसितियों को तेरे हाथ सौंपूँगा। तब दाऊद वअल्फरसीन् में आया और वहाँ उन्हें मार के कहा कि परमेश्वर मेरे आगे ऐसा टूट पड़ा मेरे वैरियों पर जैसा पानियों का दरार।



यह बात परमेश्वर की कभी नहीं हो सकती, क्योंकि मनुष्य की नांई दाऊद से बात करना, जैसी दाऊद की वैसा युद्ध में सहाय करना, उसके वैरियों पर टूट पड़ना, ये सब बात अयुक्त हैं सत्य नहीं, क्योंकि परमेश्वर पक्षपात रहित और उसका वैरी कोई नहीं।

स० २ प० ६ पृ० ७५७ पं० १४ और दाऊद परमेश्वर के आगे सूती अफूद कटी में बाँधे हुए नाँचते-नाँचते अपनी शक्ति भर चला और दाऊद और इस्राएल् के सारे घराने परमेश्वर की मंजूषा को ललकारते और नरसिंगे के शब्द के साथ ले आये।

इसमें विचारना चाहिये कि परमेश्वर पीछे-पीछे दाऊद के चलता होगा। यह बात असम्भव है और परमेश्वर का मंजूषा, अर्थात् उसमें परमेश्वर बैठा होगा वा मूर्त्ति बनाई होगी अथवा मंजूषा को ही परमेश्वर का मान लिया होगा यह बात भी भ्रान्ति की है और युक्ति विरुद्ध भी है।

स० २ प० ७ पृ० ७५८ पं० ६ क्योंकि जब से इस्राएल् के सन्तान को निकाल ले आया। मैंने तो आज के दिन लों घर में वास न किया, परन्तु तम्बू में और डेरे में फिरा किया, यह ईश्वर ने कहा।

इसमें विचारना चाहिये कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर जब जैसा किया चाहे, वैसा एक क्षण में सब कुछ कर ले, सो यह बात अपने मतलब के वास्ते दाऊद आदि ने परमेश्वर के नाम से कह दिया है जिससे कि हमारा राज्य और धन बढ़े जिससे कि हम सुखी होवें। स० २ प० ११ पृ० ७६६ पं० २ और एक सन्ध्या काल को यों हुआ कि दाऊद अपने बिछौने पर से उठा और राजभवन की छत पर टहलने लगा और वहाँ से उसने एक स्त्री को स्नान करते देखा और वह स्त्री देखने में अत्यन्त सुन्दरी थी और दाऊद ने दूत भेज के उस स्त्री का खोज किया और किसीने कहा कि क्या वुह इलिहाम की बेटी विनत सब अऊरियाहहित्ती की पत्नी नहीं है। और दाऊद ने दूत भेज के उसे बुला लिया और वह दाऊद पास आई, सो उसने उससे रति किया। यह बात अत्यन्त न्याय विरुद्ध है, क्योंकि दाऊद राजा होके परस्त्री से गमन किया। वह धर्मात्माओं में ऐसे कर्मों से कभी न गिनना चाहिये। और ऐसे कर्म करने वालों को ईश्वर का दर्शन वा ज्ञान

नहीं हो सकता। इससे दाऊद और परमेश्वर के विषय में मिलने और प्रीति की बात लिखी है, सो अयुक्त है। समूएल् की दूसरी पुस्तक समाप्त हुई।

इसमें दाऊद और उसके बेटे विसलूम की अपने बाप दाऊद से राज्य के अर्थ लड़ाई हुई और दाऊद ने उरियाहहित्ती की पत्नी से अनर्थ किया और उसके पति को लड़ाई में मरवाया और वह स्त्री दुःखी हुई और उसका नाम विनत सबअ था उसको पत्नी किया और उससे सुलेमान उत्पन्न हुआ। और ईश्वर दाऊद पर दुःखी हुआ यह लिखा है।

देखो कि ऐसे कर्म करने वाले पुरुष श्रेष्ठ कभी नहीं हो सकते, न परमेश्वर में प्रीति कर सकते हैं, क्योंकि जो न्यायकारी है धर्मात्मा, वही परमेश्वर में प्रीति कर सकता है।

## राजाओं की पहिली पुस्तक

रा० १ प० २ पृ० ८१८ पं० ३ और परमेश्वर अपने ईश्वर की आज्ञा को पालन करके उसके मार्गों में चल। जिसने उसकी व्यवस्था, उसकी आज्ञाओं और उसकी साक्षियों की रक्षा कर। जैसा मूसा की व्यवस्था में लिखा है। जिससे तूँ अपने समस्त कार्यों में और जिधर तूँ फिरे भाग्यवान् होवे। जिससे परमेश्वर अपने वचन पर बना रहे। जो उसने मेरे विषय में कहा कि यदि तेरे वंश अपने मार्ग में चौकस रहके अपने सारे मन से और अपने सारे प्राण से मेरे आगे सच्चाई से चलेंगे तो इस्राईल् के सन्तान का सिंहासन तुझसे अलग न होगा। यह सुलेमान जो दाऊद का बेटा, उसको ऐसा उपदेश किया दाऊद ने अपने बेटे सुलेमान को। इससे यह मालूम पड़ा कि दाऊद के मरने तक जबूर आदिक कोई पुस्तक आगे न थी, पीछे से जबूर आदिक पुस्तक लोगों ने बना ली है, क्योंकि जबूर आदिक पुस्तक होती तो मूसा के व्यवस्था के पालन का उपदेश अपने बेटे को दाऊद क्यों करता। इससे यह निश्चय होता है कि मूसा की पुस्तक एक ही आदि से अन्य कोई नहीं।

रा० १ प० ३ पृ० ८२४ पं० १२ और देख! मैंने तेरी बात के समान किया है। देख! मैंने एक बुद्धिमान् और ज्ञानवान् तुझे दिया है ऐसा कि तेरे आगे तेरे तुल्य कोई न था, और तेरे पीछे तेरे तुल्य कोई न होगा।



इससे यह मालूम भया कि ईसामसीह भी सुलेमान से अधिक नहीं था और इस लोक से मुहम्मद और ईसामसीह पैग़म्बर भये नहीं और जो भये हैं तो यह बात मिथ्या हो जायेगी। पादरी लोग जो कहते हैं कि ईसामसीह सब से बड़ा भया, इस बात से, यह बात इनकी अयुक्त है। मूसा भी सुलेमान के तुल्य न था और आदम नूह तथा दाऊद भी सुलेमान के तुल्य न था।

रा० १ पृ० ८४१ पं० २७ परन्तु क्या सचमुच ईश्वर पृथिवी पर वास करेगा। देख! स्वर्ग और स्वर्गों के स्वर्ग तेरी समाई नहीं रखते तो फिर क्या यह घर जो मैंने बनाया है। हे परमेश्वर! मेरे ईश्वर! अपने सेवक की प्रार्थना और उसकी गिनती पर सुरत लगा और अपने दास का गिड़गिड़ाना और प्रार्थना सुन, जो तेरे सेवकों ने आज के दिन तेरे आगे की है।

इससे क्या या आगे सुलेमानादिकों ने कोई स्थान रचा था, उसका नाम रक्खा था परमेश्वर का घर। यह वचन सुलेमान ने उस काल में कहा जब दश आज्ञाओं को रखने के वास्ते घर बनाया, अर्थात् दश आज्ञा ईश्वर ने दी थी, अन्य नहीं।

रा० १ प० ११ पृ० ८५२ पं० ९ और परमेश्वर सुलेमान पर इस कारण क्रुद्ध हुआ कि इस्राईल के ईश्वर परमेश्वर से जिसने उसे दो वार दर्शन दिया था, उसका मन फिर गया और उसे विषय में आज्ञा की थी कि वुह आन देवों का पीछा न पकड़े, परन्तु उसने परमेश्वर की आज्ञा को पालन न किया, सो परमेश्वर ने सुलेमान से कहा कि इस कारण तुझसे यह हुआ है और तूँने मेरे नियम और मेरे विधिन को जो मैंने तुझे आज्ञा करी पालन नहीं किया है। निश्चय मैं राज तुझसे फाड़ूँगा और तेरे सेवकों को देऊँगा तथापि तेरे जीते जी तेरे पिता दाऊद के कारण से ऐसा न करूँगा, परन्तु तेरे बेटे के हाथ से उसे फाड़ूँगा। तथापि मैं सारा राज्य न फाड़ लेऊँगा, परन्तु अपने सेवक दाऊद के कारण और अपने चुने हुए यरूसलम के लिये तेरे बेटे को एक गोष्ठी देऊँगा। तब परमेश्वर ने सुलेमान के एक वैरी को उभारा, अर्थात् अदूमी हदद् को। देखो कि ऐसी बात सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसा सोच-विचार अल्पज्ञ

मनुष्यों को होता है, ईश्वर को नहीं। और सुलेमान भी ईश्वर को छोड़ के और की पूजा करता था। फिर तेरे जैसा ज्ञान किसी को पहिले न दिया था और पीछे किसी को न देऊँगा।

यह जो पहिले ईश्वर ने बात कही थी, सो मिथ्या हो गई अथवा यह मिथ्या है। ऐसी पूर्वापर विरुद्ध बात साधारण मनुष्य की हो सकती है, ईश्वर की वा विद्वान् पुरुष की नहीं।

रा० १ प० १४ पृ० ८६६ पं० २५ और रहबिआम राजा के पाँचवें वर्ष ऐसा हुआ कि मिश्र का राजा शीशाक यरूसलम के विरोध में चढ़ आया और वुह परमेश्वर के मन्दिर का धन और राजा का धन लेके चला गया और वुह सब कुछ ले गया जो सोने की ढालें सुलेमान ने बनाई थी वुह सब ले गया।

देखो कि जैसी लड़के की बातें होती हैं, ईश्वर की वैसी ही बाइबिल में बातें लिखी है। कभी किसी पर प्रसन्न हो जाये, फिर उसी पर गुस्सा हो जाये, कभी किसी का राज्य किसी को देदे और आपस में झगड़ा लगा दे। ये बातें सब उस वक्त के मनुष्यों ने परमेश्वर के नाम पर मिथ्या-मिथ्या बना ली हैं, ईश्वर की कभी नहीं हो सकती। दो वे अबिरहाम और इस्राईल और इजहाक से ईश्वर का वचन जो किया था, सो तो समाप्त भी न हुआ कि मैं सब देश का राज्य तुम को देऊँगा, सो तो अब तक प्राप्त भी न भया, परन्तु मिश्र का राजा शीशाक आके सब को लूट गया। ऐसी ईश्वर की बात व्यर्थ कभी नहीं होती।

राजाओं की पहिली पुस्तक पूरी भई।

इसमें यह लिखा है कि दाऊद पर ईश्वर की आज्ञा हुई कि मेरा घर बनवावै और फिर मना किया कि तूँ मत बना, तेरा बेटा सुलेमान बनावै कि तूँ शुद्ध नहीं। और वारम्वार इस्राईल के राजा ईश्वर से फिर गया और ईश्वर वारम्वार उन पर क्रुद्ध भया और राज्य औरों को दे दिया। और फिर ईश्वर दयालु हुआ और फिर इस्राईल ने और देवों को पूजा, फिर ईश्वर क्रुद्ध हुआ। यही बात राजाओं की पहिली पुस्तक की समाप्ति तक लिखी है।



ऐसी बातों से ईश्वर का जो सर्वज्ञ ज्ञान तथा न्यायकारित्व और नित्य आनन्दादिक गुण नष्ट हो जाते हैं। इससे बायबिल में ईश्वर और परमेश्वर की ऐसी-ऐसी जो बात लिखी है, सो छोटी बुद्धि वाले मनुष्यों की है, ईश्वर की नहीं बन सकती।

## राजाओं की पुस्तक

इसमें ऐसी-ऐसी बात लिखी है कि और उसके, अर्थात् यहूदा के राजा यूसियाह के दिनों में कुछ मूसा की व्यवस्था का प्रचार हुआ, दाऊद के पीछे। और जब इस्राईल का राजा ईश्वर की आज्ञा जो अपने दास मूसा द्वारा किई है, उसको नहीं मानकर और देवों को पूजते थे तब-तब ईश्वर रिसाता तथा पछताता था और क्रुद्ध होकर उनके राज्य को और राजाओं को देता था। केवल इस्राईल के सन्तान को देवै, सो नहीं, किन्तु मिश्र का राजा फरऊन नीकोह उनको बाँध के मिश्र से ले गया और उन पर कर ठहराया और बाबुल के राजा नबू खुद नजर के राज्य के उन्नीसवें वर्ष के पाँचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर अद्दान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था, यरूसलम में आया और उसने परमेश्वर का मन्दिर और राजा का भवन और यरूसलम के सारे घर और हरएक बड़े घर को जला दिया। अर्थात् इस्राईल के सन्तान को मिश्र से जब ईश्वर ले आया। पहिला भाग इस पुस्तक का समाप्त हुआ।

रा० २ प० २५ पृ० ९७४ पं० ८ देखो कि परमेश्वर ने सुलेमान को हुकुम देके अपना मन्दिर बनवाया फिर जब उनने जला दिया तब रक्षा नहीं कर सका और उसके परमेश्वर के सेवकों के घर जला दिया उनकी रक्षा नहीं कर सका। ऐसी बातें ईश्वर की नहीं हो सकती। ये सब बातें इन लोगों ने अपने मतलब के वास्ते बनाई हैं।

## काल के समाचार की पहिली पुस्तक
## ( बायबिल का दूसरा भाग )

इसमें वंशावली लिखी है आदम से लेके सुलेमान पर्यन्त। सो उत्पत्ति की पुस्तक से निकाल के लिखी है। और कुछ बातें गिनती की पुस्तक से लिखी हैं। जैसे इस्राईल के सन्तान ने देश का विभाग किया।

और कुछ समूएल की पहिली और दूसरी पुस्तक से लेकर लिखा है। जैसे दाऊद ने सुलेमान को ईश्वर का घर बनाने को कहा और कोई बात अधिक इसमें नहीं, अर्थात् पूर्व उक्त उत्पत्ति आदिक पुस्तकों के विचार से इसका विचार हो गया।

काल की दूसरी पुस्तक में जो राजाओं की ग्यारवीं और बारवीं पुस्तक में प्रथम भाग में जो लिखा है, सो इसमें हैं अधिक कुछ नहीं। जैसे ईश्वर का घर सुलेमान ने बनाया और इस्राईल के सन्तानों ने मूसा की व्यवस्था को नहीं माना, तब ईश्वर ने क्रुद्ध होकर बाबुल के राजा से आग में जलाया। सो यह पुस्तक पृथक् नहीं बन सकता है, क्यों कि उत्पत्ति आदिक पुस्तकों के अनुवाद करके कोई आदमी ने बना लिया। बहुत बातें इस में भी असम्भव हैं उनको विचार लेना।

## इजरा की पुस्तक

इसमें यह लिखा है कि जो ईश्वर का घर सुलेमान ने बनाया था, सो बाबुल के राजा नबूबद नजर ने आग में जला दिया। और इस्राईल के सन्तान को बाँध के बाबुल में ले गया था और खोरस के काल में फिर आना इस्राएल की सन्तान का, यरूसलम में ईश्वर का घर फिर बनाया। यही लोक का इतिहास लिखा है विद्या की बात कुछ नहीं।

## नहमियाह की पुस्तक

इसमें यह लिखा कि बाबुल का राजा नबूबदन यरूसलम और ईश्वर के घर को आग में जला के इस्राईल के सन्तान को बन्धुआई में ले गया था, कुछ काल के पीछे छूटकर फिर यरूसलम को बनाकर इस्राईली बसे और ईश्वर के घर को जो जला था उसको बनाया और नहमियाह ने मूसा की व्यवस्था का प्रचार किया और अधिक कुछ नहीं लिखा। यह भी पृथक् पुस्तक नहीं बन सकती, क्यों कि पूर्व पुस्तकों का अनुवाद किया है।

## आस्तर की पुस्तक

इसमें यह लिखा है कि जो इस्राईल की सन्तान को बाबुल का राजा नबूबुद नजर बन्धुवाई में ले गया था, उनकी सन्तान में से एक अबिबैल और उसकी पुत्री का नाम आसतर था, वह मर गया और आसतर सुन्दरी



थी और मर्द्की ने उसको पाला, क्योंकि उसके चचा की पुत्री थी, उसको शेरशाह राजा ने रानी कर लिया। शेरशाह का मन्त्री आम तथा उसने राजा को कहकर इस्राईल के सन्तान को मार डालने की आज्ञा करी तब मर्द्की ने आस्तर को और आस्तर ने राजा को कहकर आज्ञा फिरवा दी और यहूदी, अर्थात् इस्राईली के मरने से छोड़वाया। सारी पुस्तक में यही कथा है। देखो कि ईश्वर ने अविरहाम इजहाक और यअकूब को कहा था कि सब देशों का राज्य तुमको देऊँगा, सो अब तक वचन पूरा भी नहीं भया। मूसा और ईश्वर ने सहाय भी किया तो भी उनका दुःख नष्ट नहीं भया, किन्तु दुःख ही पाया।

## ऐयूब की पुस्तक

इसमें यह लिखा है कि उस देश में एक ऐयूब नामक सिद्ध पुरुष था, ईश्वर से डरता था और बुराइयों से अलग रहता था। उसके सात बेटे और बेटियाँ थी। सात हजार भेड़, तीन हजार ऊँट, पाँच सौ बैल के जोड़े, पाँच सौ गदही और अनेक टहलुवे उसके थे। अब एक दिन परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र आये और शयतान भी आया। तब ईश्वर ने शयतान से पूछा कि तूँ कहाँ से आता है। शयतान ने कहा कि पृथिवी पर घूमता इधर-उधर फिर आया हूँ। तब ईश्वर ने शयतान को कहा कि तूने मेरे सेवक ऐयूब को जाँचा है, उसके समान पृथिवी पर कोई नहीं। वह पाप से अलग है। तब शयतान ने कहा ईश्वर से कि आपने सब सुख उसको जो हैं उनका नाश कर तब मैं परीक्षा करूँ। तब ईश्वर ने शयतान को ऐयूब और उसकी स्त्री को रक्षा करके ऐयूब के बेटे और बेटियाँ और सब टहलुओं को मारने की आज्ञा की। तब शयतान ने सब बेटे और बेटियाँ तथा सब टहलुवों को मार डाले और सब सम्पत्ति का नाश किया तब ऐयूब महा दुःखी हुआ। तब सबने उसका त्याग किया। तब उसके तीन मित्रों ने एक तीमानी और शहूती और नामाती ने शान्ति दी और उसने न माना। तब ईश्वर ने ईश्वरता और सर्वकर्त्ता आपको कहकर उतरा और उसकी शान्ति की। उसको बेटे-बेटियाँ और सब सम्पत्ति आगे से दूनी दी। इस पुस्तक में आदि से अन्त लौं यही कथा लिखी है।

ऐयूब की पुस्तक में मूसा का नाम तो लिखा है और मूसा के व्यवस्था की कथा नहीं लिखी, परन्तु होम लिखा है। वैसे ही अविरहाम आदिक भी इसमें नहीं लिखे।

यह भी पुस्तक इतिहास के माफक है। और परमेश्वर किसी का नाश करके परीक्षा करे फिर दुगुणे पदार्थ देके शान्ति करे, यह बात सर्वज्ञ दयालु और न्यायकारी आदिक गुण वाले परमेश्वर में कभी नहीं बनती। जो मर गये वे जी उठे शरीर सहित। फिर दुगुणा देना, यह असम्भव के होने से अयुक्त कथा है।

## गीतों की पुस्तक

गीत० १२ पृ० ३४९ पं० २५ तूँने आरम्भ में पृथिवी की नीव डाली और स्वर्ग तेरे हाथों के कार्य हैं वे नाश होंगे। और तूँ स्थिर रहेगा। और वे सब वस्त्र की नांई पुराने हो जायंगे।

इससे क्या आया कि स्वर्ग भी अनित्य है। फिर स्वर्गीय स्वर्ग में रहने वाले भी न रहेंगे। फिर तीन ईश्वर का मानना न रहेगा, क्योंकि जब स्वर्ग न रहेगा तो स्वर्ग में रहने वाला पिता कहाँ से रहेगा।

गीत० २ पृ० ३६१ पं० १ परमेश्वर ने मेरे प्रभु को कहा कि तूँ मेरे दाहिने हाथ बैठ। जब लों मैं तेरे बैरियों को तेरे चरण का पीढ़ा करूँ।

ईसाई लोग कहते हैं कि यह दाऊद ने ईसा को कहा है और मुहम्मद को कहते हैं और अंजील में भी ईसा का नाम लिया है, सो झूठ है, क्योंकि सब पुस्तकों में मूसा की महिमा है, ईसा और मुहम्मद की नहीं। सो यह दाऊद ने मूसा को कहा है।

गीत० ११९ पृ० ३६ पं० ५५ हे परमेश्वर! मैं तेरा नाम रात को स्मरण करता हूँ और तेरी व्यवस्था को पालन करता हूँ।

यह दाऊद के कहने से मूसा का ग्रहण होगा, मुहम्मद, ईसा का नहीं। क्योंकि तेरी व्यवस्था का पालन करता हूँ, सो व्यवस्था मूसा को दी गई है। यहाँ ईसा और मुहम्मद का नाम नहीं निकल सकता। नाम का स्मरण सब पुस्तकों में है, परन्तु गीतों की पुस्तकों में पद-पद में है।

गीतों की पुस्तक, अर्थात् दाऊद की जबूर समाप्त हुई।



इसमें ईश्वर ने नाम की स्तुति और धन्यवाद, दया, महिमा और क्रिया आदि गुणों का दाऊद, आसफ, मूसा और सुलेमान आदि ने सतार, वीणा और खंजड़ी आदि से गाये हैं। और आपको पापी और अधर्मी कहा है। ईश्वर का क्रोध रिसाना और पछताना सब पुस्तकों में कहा है अनेक वार। और ईश्वर स्वर्गवासी, यरूसलमवासी और तम्बूवासी सैहून पहाड़वासी और जलवासी बहुत ठिकाने लिखा है। यह भी बात ईश्वर में नहीं घट सकती, क्योंकि ईश्वर देहधारी, एक देशवासी तथा सर्वज्ञ और निराकार न होये तब बन सकती है अन्यथा नहीं। सो ईश्वर देहधारी वा अल्पज्ञ अथवा अल्पव्यापी कभी नहीं हो सकता। इससे ऐसा लिखना ईश्वर विषय में अयुक्त है।

गीत० १ पृ० १ पं० ६ क्योंकि परमेश्वर धर्मियों की चाल पहिचानता है, परन्तु अधर्म की चाल नष्ट हो जायेगी।

अधर्मी की भी चाल ईश्वर पहिचानता है, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है।

गीत० २ पृ० १ पं० ६ और मैंने अपने पवित्र पहाड़ सैहून पर अपने राजा को अभिषिक्त किया है। यहाँ राजा मसीह, अर्थात् ईसा का नाम नहीं जैसा ईसाई कहते हैं, क्योंकि पं० ७वीं में इसी पर्व में लिखी है कि मैं नियम को वर्णन करूँगा। परमेश्वर ने मुझसे कहा कि तूँ मेरा पुत्र है, आज के दिन तूँ मुझसे उत्पन्न हुआ। इसके कहने से दाऊद ही पुत्र ईश्वर का हुआ। इससे ईसामसीह पुत्र नहीं आता। दाऊद मसीह का तो पुत्र नहीं, किन्तु ईश्वर को ही दाऊद सब स्थान में राजा और बाप कहता। मूसा और सुलेमान सब इस्राईल के सन्तान को अपना पुत्र कहा है और को नहीं।

गीत० ९ पृ० २६२ पं० ११ परमेश्वर की जो सैहून का निवासी है स्तुति गाओ। उसके कार्यों को लोगों के मध्य में वर्णन करो। यह बात अयुक्त है, क्योंकि सैहून का निवासी ईश्वर कभी नहीं बन सकता।

गीत० ९ पृ० ३४० पं० ७ क्योंकि हम तेरे क्रोध से नाश और तेरे कोप से व्याकुल होते हैं।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि ईश्वर क्रोध वा कोप किसी पर नहीं करता, दयालु के होने से।

गीत० ९२ पृ० ३४२ पं० ४ क्योंकि हे परमेश्वर! अपने लोगों से प्रसन्न है वह दीनों को मुक्ति से विभूषित करेगा।

अपने लोगों से प्रसन्न होगा तो औरों से अप्रसन्न होगा। फिर ईश्वर नित्य हर्ष-शोक में ही गिरा रहेगा। ऐसी बात ईश्वर की नहीं होती। सुलेमान के दृष्टान्त इस सारी पुस्तक में बुद्धि, विचार, सत्य, धर्म, न्याय, रीति, राजधर्म आदिक उपदेश हैं, सो अच्छे हैं। दाऊद का बेटा सुलेमान ने इस प्रकार के उपदेश किये हैं कि जगत् और जो कुछ जगत् के पदार्थ हैं, वे सब दुःखरूप और नाशवान् कथन किया। परलोक में धर्म और अधर्म कर्त्ता को ही होगा, अन्य को नहीं। जैसा ईसाई सब पापियों के भोक्ता ईसा को कहते हैं, सो झूठ है, क्योंकि सुलेमान के पुस्तक से यह कहना विरुद्ध है। और उत्पत्ति की पुस्तक से लेके सब पुस्तकों में यह स्पष्ट करके लिखा है कि जिस-जिस ने जब-जब पाप किया, तब-तब उस-उसको ही परमेश्वर ने फल दिया। जैसे आदम ने पाप किया तो आदम को ईश्वर ने स्वर्ग से निकाल दिया। मूसा और इस्राईल के कुल ने जब-जब पाप किया, तब-तब मिश्र के राजा ने उनको दुःख दिया। मिश्र का राजा फरऊन ने अपने पाप को भोगा और ने नहीं। इससे क्या आया कि जो जैसा पाप वा पुण्य करता है, सो वैसा ही फल पाता है। यह बात सब पुस्तकों में बहुत स्थानों में लिखी है।

और होम का विधि सब पुस्तकों में लिखा है। इससे क्या जाना जाता है कि वेद और वेद की रीति का थोड़ा वा बहुत व्यवहार सब देशों में था। बैल का बलिदान बहुत ठिकाने बायबिल में लिखा है। गैया का नहीं।

यह बात अयुक्त और युक्त है, क्योंकि यह भी वेद का विधान है, सो उन देशों में प्रवृत्त था, क्योंकि गैया के मारने से दूध आदिक श्रेष्ठ पदार्थों की और गैया, बैल आदि पशुओं की उत्पत्ति की भी बहुत हानि होती है। सब मनुष्यों को गैया आदिक दूध देने वाले पशुओं को दुःख पहुँचता है इससे बायबिल तथा वेद की रीति से भी गैया आदिक का मारना उचित नहीं।

उपदेश की पुस्तक प० १२ पृ० ४५० पं० १४ क्योंकि ईश्वर हरएक



कार्य का और हरएक गुप्त बात का न्याय करेगा, चाहे भला हो, चाहे बुरा।

इससे क्या आया कि ईसाई लोग कहते हैं सब ईसाइयों का पाप ईसा ले लेता है, यह बात झूठ ठहरी। और विचार के देखें तो जो जैसा करेगा, वह वैसा ही पावेगा अन्यथा नहीं।

## सुलेमान के गीतों का

गीत प० १ पृ० ४५१ पं० २ वह अपने मुँह के चूम से मुझे चूमे, क्योंकि तेरा प्रेम दाखरस से भला है।

देखना चाहिये कि परमेश्वर के व्यवहारों में जो प्रेम उसको दाखरस से भलाई की उपमा देना, यह कुछ अच्छी बात नहीं है।

## यस इयाह भविष्यद्वक्ता की पुस्तक

प० १ पृ० ४४९ पं० ४ हाय पापमय सन्तान, पाप से लदी हुई मण्डली, कुकर्मियों के वंश बिगाड़ूँ लड़के, उन्होंने परमेश्वर को त्यागा है।

देखना चाहिये कि इस्राईल कुल पर परमेश्वर की अत्यन्त प्रीति किये सुधरें, परन्तु वे वारम्वार बिगड़ते हैं। इससे परमेश्वर सत्य संकल्प न हुआ। जो सत्य संकल्प न होता, सो परमेश्वर ही नहीं।

यस० प० १ पृ० ४६० पं० ११ परमेश्वर कहता है कि तुम्हारे बलिदानों की बहुताई से मुझे क्या प्रयोजन। मैं भेड़ों के होम की भेंट से और पुष्ट चौपाइयों की चिकनाहट से छक गया हूँ। और मैं बैलों और मेम्नों और बकरों के लोहू से कुछ प्रसन्न नहीं। लोबान से मुझे घिन है।

पं० १४ मेरे जीव को तुह्मारे नये चाँदों और तुम्हारे पर्वों से वैर है। वे मेरे लिये भार हैं, मैं उठाने से थक गया।

इसमें विचारना चाहिये कि परमेश्वर का कहना ऐसा कभी न बनेगा मैं थक गया हूँ, मैं घिन करता हूँ, मैं उठाने से थक गया हूँ। ये सब बातें साधारण मनुष्यों ने परमेश्वर के विषय में जोड़ ली हैं अपने मतलब के वास्ते।

प० ३ पृ० ४६३ पं० १० धर्मी से कहो कि कल्याण होगा, क्योंकि

१. इसका उत्तर आगे पृष्ठ ३६७ पर भी दिया है। —सम्पादक

वे अपने किये का फल खांयगे पं० ११ दुष्ट पर सन्ताप उसका बुरा होगा, क्योंकि जैसा उसके हाथों ने किया है, वैसा ही उसे उसका पलटा दिया जायेगा।

यह बात अच्छी है, परन्तु ईसामसीह सब का पाप ले लेता है ऐसा ईसाई लोग कहते हैं, वह झूठ हो जायेगा अथवा यह झूठ हो जायेगा।

पं० १६ और परमेश्वर ने कहा इसलिये कि सैहून की बेटियाँ अहंकारी हैं और गला उठाके आँखें मारती और पटकती चलती और अपने पाँवों से ठंठनाती चली जाती हैं। पं० १७ इसलिये प्रभु सैहून की बेटियों की चाँद को गंजी कर डालेगा।

देखो परमेश्वर की बात कि उन पर चलने-हलने से ही क्रुद्ध हो गया। यह ईश्वर की बात कभी नहीं बन सकती और ईश्वर देहधारी भी आता है।

प० ५ पृ० ४६६ पं० २५ इसलिये ईश्वर का क्रोध उसके लोगों पर भड़का और उसने विरोध में अपना हाथ उन पर बढ़ाया और उन्हें मारा है और पहाड़ काँप गये और उनकी लोथें मार्गों में गोबर की नांई पड़ी हैं तथापि उसका क्रोध दूर नहीं हुआ, परन्तु उसका हाथ अबलों बढ़ाया हुआ है।

जिसको क्रोध है, उनको सुख नहीं हो सकता और वह पक्षपाती भी हो जाता है। इससे ऐसी बात परमेश्वर की कभी नहीं बन सकती।

प० १९ पृ० ४८४ पं० ४ क्योंकि परमेश्वर ने मुझे यों कहा है मैं अपने स्थापित निवास-स्थान में विश्राम करके देखता रहूँगा। जैसा स्वच्छ ऊष्मा साग-पात पर, जैसा ओस का बादल लवनी के ग्रीष्म में।

देखो कि ईश्वर एक देश में बनता है और शरीरधारी भी हो जायेगा। यह भी सर्वव्यापी सर्वाधार परमेश्वर में दोष आता है।

प० १९ पृ० ४८५ पं० १४ परमेश्वर ने एक विपरीत आत्मा को उसके मध्य में मिलाया है और उन्होंने मिश्र के सब कार्यों को भ्रमाया है उस मद्यप के समान, जो अपनी छाँट में भूलता है।

इसमें विचारना चाहिये कि ईश्वर ने उनके बीच में विपरीत आत्मा



मिला के पाप करवाया, फिर उन पर दण्ड देना उचित नहीं, क्योंकि उनका तो अपराध ही नहीं ठहरता। फिर दण्ड ईश्वर पर ही होना चाहिये उन पर नहीं।

यस० प० ३७ पृ० ५११ पं० १८ सत्य है हे परमेश्वर! कि असुर राजाओं ने सारे देशों को और उनके देशों को विनाश किया और उनके देवों को आग में झोंक दिया। पं० १९ क्योंकि वे देव न थे। मनुष्य के हाथ ने बनाये हुए लकड़ी और पत्थर थे, सो उन्होंने उन्हें नाश किया। पं० २० और अब हे परमेश्वर! हमारे ईश्वर हमें उसके हाथ से बचाले कि सारी पृथिवी के राज्य जान जावे कि परमेश्वर तू ही अकेला ईश्वर है।

इससे दो बात आती हैं, एक तो लकड़ी पत्थरादिकों की मूर्त्तियों का पूजन इंगलिस्थान आदिक देशों में था। और परमेश्वर तूँ ही अकेला ईश्वर है, इससे एक ईश्वर ही बायबिल की रीति से उनको मानना चाहिये, जोकि बायबिल को मानते हैं। उनको तीन ईश्वर का जो मानना, सो झूठ है।

यस० प० ४० पृ० ५१६ पं० १३ किसने परमेश्वर के आत्मा को नापा है अथवा उसका मन्त्री होके उसे जताया।

इससे क्या आता है कि ईश्वर व्यापक है, क्योंकि आत्मा से भिन्न दूसरा ईश्वर कोई नहीं, किन्तु आत्मा ही ईश्वर है और जो आत्मा से भिन्न ईश्वर होगा, सो जड़ होगा। इससे ईश्वर आत्मा और व्यापक ही है।

यस० प० ४३ पृ० ५२२ पं० १० परमेश्वर कहता है तूँ मेरे साक्षी हो, अर्थात् मेरा दास जिसे मैंने चुना है, जिससे तुम जानो और मुझ पर विश्वास लाओ और समझो कि मैं वही हूँ, मुझ से आगे सर्वशक्तिमान् नहीं बनाया था और मेरे पीछे भी कोई न होगा। पं० ११ अर्थात् मैं ही परमेश्वर हूँ और मुझे छोड़ कोई मुक्तिदाता नहीं।

इससे यही आया कि एक ही ईश्वर है, दूसरा नहीं। जो तीन ईश्वर मानते हैं इससे उनकी बात झूठ है। और मैं थकता नहीं हूँ यह बात, 'मैं थक गया' उससे परस्पर विरुद्ध है।

यस० प० ४५ पृ० ५२६ पं० ५ मैं ही परमेश्वर हूँ और कोई दूसरा

नहीं। मुझे छोड़ कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, मुझे छोड़ कोई नहीं मैं परमेश्वर हूँ और कोई दूसरा नहीं। पं० ७ मैं उजियाला और अन्धियारा सृजता हूँ, मैं मिलापकर्त्ता हूँ और बिगाड़ उत्पन्न कर्त्ता हूँ। मैं परमेश्वर इन सभों का कर्त्ता हूँ। पं० १४ केवल तुझ ही में सर्वशक्तिमान् है और उसे छोड़ और कोई दूसरा ईश्वर नहीं। पं० १८ जिसने आकाश उत्पन्न किया वही ईश्वर है। पं० १७ मैं परमेश्वर हूँ जो सत्य कहता हूँ मैं सत्यता प्रचारता हूँ। पं० २३ मैंने अपनी किरिया खाई है धर्म के मुँह से वचन निकल गया इत्यादिक अनेक बार लिखा है जैसे यसइयाह ने पुस्तक में कि मैं ही एक ईश्वर परमेश्वर हूँ और दूसरा कोई नहीं।

इससे क्या आया कि ईसाई लोग कहते हैं कि ईसामसीह तीनों का तीसरा है, अर्थात् तीन ईश्वर हैं, यह बात उनकी झूठ हो गई। और वही मेल-मिलाप कराता है बिगाड़ सब। फिर अपराध ईश्वर के ऊपर ही ठहरता है अन्य के ऊपर नहीं। फिर किसी को दण्ड भी न होना चाहिये। फिर ईसाई कहते हैं कि ईसा पाप लेगा सब का। यह बात नहीं बनती, क्योंकि अपराध और पाप तो तब होय जब अपनी तरफ से करे, सो बनता ही नहीं।

यस० प० ५७ पं० १ धर्मी नाश होता है और कोई नहीं मन में सोचता। और भक्त लोग उठाये जाते हैं।

इससे क्या आया कि अपराध क्षमा किसी का नहीं होता, क्योंकि और कोई नहीं इस बायबिल के प्रमाण से।

यस० प० २७ पृ० ५४४ पं० २१ मेरा ईश्वर कहता है कि दुष्टों के लिये कुशल नहीं।

इससे क्या आया कि अपराध क्षमा नहीं हो सकता।

यस० प० ६३ पृ० ५५२ पं० १० परन्तु वे फिर गये और उन्होंने उसके पवित्र आत्मा को खिजाया और वह शत्रु उनका हो गया। वह आप उनसे लड़ा।

यह बात विरुद्ध है, क्योंकि वह पवित्र आत्मा न खीजेगा, न शत्रु किसी का होगा।



यस० प० ६४ पृ० ५५३ पं० ९ हे परमेश्वर! अत्यन्त कोपित मत हो और कुकर्मों को सदा स्मरण न कर, दृष्टि कर देख। हम सब तेरी विनती करते हैं। हम सब तेरे लोग हैं।

यह बात ईश्वर में नहीं घट सकती, क्योंकि ईश्वर कुपित कभी किसी पर नहीं होता। कोप का होना और प्रसन्नता का होना यह तो जीवों का व्यवहार है। ईश्वर तो एकरस सदा आनन्द स्वरूप ही है।

यस० प० ६६ पृ० ५५६ पं० ८ ऐसी बात किसने सुनी, किसने ऐसी वस्तु को देखा। क्या देश दिनभर में उत्पन्न होगा, क्या क्षणमात्र में एक जाति उत्पन्न होगी, क्योंकि सैहून को पीड़ लगी, वह बालक भी जन बैठी। पं० ९ क्या मैं जनने पर लाऊँ और न जनाऊँ। परमेश्वर कहता है क्या मैं जानता हूँ जनने से रोकूँ तेरा परमेश्वर कहता है।

इसमें विचारना चाहिये कि सृष्टि के क्रम कि आदम भया, इसमें भी सन्देह होता है। क्योंकि क्या क्षणमात्र में एकजाति उत्पन्न होगी, क्योंकि सैहून को पीड़ लगी वह बालक भी जन बैठी। सैहून पर्वत का नाम है यह बालक कैसे जनेगी। और जो स्त्री का नाम है तो उसका पति परमेश्वर ही होगा। यह बात असम्भव-सी मालूम देती है।

यर० प० २ पृ० ५६२ पं० १९ तेरी ही दुष्टता तुझे ताड़ना करेगी। और तेरा फिर-फिर जाना तुझे डपटेगा यह भी जान। और देख ले कि परमेश्वर अपने ईश्वर को बिसराना बुरा और कड़ुआ है।

देखना चाहिये कि सत्य संकल्प ईश्वर है, चाहता है कि मेरे से ये न फिरें, परन्तु वे फिर-फिर जाते हैं। ऐसी बातों से ईश्वर का संकल्प मिथ्या हो जाता है।

प० २ पृ० ५६३ पं० ३० वृथा मैंने तुह्मारे बालकों को मारा है उन्होंने उपदेश नहीं ग्रहण किया है, तुम्हारी ही तलवार ने नाशक सिंह के समान तुह्मारे भविष्यद्वक्तों को भक्षण किया है।

देखो कि मारने के वक्त तो विचार ही नहीं किया, फिर अपसोच करता है, फिर कहता है तुह्मारी ही तलवार ने तुह्मारे भविष्यद्वक्तों को भक्षण किया है, यह अपसोच की बात से विरुद्ध है। ऐसी बात ईश्वर की

कभी नहीं बन सकती।

यर० प० ५ पृ० ६८ पं० ९ परमेश्वर कहता है कि इन बातों के लिये क्या मैं पलटा न लेऊँगा और ऐसे लोगों से क्या मेरा प्राण वैर न लेगा।

देखना चाहिये कि रात-दिन परमेश्वर को क्रोध, सोच-विचार और वैर लगा रहता है। फिर परमेश्वर को सुख भी नहीं हो सकता। जिसने बायबिल बनाई है उसने परमेश्वर को आदमी-सा बना दिया, यह बड़ा दोष है।

यर० प० ६ पृ० ७० पं० २५ तुम्हारी बुराइयों ने इन वस्तुन को दूर किया है और तुम्हारे पापों ने तुम्हारी भलाई को रोक रक्खा है।

इससे यह जाना गया कि ईसा सब का पाप लेने वाला है, यह बात अयुक्त जानी गई।

यर० प० १२ पृ० ५८२ पं० १ हे परमेश्वर! जब मैं तुझसे अपराध करूँ। तूँ धर्मी है तथापि मैं विचार के विषय में तुझसे संवाद करूँगा कि दुष्टों का मार्ग क्यों भाग्यवान् होता है, क्या सबके सब चैन में है जो सबसे व्यवहार करते हैं।

इससे क्या आया कि जब तक पूर्वापर मध्य अनेक जन्म नहीं मानेंगे तब तक यह व्यवस्था कभी न बनेगी उनके मत में ईश्वर ही अन्यायकारी हो जायेगा।

यर० प० १५ पृ० ५८८ पं० १ और परमेश्वर ने मुझे कहा कि यद्यपि मूसा अथवा समूएल मेरे आगे खड़ा होवे तो भी इन लोगों पर कृपा करने को मेरा मन नहीं झुकता।

इससे क्या आता है कि मूसा और समूएल उनके वास्ते क्षमा करवावें तो भी मैं नहीं करूँगा, इससे क्षमा नहीं हो सकेगी। फिर जो क्षमा की बात लिखी, उससे यह बात विरुद्ध होगी वा वह विरुद्ध होगी।

यर० प० १६ पृ० ५९० पं० २ कि तूँ इस स्थान में अपने लिये पत्नी मत कर और न बेटे, न बेटियाँ तेरे लिये होवें।

देखिये कि ईश्वर पत्नी करने की मना करता है, क्योंकि उसमें बड़े कलेश हैं, अर्थात् परलोक में तुझको पत्नी मिलेगी, स्वर्ग में भी पत्नी का



समागम होगा, फिर स्वर्ग में भी विषय-भोगों से ईर्ष्या और द्वेषादिक व्यवहार होंगे अवश्य। फिर वह सुख क्या।

## दानीये की पुस्तक

प० ३ पृ० ७८६ पं० १ नबूखुदनजर राजा ने एक सोने की मूर्त्ति बनाई जिसकी ऊँचाई साठ हाथ थी और उसकी चौड़ाई छह हाथ। उसने उसे बाबुल के प्रदेश में दूरा के चौगान में स्थापित किया। उसके आगे औंधे गिरने की आज्ञा भी की। और जो कोई उसके आगे साष्टाङ्ग नमस्कार और पूजा न करेगा वह आग में जल जायगा।

देखिये ऐसे-ऐसे बुत पूजने वाले उन देशों में थे। उनमें से ही बुत पूजा आर्यावर्त्त देश में आई है।

## नहूम की पुस्तक

प० १ पृ० ८५० पं० २ परमेश्वर जो ज्वलित और पलटा लेनेहारा जो ईश्वर है। परमेश्वर पलटा लेता है और कोपमय है। परमेश्वर अपने शत्रुओं से पलटा लेता है और अपने वैरियों के लिये पलटा लेता है। ऐसी बात परमेश्वर की कभी नहीं बनती सिवाय साधारण मनुष्य के।

## हज्जी का पुस्तक

पं० १ पृ० ८७४ पं० २ कि सेनाओं का यों कहता है कि ये लोग कहते हैं समय नहीं पहुँचा परमेश्वर के घर बनाने का समय। पं० ४ कि क्या तुम्हारे लिये समय है कि आप मङ्गल के घर में बसो और यह घर उजाड़ रहे।

देखिये कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अपने घर के वास्ते औरों से कहे। और मनुष्यों की नांई औरों से तान मारे, यह बात परमेश्वर की कभी नहीं होती।

## जकरियाह की पुस्तक

प० १ पृ० ८७८ पं० ८ परमेश्वर तुम्हारे पितरों पर रिस से रिसियाया।

यह कभी परमेश्वर की बात नहीं बन सकती, न अच्छे मनुष्यों की। केवल मनुष्यों ने अपने मतलब के वास्ते ऐसी बातें रच ली जिससे कि परमेश्वर के नाम से लोक मान लें और अपना सम्प्रदाय बढ़े। धन और

प्रतिष्ठा हम लोग पावें।

अब बायबिल पुस्तक में दश आज्ञा परमेश्वर ने मूसा के द्वारा कही हैं उनको लिखते हैं।

यात्रा० प० २० पृ० १८० पं० २१ पहाड़ की चोटी पर मूसा को बुलाया और मूसा चढ़ गया। तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि उतर जा, लोगों को चिता, ऐसा न हो कि वे मेड़ तोड़ के परमेश्वर को देखने आवें, और बहुतेरे उनमें से नाश हो जावे। और याजक भी जो परमेश्वर के पास आये हैं, अपने को पवित्र करें। कहीं ऐसा न हो कि परमेश्वर उन पर चपेट करे। तब परमेश्वर ने उसको कहा कि चल नीचे जा और तूँ हारून समेत फिर ऊपर आ। परन्तु याजक और लोग मेड़ तोड़ के परमेश्वर पास ऊपर न आवें। न होवे कि वह उन पर चपेट करे। सो मूसा लोगों के पास नीचे उतरा और उनसे कहा।

इसमें विचारना चाहिये कि उन पर कितना द्वेष परमेश्वर का है कि वे मुझको देख के पवित्र न हो जावें। फिर उनके पवित्र हो जाने के वास्ते मूसा से उपदेश क्यों करता है कि इन उपदेशों को ग्रहण करके वे पवित्र हो जावें। यह परिश्रम क्यों करता है। और जो पवित्र करने की इच्छा है तो दर्शन देके पवित्र कर दे अथवा उनके हृदयों को ज्ञान से शुद्ध कर दे जिससे कि वे धर्म ही करें, अधर्म कभी न करें। इतना परिश्रम क्यों उठाता है। यह बात सर्वशक्तिमान् ईश्वर की नहीं बन सकती। और उन पर चपेट करे यह भी ईश्वर की बात नहीं बन सकती, क्यों कि ईश्वर को यह विचार नहीं है। क्योंकि यह बात करनी चाहिये और यह बात नहीं करनी चाहिये, चपेट तो व्याघ्रादिक करते हैं चोर वा शत्रु। परमेश्वर किसी पर चपेट क्यों करेगा।

प्रथम आज्ञा यह है कि परमेश्वर तेरा ईश्वर जो तुझे मिश्र की भूमि से बन्धुआई के घर से निकाल लाया, मैं हूँ। मेरे सन्मुख तेरे लिये दूसरा ईश्वर न होगा।

यह बात ईश्वर विषय में ठीक नहीं, क्योंकि मैं सबका ईश्वर हूँ ऐसा कहना था, क्योंकि वह सबका तुल्य ईश्वर है।



दूसरी आज्ञा यह है कि तूँ अपने लिये खोद के किसी की मूर्त्ति और किसी वस्तु की प्रतिमा जो ऊपर स्वर्ग पर जो नीचे पृथिवी पर और जो जल में, जो नीचे पृथिवी के हैं मत बना तूँ।

उनको प्रणाम मत कर और न उनकी सेवा कर, क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान् हूँ। पितरों के अपराध का दण्ड उनके पुत्रों को, जो मेरा वैर रखते हैं उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी लों देवैया हूँ और उनमें से सहस्रों पर, मुझे प्यार करते हैं और मेरी आज्ञा को पालन करते हैं, दया करता हूँ।

यह भी आज्ञा युक्त नहीं, क्योंकि अपराध तो पिता करे और उनकी चार पीढ़ी तक ईश्वर वैर ले, सो बे-अपराध से वैर का लेना उचित नहीं, जो अपराध करे, उसी को दण्ड होना, यही न्याय की बात है अन्यथा नहीं। और जो अच्छा काम करे उसी पर कृपा का करना उचित है। एक के पुण्य से हजार के ऊपर दया करनी, यह भी विचार और न्याय विरुद्ध है, क्योंकि हजारों ने जो अपराध करे, उन पर क्या दण्ड न होना चाहिये, किन्तु अवश्य ही होना चाहिये। इससे यह बात भी यथावत् युक्त नहीं।

तीसरी आज्ञा यह है कि परमेश्वर अपने ईश्वर का नाम अकारथ मत ले, क्योंकि परमेश्वर उसे जो उसका नाम अकारथ लेता है निष्पाप न ठहरावेगा। यह भी बात ठीक-ठीक युक्त नहीं, क्योंकि इसका अभिप्राय यह है कि वृथा ईश्वर का नाम वा शपथ परमेश्वर की कोई न खावे, स्वार्थ के वास्ते उसका नाम वा शपथ कर ले और अकस्मात् परमेश्वर का नाम मुख से निकल जाये तो क्या पाप होता है।

चौथी आज्ञा यह है कि विश्राम के दिन को उसे पवित्र रखने के लिये स्मरण कर। छह दिन परिश्रम कर और अपना समस्त कार्य कर, परन्तु सातवाँ दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर का विश्राम है, उसमें तूँ कुछ कार्य न करेगा, न तूँ, न तेरा पुत्र, न तेरी पुत्री, न तेरा दास, न तेरी दासी, न तेरे पशु, न तेरे पाहुन जो तेरे फाटकों के भीतर हैं, क्योंकि परमेश्वर ने छह दिन में स्वर्ग और पृथिवी और समुद्र और सब कुछ जो उसमें है बनाया। और सातवें दिन विश्राम किया। इस कारण परमेश्वर ने विश्राम दिन को

आशीष दी और उसे पवित्र ठहराया।

यह बात भी ठीक नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान् जो ईश्वर, क्या छह दिन में सृष्टि करेगा। वह क्षणमात्र में सब सृष्टि कर सकता है। उसने छह दिन में सृष्टि करी यह बात ईश्वर की ईश्वरता की हानि की है। और छह दिनों में बहुत परिश्रम हुआ होगा ईश्वर को, इससे विश्राम सातवें दिन किया, यह भी सर्वशक्तिमत्त्व ईश्वर के नाशक की बात है। सातवाँ दिन पवित्र किया तो छह दिन में अपवित्र करे, अर्थात् कुछ पाप भी करे तो कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि सातवें दिन पवित्रता करनी चाहिये इसके कहने से। इससे ऐसी बात ईश्वर की नहीं बन सकती।

पाँचवीं आज्ञा यह है कि अपने पिता और अपनी माता का आदर कर, जिसने तेरी वय उस भूमि पर, जिसे परमेश्वर तेरा ईश्वर तुझे देता है अधिक होवे।

यह भी बात युक्त नहीं, क्योंकि माता और पिता, स्त्री और कुटुम्ब तथा जो श्रेष्ठ लोग धर्मात्मा होवें, उन सभों का आदर करना चाहिये, दुष्टों का नहीं। और 'माता-पिता का आदर करना' इसके कहने से यह आता है कि औरों का आदर न करना। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती।

छठवीं आज्ञा यह है कि तूँ हत्या मत कर।

सातवीं आज्ञा यह है कि चोरी मत कर, और झूठ मत बोल।

इन तीनों में भी विवेक से लिखना था, क्योंकि अनपराधी को हनन न करना, राज-घर में दुष्टों का तो हनन होगा। परस्त्री गमन में वेश्या का निषेध करना उचित था। और अपनी स्त्री में भी अत्यन्त आसक्ति और वीर्य का नाश न करना चाहिये। चोरी में चोरी का लक्षण करना चाहिये कि विना आज्ञा से पर-पदार्थ का ग्रहण नहीं करना, इतना इसमें लिखना था।

नवमी आज्ञा यह है कि अपने परोसी पर झूठी साक्षी मत दे।

अर्थात् परोसी न होये उस पर झूठी साक्षी दे-दे तो कुछ चिन्ता नहीं। और जो कहे कि अपने मजहब में जो श्रेष्ठ मनुष्य है अथवा मनुष्य जाति



मात्र को परोसी जाने तो भी युक्त नहीं, क्योंकि और मजहब वाले अश्रेष्ठ और पश्वादिकों पर झूठ साक्षी देना आता है। और ''झूठ मत बोल'', इससे ही यह बात आ गई, फिर लिखना व्यर्थ है। इससे यह बात न युक्त, न ईश्वर की हो सकती है।

दशम आज्ञा यह है कि अपने परोसी के घर का लालच मत कर। अपने परोसी की स्त्री और उसके दास और उसकी दासी और उसके बैल और उसके गदहे और उसकी वस्तु का जो तेरे परोसी की है लालच मत कर।

यह भी बात युक्त नहीं, क्योंकि जो परोसी न हो उसके भी पदार्थ का लालच न करना चाहिये, किन्तु अन्याय से किसी के पदार्थ का लालच कभी न करना चाहिये। और चोरी की आज्ञा से ही यह बात आ जाती है, फिर इसका लिखना व्यर्थ है। इस प्रकार की छिन्न-भिन्न आज्ञा परमेश्वर की नहीं हो सकती, न विद्वान् पुरुष की।

सब बायबिल में यह दश आज्ञा मूल हैं। जब मूल अयुक्त ठहरा फिर अन्यत्र बायबिल में अयुक्त बात कैसे न होगी। ग्रन्थ बहुत न हो जाये इस वास्ते बायबिल के पुराने नियम के विषय में थोड़ा-सा लिखा गया। इससे अन्य भी बात अयुक्त और असम्भव बहुत हैं तथा अच्छी बातें भी बहुत हैं, सो बुद्धिमान् लोगों ने विचार लेना।

इसके आगे नया नियम, अर्थात् ईसामसीह का जो वर्त्तमान इस विषय में लिखा जायेगा, जिसको अंग्रेज लोग धर्म पुस्तक और इंजील कहते हैं।

मत्ती रचित प० १ पृ० २ पं० १८ अब ईसामसीह का जन्म यों हुआ कि तब उसकी माता मरियम यूसफ से वचनदत्त हुई। उससे पहिले वे एकट्ठे हुए। वह पवित्र आत्मा से गर्भिणी पाई गई। यह बात असम्भव और अयुक्त है, क्योंकि पवित्र आत्मा से गर्भिणी होना असम्भव, और सर्वशक्तिमान् ईश्वर कुमारी से उत्पन्न करे और गर्भ ठहरावे, यह अयुक्त है और असम्भव भी, क्योंकि विना पुरुष के समागम से गर्भ का होना असम्भव है। इससे यह जाना जाता है कि पुरुष के समागम से ही

ईसामसीह भये होंगे।

पं० २० प्रभु के दूत ने स्वप्न में उसे दर्शन देके कहा कि हे दाऊद के पुत्र यूसफ तूँ अपनी पत्नी मरियम को अपने यहाँ लाने से मत डर, क्योंकि जो उसके पेट में है, सो पवित्र आत्मा से है।

यह भी बात अयुक्त है, क्योंकि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् दूतों से काम करेगा, तो दूसरे के सहाय होने से सर्वशक्तिमान् परमेश्वर न रहेगा, क्योंकि विना सहाय से परमेश्वर सब कुछ कर सकते हैं। और दूत जो आया था, सो आजकल भी आना चाहिये, सो आता नहीं। इससे यह बात मानने के योग्य नहीं।

मत्ती० प० ३ पृ० ७ पं० १६ और यसूब पति समा पाके जो ही पानी से ऊपर आया, देखो उस पर स्वर्ग खुल गया। और उसने परमेश्वर के आत्मा को कपोत के समान उतरते और उसके ऊपर आते देखा। और देखो यह आकाशवाणी हुई, यह मेरा प्रिय पुत्र है जिसमें मैं अति प्रसन्न हूँ।

यह बात युक्त नहीं, क्योंकि किसने देखा, सुना और लिखा कि स्वर्ग खुल गया, इससे यह बात मानने योग्य नहीं। और परमेश्वर का आत्मा कपोत के समान लिखना यह भी युक्ति विरुद्ध और असम्भव है। और ''यह मेरा प्रिय पुत्र जिसमें मैं अति प्रसन्न हूँ'' यह बात भी युक्ति विरुद्ध है, क्योंकि वही प्रिय पुत्र होगा तो और अप्रिय पुत्र हो जायगे। फिर ईश्वर में प्रसन्नता और अप्रसन्नता, अर्थात् हर्ष और शोकादिक दोष आ जायेंगे, सो परमेश्वर में कभी नहीं बन सकता, किन्तु वह सदा नित्यानन्द स्वरूप है। और जो कोई जीव उसकी आज्ञा में चलता है, अपने आत्मा से अत्यन्त प्रेम करता है और परमेश्वर को यथावत् जानता है उसके पास भी हर्ष-शोकादिक दोष नहीं आते तो ईश्वर में वे दोष कैसे आवेंगे।

मत्ती० प० ४ पृ० ८ पं० १८ और यसू गलील के समुद्र के तीर फिरते दो भाइयों को, अर्थात् जो पथरस कहाता है, उसके भाई अन्द्रियास को समुद्र में जाल डालते देखा, क्योंकि वे मछुवे थे और उसने उनसे कहा कि मेरे पीछे हो लेओ कि मैं तुम्हें मनुष्य के मछुवे बनाऊँगा। वे तुरन्त जालों



को छोड़ के उसके पीछे हो लिये और वहाँ से आगे बढ़के और दो भाइयों को, अर्थात् सबदी के बेटे याकूब और उसके भाई यूहन्ना को अपने पिता सबदी के संग नाव पर अपने जालों को सुधारते देखा और उन्हें बोलाया। तब वे तुरन्त नाव [और] अपने पिता को छोड़ के उसके पीछे हो लिये।

यह बात जो ईसामसीह ने किई सो ईश्वर की आज्ञा से विरुद्ध है जो कि 'अपने पिता और अपने माता की सेवा कर इससे विरुद्ध होने से, दो में से एक बात झूठी हो जायेगी। और ईसामसीह का जल्दी मरण हुआ, सो जान पड़ता है कि इसी से हुआ, क्योंकि माता और पिता की सेवा से उमर बढ़ती है अन्यथा नहीं, सो न ईसामसीह ने अपने माता-पिता की सेवा किई और बहुतों को माता-पिता की सेवा से छोड़ा भी दिया, यह बायबिल से ईसामसीह ने विरोध किया। और 'तुमको मनुष्य के मछुवे बनाऊँगा' अपने ऐसी जाल रचें कि जिसमें बहुत मनुष्य फस जायेंगे, यह भी बात श्रेष्ठ पुरुष की नहीं।

मत्ती० प० ५ पृ० १२ पं० २७ तुम सुन चुके हो कि प्राचीनों से कहा गया है कि तूँ व्यभिचार मत कर, परन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि जो कोई कुइच्छा से किसी स्त्री पर देखे, वह अपने मन में उससे व्यभिचार कर चुका।

यह बात तो अच्छी है, परन्तु इनके प्राचीनों से यसू की बुद्धि अच्छी है। फिर उन प्राचीनों के कहने में भ्रम हो जायेगा कि अपूर्ण वचन के कहने से।

मत्ती० प० ५ पृ० १३ पं० ३८ तुम सुन चुके हो कि कहा गया है आँख की सन्ती आँख, और दाँत की सन्ती दाँत, परन्तु मैं तुम से कहता हूँ बुरे का सामना न करना, परन्तु यदि कोई तेरे दाहिने गाल पर थपड़ मारे, तो तूँ उसको दूसरा भी फेर दे इत्यादिक ईसामसीह के कथन से बायबिल की बात विरुद्ध हो जाती है। और ईश्वर की बात से भी क्योंकि परमेश्वर ने बहुत को मार डाला, बहुतों को मरवा डाला, बहुतों से बदला लिया, उन बातों से ये अंजील की बातें विरुद्ध होती हैं वा इनसे वे विरुद्ध हो जायेंगी, इससे क्या आया कि पुराना नियम झूठ हो जायेगा वा नया, दोनों सच नहीं

हो सकते।

मत्ती० प० ६ पृ० १४ पं० ९ इस कारण तुम इसी रीति से प्रार्थना करो हे हमारे पिता! जो स्वर्ग में है तेरा नाम पवित्र किया जाये, तेरा राज्य आवे, तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में वैसे पृथिवी पर होवे। हमारे प्रतिदिन की रोटी आज हमें दे। और जैसे हम अपने ऋणियों को क्षमा करते हैं, तूँ हमारे ऋणों को क्षमा कर। और हमें परीक्षा में न डाल, परन्तु बुरे से बचा, क्योंकि राज्य और पराक्रम और महातम सदा तेरे हैं आमीन। इस प्रकार की प्रार्थना का उपदेश अपने शिष्यों को ईसामसीह ने किया है।

इसमें विचारना चाहिये कि प्रतिदिन की रोटी का माँगना, ऋणों की क्षमा कराना परीक्षा में मत डाल ये बातें ईश्वर के विषय में शोभा नहीं देती, क्योंकि ईश्वर से छोटी बात का माँगना उचित नहीं। ईश्वर से तो ज्ञान, विद्यादिक गुण और मुक्ति का माँगना ही उचित है। और 'जैसे स्वर्ग में तेरा राज्य है वैसे पृथिवी पर होवे', यह बात अयुक्त है, क्योंकि परमेश्वर का राज्य सब सृष्टि में विराजमान है, इससे ऐसी बात कहनी उचित नहीं।

मत्ती० प० ७ पृ० १७ पं० १ दोष मत लगाओ कि तुम पर दोष लगाया जाये, क्योंकि जिस प्रकार से तुम दोष लगाते हो उसी प्रकार से तुम पर भी दोष लगाया जायेगा और जिस नाप से तुम नापते हो, उसी से तुम्हारे लिये नापा जायेगा

यह बात तो सच है, परन्तु ईसा मसीह सब का पाप लेता है, सबके बदले पापों का भोग करता है, वह बात इस बाते से विरुद्ध है अथवा यह बात उससे विरुद्ध होगी। परन्तु यह बात तो ठीक है। और वह बात कि 'ईसामसीह सब का पाप ले-लेता है' वह बात झूठ है।

मत्ती० प० ७ पृ० १८ पं० ३१ हरएक जो मुझे प्रभु-प्रभु कहता है स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करेगा, परन्तु वह जो मेरे पिता की, स्वर्ग में है इच्छा पर चलता है, बहुतेरे लोग उस दिन मुझसे कहेंगे कि हे प्रभु-प्रभु! क्या हमने तेरे नाम से भविष्यवाणियाँ नहीं किई और तेरे नाम से पिशाचों को क्या नहीं निकाला। और तेरे नाम से बहुतेरे आश्चर्य कर्म नहीं किये। तब



मैं उनसे कहूँगा कि मैंने तुझे कभी न जाना। हे कुकर्मियो! मुझसे दूर होओ। इसमें यह आया कि यसू अपने को प्रभु कहने का निषेध करते हैं और बहुत स्थानों में। जब शिष्यों ने हे प्रभु-प्रभु! और तूँ मसीह परमेश्वर का पुत्र और तूँ प्रभु है इसको सुनके, न उनको कहने से रोका और प्रसन्न भी भया।

इस बात से वह बात विरुद्ध हो गई अथवा उससे यह विरुद्ध हुई भविष्यद्वाणी। पिशाचों को निकालना, बहुत आश्चर्य कर्म उसके नाम से वैसा कर्म क्यों नहीं करता और होता है। इससे यह बात अयुक्त है। और कुकर्मियों को दूर रक्खेगा, अर्थात् सुकर्मियों को पास रक्खेगा, फिर वे अपने कर्मों का ही फल पाते हैं। फिर ईसाई कहते हैं कि यसू सभों का पाप ले चुका, लेता है और लेगा, यह बात झूठ हो गई।

म० प० ८ पृ० २० पं० ४ तब यसू ने उससे कहा देख किसी से मत कह। परन्तु जाके अपने तांईं याजक को देखा।

देखो कि प्रथम कहा कि किसी से मत कह और फिर अपने तांईं याजक को देखा यह पूर्वापर विरुद्ध है, क्योंकि जब याजक को देखावेगा तब प्रसिद्धि और कहना अवश्य हो जायेगा।

म० प० ८ पृ० २१ पं० १६ जब साँझ हुई तब बहुत से पिशाच ग्रस्तों को उस पास लाये और उसने वचन से आत्माओं को निकाला और सभों को जो रोगी थे चंगा किया।

यह बात लोगों ने पीछे से असम्भव और अयुक्त रच लिई है, क्योंकि प्रथम तो पिशाचों का मनुष्य के शरीर में प्रवेश करना, यही झूठ है। सभों को जो रोगी थे, चंगा किया, यह पिशाचों की बात से विरुद्ध, क्योंकि वे पिशाच ग्रस्त थे वा रोगी थे। और जो रोगी थे तो वचन से वा स्पर्श से कभी चंगे नहीं हो सकते, क्योंकि पथ्य और ओषधादिकों से रोगों की निवृत्ति होती है, यह परमेश्वर का किया नियम है इसको उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। जैसेकि आँख से देखना, सो कान आदिक से कभी नहीं हो सकेगा। और जो ईसाई इस बात को मानते हैं तो महाभारतादिकों में ऐसी-ऐसी असम्भव कथा बहुत लिखी हैं तथा जैन और मुसलमानों के

ग्रन्थ में भी बहुत असम्भव कथा लिखी हैं। ऐसी-ऐसी जैसे कि बृहस्पति का पुत्र कच को दैत्यों ने मारा और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके पक्षी, जानवर और मछलियों को खवा दिया और उसके शरीर का शाक बना के शुक्राचार्य को खवा दिया, तो भी शुक्राचार्य ने तीन वक्त उसको जिला दिया। और जब-जब देव और दैत्यों का युद्ध होता था, उसमें जितने दैत्य मर गये थे उनको तब-तब जियाया था। तुलसीकृत में वानर सब जी उठे अमृत की वृष्टि से, कश्यप ने बड़गद के वृक्ष और मनुष्य अग्नि में भस्म हो गये, उसने उनको जिला दिया इत्यादिक असम्भव कथाओं को ईसाई लोग क्यों नहीं मानते, क्योंकि ऐसा आश्चर्य कर्म यसू ने एक भी नहीं किया।

पं० २२ मुझको जाने दे कि पहिले अपने पिता को गाड़ूँ, परन्तु यसू ने उससे कहा मेरे पीछे चला आ और मृतकों को अपने मृतकों को गाड़ने दे।

यह बात बायबिल की आज्ञाओं से विरुद्ध है, क्योंकि अपने माता-पिताओं की सेवा कर, यसू इन माता-पिता की सेवाओं को छोड़ाता है प्रायः। और जो कहे कि परमेश्वर ही माता और पिता सबका है यों कहें तो भी युक्त नहीं, क्योंकि परमेश्वर तो सब जगत् का पिता और माता है, परन्तु गर्भवास से लेके बालकों के रक्षादिक उपाय मनुष्य माता और पितादिक करते हैं। उनका प्रत्युपकार सन्तानों को अवश्य ही करना चाहिये, नहीं तो कृतघ्न हो जाते हैं। और परमेश्वर पिता की सेवा भी सब को अवश्य करनी चाहिये। इससे स्पष्ट ही उपदेश करने वाला पुरुष उपदेश करे जिससे कि भ्रम किसी को न होवे।

म० प० ९ पृ० २२ पं० २८ और जब वह उस पार गिरगासी के देश में पहुँचा तो दो पिशाच ग्रस्त कब्रों से निकल के उसको मिले। वे ऐसे भयंकर थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जा सकता था।

पं० ३२ यदि तूँ हमें निकालता है तो उन सूवरों के झुण्ड में हमें बैठने दे। तब उसने उनसे कहा जाओ और वे निकल के सूवरों के झुण्ड में बैठे और देखो कि सूवरों का सारा झुण्ड कराड़े पर से समुद्र में जा गिरे और



जल में डूब मरे।

ऐसी-ऐसी असम्भव कथाओं को हम लोग कभी नहीं मान सकते, क्योंकि यह अत्यन्त अयुक्त और असम्भव है। लोगों ने कहानी-सी जोड़ लिई है।

म० प० १० पृ० २७ पं० २१ क्योंकि बोलने वाले तुम नहीं हो, परन्तु तुह्मारे पिता का आत्मा जो तुझे है वही बोलेगा। भाई भाई को और पिता पुत्र को मारे जाने के लिये पकड़वावेगा और लड़के अपने माता के विरुद्ध उठेंगे और उन्हें वध करवावेंगे और मेरे नाम के कारण सब लोग तुम से वैर करेंगे, पर जो अन्त स्थिर रहेगा, सो त्राण पावेगा। जब वे तुझे सतावें तुम दूसरे को भाग जाओ। मैं तुम से सच कहता हूँ कि जब लों मनुष्य का पुत्र न आवे, तब तुम इस्राईल के नगर में सर्वत्र न फिर चुकोगे। इसमें विचारना चाहिये कि तुममें ईश्वर का आत्मा बोलेगा यह बात अयुक्त है, क्योंकि ईश्वर का आत्मा क्यों किसी को पकड़वाने और मरवाने में विरुद्ध बोलेगा। और अन्त जो स्थिर रहेगा, सो त्राण पावेगा, यह बात अपने सम्प्रदाय की बढ़ाने के वास्ते यसू ने रच लिई है जिससे कि कोई सम्प्रदाय को न छोड़े, न बहकाये। ऐसे ही सब मजहब वाले अपने-अपने मजहब की बात को दृढ़ करते ही हैं। इसमें यसू ने क्या बड़ी बात किई है, परन्तु यसू में शान्त्यादिक गुण इस लेख से पाये जाते हैं।

पं० ३४ यह मत समझो कि भूमि पर मैं मिलाप करवाने को आया हूँ, मैं मिलाप करवाने को नहीं, किन्तु तलवार चलवाने को आया हूँ, क्योंकि मैं मनुष्य को उसके पिता से, और बेटी को उसकी माता से, और पतोह को उसकी सास से फूट करवाने आया हूँ।

देखो कि यह बात उनके हृदय की बाहर निकली है कि अपना मजहब को मैं बढ़ाऊँ। इसमें जो कोई कहे कि ईश्वर की तरफ लगाने के वास्ते यह वचन है तो भी यह युक्त नहीं, क्योंकि तलवार का चलाना और फूट का कराना और अपने में प्रीति बढ़ाने का उपदेश करना ये सब बात यसू ने अपने मतलब के वास्ते रच लिई हैं, क्योंकि विद्वान् पुरुष का उपदेश इस प्रकार का नहीं होता जोकि पूर्वापर विरुद्ध और सन्देह युक्त

होवे। और पवित्र आत्मा का भी ऐसा उपदेश कभी नहीं होता।

म० प० १५ पृ० ४६ पं० १८ परन्तु जो कुछ मुँह से निकलता है, सो मन में से बाहर आता है और वही मनुष्य को अपवित्र करता है, क्योंकि मन में से बुरी चिन्ता, हत्या, परस्त्री-गमन, व्यभिचार, चोरी, झूठी साक्षी, परमेश्वर की निन्दा निकलती है।

अच्छा इन बातों से विरुद्ध श्रेष्ठ चिन्तादिक भी मन से निकले तब तो मनुष्य अवश्य पवित्र हो जायेगा, सो अपने ही करने से यह बात ठीक है, परन्तु ईसाई लोग यसू को पाप लेने वाला और अन्तकाल में स्वर्ग में भी सहाय करने वाला मानते हैं, वह बात इससे विरुद्ध हो जायेगी। फिर अपनी बायबिल और अंजील पुस्तक से भी ठीक-ठीक विचार लें तो भी मजहब के आग्रह सब छूट जायें।

म० प० १९ पृ० ५९ पं० २४ फिर भी मैं तुम से कहता हूँ कि सूई के नांके से ऊँट का पैठना उससे सहज है कि एक धनवान् मनुष्य परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करे।

यह बात भी युक्त नहीं, क्योंकि दरिद्र ही परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करे और धनवान् नहीं ऐसा नियम कभी नहीं बन सकता, किन्तु जो कोई परमेश्वर को प्राप्त होने का कर्म करेगा, वही मिलेगा अन्य नहीं। इससे ऐसा यसू को कहना उचित नहीं था।

म० प० २० पृ० ९२ पं० २८ और जो कोई तुम में प्रधान हुआ चाहे, सो तुम्हारा दास होवे। इस रीति से मनुष्य का पुत्र भी इसलिये नहीं आया कि सेवा करावै, परन्तु किसे सेवा करे और बहुतेरों के कारण अपने प्राण को प्रायश्चित्त में देवें।

यह बात बायबिल और अंजील की बात से विरुद्ध है, क्योंकि जो जैसा बोलेगा, सो वैसा ही फल पावेगा, इससे यह बात विरुद्ध है। इससे यह पुस्तक ईश्वर वा विद्वान् पुरुष की बनाई नहीं मालूम पड़ती।

म० प० २१ पृ० ६५ पं० १९ तब वह मार्ग में एक गूलर के पेड़ को देख के उस पास आया और जब उस पर पत्तों को छोड़ कुछ न पाया तो कहा कि अब से कभी तुझ में फिर फल न लगे। यों ही गूलर का पेड़ सूख



गया।

देखो कि प्रथम तो यह व्यवहार ही अयुक्त और बेसमझ मनुष्य का है। वह गूलर का पेड़ जड़ था, वह जानता ही नहीं था कि यसू भूख के मारे मेरे पास मेरे फल खाने को आवेगा और उसको सामर्थ्य भी नहीं था कि उस वक्त फल को उत्पन्न कर ले और उसका अपराध भी नहीं कुछ ठहरता जिससे कि उसको स्राप लगे। यसू ने उसको बे-अपराध स्राप दिया, सो अन्याय किया। और इस बात से यह आया कि कभी-कभी यसू को गुस्सा भी आता था। और यह विचार भी इसने नहीं किया कि वृक्ष जड़ होता है उसको स्राप क्यों देना था।

पं० २२ और समुद्र में जा गिरे तो वैसा ही होगा और जो कुछ कि तुम प्रार्थना में विश्वास करके माँगोगे, सो पाओगे। अच्छा तो यसू विश्वास करके माँगता था कि सब मनुष्य ईश्वर और धर्म की ओर आ जायें, फिर सब मनुष्य उसके कहने से ईश्वर और धर्म की ओर क्यों नहीं आये। और उसको घात भी क्यों किया इससे यह बात अयुक्त है।

म० प० २२ पृ० ६८ पं० ४ फिर उसने दूर से दासों को यों कहके भेजा कि नेवल हरियों से कहो कि देखो मैंने अपना भोजन तैयार किया है मेरे बैल और मोटे-मोटे पशुओं से। [बैल और मोटे-मोटे पशुओं] को उस देश में उस वक्त मारते थे, क्योंकि इन को मारने से दूध, घी और आगे पशुओं की वृद्धि मारी जाती है। अब अंग्रेज लोग इस बात को क्यों नहीं विचारते कि पशुओं की स्त्री न मारी जाये। इस विचार से संसार को बहुत सुख पहुँचता है।

प० २२ पृ० ६९ पं० २४ हे गुरु! मूसा ने कहा कि जब कोई पुरुष निर्वंश होके मरे तो उसका भाई उसकी पत्नी से विवाह करे और अपने भाई के लिये वंश चलाये, सो हमारे सात भाई थे, सातवें लों किया।[१]

यह बात अच्छी है, क्योंकि वेदादिक सत्यशास्त्रों की है। इससे यह जाना गया कि वेदादिक शास्त्रों को पढ़के-सुनके कुछ-कुछ बात सब मजहब वालों ने ले लिई हैं, वे सब युक्त हैं। और जो-जो बात अपनी कल्पना से मजहब वालों ने लिखी हैं वे-वे सब अयुक्त हैं। और यह भी

मालूम होता है कि सब मनुष्य प्रथम वेद रीति से ही चलते थे। तब सब मनुष्यों में धर्म, विद्या और परस्पर प्रीति भी थी। जब से नाना प्रकार के मतवाद चले हैं, तब से मनुष्यों में विरोध के बढ़ने से मनुष्य दुःखी अधिक-अधिक होते-होते जाते हैं। इससे सब मनुष्यों को यह करना उचित है कि विद्या और कानून के वेदादिक संस्कृत के सनातन जो पुस्तक, उनकी रीति से चलने से सब मनुष्यों को सुख-लाभ अत्यन्त हो सकता है, क्योंकि वेदादिक पुस्तक किसी मजहब के नहीं हैं, किन्तु सनातन विद्या पुस्तक हैं। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सनातन ऋषि-मुनियों की रीति से वेदादिकों को पढ़ के सब कार्य अपना सिद्ध करें और ठीक-ठीक सब पदार्थों का निश्चय मनुष्यों को हो जायगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

म० प० २२ पृ० ७० पं० ३९ बड़ी आज्ञा यही है और दूसरी उसकी नाई है कि तूँ अपने परोसी को अपने समान प्यार कर।

यह अच्छी बात है कि सब प्रकार से परमेश्वर में प्यार करना, परन्तु दूसरी आज्ञा में निर्भ्रम अर्थ नहीं मालूम देता, क्योंकि अपने परोसी से प्यार करना। फिर परोसी न हो तो क्या उससे वैर करेगा। इससे स्पष्ट करके आज्ञा देनी चाहिये, जिससे कि किसी को भ्रम न हो।

म० प० २३ पृ० ७२ पं० १ तब यसू लोगों से और अपने शिष्यों से कहने लगा अध्यापक और फरीसी लोग मूसा के आसन पर बैठे हैं, इसलिये सब कुछ जो तुझे मानने को कहें, सो मानो और पालन करो।

अच्छा यसू मूसा की व्यवस्था को मानता है फिर आप ही कहीं-कहीं क्यों विरोध करता है, जैसे कि याकूब आदिक को माता-पिता की सेवा से छोड़ा के अपने साथ लगा लिया। और भी बहुत जगह में मूसा की व्यवस्था से विरोध है जैसे कि वेदि रच के होम का करना। यसू ने विलक्षण-विलक्षण उपदेश किया।

म० प० २६ पृ० ८३ पं० १४ तब उन बारहों में से एक ने जिसका नाम यहूदाह इसकरियत था, सो प्रधान याजकों के पास जाके कहा यदि मैं उसे तुम्हारे हाथ पकड़वा दूँ तो तुम मुझे क्या देओगे। उन्होंने उसे ३० तीस रुपैये देने को ठहराया।



देखो कि यसू ने उपदेश किया था कि जो विश्वास से इच्छा करोगे, सो हो जायेगा। फिर यसू की ही इच्छा थी कि सब लोग विश्वास परमेश्वर और धर्म में करें, परन्तु उसका शिष्य भी यथावत् विश्वासी न हुआ। इससे क्या आया कि परीक्षा और ज्ञानपूर्वक जो विश्वास होता है, सो सत्य ही होगा अन्यथा विश्वास से मनुष्य को दुःख ही होता है, सुख नहीं।

म० प० २६ पृ० ८५ पं० २६ जब वे भोजन कर रहे थे, तब यसू ने रोटी ली और धन्यवाद करके तोड़ी और शिष्यों को देके कहा लेओ खाओ, यह मेरी देह है, और उसने कटोरा भी लिया और धन्य मानके उन्हें दिया, और कहा तुम सब इससे पीयो, क्योंकि यह मेरा लोहू है, अर्थात् नये नियम का लोहू जो बहुतेरों को पापमोचन के लिए बहाया जाताहै।

यह बात अत्युक्त है, क्योंकि रोटी और दाखरस देह और लोहू कभी नहीं हो सकता। और ऐसा उपदेश भी उसको नहीं करना था, क्योंकि प्रसिद्ध और कोमल वाणी से उपदेश करना उचित है। किसी का पाप वा पुण्य कोई भोग नहीं कर सकता। जो करता, सो भोगता है। और मूसा की व्यवस्था में ऐसी बात नहीं है। इससे यह बात अयुक्त है।

म० प० २६ पृ० ८६ पं० ३९ तुम यहाँ ठहरो और मेरे संग जागते रहो और वह थोड़ा आगे बढ़ के मुँह बल गिरा और यह कह के प्रार्थना किई कि हे मेरे पिता! यदि हो सके तो यह कटोरा मुझ से टल जाये।

देखो कि यसू को अपने बचने की इच्छा थी तब तो ऐसी प्रार्थना किई, परन्तु प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई। वह भविष्यत् जानता तो ऐसी प्रार्थना नहीं करता, क्योंकि जो होने वाला था उसको जानता, फिर इस वास्ते प्रार्थना ही नहीं करता। इससे यह मालूम पड़ा कि यसू भविष्यत् को ठीक-ठीक नहीं जानता था। कुछ अपनी बुद्धि से अनुमान करके कह देता था।

म० प० २६ पृ० ८८ पं० ६३ उठकर उससे कहा क्या तूँ कुछ उत्तर

नहीं देता है। ये तुझ पर क्या-क्या साक्षी देते हैं, परन्तु यसू चुपका रहा। तब महा याजक ने उत्तर देके उससे कहा मैं तुझे जीवते परमेश्वर की किरिया देता हूँ कि जो तूँ मसीह परमेश्वर का पुत्र है तो हमसे कह। यसू उससे बोला हाँ वह जो तूँने कहा है।

इसमें विचारना चाहिये कि यसू को उस वक्त चुपका नहीं रहना था, किन्तु सत्य-सत्य कह देना था। और हाँ मैं परमेश्वर का पुत्र हूँ यह भी प्रमाण विरुद्ध है, क्योंकि परमेश्वर को पुत्रोत्पन्न करने का कुछ आवश्यक नहीं, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है और सब संसार ही परमेश्वर का पुत्र है। केवल एक यसूमसीह पुत्र नहीं। इससे यह बात लोगों ने अपना मजहब बढ़ाने के वास्ते बना लिई है कि यसू परमेश्वर का पुत्र है।

म० प० २६ पृ० ८८ पं ६६ अब क्या विचार करते हो। उन्होंने उत्तर देके कहा यह वध होने के योग्य है। तब उन्होंने उसके मुँह पर थूका और उसको घूँसे मारे औरों ने थपेड़े मारे। और हे मसीह! हम से भविष्यद्वाणी बोल कि किसने तुझे मारा।

वह बात यसू पर उन्होंने बुरी किई, क्योंकि यसू का अपराध नहीं था, परन्तु देखो कि मजहब ऐसे बुरे हैं कि मिथ्या आग्रह से धर्मात्माओं को दु:ख देना और मारना होता है, इससे बुद्धिमान् लोगों को किसी मजहब में फसना उचित नहीं, किन्तु सत्य को मानना और असत्य को न मानना यही उचित है अन्यथा नहीं।

म० पृ० ८९ पं० ७५ और तुरन्त कुक्कुट बोला तब पथरस ने यसू के वचन को जो उसने कहा था कि कुक्कुट के बोलने से पहिले तूँ तीन वार मुझसे मुकर जायेगा, सो चेत किया और वह बाहर जाके बिउक-बिउक रोया।

देखो कि बहुतों के रोगों को छोड़ा दिया, परन्तु अपने निज शिष्य को भय और झूठ बोलना रोग से नहीं छोड़ाया? इससे रोग का छोड़ाना भी निश्चित नहीं रहा।

म० प० २७ पृ० ८९ पं० ५ तब वह रुपैयों को मन्दिर में फेंक के चला गया और जाके अपने को फाँसी दिई।



देखो कि यह भी यसू का शिष्य था, परन्तु उसका लोभ और क्रोध नहीं छूटा था जिससे कि आत्मघात यहूदाह ने किया ऐसा करना उसको उचित नहीं था कि यसू को पकड़ावे और फिर अपने आत्मघात करे।

म० प० २७ पृ० ९१ पं० २५ तब सारे लोगों ने उत्तर देके कहा उसका लोहू हम पर और हमारे सन्तानों पर होवै। तब उसने वरव्वा को उनके लिये छोड़ दिया और यसू को कोड़े मार के क्रूस पर चढ़ाने के लिये सौंप दिया। तब अध्यक्ष के सिपाहियों ने यसू को अध्यक्ष की कहचरी में ले जाके सारा जथा उस पास एकट्ठा किया और उनोंने उसका वस्त्र उतार के उसे लाल वस्त्र पहिराया और कांटों का मुकुट गूँध के उसके सिर पर रक्खा। और उसके दहिने हाथ में नरकट दिया और उसके आगे घुटने टेके। और ठट्ठा करके यह कहा कि हे यहूदियों के राजा! प्रणाम। और उन्होंने उस पर थूँका और वह नरकट लेके उसके सिर पर मारा। और जब वे उसकी ठट्ठा कर चुके, तब उस लाल वस्त्र को उतार कर फिर उसीका वस्त्र उसे पहिराया और उसे क्रूस पर चढ़ाने को ले गये।

पं० ३४ तब उन्होंने सिर्के में पित्त मिला के उसे पीने को दिया और जब चीखा, तो पीने न चाहा, तब उन्होंने उसको क्रूस पर चढ़ाया और चिट्ठी डाल के उसके वस्त्र बाँट लिये और वहाँ बैठ के उन्होंने उसका पहिरा दिया और उसका दोष पत्र लिख के कि यह यसू यहूदियों का राजा है उसे उसके सिर पर लगाया। तब दो डाकू भी एक उसके दहिने हाथ और दूसरा बाँये हाथ उसके संग क्रूसों पर चढ़ाये गये। और जो उधर से आते-जाते थे, सो सिर हिला के उसकी निन्दा करते और कहते थे तूँ जो मन्दिर का ढ़ाने वाला फिर तीन दिन में जो बनाने वाला है आपको बचा। जो तूँ परमेश्वर का पुत्र है तो क्रूस पर से उतर आ। इसी रीति से प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों और प्राचीनों के संग यह कहके उसे ठट्ठों में उड़ाया कि उसने औरों को बचाया, आपको बचा नहीं सकता है। जो वह इस्राईल का राजा है, तो अब क्रूस पर से उतर आवै तो हम उस पर विश्वास लावेंगे। उसने परमेश्वर पर भरोसा रक्खा था जो वह उसका प्यारा है तो अब उसको छोड़ावै, क्योंकि उसने कहा था मैं परमेश्वर का

पुत्र हूँ। जो डाकू उसके संग भी क्रूस पर चढ़ाये गये थे, सो इसी प्रकार से उसे धिक्कारते थे। तब दोपहर से तीसरे पहर लों उस समस्त देश में अन्धकार छा गया। और तीसरे पहर के समय में यसू ने बड़े शब्द से चिल्ला के कहा एली एली लामा सबक्तनी, अर्थात् हे मेरे परमेश्वर! हे परमेश्वर! तूँने क्यों मुझे त्यागा है। तब यसू ने फिर बड़े शब्द से चिल्लाया और प्राण त्यागा।

यह काम यहूदियों ने यसू के विषय में बहुत बुरा किया, क्योंकि यसू अच्छा आदमी था। उसको इस प्रकार से मारना और दुःख देना यह अच्छे पुरुषों का काम नहीं है, परन्तु मजहब में फसे पुरुषों की ऐसी भ्रष्ट बुद्धि होती है कि थोड़ा-सा अपने मजहब से विरुद्ध कोई कहे तो उसके प्राण तक ले-लेते हैं जैसे कि यसूमसीह को अत्यन्त दुःख देके यहूदियों ने मार डाला।

म० प० २८ पृ० ९५ पं० २ और दूसरी मरियम कब्र को देखने आई और देखो बड़ा भूडोल हुआ, क्योंकि प्रभु का दूत स्वर्ग से उतरा और आके उस पत्थर को कब्र के मुँह पर से ढुलका के उस पर बैठ गया।

यह बात असम्भव है, क्योंकि ईश्वर के दूत का आना, उसकी बातें मनुष्यों से होनी, ये सब बातें अयुक्त रच ली हैं।

पं० ७ और तुरन्त जाओ और उसके शिष्यों से कहो कि वह मृतकों में से जी उठा है।

पं० ९ देखो यसू उन्हें आ मिला और बोला कि कल्याण हो और उन्होंने पास आके उसके चरण पकड़े, उसको दण्डवत् किई, तब यसू ने उनसे कहा मत डरो। जाके मेरे भाइयों से कहो कि गलील को जायें और वे मुझे वहाँ देखेंगे। ये सब बातें बनावट की हैं, क्योंकि ऐसी बात कभी नहीं हो सकती मरा पुरुष जी के मनुष्यों से बातें करें। ये सब बातें प्रमाण विरुद्ध और असम्भव हैं।

म० प० २८ पृ० ९६ पं० १७ यसू ने उन्हें ठहराया तथा गये और उसे देख के उसे दण्डवत् किई, परन्तु कितने दुवधे में रहे। यसू ने पास आकर उनसे कहा स्वर्ग और पृथिवी पर सारा अधिकार मुझे दिया गया है,



इसलिये तुम जाओ और सब देशों के लोगों को पिता और पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिसमा देके शिष्य करो। और जो बातें कि मैंने तुह्में आज्ञा किई है उन सभों को पालन करने को उन्हें सिखलाओ। और देखो मैं जगत् के अन्तलों सदा तुम्हारे संग हूँ आमीन।

ये बातें प्रमाण विरुद्ध हैं। और जो स्वर्ग और पृथिवी पर यसू को अधिकार ईश्वर ने दिया होता तो एक क्षण में सब जगत् के मनुष्य यसू पर विश्वास ले आते, सो आज तक वह बात नहीं भई, क्योंकि ईश्वर तो सत्य संकल्प है, जिस वक्त वह संकल्प करता है, उसी वक्त वह बात हो जाती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। इससे वह बात मानने योग्य नहीं। एक ईश्वर जोकि अद्वितीय है उसमें तीन भेद करना अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। ऐसी बातों से सर्वशक्तिमत्त्व ईश्वर का नष्ट हो जाता है। इससे यह बात भी मानने के योग्य नहीं। और यसू का अभिप्राय भी मालूम हो गया जो अपने मजहब बढ़ाने का था, क्योंकि 'सब मनुष्यों को शिष्य करो', इस बात के कहने से। जो उसको मजहब अपने बढ़ाने की इच्छा न होती तो ऐसी-ऐसी बातें यसू न रचता। इसी प्रकार से बहुत लोगों ने अपना-अपना मजहब रच के लोगों में भ्रम और विरोध मचा दिया है। इन बातों से मनुष्यों की हानि होती है, क्योंकि जहाँ विरोध होता है, वहाँ सुख नहीं होता। इससे सब मनुष्यों को यह करना उचित है कि मनुष्यों में परस्पर प्रीति, विद्या और धर्म तथा गुण ग्रहण होवे और यह जो सत्य-सत्य ईश्वर की आज्ञा है कि सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य ही करना तथा असत्य न मानना, न बोलना और न करना। इसी से सब मनुष्यों को सुख और कल्याण होता है अन्यथा नहीं, परन्तु सत्य और असत्य को प्रत्यक्षादिक आठ प्रमाणों से ठीक-ठीक निश्चय अवश्य मनुष्यों को करना उचित है। प्रत्यक्षादिक आठ प्रमाणों को जानना, अपने आत्मा की पवित्रता, सुविचार, सत्पुरुषों का संग, वेदादिक सत्य-शास्त्रों का पठन, परमेश्वर में विश्वास उसकी उपासना और पक्षपातों को छोड़ना इन से प्रत्यक्षादिक आठ प्रमाणों को ठीक-ठीक मनुष्यों को जानना आवश्यक है। फिर इन्हों से पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त सब

पदार्थों को ठीक-ठीक ज्ञान होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं। यही मार्ग सब मनुष्यों को इस लोक का सुख और मुक्ति होने का है, अन्य कोई नहीं ऐसा निश्चित है। सो सज्जन लोग विचार लेवें, विचार के इसी का ही निश्चय करना योग्य है अन्यथा नहीं।

यह मत्ती रचित अंजील के विषय में लिखा गया। इसके आगे मर्कुस रचित के विषय में लिखा जाता है—

म० प० २ पृ० ९८ पं० ११ मैं तुझसे कहता हूँ उठ और अपना खटोला उठा के अपने घर को जा, जो अर्द्धाङ्गी रोगी को वचन से ही यसू ने चङ्गा कर दिया।

तो जगत् के अन्तलों अपने शिष्यों के साथ रहता है फिर वे भी रोगियों को चङ्गे इस वक्त क्यों नहीं करते। इससे यह बात अयुक्त है।

प० २ पृ० १०१ पं० ५ वह अर्द्धाङ्गी पड़ा था उतार दिया। यसू ने उनका विश्वास देख के उस अर्द्धाङ्गी से कहा हे पुत्र! तेरे पाप क्षमा किये गये हैं।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि पाप वा पुण्य भोगने ही होते हैं, यह परमेश्वर की आज्ञा है। परमेश्वर न्यायकारी, अर्थात् पक्षपात रहित है, सो जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है अन्यथा नहीं।

म० प० ३ पृ० १०४ पं० १० न हो कि लोग मुझे दबा लें।

देखो कि यसू जो भविष्यद् बातें को जानता तो ऐसी शंका क्यों करता। इससे भविष्यत् जानने में भी यसू के विषय में सन्देह होता है।

म० प० ३ पृ० १०५ पं० २८ और सब निन्दा कि जिससे मनुष्यों के सन्तान परमेश्वर की निन्दा करते हैं, सो उनको क्षमा किई जायगी, परन्तु जो कोई पवित्र आत्मा की निन्दा करता है, सो कभी क्षमा न किया जायगा।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि निन्दा नाम है झूठ बोलने का, सो किसी की करे उसकी क्षमा कभी नहीं हो सकती। और जो परमेश्वर की निन्दा करेगा उसकी क्षमा कभी न होगी।

म० प० ७ पृ० १२० पं० २३ ये सब बुरी बातें भीतर से निकलती और मनुष्य को अपवित्र करती हैं।



यह बात ठीक है, परन्तु अच्छी चिन्ता आदिक भी मन से बाहर निकलती हैं वे मनुष्य को पवित्र कर देती है। और बुरी चिन्ता आदिक मनुष्य को अपवित्र करती हैं, यह प्रमाण युक्त बात है, परन्तु पापों की क्षमा करना तो इससे झूठ हो गया। फिर ईसाइयों को पापों की क्षमा कराना अपनी पुस्तक के प्रमाण से विरुद्ध हो गया।

म० प० ११ पृ० १३५ पं० ५ और जो लोग वहाँ खड़े थे उनमें से कितनों ने उनसे कहा तुम क्या करते हो जो [गधे के] बच्चे को खोतते हो। उन्होंने यसू की आज्ञा के समान उनसे कहा तब उन्होंने उनको जाने दिया। और वे उस बच्चे को यसू पास लाये और अपने वस्त्र उस पर डाले और वह उस पर बैठा और बहुत लोगों ने अपने वस्त्र मार्ग में बिछाये।

देखो कि यह बालकों की जैसी क्रीडा यसू ने किई गधे के बच्चे पर चढ़ के घूमा, यह भी जान पड़ता है कि उस वक्त गधे की सवारी उस देश में करते थे। और यसू राजा नहीं था जिससे कि उसकी आज्ञा उन्होंने मान लिई, परन्तु यसू की जान-पहिचान होगी, इससे उसके स्वामी ने गधे का बच्चा सवारी के वास्ते भेज दिया।

म० प० १२ पृ० १४० पं० २५ तुम धर्मग्रन्थ और न परमेश्वर के पराक्रम को जानते हो, क्योंकि जब वे मृतकों में से जी उठेंगे तब तो न विवाह करेंगे और न विवाह दिये जायेंगे, परन्तु स्वर्गीय दूतों की नांई होंगे।

यह बात युक्त नहीं, क्योंकि परमेश्वर के घर में अन्धकार नहीं है जो कि न्याय करने में विलम्ब होय। अब के मरे का न्याय प्रलय तक जो न होना, सो अत्यन्त अयुक्त हैं, क्योंकि जैसे किसी को राजा नजर कैद वा दौरे में रख छोड़े और उसके न्याय का हुकुम न सुनावै तो उस जीव को अत्यन्त दुःख होता है और उसके सम्बन्धी भी दुःख और सन्देह में रहते हैं, न जाने क्या न्याय होगा, सो परमेश्वर ने प्रथम ही न्याय कर रक्खा है कि जो जैसा करे, वह वैसा ही पावे, सो यथावत् होता चला जाता है। और यह भी बात आई कि भाई की स्त्री विधवा को विवाह करके दूसरा भाई उसके सन्तानों के वास्ते अपने पास रखता था, उसका नाम नियोग है, सो उस देश में प्रथम वेदादिकों की रीति से नियोग का व्यवहार था,

क्योंकि सातों ने उससे विवाह किया। इस अंजील वचन से।

पं० २६ परमेश्वर ने उससे कहा मैं अबिरहाम का परमेश्वर इजहाक का परमेश्वर और याकूब का परमेश्वर हूँ।

परमेश्वर तो मृतकों का नहीं, परन्तु जीवतों का परमेश्वर है, सो तुम बड़ी भूल करते हो, इससे यह बात युक्त नहीं, क्योंकि तीनों का परमेश्वर नहीं बन सकता, किन्तु चराचर जगत् का एक अद्वितीय वह परमेश्वर है। इससे ऐसी बात को कहानी-सी मानना चाहिये।

म० प० १३ पृ० १४२ पं० ६ चौकस रहो कि कोई तुम्हें न भरमावे, क्योंकि बहुत लोग मेरा नाम लेके आवेंगे और कहेंगे कि मैं वही हूँ और बहुतों को भरमावेंगे।

यह बात भी युक्त नहीं, क्योंकि आजतक यसूमसीह का नाम लेके एक भी कोई नहीं आया। इसके आगे कोई उसका नाम लेके आवेगा वा नहीं यह ठीक मालूम नहीं, परन्तु आजतक नहीं आया। इससे मालूम पड़ता है आगे भी नहीं आवेगा।

पं० ११ परन्तु जो कुछ तुम्हें उसी घड़ी दिया जाय वही बोलो, क्योंकि तुम नहीं, परन्तु पवित्र आत्मा बोलने वाला है। और भाई को भाई पिता पुत्र को मरवा डालने के लिये पग उठावेगा। यह बात भी युक्त नहीं, क्योंकि आगे से ही सोच और विचार मनुष्यों को करना उचित है। पीछे काम करके विचार करना निष्फल है, क्योंकि वह विना किया तो होता ही नहीं। फिर भी जिस कर्म को करने वाला है, उसी का प्रथम ही विचार करना अवश्य है और पीछे उस काम को करना। और जो पवित्र आत्मा बोलने वाला है, तो हम लोगों को न पाप और न पुण्य होना चाहिये, क्योंकि जो बोलता है उसी को ही होना चाहिये। और जो पवित्र आत्मा है, सो भाई-भाई आदिक के विरोध और पकड़वाने तथा मरवाने के विषय में क्यों बोलेगा और जो बोलेगा तो पवित्र आत्मा न रहेगा। इससे ऐसी बातें जीवों की होती हैं, ईश्वर की नहीं।

म० प० १३ पृ० १४४ पं० २५ और चन्द्रमा अपनी जोति न देगा और तारे आकाश से गिरेंगे और आकाश की दृढ़ताएँ डिग जांयगी और तब



लोग मनुष्य के पुत्र को बड़े पराक्रम और ऐश्वर्य से मेघों पर आते देखेंगे।

यह बात युक्त नहीं। तारे सब लोक हैं, वे कभी न गिरते हैं और गिर के जांयगे कहाँ, क्योंकि नीचे वा ऊपर, आकाश के बीच में, कहीं नहीं, जोकि वे आकाश से नीचे गिरें। और आकाश की दृढ़ता कैसे डिगेगी, क्योंकि आकाश अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है उसका डिगना असम्भव और अयुक्त है। तारे गिर जायेंगे और आकाश डिग जायेगा फिर मेघ क्या चीज है जोकि रह जाय और उसके ऊपर मनुष्य के पुत्र को उस वक्त आना नहीं बनता और देखने वाला भी कोई नहीं रह सकता, इससे यह बात प्रमाण विरुद्ध है।

प० १६ पृ० १५६ पं० १७ और विश्वास लाने वालों के सङ्ग ये चिह्न प्रगट होंगे, वे मेरे नाम से पिशाचों को निकालेंगे। वे नई-नई भाषा बोलेंगे, वे साँपों को उठा लेंगे और जो कोई प्राणहारी वस्तु पीवैं तो उन्हें उससे कुछ हानि न होगी। वे रोगियों पर हाथ रक्खेंगे और वे चङ्गे हो जांयगे।

अब यसू के मत में लाखों पुरुष हैं, परन्तु ये चिह्न उन्हों में नहीं देखे जाते हैं। इन्हों के विश्वास में जो फरक होगा तो इनका करना व्यर्थ है। और मत का धारण करना भी व्यर्थ है। और जो चिह्नों के देखने की बात मिथ्या हो तो यसू की और अंजील की भी बात मिथ्या हो जायेगी। इससे यह बात युक्त नहीं।

## लूक रचित

प० १ पृ० १५७ और याजकता की रीति के समान उसकी चिट्ठी निकली कि प्रभु के मन्दिर के भीतर जाके सुगन्ध जलावे। और लोगों की सारी मण्डली सुगन्ध जलाने के समय बाहर होके प्रार्थना कर रही थी। तब प्रभु का दूत सुगन्ध वेदी की दहिनी ओर खड़ा हुआ उसे दिखाई दिया। जकरियाह उसे देख कर घबराया और बहुत डर गया, परन्तु दूत ने उससे कहा हे जकरियाह! मत डर, क्योंकि तेरी प्रार्थना सुनी गई और तेरी पत्नी इलिसबा तेरे लिये पुत्र जनेगी और तूँ उसका नाम यूहन्ना रखना। तुझे आनन्द और मङ्गल होगा। और बहुत लोग उसके जन्म के कारण से मगन होंगे, क्योंकि वह प्रभु की दृष्टि में बड़ा होगा। और दाखरस और

मदिरा नहीं पीयेगा और वह अपनी माता के पेट-पेट में ही पवित्र आत्मा से भर जायगा।

इस अंजील के प्रमाण से भी होम सनातन सिद्ध आता है। प्रभु का दूत दहिनी ओर खड़ा हुआ, यह बात असम्भव है। पत्नी को पुत्र का आशीर्वाद दूत द्वारा आना भी असम्भव है। इससे ऐसी बात मानने के योग्य नहीं।

लू० प० १ पृ० १५९ पं० ३२ और एक पुत्र जनेगी उसका नाम यसू रक्खेगी। वह महान् होगा और अति महान् परमेश्वर का पुत्र कहावेगा। और प्रभु परमेश्वर उसे कि पिता दाऊद का सिंहासन उसे देगा।

यह बात अपने मजहव के वास्ते लोगों ने रच लिई है, जिससे कि हमारा सम्प्रदाय बढ़े, क्योंकि मेघों पर चढ़ के मनुष्य का पुत्र आवेगा, उसको दाऊद का सिंहासन देगा, यह पूर्वापर विरुद्ध। और वह मर गया राज्य करने को नहीं आ सकता और जो आवेगा तो अनेक जन्म सिद्ध हो गये। फिर इनके मत में एक ही जन्म मानते हैं यह बात विरुद्ध हो गई, क्योंकि बे-शरीर धारण से राज सिंहासन पर नहीं बैठ सकता।

लू० प० ४ पृ० १७१ पं० २ और आत्मा से वन में पहुँचाया गया और चालीस दिन लों वह शैतान से परीक्षा किया गया। उन्हीं दिनों में उसने कुछ नहीं खाया और उनके बीत जाने के पीछे वह भूखा हुआ।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि पवित्र आत्मा उसके हृदय की बात और भविष्यत् नहीं जानता था क्या, जोकि परीक्षा किया। और चालीस दिन तक आदमी खाये विना नहीं रह सकता और पीछे वह भूखा हुआ। ये सब बातें लोगों ने जोड़ लिई हैं असम्भव और अयुक्त।

लू० प० ११ पृ० २०३ पं० १ और ऐसा हुआ कि किसी स्थान में प्रार्थना करता था। जब कर चुका, तब उसके शिष्यों में से एक ने उससे कहा हे प्रभु! जैसा यूहन्ना ने अपने शिष्यों को प्रार्थना करना सिखाया वैसा हम को भी सिखा। उसने उन्हें कहा जब तुम प्रार्थना करो तब कहो हे हमारे पिता! जो स्वर्ग में है तेरा नाम पवित्र किया जाय, तेरा राज्य आवे, तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में, वैसे पृथिवी पर होवे। हमारे दिनभर की रोटी



प्रतिदिन हमें दे और हमारे पापों को क्षमा कर कि हम भी हरएक को जो हमारा ऋणी है क्षमा करते हैं और हमें परीक्षा में मत डाल, परन्तु बुरे से बचा। यह ईसाईयों का मूल मन्त्र है और यसूमसीह का उपदेश।

इसमें विचारना चाहिये कि स्वर्ग में उनका पिता होगा तो शरीरधारी ही होगा और व्यापक नहीं हो सकेगा। तेरा नाम पवित्र किया जाये यह भी युक्त नहीं, क्योंकि पवित्र वा अपवित्र तो नामी होता है। और जो वह ईश्वर होता तो सर्वत्र उसका राज्य होगा फिर क्या कहना कि पृथिवी पर तेरा राज्य होवे और तेरी इच्छा पृथिवी पर होवे। वह न्यायकारी है इससे सब लोगों को पर उसकी इच्छा एक-सी है, जो कोई कहे कि जैसी परमेश्वर की आज्ञा है वैसी पृथिवी पर होवे यह ठीक है, परन्तु परमेश्वर ने सब जीव स्वतन्त्र रक्खे हैं। इससे स्वतन्त्रता से अपना-अपना सब काम करते हैं। और जो परमेश्वर की ऐसी इच्छा होय तो उसी वक्त ऐसा ही हो जाय, क्योंकि उसका संकल्प सत्य है। प्रतिदिन की रोटी ईश्वर से माँगनी यह बात भी योग्य नहीं, क्योंकि यह बात तो मनुष्यों से भी हो सकती है। परमेश्वर से मुक्ति आदिक पदार्थों की प्रार्थना करनी चाहिये जो कि अन्यत्र नहीं प्राप्त होती इससे। और पापों को क्षमा कराना यह भी युक्त नहीं, क्योंकि वह न्यायकारी है, किसी का पक्षपात कभी नहीं करता। और जो क्षमा किया जाये, तो पाप करने से कोई भय ही न करे, फिर संसार में पाप ही बढ़ जायेगा। हमें परीक्षा में न डाल, परन्तु बुरे से बचा। यह बात अच्छी है, क्योंकि ऐसी प्रार्थना करने से मनुष्य को अभिमान नहीं होता, परन्तु केवल प्रार्थना ही करता जाये और पापों से न बचे, तो कुछ नहीं हो सकता, किन्तु प्रार्थना अत्यन्त करता जाये और अपने आप पापों से भी बचता जाये, वह पुरुष त्राण पाता है। इससे क्या जाना जाता है कि जैसी प्रार्थना और सत्य उपदेश वेदादिक संस्कृत ग्रन्थों में है, उसके सामने यह बात कुछ भी नहीं। इससे वेदादिक की रीति से प्रार्थना और उपदेशादिक सब मनुष्यों को ग्रहण करना अत्यन्त उचित है।

लू० प० १२ पृ० २१२ पं० ५१ मैं पृथिवी पर आग लगाने आया हूँ और मैं क्या ही चाहता हूँ कि लग चुकी होती, परन्तु मुझे एक बपतिसमा

पाना है और जब लों वह पूरा न हो ले, तब लों मैं किसी संकेत में हूँ। क्या तुम समझते हो कि पृथिवी पर मैं मेल करवाने आया हूँ मैं तुम से कहता हूँ कि नहीं, परन्तु फूट करने को, क्योंकि अब से लेके एक घर के पाँच मनुष्यों में से दो के विरुद्ध तीन होंगे और तीन के विरुद्ध दो होंगे। पुत्र के विरुद्ध पिता और पिता के विरुद्ध पुत्र, पुत्री के विरुद्ध माता और माता के विरुद्ध पुत्री, बहू के विरुद्ध सास और सास के विरुद्ध बहू होगी।

देखो कि यह बात अच्छे पुरुषों की नहीं, क्योंकि आगी बुझाना, फूट का नहीं कराना, झगड़ा का ही छोड़ाना, अच्छे पुरुष का यह काम है। 'अब से लेके एक घर में परस्पर विरोध होगा' यह बात अयुक्त है, क्योंकि अब भी बहुत घरों में सम्मति है और बहुतों में विरोध भी है। इससे यह बात मानने योग्य नहीं।

लू० प० १६ पृ० २२२ पं० ३० और तूँने मुझे एक बकरी का बच्चा भी कभी न दिया। फिर मैं अपने मित्रों के सङ्ग आनन्द करता। फिर जब यह तेरा पुत्र आया कि जिसने वेश्याओं की सङ्गत में तेरा उपजीवन उड़ा दिया है, तब तूँने उसके लिये वह मोटा बछड़ा मारा। जो बिगाड़ करके फिर आ मिले और जो कभी बिगाड़ न करे, किन्तु मिला ही रहे, इन दोनों में से जो सदा अनुकूल है, उस पर प्रीति अधिक होती है, दूसरे पर थोड़ी।

इससे यह बात युक्त नहीं। बछड़ा मारा इससे यह आया कि पशुओं में से नरों को मारना अंजील की रीति से आता है जोकि मांसाहारी होय उसको भी। इससे जो आज-काल पशुओं की स्त्रियों को भी मारा जाता है यह बात उचित नहीं, क्योंकि इसके होने से दुग्धादिक श्रेष्ठ पदार्थ और आगे पशुओं की उत्पत्ति भी नष्ट हो जाती है इससे ऐसी बात करना किसी को उचित नहीं।

## यूहन्ना रचित

प० ३ पृ० २६२ पं० ७ जो शरीर से उत्पन्न हुआ है, सो शरीर है। और जो आत्मा से उत्पन्न हुआ है, सो आत्मा है। मैंने जो तुझसे कहा कि तुम्हें फिर के उत्पन्न होना चाहिये। तूँ इस पर अचम्भा मत कर। पवन जिधर



चाहती है, उधर चलती है। और तूँ उसका शब्द सुनता है, परन्तु वह कहाँ से आती है और कहाँ को जाती है, सो तूँ नहीं जानता है। जो कोई आत्मा से उत्पन्न हुआ है, सो वैसा ही है। देखो कि ईश्वर के आत्मा से जो आत्मा उत्पन्न होगा, तो अज्ञानादिक जितने जीवात्मा में दोष हैं वे सब ईश्वर में ही हो जांयगे। फिर ईश्वर भी दोष युक्त हो जायगा। जो वेदान्तियों का मत है कि ब्रह्म ही जीव है, सो ही आ जायेगा। वह मत युक्त नहीं। और इससे यह भी आता है कि अनेक जन्म जीव के होते हैं।

यू० प० १० पृ० २९२ पं० ८ यसू ने फिर उनसे कहा कि मैं तुम से सच-सच कहता हूँ भेड़ों का द्वार मैं हूँ। सब जितने मुझसे आगे आये, सो चोर और बटमार हैं, परन्तु भेड़ों ने उनकी न सुनी, वह द्वार मैं हूँ। यदि कोई मेरे द्वारा प्रवेश करे तो वह बच जायगा और भीतर बाहर आया जाया करेगा।

इस बात से आया कि मूसा आदिक सब चोर और बटमार हो जाते हैं। और यसू के द्वारा ही मुक्ति और परमेश्वर में प्रवेश करना अन्य द्वारा नहीं, यह बात केवल आग्रह की और अयुक्त है, क्योंकि जब कोई का आत्मा पवित्र होगा, सत्संग और सत्य में निश्चित होगा, वही ईश्वर के आनन्द में प्रवेश करेगा। यसू को अपने सम्प्रदाय बढ़ाने की इच्छा थी। ऐसी-ऐसी बात उसने रच लिई।

यू० प० १४ पृ० ३६० पं० ६ यसू ने उससे कहा मार्ग और सच्चाई जीवन मैं हूँ। मेरे विना कोई पिता के पास नहीं आता है। यदि तुम तुझे जानते तो मेरे पिता को भी जानते। और अब से तुम उसे जानते हो और तुमने उसे देखा है।

यह बात झूठ है, क्योंकि मार्ग और सच्चाई और जीवन सब जगत् का परमेश्वर है तथा यसू का भी। और सच्चाई जिस में होगी वह उसी की ही है उनकी नहीं। यसू का पिता कोई जमीदार यसू के वश में होगा जिससे कि 'मेरे विना कोई पिता के पास नहीं आता है' ऐसा आग्रह यसू करता है, सो उसका व्यर्थ है, क्योंकि परमेश्वर जो पिता सब का उसको जब कोई पवित्र होके अत्यन्त प्रीति से और ज्ञान से प्राप्त हुआ चाहेगा,

उसी वक्त प्राप्त होगा। 'तुम तुझे जानते तो मेरे पिता को भी जानते और अब से तुम उसे जानते हो और तुमने उसे देखा है' यह बात केवल प्रलोभन की है और अयुक्त भी, क्योंकि प्रभु पिता को हमने देखा, जो वे उसको देखते तो प्रश्न क्यों करते। इससे निश्चित मालूम देता है कि यह यसू अपना सम्प्रदाय रचा चाहता था, सो रच लिया।

## प्रेरितों की क्रिया

प्रे० प० ९ पृ० ३११ पं० ४१ हे तावीता ऊठ! तब उसने अपनी आँखें खोली और पथरस को देख के उठ बैठी।

यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि ऐसी बात कभी नहीं हो सकती जो कि मर के उठे।

ये बातें अपने सम्प्रदाय बढ़ाने के वास्ते लोगों ने रच लिई हैं।

प्रे० प० १० पृ० ३६२ पं० २१ सो उठ के नीचे जा और विना खटका उनके संग चला, क्योंकि मैंने उन्हें भेजा है।

यह बात असम्भव है, क्योंकि आत्मा उसको कहे और उसको स्वप्न में परमेश्वर का दूत बात करे और आकाशवाणी उसको भई यह सब असम्भव बात देखाती है।

प्रे० प० १५ पृ० ३७९ पं० २० परन्तु उन्हें लिख भेजे कि मूर्त्तों की मलिनता से और व्यभिचार से और गला घोटे जन्तुओं से और लोहू से पर रहें, क्योंकि ऐसे लोग जो विश्राम दिन मण्डली घर में मूसों को पढ़के प्रचार करते हैं, सो अगले समय से नगर-नगर में होते आये हैं।

देखो कि अंग्रेजों के देश आदि में मूर्त्ति पूजा थी। और जन्तुओं का भी गला घोटना न चाहिये। मूर्त्ति-पूजा और व्यभिचारादिक प्रथम नगर-नगर में उन देशों में था वहाँ से अभाग्योदय के होने से आर्यावर्त्त देश में चल गया होगा, क्योंकि इस देश में नहीं था।

प्रे० प० १९ पृ० ३९४ पं० ३६ एपूसियों का नगर बड़ी देअर, वेमिस और देवलोक से गिरी हुई मूर्त्ति का पुजारी है, सो जब इन बातों से विरुद्ध कोई नहीं बोल सकता है तब तुम्हें उचित है कि चुप के रहो और विन सोचे कुछ न करो, क्योंकि तुम लोग जो मनुष्य यहाँ लाये हो और वे न



तो मन्दिर के चोर, न तुम्हारी देवी के निन्दा करनेहारे हैं।

देखो इससे भी यह जाना जाता है कि उन देशों में देवी, भूत, प्रेत, पिशाच और मन्दिर तथा पूजारी प्रथम थे। अब कुछ विचार से यह बात छूटी है, सो अच्छा है, क्योंकि पाषाणादिक मूर्त्ति-पूजन छोड़ना सब मनुष्यों को उचित है, किसी को करना कभी उचित नहीं।

## रूमियों को पौलुस की पत्री

प० ९ पृ० ४४८ पं० २३ और अपनी महिमा की अधिकाई दया के पात्रों पर जिन्हें उसने महिमा के लिये आगे से तैयार किया था, प्रगट किया।

यह बात अयुक्त है, क्योंकि परमेश्वर ही प्रथम से क्रोध का पात्र वा दया का पात्र विना दोष वा गुण से बनावेगा तो परमेश्वर ही पक्षपाती और दोषी बनेगा, जीव कोई नहीं अपराधी होगा। और कुह्मार का दृष्टान्त दिया, सो भी परमेश्वर में युक्त नहीं, क्योंकि जो चतुर कुह्मार होता है, सो अच्छा पात्र बनाता है और मूर्ख कुह्मार बुरा पात्र बनाता है। ऐसी बात परमेश्वर में नहीं घटती, क्योंकि वह विद्यादिक अनन्त गुण वाला है बुरा जो होता है, सो अपने कर्मों से, परमेश्वर के तर्फ से नहीं।

## कोरिन्तियों को पौलुस की पत्री

प० ५ पृ० ४७५ पं० ११ अब तुह्में लिखा है कि यदि कोई जन भाई कहा के व्यभिचारी अथवा लालची अथवा मूर्त्त-पूजक अथवा गाली देनेहारा अथवा मद्यप अथवा अन्धेर करनेहारा होय तो तुम ऐसे की संगत न करना। हाँ ऐसे के संग भोजन भी न करना।

यह उपदेश तो अच्छा है, परन्तु अंग्रेज और पादरी लोग मद्यपान और उनके साथ भोजन नहीं छोड़ते। यह बात इन्हों के धर्म पुस्तक और अंजील से विरुद्ध है। यद्यपि भोजन करने में न धर्म और अधर्म होता है, तथापि दुष्टों के साथ भोजनादि व्यवहार और मद्यपानादिक करना किसी को उचित नहीं सिवाय ओषध से। पादरी लोग औरों को तो उपदेश करते हैं और अपने धर्म पुस्तक नहीं देखते और उसकी आज्ञा भी सब क्यों नहीं करते।

## एपूसियों को पौलुस की पत्री

प० ४५ पृ० ५५३ पं० ६ एक प्रभु, एक विश्वास, एक बपतिसमा, एक परमेश्वर वह सभों का पिता है जो सब से ऊपर है और सभों में व्यापता है और तुम सभों में है।

देखो पौलुस ने एक ही जगत्, परमेश्वर एक ही, धर्म एक ही, सभों का पिता वही, सबके ऊपर वही, सभों में व्याप्त वही, सभों में पूर्ण है। इस बात को ईसाई लोग क्यों नहीं मानते। इनको अपने पुस्तक का तो यथावत् प्रमाण मानना चाहिये।

## निमोदे उसको पहिली पत्री

प० २ पृ० ५९७ पं० ५ क्योंकि परमेश्वर एक है और परमेश्वर और मनुष्य के बीच में एक मसीह यसू है उसने अपने को सभों की छुड़ौनी के लिये दिया। किस समय पर उसकी साक्षी दी जाय।

इससे भी यह आता है कि परमेश्वर एक ही है, दूसरा नहीं, यह निश्चित जाना जाता है। फिर ईसाई लोग जो तीन परमेश्वर मानते हैं यह उनकी बड़ी भूल है। और एक मनुष्य यसूमसीह है इससे भी पुत्र ईश्वर का नहीं बन सकता और वह बिचवई है, अर्थात् वकील है और उसकी साक्षी दी जायेगी, यह बात इन लोगों ने अपने मजहब बढ़ाने के वास्ते रच लिई है, सच नहीं, क्योंकि सर्वज्ञ सब का अन्तर्यामी जो परमेश्वर उसके व्यवहार में मुक्त्यार का वा गवाही का कुछ प्रयोजन नहीं। यह बात तो है कि मनुष्य परस्पर विद्यादि गुण ग्रहण, विचार और सत्य उपदेश करके और सुनके, सत्य और असत्य का ठीक-ठीक निश्चय करके, सत्य को ग्रहण करें और असत्य को छोड़ देवें।

निमो० प० ५ पृ० ६०१ पं० ५ अब जो सच्ची विधवा और अनाथ है, सो परमेश्वर पर भरोसा रखती है और रात-दिन विनती और प्रार्थना करने में लगी रहती है। पर जो सुख-भोगिनी है, सो जीते जी मरी हुई है। इन बातों की चितावनी कर, जिससे वे निर्दोष होवैं, परन्तु यदि कोई अपनों के लिये और निज करके अपने घर के लोगों के लिये न सहेजे तो वह विश्वास से मुकर गया और धर्म हीन से बुरा है। कोई विधवा साठ



वर्ष के नीचे गिनती में न आयै और वह एक ही पुरुष की पत्नी हुई हो।

इसमें विचारना चाहिये कि नियोग की रीति सनातन है और सब देश में प्रवृत्ति भी थी। और अपने कुटुम्ब में ही नियोग होना, क्योंकि अन्यत्र नियोग होने से स्त्री और सन्तान जो होवें, वे फिर कुटुम्ब में नहीं रहेंगे। इससे कुटुम्ब की वृद्धि न होगी। इस वास्ते पति के भाई का नियोग होना उचित है। और जो अनेकों से नियोग करने की इच्छा करे, सो स्त्री जीती ही मरी हुई है। और जिसको सन्तान और नियोग की इच्छा है उसका नियोग जो न करे तो कुटुम्बियों को इसका दोष लगता है। इससे नियोग करना अवश्य है, सो भी जब वह स्त्री सुलक्षण होय। और सन्तान के वास्ते नियोग का आवश्यक हो, तब होना चाहिये अन्यथा नहीं। इस बात को जोकि अंजील में लिखी है, इसको ईसाई लोग क्यों नहीं मानते।

निमो० प० ६०४ पं० १६ प्रभु सो अपने समय में उसे प्रगट करेगा। अमरता केवल उसी की ही है वह अगम्य ज्योति में रहता है। उसे किसी मनुष्य ने नहीं देखा है, न कोई उसे देख सकता है। उसी का आदर और सामर्थ्य सर्वदा है आमीन।

और कोई अमर न होगा तो जीव भी विनश्वर ठहरे। फिर मुक्ति भी विनश्वर ठहरी। फिर साधन क्यों करना मुक्ति के वास्ते। किसी मनुष्य ने उसको नहीं देखा तो आदम, मूसा, नूह, इब्राहीम और यसू आदि ने देखा ईश्वर को और दहिनी ओर बैठेगा, यह बात बायबिल और अंजील की झूठ हो जायगी। उसीका आदर और सामर्थ्य सर्वदा है, अर्थात् और का नहीं। फिर मुक्ति प्राप्तों का भी प्रलय हो जायगा। यह महा दोष आवेगा इससे ऐसी बात युक्त नहीं।

## इब्रानियों को पौलुस की पत्री

प० २ पृ० ६२२ पं० १० क्योंकि उसके जिसके लिये सारी वस्ते हैं, और जिसके द्वारा से सारे वसते हैं यह उचित था जब बहुत से पुत्रों को ऐश्वर्य को पहुँचावै कि उनके निस्तार के अधिपति को दुःखों से सिद्ध करे, क्योंकि जो पवित्र करता है जोकि पवित्र किये जाते हैं सब एक ही के हैं।

इससे यह आया कि जो पवित्र किया जाय और पवित्र होवै, वह परमेश्वर का पुत्र है। फिर यसूमसीह भी ऐसा ही पुत्र होगा। फिर ईसाई लोग यसू को ही पुत्र मानते हैं यह उनको भ्रम है यथार्थ ज्ञान नहीं।

## याकूब की पत्री

प० २ पृ० ६५५ पं० १० इसलिये कि जो कोई सारी व्यवस्था को मानै और एक बात में चूक करे, सारी बातों का दोषी ठहरा। यह बात अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि जितना अपराध वा अनपराध करेगा, उतना ही गिना जायगा। ऐसा क्या अन्धेर है कि हजार गुण और एक दोष किया तो वह एक दोष के करने से हजार गुण को भी क्या दोष मान लेगा। यह बात मनुष्यों में भी नहीं बनती तो ईश्वर में कैसे बनेगी। और जो यह बात ठीक होय तो वह कृतघ्न हो जायगा, क्योंकि उसके किये गुणों को भी दोष में मिला दिया, इससे यह बात युक्त नहीं।

## यूहन्ना की पहिली पत्री

प० १ पृ० ६९२ पं० ५ परमेश्वर उंजाला है और उसमें अन्धेरा कुछ भी नहीं है। यदि हम कहें कि हम उससे मेल रखते हैं और अन्धेरे में चलते हैं, हम झूठे ठहरते और सच्चाई पर नहीं चलते हैं। पर जैसा कि वह उंजाले में है यदि वैसा ही हम लोग उंजाले में चलें तो हम लोग आपस में एक-दूसरे से मेल रक्खें हैं।

यह बात अच्छी है। परन्तु 'यसूमसीह का लोहू हमको सब पाप से पवित्र करता है' यह विरुद्ध उससे है, क्योंकि उपदेश से पवित्र करना तो मनुष्य का अधिकार है, अन्यत्र नहीं।

प० २ पृ० ६९३ पं० १ हे मेरे बच्चो! मैं ये बातें तुम्हें लिखता हूँ जिससे तुम लोग पाप न करो, परन्तु यदि कोई जन पाप करे तो यसूमसीह जो धर्मी है, सो पिता के पास हमारा पक्षवादी है और वही हमारे पापों का प्रायश्चित्त है और केवल हमारे पापों का नहीं है, परन्तु सारे संसार के भी।

इस बात से ही मनुष्य ईसाई बहुत होते हैं, क्योंकि यसू परमेश्वर के पास सब का वकील बन रहा है पाप छोड़ाने वाला और पक्षपाती, जोकि



परमेश्वर से कह-सुन के पापों की क्षमा करावेगा, क्योंकि उसको ईसाइयों ने बड़ा कानूनी जाना होगा। जिससे कि परमेश्वर को भी क्षमा करने की बात समझा दे। सो सब संसार के पापों को वह छोड़ा देगा। यह बात न्याय विरुद्ध है, क्योंकि ऐसी-ऐसी बातों से मनुष्य लोग पापों से कुछ भय न करेंगे, किन्तु सब पाप में प्रवृत्त हो जांयगे। इससे ऐसी बात का उपदेश सुनना और उसी पर निश्चय सज्जनों को कभी न करना चाहिये।

## प्रकाशित वाक्य

प० ४ पृ० ७१० पं० ५ और आग के साथ दीप उस सिंहासन के आगे बलते थे परमेश्वर के सात आत्मायें ही हैं।

पं० ७ पहिला जीवधारी सिंह के ऐसा था। और दूसरा जीवधारी बछड़े के ऐसा था। और तीसरा जीवधारी मनुष्य का-सा मुँह रखता था। और चौथा जीवधारी उड़ते उकाब के ऐसा था। और चारौं जीवधारियों के छह पंख थे और उनके चारौं ओर और उनके भीतर-भीतर आँखें ही आँखें थीं। और वे कहते हैं कि पवित्र ३ प्रभु परमेश्वर सर्वशक्तिमान् जो था और जो आने वाला है।

देखो कि परमेश्वर के सात आत्मा कभी नहीं बन सकते। जीवधारियों की कथा जो यह लिखी, सो असंगत है।

प्र० प० ५ पृ० ७११ पं० १ और जो सिंहासन पर बैठा था उसके दहिने हाथ में मैंने एक पुस्तक देखी। उसके अन्दर और बाहर लिखा हुआ था। और वह सात छापों से बन्द थी।

जो वह बन्द थी, सो बाहर-भीतर उसने कैसे देखा। और यह बात सब अयुक्त और असम्भव है।

प्रका० प० ५ पृ० ७११ पं० ४ तब मैं बहुत रोया, क्योंकि पुस्तक को खोलने और पढ़ने के और उसमें देखने के योग्य कोई नहीं निकला। तब उन प्राचीनों में से एक ने कहा—रो मत। देख! यहूदा के वंश का सिंह और दाऊद का मूल जो है, सो उस पुस्तक के खोलने और उसकी सात छापों को तो उनके लिये जयवन्त हुआ है।

यह बात असंगत है, क्योंकि यूहन्ना ने अपने मत को बढ़ाने के वास्ते

मिथ्या बात जोड़ लिई है।

पं० ६ और प्राचीनों के बीच में एक लेला जैसा वध किया हुआ खड़ा है। उसके सात सींग और सात आँखें थी। परमेश्वर के सात आत्मा जो सारी पृथिवी पर भेजे गये हैं, सो ये ही हैं।

और उसने आके सिंहासन पर बैठने वाले के दहिने हाथ से पुस्तक को लिया। और जब उसने पुस्तक लिई तब वे चारौं जीवधारी और चौबीसों प्राचीन लेला के आगे गिर पड़े। और हरएक के हाथ में वीणा और सुगन्ध के भरे हुए सोने के कटोरे थे।

प्र० प० ६ पं० ९ क्योंकि तूँ वध किया गया और सब वंश।

इत्यादिक कथा अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि आर्यावर्त्त में सम्प्रदायी मनुष्यों ने पुराण और तन्त्र ग्रन्थ बहुत से झूठे रच लिये हैं, परन्तु ऐसी असम्भव कथा उनमें भी नहीं है, जैसी कि सात सींग और सात आँखें उस जीवधारी को थीं। और एक-एक छाप तोड़ने से एक-एक घोड़ा निकला। एक गढ़े में से टीडी निकली। जीवों को छह मास तक पीड़ा दी। एक स्त्री वन में बैठी थी। एक समुद्र में से बड़ा जीवधारी प्रगट हुआ था। और एक खजूर की डाली लेके लेला के आगे खड़ी थी। ऐसी-ऐसी असम्भव और अयुक्त कथा उनमें भी नहीं है जैसे कि अंजील में यूहन्ना ने प्रकाशित वाक्य में कही हैं। वे सब युक्ति और प्रमाण विरुद्ध दीखतीं और मानने के योग्य एक भी नहीं।

प्र० पृ० ७५० प० २२ पं०१९ यदि कोई इस भविष्यत् वाणी की पुस्तक की बातों में से निकाल डाले तो परमेश्वर उसका भाग जीव पुस्तक में से और पवित्र नगर में से और इन बातों से जो इस पुस्तक में लिखी है निकाल डालेगा। जो इन बातों की साक्षी देता है, सो यह कहता है मैं निश्चय जल्द आता हूँ आमीन। हाँ हे प्रभु यसू! आ। हमारे प्रभु यसूमसीह की कृपा तुम सभों पर होवै आमीन।

यह बात ईसाइयों ने भय के वास्ते लिखी है। जिसते कि कोई इस पुस्तक में से न निकाले। और "वह जल्द आता है", अब तक तो आया ही नहीं, इससे यह बात अयुक्त है। और यसू अब है नहीं। फिर क्या



किसी पर कृपा कर सक्ता है। जब था तब जैसी उसकी बुद्धि, वैसा उपदेश करता था।

और सब मनुष्यों पर सर्वशक्तिमान् एक अद्वितीय परमेश्वर है उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना तथा विज्ञान करना सब मनुष्यों को उचित है। इसमें सद्विद्या, सत्पुरुषों का उपदेश, अपनी पवित्रता, सद्‌बुद्धि, सुविचार और योगाभ्यास इत्यादिक ही परमेश्वर को प्राप्त और जानने के उपाय हैं, क्योंकि वह सर्वान्तर्यामी और सर्वत्र नित्य प्राप्त है। वह किसी मनुष्य को पुत्र वा पैग़म्बर, मनुष्यों को उपदेश के वास्ते किसी का सहाय ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। उस परमेश्वर में किसी मनुष्य को मध्यस्थ मानना सर्वथा अनुचित है।

ये चार अध्याय आर्यावर्त्त जोकि भारतवर्ष देश कहाता है उसके विषय में एक अध्याय लिखा। दूसरा जैनमत के विषय में, तीसरा मुसलमानों के मत के विषय में और चौथा ईसाइयों के मत के विषय में सो संकोच से लिखे हैं, परन्तु हमको यह मालूम पड़ा कि जैसे जैन लोग सिद्ध पुरुष को ईश्वर मानते हैं तथा आर्यावर्त्त देशवासी जैसे अवतारों को ईश्वर मानते हैं, वैसे ही मुसलमान और ईसाई लोग भी सिद्ध पुरुष को ईश्वर मानते हैं, क्योंकि मुहम्मद के पास फरिश्ते आये थे और उन्हीं से बातचीत होती थी तथा मुहम्मद ईश्वर के पास गया और आया और आदम तथा हव्वा की उत्पत्ति बाग में भई। फरिश्तों की सेना मुसलमानों के सहाय के वास्ते आती थी। स्वर्ग का वर्णन जैसा कि कुरान में किया है इत्यादिक बातों से यह सिद्ध होता है कि उस देश में कोई सिद्ध पुरुष था उसी की ये सब बाते हैं। जैसी कि आजकाल जैन और आर्यावर्त्तवासियों ने सिद्ध और अवतारों को ईश्वर मान लिया है। वैसी ही जगत् की उत्पत्ति आदम हव्वा और बाग की रचना आदम और हव्वा से कहना और सुनना। मूसा, नूह और इब्राहीम इस्राएल और सुलेमान और यसू इन से अनेक वार मिलाप और बातें भईं हैं। तथा सरःआदिक स्त्रियों से भी अनेक वार भाषण और मिलाप का होना तथा प्रसन्नता, अपसोच, वर, श्राप, पक्षपात और वैरादिक गुण ईश्वर विषय में वर्णन का करना,

बाइबिल और अंजील में, इनसे निश्चित मालूम पड़ता है कि कोई सिद्ध पुरुष सैहून पर्वत पर था। वह कभी गुप्त हो जाये, अग्नि बन जाये तथा अदृश्य हो जाये और बातें करें, दूतों को भेजना उनसे समाचार का जानना, सो था कोई उस देश में सिद्ध पुरुष जिसने बाइबिल अंजील और कुरान के लिखे चमत्कार दिखाये थे। ऐसी बातें परमेश्वर की नहीं हो सकती।

इससे सज्जन और सब मनुष्यों को एक अद्वितीय ईश्वर और उसकी सत्य-सत्य यथावत् आज्ञा को निश्चय से मानना चाहिये और विद्या पुस्तक वेदादिक जो संस्कृत ग्रन्थ उन्हीं के रीति से परमेश्वर, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय, मुक्ति और संसार के सब ठीक-ठीक व्यवहार सब मनुष्य लोग जानें। यही सब मनुष्यों के सुख और कल्याण का मार्ग है, क्योंकि वेदादिक पुस्तक किसी मजहब के पुस्तक नहीं हैं, किन्तु सत्य-सत्य पदार्थविद्या और सब मनुष्यों के हितकारक हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं। यह भी हमको निश्चय है कि सनातन परमेश्वरोपदिष्ट विद्या पुस्तक वेद ही है, न बाइबिल, न अंजील और न कुरान और न पुराणतन्त्रादिक, क्योंकि इनमें यथावत् विद्या वा परमेश्वर के गुण नहीं पाये जाते हैं। अन्य भी जो उपदेश तथा छह अंग और छह दर्शन और ब्राह्मण पुस्तकादिक वेदों की व्याख्या जो ऋषि-मुनि रचित बहुत अच्छे हैं, क्योंकि ये वेद की ही व्याख्या है जिन ऋषि-मुनियों ने वे ग्रन्थ बनाये हैं वे सब विद्याओं से युक्त थे, क्योंकि विद्या विषय और सब पदार्थों के निश्चय में जैसा भारतवर्ष आर्यावर्त्त देश के मनुष्यों ने पुरुषार्थ किया है वैसा किसी देशवासी मनुष्य ने आज तक पुरुषार्थ नहीं किया है और जो कहीं बहुत वा थोड़ा हुआ होगा, सो आर्यावर्त्त देश से प्राप्त होके ही हुआ होगा अन्यथा नहीं, क्योंकि भारतवर्ष में लाखहों ऋषि-मुनि ऐसे भये हैं कि जिनके कई पीढ़ियाँ विद्या विचार में ही गई हैं, जिन्होंने अत्यन्त तपस्या और वन-पर्वतादिक एकान्त में रहके परमेश्वर की उपासना, विद्या के विचार में ही सब जन्म बिता दिये हैं, फिर उनके पुत्र-पौत्रादिक भी उसी विचार में रहते थे जब तक कि उस पदार्थ का ठीक-ठीक निश्चय न हो, तब तक विचार ही करते जाते थे। जब उसका सत्य-सत्य निश्चय होता, तब पुस्तक में उस बात को लिखते थे। जितने विद्वान् ऋषि-मुनि होते थे वे सभा करके और परस्पर प्रीति से विचार करके ठीक-ठीक सत्य निश्चित जब होता था तब उसको पुस्तक में लिखते थे। परन्तु ये सब विद्या वेदों से निकली हैं, क्योंकि वेद सब विद्यामय ही है, उसका ठीक-ठीक अर्थ नहीं जानने से लोगों को भ्रम होता है, जो ठीक-ठीक अर्थ जान ले तो कभी भ्रम न होय। वेदादिक पुस्तकों से और इसी आर्यावर्त्त भारतवर्ष देश के प्रताप से ही द्वीप-द्वीपान्तरवासी मनुष्यों में मनुष्यत्त्व और विद्या गई है। जिस देश ने सब देशों का उपकार किया था सब प्रकार से, सो देश आज कल नाना प्रकार के पाखण्ड मत, वाद और नाना प्रकार के मिथ्या संस्कृत और भाषा के पुस्तकों की प्रवृत्ति, पाषाणादि मूर्त्ति-पूजन, परस्पर विरोध, वेदादि सनातन पुस्तकों के पठन और पाठन के त्याग, शारीरादि व्यवहारों का अन्यथा होना, स्त्री और पुरुषों को बाल्यावस्था से शिक्षा का नहीं होना, ब्रह्मचर्याश्रम का लोप, खुशामदी, धूर्त्त, मिथ्यावादी, अपने स्वार्थ परायण, वेश्या, पर-स्त्री-गमनादि का संग राजा और धनाढ्यों को होना, आलस्य, मद्यपान, पुरुषार्थ शून्यता, एक-दूसरे के सुख का असहन, परस्पर सहाय का न होना, अपने देश के उपकार में अत्यन्त पुरुषार्थ और मनोवृत्ति का नहीं करना। मूर्ख, विद्याहीन, लम्पट पुरुषों को राज्य मन्त्रित्व, पाण्डित्य और धन के अधिकार का होना, इत्यादिक दुष्ट व्यवहारों से आर्यावर्त्त देश का ऐसा बिगाड़ भया है कि हम लोग वर्णन नहीं कर सकते, केवल अपसोच ही करते हैं। क्योंकि जिस देश ने सब देशों में विद्या और बुद्धि दी, सो देश आज कल आपही-आप महा मूर्ख और नष्ट हो गया। बहुत मैं इस देश के सुधरने के लिये पुरुषार्थ करता हूँ, परन्तु अनेक धूर्त्त, पाखण्डी और मिथ्या पण्डितों के विघ्नों से मेरा पुरुषार्थ यथावत् बल नहीं पकड़ सकता, क्योंकि मैं तो इनके सुख और सुधरने के लिये परिश्रम करता हूँ, परन्तु ये ऐसे नष्ट बुद्धि हैं कि इसको ग्रहण तो नहीं करते, परन्तु मुझसे विरोध ही करते हैं। यह भी मुझको अत्यन्त अपसोच है कि आर्यावर्त्त वासी अपने हित की बात नहीं

जानते, तो और के हित की बात क्या जानेंगे।

मैंने यह विचार निश्चय किया है कि वेदों का ऋषि-मुनियों का किया अर्थ जो लोग यथावत् पढ़े-पढ़ावें जानें और उसकी रीति से चलें और ऋषि-मुनि के किये सनातन ग्रन्थों को भी यथावत् जानें, क्योंकि सिवाय विद्या के मनुष्यों को सुधरने का कोई प्रकार मुझ को नहीं दिखाता, क्योंकि दण्ड और लोभ से मनुष्य का हृदय और जीव की पवित्रता कभी नहीं हो सकती। इससे मैं चाहता हूँ कि सनातन संस्कृत सत्य विद्या का अवश्य प्रचार होना चाहिये, परन्तु मेरे जीते जी जो प्रचार हो तो शीघ्र, थोड़ा पुरुषार्थ और थोड़ा धन से भी मैं करा सकता हूँ फिर उसका प्रचार होना बहुत कठिन होगा और न हो तो भी आश्चर्य नहीं। जितने भूगोल में मनुष्य हैं उनमें से जो बुद्धिमान् हैं, वे यों करें तो बहुत उपकार हो कि बायबिल, अंजील, कुरान, जैनादिक सम्प्रदायों के पुस्तक और वेदादिक सनातन सत्य पुस्तक इनको सब मिल के पक्षपात छोड़कर ऋषि-मुनियों की रीति से यथावत् विचारें तो मैं जानता हूँ कि वेदादिक सनातन संस्कृत पुस्तक सब से श्रेष्ठ हैं ऐसा निश्चय उनको भी होगा। फिर सब मनुष्यों में जितने विरोध और उपद्रव हैं वे शान्त हो जायेंगे और परस्पर प्रीत्यादिक गुणों से यथावत् संसार के सुख और मुक्ति के अनन्त आनन्द को प्राप्त होगे इसमें कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि यह बात पक्षपात को छोड़ के मैं अपने आत्मा की साक्षी से कहता हूँ। परन्तु सब मनुष्यों पर परमेश्वर ऐसी कृपा करें कि सब सत्य का ग्रहण और असत्य के त्याग में प्रवृत्त और निश्चित होवें। आर्यावर्त्त देश में मनु, मरीचि, अत्रि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ये दश मनु के पुत्र आदि सृष्टि में बड़े विद्वान् भये हैं। सब से आगे अग्नि, वायु और आदित्य ये तीन दिव्य गुणयुक्त बड़े शुद्ध पवित्र आत्मा भये हैं देहधारी, आदि सृष्टि में भये थे जिनको कि तीन वेद परमेश्वर ने दिये हैं, सो उनके हृदय में अन्तर्यामी परमेश्वर ने प्रकाश वेदों का किया उनसे ब्रह्माजी ने पढ़े। उस समय से वेद का नाम श्रुति भी पड़ा, क्योंकि ब्रह्मादिक सुनते-सुनाते आये। इससे वेदों का नाम श्रुति पड़ा। ब्रह्मा से विराट् ने वेद पढ़े जो कि ब्रह्मा का पुत्र था। विराट् का पुत्र मनु था। मनु ने अपने पिता विराट् से वेद पढ़े। मनु के पुत्र जो मरीच्यादिक दश उनने मनु से वेदों को पढ़ा। उन मरीच्यादिक प्रजापतियों के सात पुत्र राजा भये उनको क्षत्रियवर्ण का अधिकार हुआ, इन मनुओं ने भी अपने पिता जो मरीच्यादिक उनसे वेदों को पढ़ा, उनके नाम ये हैं—स्वायम्भव १, स्वारोचिष २, औत्तमि ३, तामस ४, रैवत ५, चाक्षुष ६ और वैवस्वत ७—इन सातों से राज-धर्म चला है। और जो दक्ष, कश्यप, शक्ति और च्यवन, बृहस्पति और शुक्रादिक वे ब्राह्मणाधिकार प्राप्त भये हैं, उनसे मध्यम विद्या वालों को वैश्याधिकार दिया गया है। और मूर्ख मनुष्यों को शूद्रों का अधिकार दिया गया। वैसे ही स्त्रियों के बीच में विद्या और श्रेष्ठ गुणों से ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा क्रम से अधिकार दिये गये और विवाह भी वर्णानुक्रम से होते थे, क्योंकि यथा योग्यों का ही विवाह होना उचित है। फिर दक्ष की कन्या कश्यप से विवाही गई। उसका पुत्र पाणिनि भया। उसने वेदादिकों को पढ़ के व्याकरण, शिक्षा, अष्टाध्यायी, उणादिगण पाठ और प्रातिपादिक गण पाठ ये पाँच ग्रन्थ बनाये। और कश्यप का पुत्र पतञ्जलि जिसका कि नाम शेष है उसने पाणिनि ग्रन्थों की व्याख्या करी, जिसका नाम महाभाष्य है।

मनु आदिक ने मानव कल्पसूत्रादिक बनाये थे जोकि कल्प कहाता है।

यास्क मुनि भी उन प्रजापतियों के कुल में भया है उसने निघण्टु, निरुक्त और काव्यालङ्कार सूत्र ये तीन ग्रन्थ बनाये हैं। इन पर वात्स्यायन मुनि ने भाष्य बनाया है।

शेष जो पतञ्जलि उसके कुल में पिङ्गलाचार्य भया उसने पिङ्गल सूत्र बनाया है, जोकि छन्दो-ग्रन्थ है, उस पर भी वात्स्यायनादिक कृत भाष्य है।

भृग्वादि ऋषियों ने सूत्र भाष्य और संहिता बनाई है जो कि ज्योति:शास्त्र कहाता है।

ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद जोकि धन्वन्तरि और ब्रह्मा ने रचा है। और अत्रि मुनि ने भी बनाया सो चरक, सुश्रुत और निघण्टु ये तीन ग्रन्थ

हैं। धन्वन्तरि भी अत्रि के कुल में भया है।

यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद जिसमें कि शस्त्रास्त्र विद्या है अङ्गिरा, बृहस्पति, शुक्राचार्य और भरद्वाजादि मुनियों ने रचा है।

सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद जिसमें गान विद्या है जो कि नारदादिक ऋषियों ने रचा है।

अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जो कि शिल्प विद्या कहाती है। विश्वकर्मादिक ऋषियों ने रचा है।

सांख्यदर्शन जोकि कपिल मुनि ने सूत्र रचे हैं। इसके ऊपर भागुरि मुनि ने भाष्य किया है। इसमें तत्त्वों की संख्या और महाप्रलय का व्याख्यान है।

पतञ्जलि मुनि का किया योगदर्शन उस पर व्यास मुनि का किया भाष्य है। जिसमें योग विद्या, अर्थात् उपासना की सब रीति है।

गोतम मुनि के किये सूत्र उसके पर वात्स्यायन मुनि का भाष्य जिसमें प्रमाणादिक सब पदार्थों की यथावत् व्याख्या है जोकि न्यायदर्शन कहाता है।

कणाद मुनि के किये सूत्र, इस पर भरद्वाज मुनि की वृत्ति और गोतम मुनि का किया प्रशस्तपाद भाष्य है जो कि वैशेषिक दर्शन कहाता है। इसमें द्रव्यादिक पदार्थों का यथार्थ व्याख्यान है।

बहवृच् ऋग्वेद का ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद ब्राह्मण और अथर्ववेद का ब्राह्मण और अनुब्राह्मण जोकि आरण्यक और बृहदारण्यक और महागान आदिक पुस्तक हैं, ये सब ब्रह्मादि के बनाये हैं।

आश्वलायन ऋषि ने ऋग्वेद पर सूत्र बनाये हैं। कात्यायन ने यजुर्वेद पर गोभिल और राणायन ऋषि ने सामवेद पर सूत्र बनाये हैं।

शौनक ने अथर्ववेद पर और अथर्ववेद अङ्गिरा प्रजापति के हृदय में ईश्वर ने प्रकाश किया था। संहिता पुस्तक का नाम वेद है ये जितने ग्रन्थ बनाये सब वेदों की व्याख्या है। और ऋषि-मुनि जो आश्वलायनादिक उनने ऋग्वेद पर २१ शाखा बनाई हैं। माध्यंदिनादिक एक सौ एक शाखा यजुर्वेद पर ऋषि-मुनियों ने बनाई हैं। और कौथुमादि हजार शाखा सामवेद पर बनाई हैं। और शौनकादिक नवशाखा अथर्ववेद पर ऋषि-मुनियों ने बनाईं हैं। ये सब शाखा मिल के ११३१ चारों वेदों पर ऋषि-मुनियों की व्याख्या हैं।

जैमिनि मुनि के किये सूत्र जिस पर व्यास मुनि की करी व्याख्या जो कि पूर्व मीमांसा दर्शन धर्मशास्त्र कहाता है। और मनुस्मृति मनु जी की किई, ये सब मिल के मीमांसादर्शन कहाता है जिसमें धर्म-धर्मी की व्याख्या यथावत् है।

व्यास मुनि के किये सूत्र इसके ऊपर वात्स्यायन बौधायन की व्याख्या है जोकि वेदान्तदर्शन कहाता है जिसमें सब जगत् को कार्य और सब जगत् का कारण जो ब्रह्म उनकी यथावत् व्याख्या है।

ये ही ग्रन्थ सत्य हैं जोकि महाभारत युद्ध होने के पहिले-पहिले बने हैं, वे सब ठीक-ठीक बने हैं। इनों का पठन, पाणिनिकृत शिक्षा और अष्टाध्यायी आदिक उक्त व्याकरण प्रथम पढ़े इसके पीछे निघण्टु, निरुक्त और कात्यायनादि मुनिकृत कोशों को पढ़े। इसके पीछे छन्दो-ग्रन्थ जोकि पिङ्गल सूत्र भाष्य और यास्क मुनिकृत काव्यालङ्कार सूत्र भाष्य पढ़े। इसके पीछे पूर्व मीमांसादि क्रम से सांख्यदर्शन तक पढ़े। इसके पीछे ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये दश उपनिषद्, संहिता और ब्राह्मण के पुस्तक के बीच में आ गई हैं इनको पढ़े। इसके पीछे वेदान्तदर्शन पढ़े। इसके पीछे चार उपवेदों को पढ़े। इसके पीछे चारों वेद के सूत्र और ब्राह्मण तथा वेद जो संहिता का पठन पूर्वक और शाखान्तर दर्शन पूर्वक और व्याकरणादिक के विचार पूर्वक वेदों को पढ़े, तब संस्कृत विद्या का मर्म और तात्पर्य मनुष्यों को मालूम पड़ेगा। सो बारह वर्ष के बीच में मनुष्य सब विद्याओं को पढ़ सकता है, फिर पढ़ना न होगा, किन्तु विचार से ही सब जान लेगा, क्योंकि ऋषि-मुनियों की रीति बहुत सुगम है अन्यथा नहीं। इन वेदादिक विषयों में कौमुद्यादिक सारस्वत और चन्द्रिकादिक मिथ्या ग्रन्थों को दूर छोड़ दे और अमरकोशादिकों को भी दूर से छोड़े। मुहूर्त्त

चिन्तामण्यादिक नये जाल ग्रन्थों को छोड़ दे। नयों में से सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ कुछ अच्छा है, इसके पढ़ने से अत्यन्त हानि मनुष्य की नहीं होती।

वैद्यकशास्त्र की रीति में शार्ङ्गधर, वैद्य जीवनादिक ग्रन्थों को दूर छोड़ दे।

छह दर्शनों के विषय में पाराशर्यादिक सत्तरह स्मृति, अष्टादश पुराण और अष्टादश उपपुराण और रुद्रामलयादिक तन्त्र ग्रन्थ जो धर्मशास्त्र के विषय में लोगों ने अपना मतलब के वास्ते रच लिये हैं, इनको दूर छोड़े।

तर्क संग्रहादिक ग्रन्थ, वैशेषिक और न्याय दर्शन के विषय में जो बने हैं इनको दूर छोड़े।

योगशास्त्र के विषय में हठ प्रदीपिका और शिवस्वरोदयादिक ग्रन्थ जो बने हैं इनको दूर छोड़ दे।

सांख्यशास्त्र के विषय में जो सांख्य तत्त्व कौमुद्यादिक मिथ्या ग्रन्थ रच लिये हैं इनको भी दूर छोड़ दे।

वेदान्तशास्त्र के पञ्चदश्यादिक नये ग्रन्थ बने हैं इनको भी दूर छोड़ दे।

जो संहिता और ब्राह्मण पुस्तक के विषय में अल्लोपनिषदादिक लोगों ने कल्पना कर ली है इनको भी दूर छोड़ दे।

वेदादिकों से जो-जो असम्भव और अयुक्त कथा हो उसको प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से ठीक-ठीक निश्चय करके सत्यासत्य का, फिर सत्य को ग्रहण करे और असत्य को छोड़ दे।

और वेद के ऊपर सायण, माधवाचार्यादिकों ने नई-नई टीका बनाई है, इनकी रीति से पढ़के वेदों का ठीक-ठीक अर्थ कभी मालूम न होगा।

सत्य-सत्य विद्या जानने की जिसको इच्छा होय कि हम वेदादिक सनातन संस्कृत विद्या को जानें, वे जैसा कि व्याकरणादि क्रम से पठन-पाठनादि कहा, इसी रीति से यथावत् वेदादिकों का अभिप्राय जान पड़ेगा अन्यथा नहीं। और नवीन ग्रन्थों से वेदादिकों का सत्य अभिप्राय तो नहीं जान पड़ेगा, किन्तु विपरीत अर्थ ही मालूम पड़ेगा, क्योंकि जितने महाभारत युद्ध के पीछे टीका वा ग्रन्थ बने हैं, जो विद्याहीन, मिथ्या सम्प्रदाय में फँस के भ्रान्त पुरुषों ने रचे हैं, इससे इनको पढ़ने-पढ़ाने से पुरुष भी वैसे ही होते हैं, क्योंकि जैसा ग्रन्थ पढ़े वा पढ़ावेगा, वैसे ही संस्कार उसके बुद्धि में होंगे। इससे ऋषि-मुनियों के रचित मूलभाष्य और टीकाओं के विना पढ़ने वा पढ़ाने से वेदों का सत्य-सत्य अर्थ और सत्यासत्य का कभी यथावत् बोध नहीं होगा, क्योंकि सब विद्या और सब भाषाओं का मूल वेदादि संस्कृत विद्या ही है। इससे संस्कृत के पढ़ने के विना किसी संस्कृत वा किसी देश की भाषा का सत्य वा असत्य का निश्चय यथावत् नहीं होगा, क्योंकि कार्य का ज्ञान कारण से होता है और कारण का कार्य से।

संस्कृत को पढ़के कोई देश-भाषा पढ़े तो शीघ्र ही उसका ज्ञान होता है, क्योंकि सब देश-भाषा संस्कृत से ही बनी है। इसमें आर्यावर्त्त देशवासियों का कथन और ग्रन्थों से हजारों प्रमाण पाते हैं। संस्कृत से ही सब देश-भाषा बनी हैं।

**गौरित्यस्य गावी गोणी गोता गोपातलिकेत्येवमादयो बहवोऽपभ्रंशाः। शवतिः गतिकर्मा कम्बोजेषु, विकारमे आर्याभाषन्तेशव इति।**

यह महाभाष्य का प्रमाण है कि एक गो संस्कृत शब्द के गावी इत्यादिक बिगड़ के देश-भाषा बन जाती हैं। कहीं ऋतक शब्द हैं जीभ के दोष से लृतक उच्चारण होता है। इस कारण से भी संस्कृत से देश-भाषा बनती जाती है।

इसमें अन्य देशस्थों की भी साक्षी है जैसे कि काशी में डाकतर वालेटिअन् साहेब ने यही निश्चय किया है कि संस्कृत ही आदि भाषा है, ऐसा निश्चय किया है बाबिल इन् इण्डिअ लुइजेकलिअट् का रचित ग्रन्थ में, उसने भी आर्यावर्त्त देश में भ्रमण और खोज करके लिखा है, परन्तु जो-जो उसने पुस्तक देख के और अपने विचार बुद्धि से लिखा, सो तो ठीक-ठीक है। और जो साधारण पण्डितों से बनाये ग्रन्थ और

टीकाओं से लिखा सो ठीक नहीं।

परन्तु ये बातें लिखीं वे तो ठीक हैं जैसे कि उसने कहा आर्यावर्त्त देशवासी लोगों को धन्यवाद है, क्योंकि सनातन मनुष्यत्व इनों में ही था। इनों से ले-लेके और देशवालों ने कुछ-कुछ अच्छा प्रचार किया है। वह फारस देश का रहने वाला था, सो कहता है कि मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि जैसा आर्यावर्त्त देश का प्रथम वर्त्तमान था, वैसा हमारे देश में भी होय तो बहुत अच्छी बात है। वेद जो है, सो सनातन पुस्तक है सर्व विद्यायुक्त और सबसे आदि है। ऋषि-मुनि वेदों को ही विचारते थे। उनको विचार के अच्छे-अच्छे विद्या पुस्तक वेदों से निकाले हैं। इसी आर्यावर्त्त देश से प्रथम मिश्र वालों ने विद्या ली, उनसे फारस वालों ने, उनसे यूनान वासियों ने और इनसे यरूसलम् वासियों ने विद्या ली है। जहाँ कि यसूमसीह पैदा भया था। आर्यावर्त्त से कानून और धर्म की बातें बहुत रोम देश को गई हैं, तब मैंने विचार किया कि आर्यावर्त्त ने सब देशों को बुद्धिमान् किया, फिर यह क्यों कर मूढ हो गया, सो यह ब्राह्मणों की खराबी है।

यह बात सच है कि ब्राह्मणों ने आर्यावर्त्त देश बिगाड़ा है और अब भी बिगाड़ते हैं। और अब वैराग्यादिक सम्प्रदाय वाले भी बहुत बिगाड़ते हैं आर्यावर्त्त देश की पूर्वावस्था सब देशों से उत्तम थी, परन्तु इस वक्त बिगड़ी भई अवस्था को देख के, अन्य देशवासी अभिमान करते हैं कि हम लोग बहुत अच्छे हैं और आर्यावर्त्त देश कुछ अच्छा नहीं, परन्तु आर्यावर्त्त की पूर्वावस्था क्यों नहीं विचारते जिससे कि सब अभिमान उनका छूट जाये। जब तक अन्य देशवासी ऋषि-मुनियों की रीति से संस्कृत विद्या नहीं पढ़ते तब तक इनका भ्रम निवृत्त न होगा कि सनातन विद्या और सर्वोत्तम धर्म की बातें किस देश में थीं, अर्थात् आर्यावर्त्त में ही थी। संस्कृत में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, इससे ऐसी कोई भाषा नहीं। जब हम लोग संस्कृत पढ़ने की सामग्री यथावत् प्राप्त होवें तब हम जान सकते हैं कि मूसा आदि ने आर्यावर्त्त से ही सीख के सब बातें बना ली हैं और जो कोई कहे कि उसने और से सीखा तो मैं कहता हूँ कि उसने किस से विद्या सीखी और ली। इससे मालूम पड़ता है कि आर्यावर्त्त से ही सब ने विद्या ली है।

संस्कृत से यूनानी जबान् बनी जिस देश में आफ्लातून आदिक विद्वान् भये हैं, सो आर्यावर्त्त से ही लेके और यूनानी जबान रूस आदि फिरङ्गस्तान देशों की जबानें बनीं हैं। इससे संस्कृत आदि भाषा है, सब भाषाओं की माता है संस्कृत से ही सृष्टि यथावत् जानी जाती है। सोई बात सोई प्रकार से जितने फिलासकर और पदार्थ विद्या के जानने वाले हैं, वे भी इसी रीति से सृष्टि की उत्पत्ति निश्चित करते हैं इससे संस्कृत विद्या ही सनातन है। जब तक फारस एशियामाइनर, मिस्र और यूरोप देश नहीं बसे थे, तब से पहिले वेदों की प्रतिष्ठा ब्राह्मणादिक आर्यावर्त्त में करते थे और वेदों की आदि किसी प्रकार से यहीं मिलती।

संस्कृत दर्शनशास्त्र में परस्पर विरोध नहीं है। आर्यावर्त्त में जो-जो विद्या कि फिलासफी धर्म वैद्यक राजनीति, गणित परमेश्वर और सृष्टि आदिक विद्या है, सो-सो पूर्ण ही देखने में आती है। इससे यह जाना जाता है कि आर्यावर्त्त में ऋषि-मुनि बड़े पुरुषार्थी और बड़े विद्वान् भये थे, जिन्होंने विद्या लिखी है, उससे अधिक आज तक किसी ने नहीं निकाली। जैसे कि मनुजी ने राजधर्म का कानून लिखा सो ऐसा है कि उससे आगे कोई बुद्धि वा विद्या से नहीं निकाल सकता और जो कोई कुछ विद्या वा विचार से कोई बात निकालता है, सो संस्कृत पुस्तकों में प्रथम ही लिखी पाती हैं। इससे आर्यावर्त्त देश और संस्कृत विद्या और विद्या का प्रचार आर्यावर्त्त में ही सनातन था, इसी देश में से और लोगों ने कुछ-कुछ लिया है अन्यथा नहीं।

बायबिल में मूसा की व्यवस्था को सब लोग श्रेष्ठ मानते हैं, परन्तु मैं दृष्टान्त के वास्ते एक थोड़ी-सी बात लिखता हूँ कि जब युद्ध करके सेना आई, तब मूसा ने सेनास्थ और सेनापतियों को गुस्सा होके कहा कि तुम ने बहुत बुरा काम किया कि तुमने लड़के और लुगाइयों को क्यों नहीं मारा, फिर तुम जाओ, जाके सब लड़कों को मार डालो और जिन स्त्रियों का विवाह भया हो उनको भी मार डालो, परन्तु जिन कन्याओं का

विवाह न भया हो उनको रख लो अपने वास्ते, उनको मत मारो। इसी बात से मूसा का न्याय और बुद्धि को बुद्धिमान् समझ लेवें कि उसकी व्यवस्था कैसी होगी इत्यादिक बातें लूइजेकलिअट् साहेब ने संस्कृत विद्या की साक्षी में बायबिल इन् इण्डिअ में लिखी हैं। अन्य देशवासी भी संस्कृत विद्या की उत्तमता में साक्षी देते हैं जोकि संस्कृत में विद्वान् होते हैं।

और देखो कि आज कल जर्मन देशवालों ने संस्कृत की बड़ी प्रतिष्ठा की है, सो संस्कृत विद्या सब मनुष्यों को प्रतिष्ठा करने के योग्य है, त्याग करने के योग्य नहीं, परन्तु जो नवीन टीका और नवीन ग्रन्थों की रीति से संस्कृत को पढ़ेंगे उनको यथार्थ संस्कृत [विद्या कभी नहीं होगी और न उनको सुख लाभ होगा, किन्तु प्राचीन ऋषि-मुनियों के किये ग्रन्थों से संस्कृत और विद्या पुस्तकों को पढ़ेंगे, उनको यथार्थ संस्कृत] सत्य-विद्या होगी और अनन्त सुख-लाभ होगा।

इससे यह मेरा विज्ञापन है आर्यावर्त्त देश का राजा अंग्रेज बहादुर से कि संस्कृत विद्या की ऋषि-मुनियों की रीति से प्रवृत्ति कराये, इससे राजा और प्रजा को अनन्त सुख लाभ होगा। और जितने आर्यावर्त्त वासी सज्जन लोग हैं उनसे भी मेरा यह कहना है कि इस सनातन संस्कृत विद्या का उद्धार अवश्य करें ऋषि मुनियों की रीति से तो अत्यन्त आनन्द होगा। और जो यह संस्कृत विद्या लोप हो जायेगी, तो सब मनुष्यों की बहुत हानि होगी इसमें कुछ सन्देह नहीं।

मैंने अपने घर में कुछ वेद का पाठ और विद्या भी पढ़ी। फिर नर्मदा तट में दर्शन शास्त्रों को पढ़ा। फिर मथुरा में श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डी जी से पूर्ण व्याकरणादिक विद्याभ्यास किया जो कि बड़े विद्वान् थे, उनके पास रहके सब शंका समाधान किये। फिर मथुरा से आगरा नगर में दो वर्ष तक स्थिति की। वहाँ ऋषि-मुनियों के सनातन पुस्तक और नवीन पुस्तक भी बहुत मिले उनका विचार किया। ऐसे ही देश देशान्तरों में भ्रमण किया। जहाँ-जहाँ जो पुस्तक मिला, उनका विचार किया। जहाँ मुझको शंका रह जाती थी, उनका स्वामी जी से उत्तर यथावत् पाया। फिर पुस्तकों को देखके एकान्त में जाके विचार किया, अपने हृदय में शंका और समाधान किये। सो यह ठीक-ठीक निश्चय हृदय में भया कि वेद और सनातन ऋषि मुनियों के शास्त्र सत्य हैं, क्योंकि इनमें कोई असंभव वा अयुक्त कथा नहीं है। जो कुछ है उन शास्त्रों में, सो सत्य पदार्थ विद्या और सब मनुष्यों के वास्ते हितोपदेश हैं। और इनके पढ़ने से विना मनुष्य को सत्य ज्ञान कभी न होगा। इससे इनको अवश्य सब मनुष्यों को पढ़ना चाहिये।

और जिनको दूर छोड़ने कहा कि इनको न पढ़ें, न पढ़ावें, न इनको देखें, क्योंकि इनको देखने से वा सुनने से मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है, इससे इन ग्रन्थों को संसार में रहने भी न दें तो बहुत उपकार होय।

सब मनुष्यों को यह व्यवहार करना उचित है कि प्रहर रात्रि रहे तब उठे। उठ के शौचादिक क्रिया करे। फिर कुछ भ्रमण करे जहाँ-जहाँ शुद्ध वायु हो, एकान्त में जाके गायत्री मन्त्रादिकों के अर्थ से परमेश्वर की स्तुति करे, फिर प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! आपकी कृपा से हम पवित्र हों और धर्म में तथा अच्छे गुण ग्रहणों में तत्पर होवैं। परन्तु आपकी कृपा से ही जो अच्छा होता है सो होता है, सो आप ऐसी सब जीवों पर कृपा कीजिये कि सब जीव आपकी आज्ञा, सद्‌गुण ग्रहण और आपके स्वरूप में ही विश्वासादिगुण युक्त होके स्थिर होवैं। फिर उपासना कि सब इन्द्रिय, प्राण और जीवात्मा को एकत्र स्थिर करके परमेश्वर में स्थिर समाधिस्थ होके अनन्त जो परमेश्वर का आनन्द उसमें मग्न हो जाय। फिर चिरकाल ऐसे परमेश्वर का ध्यान करके कनिष्ठ बुद्धि वाला होय, सो अग्निहोत्रादिक कर्मकाण्ड करे। मध्य बुद्धिवाला योगाभ्यास करे जो कि उपासनाकाण्ड है, और जो तीव्र बुद्धि अर्थात् शुद्ध हृदय है सो विचार और ब्रह्म विद्या में तत्पर होय जो कि ज्ञानकाण्ड कहाता है। इसके विवेकादिक साधन ज्ञान के प्रथम कहे उनको भी करता जाय। कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड ज्ञान के वास्ते ही है ऐसा निश्चय करना चाहिये। फिर एक घण्टा भर दिन आवै और उसके पीछे एक घण्टा तक गृहसम्बन्धी दास दासी नौकर चाकर और जो अपने करने का कुछ काम है सो भी

उसी वक्त करे जिसको दिन भर की आज्ञा देनी हो वा यह काम अपने करने का उसको भी विचार ले और कह भी दे।

जिसको जिस वक्त जो देना चाहिये उसको उसी वक्त दे और जिससे लेना चाहिये उसे उसी वक्त ले। जिस व्यवहार में जैसी प्रतिज्ञा करे जिस वक्त करने की, उसको वैसी और उसी वक्त करे, क्योंकि प्रतिज्ञा हानि अर्थात् जैसा कहा वैसा नहीं करने से मनुष्य के सब व्यवहार छिन्न-भिन्न और नष्ट हो जाते हैं और उसको सब मनुष्य झूठा जान लेते हैं उसका विश्वास भी अच्छा आदमी कोई नहीं करता, इससे मनुष्य को प्रतिज्ञा पालन कि जो जैसा नियम से कहा, उसको वैसा ही पूरा करना चाहिये।

जितने पशु वा अपने आधीन जितने पदार्थ होवें उनका यथावत् पालन करे। जितने घर के पदार्थ हैं उनकी यथा योग्य रक्षा करावे स्त्री से, क्योंकि घर का जितना काम हो उतना स्त्री के ऊपर रखे। फिर जो जिसका व्यवहार है उसको धर्मयुक्त करे, अधर्म से नहीं।

फिर दश घण्टा समय भोजन करे वैद्यक शास्त्र की रीति से विचार और संस्कार करके। फिर जो जिसका व्यवहार है उसको यथावत् करे।

जब दो घण्टा दिन रहे, तब कार्यों को छोड़के शारीरिक शौचादिक कर्म करे। जब घण्टा भर दिन रहे तब दूसरी वक्त भोजन करे। फिर एकान्त में जाके परमेश्वर की यथोक्त स्तुति, प्रार्थना और उपासना करे और जो जिसका अग्निहोत्रादिक करना होय, सो करे। फिर भी प्रहर रात्रि जब तक न आवै तब तक व्यवहार का काम करै। फिर शयन करे मध्य रात्रि के दो पहर तक। फिर पहर रात्रि से उठे। ऐसे ही दिनचर्या नित्य करे।

अपने सन्तानों को पूर्वोक्त प्रकार से विद्यादि गुण ग्रहण के वास्ते ब्रह्मचर्याश्रम और वीर्यादिक की रक्षा की शिक्षा करे। अपने कुटुम्ब और स्त्री को प्रसन्न रखें और वे भी उसको प्रसन्न रखें। एक घर में चार भाई होवैं प्रीति से ही परस्पर सदा प्रसन्न रहें और एक ही व्यवहार में रहें। तथा उनकी स्त्री भी सदा प्रसन्न और प्रीति से अपने काम को यथावत् करें अपने अधिकार को बाँट के यथावत् करें। विरोध और कलह कभी न करें और न जुदे हों। और जब सैंकड़हा मनुष्य बढ़ें, तब जो जूदे होय तो प्रीति सदा परस्पर रखें। देश-देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर में भ्रमण भी करें। अपने समीपवासी इष्टमित्रों से अत्यन्त प्रीति करे और सब मनुष्यों से कपट और छल को छोड़के और अपने प्रसन्नता से मिलाकर रखे, एक दूसरे का सहाय करे। सबका हित चाहे अहित किसी का नहीं। विद्या धर्म यज्ञादिक श्रेष्ठ कर्म सब मनुष्यों का उपकार, दीन और अनाथों का पालन करे, नित्य सत्पुरुषों के सङ्ग से बुद्धि और नम्रतादिक गुणों को ग्रहण करे। किसी से हठ, दुराग्रह, अभिमान युक्त होके वाद विवाद न करे, दुष्टों का सङ्ग कभी न करे, वीर्य की रक्षा सदा करे, ब्रह्मचर्याश्रम विद्या पढ़ने के वास्ते सदा करे, बाल्यावस्था में विवाह कभी न करे। पूर्व ग्यारह लक्षण युक्त जो धर्म कहा, उसका सदा सेवन करे और उक्त प्रकार से अधर्म का सदा त्याग कर देश के उपकार में कि सब मनुष्यों को सुख होता है और अपने को उसमें कुछ दुःखी भी होना होय तो भी उसको यथावत् करे। एक परमेश्वर की उपासना एक मत कि सत्य धर्म को मानना, असत्य नहीं मानना, यही दृढ़ मत रखे, कोई पाखण्डी झूठा खुशामदी धूर्तों का विश्वास न करे, जो कुछ करे सोच विचार से ही करे। बे-विचार से कुछ नहीं कि इस काम को मैं करूँगा इससे क्या मुझको हानि वा लाभ होगा अथवा सब मनुष्यों को क्या सुख वा दुःख होगा, इसको ठीक-ठीक निश्चय करके उस काम को करे।

सब मनुष्यों को भविष्यत् का जो विचार करना है सो उत्तम है क्योंकि भविष्यत् के विचार के विना मनुष्य बहुत धोखा खाता है और धर्माधर्म तथा समुदाय मनुष्यों के वास्ते वेदादिक विद्या और विशेषतः धर्मशास्त्र जो कि मीमांसा दर्शन और मनुस्मृति इससे समुदाय जगत् का हित और अहित विचार के सबके हित को करे और अहित को न करें। जैसे कि धर्म का सेवन और अधर्म का त्याग तथा भक्ष्य का ग्रहण और अभक्ष्य का त्याग जैसे कि **अभक्ष्यो ग्राम्यशूकर अभक्ष्यो ग्राम्य कुक्कुट** इत्यादिक के मांस का भक्षण सब मनुष्यों को अहित है क्योंकि सूवर आदिक अशुद्ध पदार्थ का भक्षण करते हैं जो कि गाँव में रहते हैं, उनका

मांस भी उसी मल के अंश से बनेगा जब उसको कोई मनुष्य खावेगा तब दुर्गन्ध के अधिक होने से बुद्धि और शरीर में विकार उत्पन्न होंगे इससे ऐसा समुदाय का हिताहित विचार सब मनुष्य करैं।

और वैद्यक शास्त्र की रीति से पृथक्-पृथक् मनुष्यों को हिताहित विचारना चाहिये शरीर का स्वभाव और औषधों के अनुकूल गुण वालों को सेवन करैं जिससे कि शरीर और बुद्धि में विकार उत्पन्न न होवें जिससे बुद्धि बढ़े और शरीर में आरोग्य बढे, उसको चरक और सुश्रुत वैद्यक शास्त्र की रीति से ठीक-ठीक विचार के सेवन करे। भोजन के वास्ते जो नित्य खाने में आवे उसको सुश्रुत का अविरोधाध्याय और पाक करने के अध्याय से विचार के नित्य अनुकूल भोजन करे क्योंकि वीर्यादिक धातुओं की रक्षा और वृद्धि बुद्धि और शरीर की रक्षा होती है और शरीर की रक्षा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों मनुष्यों को प्राप्त होते हैं इनकी प्राप्ति से मनुष्यों को अत्यन्त सुख होता है। परन्तु ऐसा काम सदा करें जिससे कि भविष्यत् काल में अपना और सब जगत् का हित हो, यही काम करे। भूतकाल में जो कुछ पदार्थ प्राप्त भया हो उसकी वर्त्तमान में रक्षा यथावत् करे और भविष्यत् काल में उसकी उन्नति करता जाय। नित्य नयी विद्या और नाना प्रकार के शिल्प विद्या की रीति से पदार्थों को रचे उसकी वर्त्तमान में रक्षा और भविष्यत् काल में उन्नति करता जाय। और ऐसी छोटी बुद्धि मनुष्य को नहीं रखना चाहिये कि मैं अपना सुख करूँ, औरों के सुख वा दु:ख से मुझको क्या मतलब है किन्तु जब तक मैं जीऊँगा तब तक इनसे मुझको सुख होगा और फिर मुझको क्या प्रयोजन है, ऐसा विचार कभी न रखे क्योंकि जो मनुष्य रहेंगे, आगे-आगे उत्पन्न होंगे, उनको भी ऐसा ही सुख होगा सब मनुष्यों से हित और सबके उपकार में सदा चित्त रखे। परन्तु इससे अधिक जिस देश में अपना जन्म हुआ हो उसके उपकार में पुरुषार्थ करे और अपने समीपवासी और माता पितादि कुटुम्बस्थ इनका नित्य हित करे। धन का, सेना का, न्याय करने का और राज्य का अधिकार उत्तम पुरुषों को देवै। जो कि इनकी वर्तमान में रक्षा और भविषयत् काल में उन्नति करने में समर्थ होवैं। ऐसे को अधिकार न देवै, जोकि उन पदार्थों की रक्षा वर्तमान में न कर सकें और अन्य-अन्य छोटे-छोटे अधिकार भी यथायोग्य पुरुषों को देवे अन्यथा नहीं। क्योंकि राजा, सर्वाधिपति और सेनाधिपति और न्यायकर्त्ता विद्या वा बुद्धिमान् धर्मात्मा जितेन्द्रिय सबके हितकारी सब दुष्ट व्यसन रहित और पक्षपातरहित पुरुषों को जिस देश में अधिकार होते हैं उस देश में सदा सुख और सब श्रेष्ठ व्यवहारों की उन्नति होती जाती है। और जिस देश में इनसे विपरीत पुरुषों को ये राज्यादि अधिकार दिये जाते हैं उस देश में सब सुखों का नाश और अत्यन्त दु:खों की वृद्धि होती है। विशेष करके आर्यावर्त्त वासी मनुष्य जब तक सनातन संस्कृत विद्या न पढ़ेंगे, सत्य का ग्रहण और असत्य में एक परमेश्वर की उपासना न करेंगे, परस्पर विद्याग्रहण और श्रेष्ठ व्यवहारों को न करेंगे, परस्पर हित प्रीति और उपकार न करेंगे, पाषाणादिक मूर्त्ति पूजन, हठ, दुराग्रह, आलस्य, अत्यन्त विषय सेवा, खुसामदी, धूर्त पुरुषों का सङ्ग, मिथ्या विद्या और दुष्ट व्यवहारों को न छोड़ेंगे मिथ्या धन नाश और बाल्यावस्था में विवाह ब्रह्मचर्याश्रम के त्याग से शरीर और बुद्धि का नाश जब तक करेंगे और शरीर बुद्धि विद्या धर्मादिकों की रक्षा और उन्नति, विद्याग्रहण जब तक न करेंगे तब तक इनको सुख लाभ होना बहुत कठिन है, अन्य देश वासियों को भी। परन्तु जिस देश में बहुत बिगाड़ हुआ है उसके प्रति मेरा उपदेश भी अधिक है क्योंकि जो अधिक रोगी होता है उसका निदान ओषध और पथ्य भी अधिक कराना होता है क्योंकि एक देश पहिले बिगड़ा होता है और पीछे सुधरे, उस पर भी सुख मानना चाहिये। परन्तु आर्यावर्त्त देश पर मुझको बहुत पश्चात्ताप है क्योंकि इस देश में प्रथम बहुत सुखों और विद्याओं की उन्नति थी बहुत ऋषि मुनि बड़े-बड़े विद्वान् इस देश में भये थे, जिनके अच्छे-अच्छे काम और अच्छे-अच्छे विद्या पुस्तक अब तक चले आते हैं। और अच्छे-अच्छे राजधर्म के चलाने वाले राजा भी हुए हैं जिनों ने कभी पक्षपात किसी का नहीं किया है, किन्तु सदा धर्मन्याय में ही प्रवृत्त भये हैं सो देश इस वक्त ऐसा बिगड़ा है कि इतना बिगाड़ किसी देश में नहीं देखने में आता है, सो हमारी प्रार्थना सब

आर्यावर्त्तवासी राजा और प्रजा से है कि उक्त बुरे कामों को छोड़के अच्छे कामों में प्रवृत्त होवैं और जो कोई अन्य देशीय राजा आर्यावर्त्त में है उससे भी मेरी प्रार्थना यह है कि इस देश में सनातन ऋषि मुनियों के किये उक्त ग्रन्थ और ऋषि मुनियों की करी वेदों की व्याख्या उसी रीति से वेदों का यथावत् अर्थ ज्ञान और उनमें उक्त व्यवहारों के नियम उनकी प्रवृत्ति यथावत् करावै। इसी से ही यह देश सुधरेगा अन्यथा नहीं। और भी यह है सत्य विद्या और सत्य व्यवहार सब देशों में प्रवृत्त होना चाहिये, पर आर्यावर्त्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है जो कि उक्त प्रकार से प्रथम कही, उसी से इस देश का कल्याण होगा, अन्य देश भाषा से नहीं। अन्य देश भाषा तो जितना प्रयोजन, उतनी ही पढ़नी चाहिये। और विद्यास्थान में संस्कृत ही रखना चाहिये।

राजा का मूर्ख होना तो बहुत बुरा है परन्तु प्रजा का भी मूर्ख रहना बुरा है। किन्तु मूर्खों के ऊपर राज्य करने से राजा की शोभा नहीं, किन्तु प्रजा को विद्या युक्त धर्मात्मा और चतुर करके उनपर राज्य करने में राजा और प्रजा की शोभा और सुखों की उन्नति होती है ऐसा कानून राजा और प्रजा को चलाना और मानना चाहिये, जिससे द्यूत, चोरी, पर-स्त्री-गमन और मिथ्यासाक्षी, बाल्यावस्था में विवाह और विद्या का लोप न होने पावै। फिर राजा और प्रजा उस कानून को धर्म मानैं और उस पर ही सब चलें। परन्तु ऐसा वह कानून होय जिससे यह लोक और परलोक दोनों शुद्ध होवैं, वह कानून धर्म से कुछ भी विरुद्ध न होवै क्योंकि धर्म नाम है न्याय का और न्याय नाम है पक्षपात का छोड़ना। उनका ज्ञान सब मनुष्यों को होना चाहिये, धर्म का रक्षक विद्या ही है क्योंकि विद्या से ही धर्म और अधर्म का बोध होता है उनसे सब मनुष्यों को हिताहित का बोध होता है अन्यथा नहीं। सो मैं परमेश्वर से अत्यन्त प्रार्थना करता हूँ कि हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्द! नित्य मुक्त स्वभाव! हे न्यायकारिन्! हे सर्वशक्तिमान्! हे अज! हे अमृत! हे अन्तर्यामिन्! हे सर्वजगदुत्पादक! हे सर्वजगद्धारक! हे करुणानिधे! सब जगत् के ऊपर ऐसी कृपा करें, जिससे कि सम्पूर्ण विद्या का लाभ वेदादिक सत्य शास्त्रों का ऋषि मुनियों की रीति से होगा! परन्तु सर्वत्र धर्म व्यवहार में परमेश्वर की प्रार्थना सबको करनी उचित है इसी से सब उत्तम लाभ मनुष्यों को होते हैं।

**ओ३म् शन्नो मित्र शंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुकमः। नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषं ऋतमवादिषं सत्युमवादिषं तन्मामावी तद्वक्तारमावीदावीन्मामावीद्वक्तारम्। ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥**

**इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविरचिते चतुर्दशसमुल्लासस्सम्पूर्णः॥ १४॥**